महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.ए. समाजशास्त्र

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.एस. - 015

प्रथम सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : - 02

पाठ्यचर्या का शीर्षक : समाजशास्त्रीय विचारक (I)

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि.,वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. शैलजा दुबे
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग उच्च
शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभु जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
इकाई 1 – प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 2 - प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 3 - प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 4 – प्रो. शैलजा दुबे

खंड - 2
इकाई 1- प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 2- प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 3- प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 4- प्रो. शैलजा दुबे

खंड - 3
इकाई 1 - प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 2 - प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 3 - प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 4 – प्रो. शैलजा दुबे

खंड - 4
इकाई 1- प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 2 - प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 3 - प्रो. शैलजा दुबे
इकाई 4 - प्रो. शैलजा दुबे

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहा. कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक/फार्मेटिंग/इंडिटींग
दू.शि. निदेशालय

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट, दू.शि. निदेशालय

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर, दू.शि. निदेशालय

पाठ्यचर्या कोड : एमएएस- 02

पाठ्यचर्या का नाम : समाजशास्त्रीय विचारक (I)

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

शिक्षण उद्देश्य :

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगे -

- समाजशास्त्र को एक विषय के रूप में स्थापित करने में समाजशास्त्रीय विचारकों की भूमिका को समझ सकेंगे।
- समाजशास्त्र के पितामह कहे जाने वाले अगस्त कॉम्ट के योगदान कॉ समझ सकेंगे।
- समाजशास्त्र के विकास में हरबर्ट स्पेंसर की भूमिका को समझ सकेंगे।
- समाजशास्त्र के वैज्ञानिक पितामह कहे जाने वाले इमाइल दुर्खीम के सिद्धांत एवं योगदान को विद्यार्थी समझ सकेंगे। ।
- पारंपरिक विचारकों की श्रेणी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले मैक्स वेबर के योगदान को विद्यार्थी समझ एवं लिख सकेंगे।

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

समाजशास्त्रीय विचारक (I)

खंड (1) अगस्त कॉम्ट

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 तीन स्तरों का नियम एवं प्रत्यक्षवाद

इकाई : 3 विज्ञानों का संस्तरण, सामाजिक स्थिति विज्ञान एवं सामाजिक गति विज्ञान

इकाई : 4 सामाजिक पुनर्निर्माण का सिद्धांत

खंड (2) हरबर्ट स्पेंसर

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 समाज एक सावयव के रूप में

इकाई : 3 सामाजिक उद्विकास का नियम

इकाई : 4 सैनिक एवं औद्योगिक समाज

खंड (3) इमाइल दुर्खीम

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम, सामाजिक तथ्य एवं प्रत्यक्षवाद

इकाई : 3 अत्महत्या एवं श्रम विभाजन का सिद्धांत

इकाई : 4 धर्म का सामाजिक सिद्धांत एवं सावयवी तथा यांत्रिक एकता

खंड (4) मैक्स वेबर

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 सामाजिक क्रिया की अवधारणा एवं आदर्श प्रारूप

इकाई : 3 सामाजिक व्यवस्था, प्रभुत्व एवं शक्ति का सिद्धांत

इकाई : 4 धर्म एवं पूंजीवाद

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – अगस्त कॉम्ट**	
	इकाई -1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	4-18
	इकाई -2 तीन स्तरों का नियम एवं प्रत्यक्षवाद	19-47
	इकाई -3 विज्ञानों का संस्तरण, सामाजिक स्थिति विज्ञान एवं सामाजिक `गति विज्ञान	48-75
	इकाई –4 सामाजिक पुनर्निर्माण का सिद्धांत	76-88
2	**खंड - 2 – हरबर्ट स्पेंसर**	
	इकाई -1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	89-102
	इकाई -2 समाज एक सावयव के रूप में	103-117
	इकाई -3 सामाजिक उद्विकास का नियम	118-143
	इकाई -4 सैनिक एवं औद्योगिक समाज	144-152
3	**खंड - 3 – इमाइल दुर्खीम**	
	इकाई -1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	153-168
	इकाई -2 समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम, सामाजिक तथ्य एवं प्रत्यक्षवाद	169-198
	इकाई -3 अत्महत्या एवं श्रम विभाजन का सिद्धांत	199-231
	इकाई -4 धर्म का सामाजिक सिद्धांत एवं सावयवी तथा यांत्रिक एकता	232-261
4	**खंड - 4 – मैक्स वेबर**	
	इकाई –1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	262-275
	इकाई – 2 सामाजिक क्रिया की अवधारणा एवं आदर्श प्रारूप	276-301
	इकाई – 3 सामाजिक व्यवस्था, प्रभुत्व एवं शक्ति का सिद्धांत	302-322
	इकाई -4 धर्म एवं पूंजीवाद	323-344

खंड 01- अगस्त कॉम्ट

इकाई: 1 जीवन परिचय एवं कृतियां

इकाई की रूपरेखा

1.1.0 उद्देश्य

1.1.1 प्रस्तावना

1.1.2 अगस्त कॉम्ट का प्रारंभिक जीवन

1.1.3 शैक्षणिक जीवन

1.1.4 पारिवारिक जीवन

1.1.5 आर्थिक स्थिति

1.1.6 तात्कालिक परिस्थितियां

1.1.7 बौद्धिक परिस्थितियां

1.1.8 व्यवसायिक स्थिति

1.1.9 अगस्त कॉम्ट का समाजशास्त्र

1.1.10 महत्वपूर्ण कृतियां

1.1.11 निष्कर्ष

1.1.12 सारांश

1.1.13 बोध प्रश्न

1.1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1.1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे -

- समाजशास्त्र की उत्पत्ति के बारे में जान पाएंगे।
- अगस्त कॉम्ट के संपूर्ण जीवन के बारे में जान सकेंगे।
- अगस्त कॉम्ट के समय फ्रांस एवं यूरोप की स्थिति के बारे में समझ सकेंगे।
- अगस्त कॉम्ट को समाजशास्त्र का जनक मानने के कारण को जान पाएंगे।

1.1.1 प्रस्तावना

सामाजिक विचारों का वैज्ञानिक इतिहास 19वीं सदी से प्रारंभ होता है। सामाजिक विचारों का इतिहास तो उतना ही पुराना है जितना की स्वयं मानव समाज। मानव की उत्पत्ति के समय से ही समाज में अनेक समस्याएं रही हैं। मानव द्वारा उन समस्याओं को सुलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के विचार भी व्यक्ति के मन में आए होंगे क्योंकि यह विचार सामाजिक संरचना, सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक जीवन से संबंधित रहे होंगे। इसलिए इन्हें सामाजिक विचार कहा गया। सामाजिक विचारधारा का अर्थ है, सभी प्रकार की सामाजिक समस्याओं पर चिंतन करने वाली विचारधारा 19 वी सदी के विचार को आधुनिक विचारको की श्रेणी में रखा जाता है। इन विचारकों में सर्वप्रथम स्थान **अगस्त कॉम्ट** का है।

फ्रांसीसी भाषा में इनका उच्चारण अगस्त कॉम्टे है परंतु अंग्रेजी में उच्चारण करने वाले इसे अगस्त कॉम्ट पढते हैं। एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की स्थापना 19वी सदी में यूरोप में हुई इसका श्रेय जाता है फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक **अगस्त कॉम्ट** को आप प्रथम ऐसे विचारक थे, जिन्होंने एक विशिष्ट एवं प्रथक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र विषय का निर्माण उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में किया।

कॉम्ट ने सामाजिक जीवन एवं सामाजिक घटनाओं के बारे में व्यवस्थित विचार प्रस्तुत किए। घटनाओं के अध्ययन हेतु सर्वप्रथम वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया और वर्गीकरण को सामाजिक घटनाओं के अध्ययन की पद्धति का अंग बनाया कॉम्ट ने ही सर्वोत्तम **1838** में **समाजशास्त्र** शब्द का प्रयोग किया। इस विषय का नाम सर्वप्रथम **सामाजिक भौतिकी** रखा बाद में इसमें परिवर्तन करके **1838** में इसका नाम **समाजशास्त्र** रखा गया। इसलिए अगस्त कॉम्ट को समाजशास्त्र का जनक या पिता कहा जाता है। समाजशास्त्र का जन्म कॉम्ट की विचारधारा में ही हुआ इससे पहले सामाजिक विचारकों के चिंतन में इसका अस्तित्व हमें नहीं मिलता है। समाजशास्त्र जन्म से लेकर अब तक के क्षेत्र, प्रकृति तथा पद्धति में अभूतपूर्व परिवर्तन, परिवर्धन तथा परिशुद्धी हुई है पर जो वैज्ञानिक नींव कॉम्ट ने सर्वप्रथम डाली थी वह आज भी दृढ़ है।

अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को एक ऐसे विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया जो सामाजिक घटनाओं का व्यवस्थित क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ रूप में अध्ययन करता है। कॉम्ट नें समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया आपने ही समाजशास्त्र और सामाजिक विचारों के क्षेत्र का निर्धारण किया। विज्ञानों के वर्गीकरण और उनके पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डाला। चिंतन की तीन अवस्थाओं का वर्णन किया और कहा की व्यवस्था का विकास ही प्रगति है। कॉम्ट का विचार था कि समाजशास्त्र एक ऐसा विज्ञान होगा जो सामाजिक उन्नति और विकास से संबंधित अपने सामान्य सिद्धांतों एवं निर्णय की स्थापना करेगा तथा भावी अनुसंधान कार्यों का भी निर्देशन करेगा

1.1. 2 कॉम्ट का प्रारंभिक जीवन

अगस्त कॉम्ट का जन्म **19 जनवरी 1798** में **फ्रांस** के **मॉन्टपेलियर** नामक स्थान में एक मध्यमवर्गीय कैथोलिक परिवार में हुआ था। आपके पिता कर विभाग में अधिकारी थे आर्थिक दृष्टि से परिवार की आय मध्यम वर्ग की थी। अगस्त कॉम्ट का पूरा नाम **इसीडोर अगस्त मैरी फ्रेंनक्वींस जेवियर कॉम्ट** था। कॉम्ट का बचपन अनेक प्रकार की विलक्षणताओं से परिपूर्ण था बचपन से ही उनके व्यक्तित्व में दो प्रमुख विशेषताएं देखने को मिली यह विशेषताएं उनके जीवन में हर क्षेत्र में प्रदर्शित होती हैं -

1. **प्रखर बौद्धिक क्षमता-** यह अगस्त कॉम्ट की मौलिक विशेषता थी। बौद्धिक दृष्टि से उनका व्यक्तित्व बहुत ही विलक्षण था। उन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि एवं मानसिक परिपक्वता का परिचय बहुत जल्दी देना शुरू कर दिया था। 14 वर्ष की उम्र में ही वे सामाजिक पुनर्निर्माण एवं पुनर्गठन के बारे में सोचने लगे थे और 16 वर्ष की आयु में गणित जैसे कठिन विषय पर व्याख्यान देना प्रारंभ कर दिया था। इससे स्पष्ट है कि कॉम्ट प्रारंभ से ही असाधारण व्यक्तित्व एवं विलक्षण प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे।
2. **स्थापित सत्ता के विरोधी-** कॉम्ट स्थापित सत्ता के भी विरोधी थे और यह भी उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता थी। वह अपनी पुरानी स्थापित सत्ता और परंपराओं के घोर विरोधी थे और वे दूसरों के विचारों को अपने ऊपर थोपने पर भड़क उठते थे। उनके पिता कट्टर राज भक्त थे और कॉम्ट उनके प्रबल विरोधी थे। उनके विचार पिता के राजनीतिक विचारों से भिन्न थें। कॉम्ट ने अपने आप को रिपब्लिक घोषित कर दिया था। उनके माता-पिता कैथोलिक धर्म के उपासक थे और कॉम्ट कैथोलिक धर्म के कटु आलोचक थे। वे अपने माता-पिता के विपरीत लोकतंत्रवादी थे। उन्होंने बचपन से ही अपने पिता के विचारों का विरोध करना प्रारंभ कर दिया था और 13 वर्ष की आयु में ही अपने परिवार की राजनीतिक, धार्मिक विचारों एवं विश्वासों की तिलांजलि देकर एक स्वतंत्र विचारक होने का दावा प्रस्तुत किया था।

1.1.3 शैक्षणिक जीवन

अगस्त कॉम्ट की प्रारंभिक शिक्षा उनके अपने ही नगर **मॉन्टपेलियर** में हुई। इसके बाद वे अध्ययन के लिए पेरिस चले गए। जहां उन्होंने पॉलिटेक्निक स्कूल में प्रवेश लिया। उनकी प्रतिभा का निखार तो मॉन्टपेलियर में ही दिखने लगा था। पेरिस में जाकर उनकी प्रतिभा को परिपक्वता प्राप्त हुई। कॉम्ट की अध्ययन क्षमता एवं स्मृति अन्य छात्रों की अपेक्षा असाधारण थी। इसलिए वह विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय हो गए। स्कूली जीवन में एक प्रोफेसर को शिक्षण संस्था से निकाल देने के लिए चलाए गए आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। इस तरह से वह छात्र नेता बने। 13 वर्ष की आयु में परिवार के धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों

एवं विश्वासों का परित्याग किया। 14 वर्ष की आयु में पुनर्निर्माण एवं पुनर्गठन पर अपने विचार व्यक्त किए। 16 वर्ष की आयु में गणित के अध्ययन पर अपना ध्यान केंद्रित किया और कई व्याख्यान दिए। इस छोटी सी आयु में गणित विषय पर व्याख्यान देकर एक साहसी और प्रखर बुद्धि वाले स्वतंत्र विचारक बन गए। उनकी क्षमताओं एवं विचारों के कारण उनके साथी उन्हें दार्शनिक कहा करते थे।

अपने विद्यार्थी जीवन में कॉम्ट फ्रांस के एक प्रसिद्ध विचारक **बेंजामिन फ्रैंकलिन** से भी अत्यधिक प्रभावित हुए। वे उन्हें अपना आदर्श मानते थे तथा उनका अनुकरण करना चाहते थे। एक बार उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा था कि मैं **आधुनिक सुकरात (बेंजामिन फ्रैंकलिन)** का अनुकरण करना चाहता हूं। उनके बौद्धिक गुणों का नहीं बल्कि जीवन जीने के तरीकों का तुम जानते हो कि वह जब 25 वर्ष के थे तभी उन्होंने अपने आप को पूर्णतया बुद्धिमान व्यक्ति सोच लिया था। मैंने भी उसी विचार को ग्रहण करने का साहस किया है यद्यपि मेरी आयु अभी 20 वर्ष की भी नहीं है।

20 वर्ष की आयु में अगस्त कॉम्ट को सुप्रसिद्ध दार्शनिक **सेंट साइमन** के संपर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। 1818 से 1824 तक सात वर्षों तक दोनों के बीच काफी घनिष्ठ संबंध रहे। इन सात वर्षों के संपर्क का प्रभाव अगस्त कॉम्ट के मन-मस्तिष्क एवं विचारों पर देखने को मिलता है। सामाजिक सुधार की अवधारणा को कॉम्ट ने सेंट साइमन से ही ग्रहण किया था। सेंट साइमन के कई विचारों का परिवर्तित एवं परिवर्धित तथा संशोधित रूप हमें कॉम्ट की रचनाओं में देखने को मिलता है।

कॉम्ट की विचारधारा साइमन की विचारधारा से काफी प्रभावित रही क्योंकि उन्होन साइमन की तरह ही यह स्वीकार किया कि विज्ञानों का वैज्ञानिक वर्गीकरण अति आवश्यक है तथा दर्शन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक होना चाहिए। विज्ञानों के वैज्ञानिक वर्गीकरण की अवधारणा का विचार **अगस्त कॉम्ट** ने **सेंट साइमन** से ही ग्रहण किया था। कॉम्ट ने स्वीकार किया कि विज्ञानों का वर्गीकरण अति आवश्यक है तथा दर्शन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक होना चाहिए और सामाजिक विचारकों को समाज के नैतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं के पुनर्गठन में योगदान देना चाहिए। कॉम्ट साइमन की चिंतन पद्धति को अवैज्ञानिक व अव्यवस्थित होने के कारण पूर्णतया स्वीकार नहीं कर पाए क्योंकि सेंट साइमन के विचारों में क्रमबद्धता का अभाव था जबकि कॉम्ट के विचार व्यवस्थित, तार्किक, वैज्ञानिक यथार्थ तथा तथ्यों पर आधारित थे। इसलिए दोनों के विचार अधिक समय तक मेल नहीं खा सके और उनके संबंधों में दरार पड़ गई। कॉम्ट ने दावा किया था कि वह सेंट साइमन से कहीं अधिक वैज्ञानिक आधार पर विज्ञानों का वर्गीकरण व सामाजिक पुनर्गठन की योजना प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। इस अभिव्यक्ति से उनका संबंध साइमन से हमेशा के लिए टूट गया। कॉम्ट ने स्पष्ट दोषारोपण किया की साइमन के समर्थक उनके विचारों का दुरूपयोग कर रहे हैं और साइमन स्वयं भी दुराचारी नीमहकीम मात्र है।

1.1.4 पारिवारिक जीवन

सन 1925 में अगस्त कॉम्ट ने कारोलिन मैसिन नामक युवती से विवाह किया। उनका वैवाहिक जीवन कभी सुखी नहीं रहा। विवाह के बाद ही उनका पारिवारिक जीवन दुखद हो गया था। अपने दुख को भूलने के लिए अगस्त कॉम्ट ने अपना पूरा समय लेखन एवं अध्ययन कार्य को देने लगे। उन्होंने विभिन्न विषयों पर व्याख्यान देना प्रारंभ कर दिया। इससे उन्हें धन और प्रसिद्धि दोनों मिली पर अत्यधिक परिश्रम करने के कारण 1827 में वह भयंकर मानसिक रोग से ग्रसित हो गए। यहां तक की कॉम्ट ने **सेन नदी** में डूबकर मरने का प्रयास भी किया था। लगभग 1 वर्ष के पश्चात वे इस रोग से मुक्त हुए और उन्होंने पुनः व्याख्यान देना प्रारंभ किया। इस समय कॉम्ट पॉलिटेक्निक इंस्टिट्यूट में प्रशिक्षक रहे। जहां पर वे गणित पढ़ाने के साथ-साथ ज्योतिषशास्त्र पर भी व्याख्यान दिया करते थे। यहीं पर 1930 में उनकी महान कृति **'द कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलॉसफी'** का पहला खंड प्रकाशित हुआ। इसका छठवां खंड 1842 में प्रकाशित हुआ था। 1842 में ही उनका उनकी पत्नी से तलाक हुआ। इस तलाक के साथ ही उनके संघर्ष में एवं कष्टप्रद जीवन का अंत हुआ।

कॉम्ट के जीवन में एक नया मोड़ तब आया जब 1844 में वे क्लोटाइल डी वॉक्स नामक महिला के संपर्क में आए। यह सामान्य एवं दुखी महिला थी। अगस्त कॉम्ट इन्हें अनेक दैवीय गुणों से युक्त एवं अतुलनीय मानते थे। यह महिला अगस्त कॉम्ट के दिल एवं दिमाग पर छाई रही। अगस्त कॉम्ट को वॉक्स के प्रति प्यार एक तरफा था क्योंकि वाक्स को कॉम्ट से प्यार नहीं था और न ही कभी दोनों एक साथ एक घर में रहे। अगस्त कॉम्ट का यह प्रेम अधिक समय तक नहीं चला क्योंकि कॉम्ट के संपर्क में आने के 1 वर्ष बाद ही वॉक्स की मृत्यु हो गई पर कॉम्ट उससे इतना प्रेम करते थे कि उसकी पूजा करने लगे थे। वॉक्स की मित्रता के प्रभाव से ही कॉम्ट स्त्रियों के प्रशंसक बन गए थे। इसी कारण उन्होंने अपनी दूसरी प्रसिद्ध कृति 'सिस्टम आफ पॉजिटिव पॉलिटी' में स्त्रियों की प्रशंसा की है तथा उनके नैतिक एवं देवी गुणों का विस्तार से उल्लेख किया है। इसी रचना में उन्होंने मानवता के धर्म की अवधारणा भी प्रतिष्ठित की है। उन्होंने सामाजिक पुनर्निर्माण की जो योजना प्रस्तुत की। उसका आधार विज्ञान को न बनाकर धर्म को बनाया है। उनका विश्वास था कि सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए नैतिक आदर्श, अध्यात्म तथा सहनशीलता व न्याय की भावना का समन्वय होना आवश्यक है। मानवता के धर्म की स्थापना के लिए सभी प्रकार के विरोधी विश्वासों, आचरण एवं अनुष्ठानों को मिलाने एवं उनका समन्वय करने एवं एकत्रीकरण करने पर जोर दिया। इससे कॉम्ट के शिष्यों **लिट्टरे** तथा **जॉन स्टुअर्ट मिल** को काफी दुख हुआ क्योंकि उनके यह विचार उनके पूर्व के वैज्ञानिक विचारों से एकदम विपरीत थे। अपनी असाधारण प्रतिभा एवं बौद्धिक प्रखरता तथा तार्किक विचारधारा के कारण अगस्त कॉम्ट को शिक्षित समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। उनके कुछ आलोचकों का कथन है कि उनके लेखों में एकरूपता का अभाव था। उनकी प्रथम रचना के प्रकाशन के बाद उनकी प्रतिभा एवं क्षमता का

विनाश शुरू हो गया था। इसके बावजूद उनके प्रशंसकों की संख्या में कमी नहीं थी। उन्होंने अपने विचार अनेक लोगों को प्रभावित किया है।

1.1.5 आर्थिक स्थिति

अगस्त कॉम्ट की आर्थिक स्थिति प्रारंभ में काफी दयनीय थी। स्कूल से निकाले जाने के बाद अगस्त कॉम्ट ने अपना खर्चा भाषण देकर चलाया। यहां तक कि उनकी प्रथम पुस्तक 'द कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलासफी' के प्रकाशन से पहले उनकी आय का साधन केवल प्राइवेट शिक्षण कार्य एवं व्याख्यान ही थे और प्रथम रचना के प्रकाशन के बाद कॉम्ट को पॉलिटेक्निक स्कूल में प्रवेश लेने वाले छात्रों के परीक्षक का पद प्राप्त हुआ। इससे उन्हें कुछ आय होने लगी तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। इस कृति की लोकप्रियता एवं उनकी असाधारण प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति और उनके समर्थक उनको आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए चंदा भी इकट्ठा करने लगे 1845 में **जॉन स्टुअर्ट मिल** ने इंग्लैंड में उनके लिए 1200 डालर चंदा इकट्ठा किया था। इस प्रकार के चंदे के धन को स्वीकार करने में अगस्त कॉम्ट को कभी हिचकिचाहट नहीं हुई क्योंकि उनका कथन था कि वह जिस चीज के लिए परिश्रम कर रहे हैं उसके लिए उन्हें आर्थिक मदद मिलनी चाहिए। लोगों का यह कर्तव्य है कि वह उनकी मदद करें इसलिए उन्हें हमेशा यह भी शिकायत रही कि चंदे का धन बहुत कम है। इसे अगस्त कॉम्ट के चरित्र की एक बड़ी भारी दुर्बलता मानी जाती है।

1.1.6 तात्कालिक परिस्थितियां

किसी भी विचारक का प्रेरणा स्रोत कुछ न कुछ सामाजिक परिस्थितियां होती है। अगस्त कॉम्ट भी इसके अपवाद नहीं थे। यूरोप एवं फ्रांस की क्रांति के बाद नेपोलियन के अधिनायकवाद के परिणामस्वरुप फ्रांस में जो सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न हुई उसका अगस्त कॉम्ट के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा।

अगस्त कॉम्ट के विचारों को प्रभावित करने में तत्कालीन फ्रांस एवं यूरोप की सामाजिक परिस्थितियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समाजशास्त्र की उत्पत्ति फ्रांस की राज्यक्रांति से उत्पन्न सामाजिक अव्यवस्था के कुछ समय पश्चात ही हुई थी। इस क्रांति के कारण फ्रांस की आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन आया। फ्रांस में चली आ रही सामंती प्रथा को समाप्त कर दिया गया।

वहाँ के राजाओं को प्राप्त दैवी अधिकार और उनकी सरकार को भी नष्ट कर दिया। चर्च की सत्ता लगभग समाप्त हो गई थी और कुलीन वर्ग के लोगो को प्राप्त विशेषाधिकार भी छीन लिए गए थे। इस क्रांति के बाद सत्ता अनुभवहीन लोगों के हाथ में आ गई थी और नेपोलियन एक तानाशाह के रूप में उभरा था। समाज

में अव्यवस्था एवं अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो गई। ऐसे समय में समाज के समक्ष एक प्रमुख समस्या व्यवस्था को कायम रखने, उसकी उन्नति करने की थी और इस बात की भी आवश्यकता महसूस की जा रही थी कि सामाजिक विचारक सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु दार्शनिक एवं काल्पनिक हल ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक और व्यावहारिक हल भी प्रस्तुत करें। उस समय अगस्त कॉम्ट ने समाज से संबंधित अपने जो विचार रखे थे वे समय की मांग के अनुरूप ही थे। उन्होंने समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया। उनका विचार था कि सामाजिक उद्विकास और सामाजिक प्रगति से संबंधित विज्ञान होना चाहिए। सामाजिक प्रगति और पुनर्गठन की योजनाएं अनुभव और प्रयोग सिद्धि विज्ञान पर आधारित होना चाहिए। इसी समय उन्होंने सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना प्रस्तुत की।

जिस समय समाजशास्त्र का उदय हुआ उस समय फ्रांस तथा यूरोप में औद्योगिक क्रांति जन्म ले रही थी। इस सब के परिणाम स्वरुप उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ यातायात एवं संचार के नवीन साधन भी विकसित हो रहे थे। व्यापार में वृद्धि होने के कारण नवीन वर्ग पूंजीपति अथवा बुजुवा वर्ग का उदय हो रहा था। इन सभी परिवर्तनों के प्रभाव के कारण समाज में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अशांति एवं विषमता पैदा हो रही थी।

इन परिवर्तनों के कारण विज्ञान के क्षेत्रों का विकास एवं विस्तार भी प्रारंभ हो गया था। इन सभी परिस्थितियों ने सामाजिक सुधार को आवश्यक बना दिया था। सामाजिक विचारों में परिवर्तन होने लगे थे तथा अवलोकन, परीक्षण और कारणों को ज्ञान का आधार माना जाने लगा था। इन नवीन स्थितियों ने फ्रांस के तत्कालीन समाज सामाजिक ढांचे में भी परिवर्तन किया विद्वानों ने एक नए समाज की रचना की योजनाएं प्रस्तुत की अगस्त कॉम्ट भी इनमे से एक प्रमुख विचारक थे

क्रांति के परिणाम स्वरूप सबसे प्रमुख समस्या समाज में व्यवस्था कायम रखने और समाज की उन्नति करने की थी। उस समय आवश्यकता इस बात की थी कि सामाजिक विचारक सामाजिक समस्याओं के लिए केवल काल्पनिक ही नहीं बल्कि दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक हल प्रस्तुत करें। अगस्त कॉम्ट ने समय की मांग के अनुरूप अपने विचार प्रकट किए और उन्होंने सामाजिक पुनर्निर्माण की ओर अधिक ध्यान दिया उनके अनुसार उद्विकास एवं सामाजिक प्रगति से ही संबंधित विज्ञानों का विकास होना चाहिए। इसलिए उन्होंने समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया और वह 19वीं सदी के प्रमुख विचारक बन गए।

1.1.7 बौद्धिक पृष्ठभूमि

फ्रांसीसी क्रांति और ज्ञानोदय के गवाह अगस्त कॉम्ट थे परंतु उनकी भावना इसके विरुद्ध थी। उनके धार्मिक विचार तात्कालिन फ्रांसीसी धार्मिक विचारकों **डी. बोनाल्ड** एवं **डी. मास्त्रे** के समान होते हुए भी उससे भिन्न थे। अगस्त कॉम्ट स्वयं को बेकन डी कार्टेस की बौद्धिक परंपरा को आगे बढ़ाने वाला मानते थे। वे **हीगल** से परिचित थे और **इमानुएल कॉम्ट** से प्रभावित थे। उन्होने मोंटेस्क्यू, डेविड ह्यूम आदि को भी पढ़ा था। सेंट साइमन के विचारों से गंभीर रूप से प्रभावित थे हालांकि उनसे उनका विवाद लगातार बना रहा। समाज का विज्ञान, विज्ञानो का वर्गीकरण कॉम्ट ने साइमन से ही लिए थे। इन सभी विद्वानों के अतिरिक्त कॉम्ट सबसे अधिक टरगट से प्रभावित थे क्योंकि टरगट का कहना था कि मनुष्य प्रगति की राह पर चल पड़ा है और उसे कोई नहीं रोक सकता। सब की प्रगति तभी होगी जब की गणित एवं प्राकृतिक विज्ञानों की प्रगति होगी और प्रगति की इसी धारणा को अगस्त कॉम्ट ने टरगट से लिया था।

अगस्त कॉम्ट ने समाज के इतिहास समाज की बनावट, समाज में परिवर्तन और समाज के भविष्य के बारे में खूब लिखा। हांलाकि कॉम्ट किसी भी तरह की कोई शास्त्रीय बौद्धिक मंडली में सम्मिलित नहीं थे और न ही वे किसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे और न ही किसी बौद्धिक संस्थान में काम करते थे। कॉलेज की परीक्षा विभाग में जब कॉम्ट थे तब उनका संपर्क केवल पूर्ववर्ती छात्रों एवं शिक्षकों के संपर्क में रहा है।

एल. ए. कोजर ने लिखा है कि इकॉल के अनेक ऐसे छात्र थे, जो अपने जमाने के होनहार विद्वान कहे जाते थे। वे फ्रांस के समाज को बदलना और सवारना चाहते थे और कॉम्ट तुलनात्मक रूप से अधिक गंभीर थे। उन्होंने अपनी पुस्तकों में अपने विचारों को प्रस्तुत किया एवं स्वयं घूम-घूम कर बौद्धिक भाषण दिया कि प्रत्यक्षवादी समाज बनाएं।

कॉम्ट की व्यवस्था और श्रंखला के पक्षधर थे। व्यवस्था को हिंसक रूप में बदलने के पक्ष में कभी नहीं रहे। परंतु क्रमिक परिवर्तन के समर्थक थे। पूंजीवाद के समर्थक होते हुए भी उन्होंने पूंजीवाद के नकारात्मक पक्षों की आलोचना की। उन्होंने पूंजीवाद को एक नवीन मानवीय चेहरा प्रदान करने की वकालत की। फ्रांसीसी क्रांति की उठापटक से चिंतित कॉम्ट श्रंखला एवं व्यवस्था चाहते थे। वह नैतिकता के समर्थक थे। उनकी कल्पना का समाज नैतिक समाज होगा। समाचार रूपी विज्ञान के निर्देश में वे एक नैतिकवादी, प्रत्यक्षवादी समाज का निर्माण करना चाहते थे। अपने प्रेम-प्रसंग के कारण स्त्री संबंधी उनके विचार एवं सार्वभौमिक प्रेम के विचार और अप्रासंगिक जरूर है परंतु इतिहास को समझने के लिए उन्होंने एक शैली विकसित की थीं।

अगस्त कॉम्ट ने डी मास्त्रे और डीबोनाल्ड की भी बहुत अधिक प्रशंसा की है। यह दोनों विद्वान धर्म के स्वर्ण युग की वापसी चाहते थें। कॉम्ट ब्रिटिश विद्वान **एडम स्मिथ** के विचारों से भी प्रभावित थे। पर एडम

स्मिथ की इस बात पर आलोचना की थी कि उन्होंने बाजार को ही सब कुछ बना दिया। कॉम्ट उदारवादी नहीं थे परंतु उन्होंने पूंजीवाद का समर्थन किया। कहते थे कि प्रत्यक्षवादी समाज में उद्योग के कप्तान ही समाज के कप्तान होंगे तब शायद वे पूंजीवाद की ही वकालत कर रहे थे। अगस्त कॉम्ट, सेंट साइमन के अनेक विचार और धारणाएं अपना ली थी। मानव के प्रत्यक्षवादी विज्ञान की अवधारणा, विज्ञानों के वर्गीकरण की धारणा मूलतः सेंट साइमन की थी जिन्हें की वह सही और सुसंगत रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके थे।

अगस्त कॉम्ट एडोल्फ क्विटलेट से प्रभावित नहीं थे। सोशल फिजिक्स शब्द का प्रयोग 1822 में ही किया था। बाद में पॉजिटिव फिलॉसफी के प्रथम खंड में उन्होंने इसका फिर प्रयोग किया। क्विटलेट ने अपनी पुस्तक 'ऑन मैन एंड डेवलपमेंट ऑफ ह्यूमन फैकल्टीज' का उपशीर्षक 'एस्से आन सोशल फिजिक्स' रख दिया कॉम्ट क्वीटलेट के विचारों से नाराज थे और शब्दावली को उठा लिए जाने से और नाराज हुए। बाद में उन्होंने सोशियोलॉजी नाम का शब्द नए विषय के लिए अपना लिया।

1.1.8 व्यवसायिक जीवन

अगस्त कॉम्ट का अध्ययन एक योजना के अनुसार ही होता था। अध्ययन के अलावा उनके सभी कार्य पूर्व निर्धारित हुआ करते थे। यहां तक कहा जाता है कि अगस्त कॉम्ट जब घूमने निकलते थे तो आस-पास के लोग घड़ी मिलाया करते थे। अध्ययन के अतिरिक्त लेखन का कार्य भी नियमित तौर पर करते थे उनके लेखन में दो विशेषताएं देखने को मिलती थी। पहला उन्हें जो लिखना होता था उसकी संक्षिप्त रूपरेखा बना लेते थे। इससे इसमें स्पष्टता एवं विषय का विस्तृत रूप दिखाई देता था। सामग्री को इतना स्पष्ट कर देते थे कि उसमें स्वाभाविक रूप से क्रमबद्धता आ जाती थी उनकी रचनाओं में यह क्रमबद्धता स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

अपनी असाधारण प्रतिभा, बौद्धिक क्षमता, बौद्धिक प्रखरता, स्वतंत्रता व तार्किक विचारधारा के कारण कॉम्ट ने शीघ्र ही शिक्षित समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर लिया था। परंतु दूसरी ओर कुछ लोगों का कहना था कि कॉम्ट के लेखों में एकरूपता का पर्याप्त अभाव था शायद उनकी प्रथम कृति के पश्चात उनकी असाधारण प्रतिभा व क्षमता का विनाश होना प्रारंभ हो गया था।

अगस्त कॉम्ट ने एक व्यवस्थित एकेडमिक नौकरी करने का भी बड़ा प्रयास किया। उन्होंने कभी बहुत सुखद जीवन नहीं जिया। वे प्रत्यक्षवाद के पैगंबर हो गए। उन्होंने 1848 में प्रत्यक्षवादी संघ का गठन किया। झोला टांग कर पैगंबरी की और खूब भाषण दिए प्रारंभ में उनके भाषणों में बड़े-बड़े दिग्गज जैसे कि जर्मनी के सामाजिक दार्शनिक हंबोल्ट, इंग्लैंड के दार्शनिक एवं उपयोगिता वादी विद्वान जे.एस.मिल आदि शामिल होते थे। बाद के दिनों में उनके भाषणों में केवल मजदूर गरीब शिल्पकार और बेरोजगार लोग ही श्रोता होते थे।

अगस्त कॉम्ट के अनुयायियों की संख्या कम होने के बाद भी उनके प्रशंसकों की संख्या काफी अधिक थी। उन्होंने अपने विचारों व विज्ञान व्याख्यानों के द्वारा अनेक लोगों को प्रभावित किया।

1.1.9 अगस्त कॉम्ट का समाजशास्त्र

अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को सबसे पहले सामाजिक भौतिकशास्त्र के नाम से संबोधित किया। 1838 में इसे समाजशास्त्र नाम दिया। तभी से इसे इसी नाम से जाना जाता है। अगस्त कॉम्ट समाजशास्त्र के जनक है और इन्हें समाजशास्त्र का जनक मानने के दो प्रमुख कारण हैं -

1. अगस्त कॉम्ट ने ही सर्वप्रथम समाजशास्त्र शब्द को गढ़ा। समाजशास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण किया, समाजशास्त्र का अन्य विज्ञानों से संबंध को दर्शाया। विज्ञानों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया और नवीन सिद्धांतों का निर्माण किया।
2. अगस्त कॉम्ट वह विद्वान है जिन्होंने बताया कि समाजशास्त्र का विषय समाज की प्रगति और विकास के लिए नियमों एवं सिद्धांतों का निर्माण करने में सक्षम है। अपने ही सर्वप्रथम समाज के लिए सामाजिक विज्ञान की आवश्यकता को महसूस किया और विज्ञान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग पर जोर दिया। **बेकर** ने लिखा है कि "अगस्त कॉम्ट ही वह विचारक है जो समाजशास्त्र को मानवीय क्रियाओं का एकमात्र विज्ञान स्वीकार करता है, वह सर्वप्रथम विचारक है, जो समाजशास्त्र को एक मानवीय क्रियाओं का एकमात्र विज्ञान स्वीकार करता है"।

अगस्त कॉम्ट के नवीन विज्ञान जो कि समाजशास्त्र के नाम से जाना जाता है, के विचारों से यह पता चलता है कि कॉम्ट ने न केवल इस विषय को नाम ही प्रदान नहीं किया है, अपितु समाज के एक नवीन विज्ञान का उद्भव किया है। व्याख्या के विपरीत प्रत्यक्षवाद के आधार पर एक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक समाजशास्त्र को जन्म दिया अतः सामाजिक चिंतन के इतिहास में आपका स्थान अद्वितीय है।

1.1.10 कॉम्ट की प्रमुख कृतियां (Important Works of Comte)

अगस्त कॉम्ट की प्रमुख कृतियां इस प्रकार हैं-

'ए प्रॉस्पेक्टस ऑफ द साइंटिफिक वर्क्स रिक्वायर्ड फॉर द रीऑर्गेनाइजेशन ऑफ सोसाइटी' **(A Prospectus of tha Scientific Works for the Reorganisation of society) 1822** - यह अगस्त कॉम्ट की पहली रचना थी। इसकी भूमिका सेंट साइमन के द्वारा लिखी गई और यही से कॉम्ट के दर्शन का प्रारंभ होता है। इस ग्रंथ में अगस्त कॉम्ट ने सामाजिक सुधार एवं सामाजिक पुनर्निर्माण की एक महत्वपूर्ण योजना प्रस्तुत की थी। तकनीकी कुशलता एवं सामाजिक नैतिकता के विकास को महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

पॉजिटिव फिलोसोफी (Positive Philosophy) 1830-1842 - अगस्त कॉम्ट की यह पुस्तक 6 खंडों में लिखी गई और इस का प्रथम खंड 1830 में प्रकाशित हुआ था। छठवां खंड 1842 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र के सैद्धांतिक आधारों का उल्लेख किया। इस ग्रंथ में विज्ञानों का वर्गीकरण समाजशास्त्र की आवश्यकता उसकी प्रकृति तथा चिंतन की तीनों अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है।

पॉजिटिव पॉलिटी (Positive Polity) 1851-1854 - अगस्त कॉम्ट की इस पुस्तक का प्रकाशन चार खंडों में हुआ है। इस पुस्तक का प्रकाशन 1851 एवं 1854 के बीच हुआ। इस रचना में उनके विचारों का परिपक्व रूप देखने को मिलता है। इसमें मानवीय और सामाजिक प्रगति के आधार पर मानवीय इतिहास में एकता को दर्शाया गया है।

कैचिज्म पॉजिटिविज्म (Catchism of Positivism) 1852 - इस पुस्तक में कॉम्ट ने एक तरफ निरंकुश जनतंत्र का समर्थन किया और दूसरी तरफ प्रेस और एवं सार्वजनिक सभाओं की स्वतंत्रता की मांग की है।

रेमंड एयर ने अगस्त कॉम्ट के दार्शनिक उद्विकास को उनकी कृतियों के आधार पर तीन अवस्थाओं में बांटा है:-

(1) प्रथम अवस्था (1820-1826) इस अवस्था में कॉम्ट ने अपने समय के समाज का वर्णन किया तथा अपने अनेक लेख 'अप स्कूल' नामक पुस्तक में पुर्नप्रकाशित किए। इन लेखों में कॉम्ट ने इस बात पर बल दिया कि सामाजिक सुधार की मूल दशा बौद्धिक सुधार है।

(2) द्वितीय अवस्था (1830-1842) - इस अवस्था में कॉम्ट की 'कोर्स दी फिलॉसफी पॉजिटिव कोट्स ऑफ पॉजिटिव फिलॉसफी' नामक महत्वपूर्ण कृति प्रकाशित हुई, जिसमें आपने समाजशास्त्र विषय की सैद्धांतिक रूप से व्याख्या की। तीन स्तरों के नियम और प्रत्यक्षवाद के दर्शन को प्रतिपादित किया।

(3) तृतीय अवस्था (1851-1854) इस अवस्था में कॉम्ट की दूसरी प्रमुख कृति 'पॉजिटिव क्वालिटी' प्रकाशित हुई जिसमें आपने मानवीय प्रकृति तथा समाज की प्रकृति के सिद्धांत के आधार पर मानवीय इतिहास में एकता को प्रतिपादित किया।

उपर्युक्त रचनाओं में कॉम्ट ने जिन विचारों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया उनमें से प्रमुख हैं- प्रत्यक्षवाद, चिंतन की तीन अवस्थाओं का सिद्धांत, विज्ञानों का वर्गीकरण, समाजशास्त्र एक नवीन विज्ञान के रूप में, सामाजिक पुनर्निर्माण, सामाजिक प्रगति का विचार, परिवार एवं मानवता का धर्म आदि।

1.1.11 निष्कर्ष

कॉम्ट एक असाधारण प्रतिभा और क्षमता संपन्न विचारक थे। इस बात का परिचय उनकी रचनाओं में मिलता है। अगस्त कॉम्ट ने अपने जीवन में अनेक बाधाओं का सामना किया लेकिन वे अपने आदर्श पर हमेशा अटल और दृढ़ रहे। निष्ठा के साथ आदर्श प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करते रहें। उनकी रचना शैली अद्वितीय तथा स्मरण शक्ति असाधारण थी। वे कागज पर कोई भी शब्द तब तक नहीं लिखते थे। जब तक की संपूर्ण विषय की रचना अपने मस्तिष्क में न कर ले। ऐसा कर लेने के पश्चात एक के बाद एक वाक्य उनकी लेखनी में सहज ही लिखता चला जाता था। उनकी रचना शैली अद्वितीय थी लेकिन उनके शब्द आडंबर पूर्ण नीरस और बोझिल होते थे। कहा जाता है कि एक बार मे उनकी पुस्तकों को पढ़ने से कुछ भी समझ लेना कठिन होता था। फिर भी पाठक उनके ग्रंथों को पढ़कर स्वत: ही उनसे बहुत ही प्रभावित होते थे। इसका मुख्य कारण उनकी रचनाशैली नहीं बल्कि उनकी प्रगाढ़ बौद्धिक प्रतिभा तथा नए रूप में विषय को समझने और समझाने की शक्ति थी।

अनेक विद्वानों का कथन था कि कॉम्ट के ग्रंथों तथा जीवन में एकरूपता का अभाव है। बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्होंने की कॉम्ट की 'पॉजिटिव फिलॉसफी' का हृदय से स्वागत किया था। परंतु उतनी ही निंदा 'पॉजिटिव पॉलिटी' की थी। **जॉन स्टूअर्ट मिल** का कथन है कि प्रथम प्रति के सृजन के बाद से ही कॉम्ट की साधारण प्रतिभा और क्षमता का विनाश प्रारंभ हो गया था। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो पॉजिटिव पॉलिटी में कॉम्ट उस वैज्ञानिक स्तर पर स्थिर नहीं रह सके जिस पर की पॉजिटिव फिलॉसफी को उन्होंने आधारित किया था। वह स्वयं इस बात से सहमत नहीं थे, उन्होने स्वयं लिखा था कि उनकी समस्त विचारधाराओं में कहीं भी कोई खाई नहीं है और न ही कहीं एकरूपता का अभाव है। कहना था कि 'पॉजिटिव फिलॉसफी' और 'पॉजिटिव पॉलिटी' दोनों ग्रंथों की रचना एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई है। कॉम्ट का कथन था कि पहले से ही उनका उद्देश्य एक नवीन आध्यात्मिक शक्ति की खोज करना था और इस खोज में सफलता पाने के लिए या सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए बौद्धिक तैयार होने की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने पॉजिटिव फिलॉसफी में विभिन्न विज्ञानों से उत्पन्न होने वाली सामग्रियों को पहले इकट्ठा किया और जब इनकी एक सैद्धांतिक नींव पड़ गई तब पॉजिटिव पॉलिटी में उन सामग्रियों के व्यावहारिक उपयोग की विस्तृत विवेचना की। कॉम्ट के अनुसार यह दोनों ग्रंथ एक दूसरे से भिन्न नहीं है अपितु एक दूसरे के पूरक है अनेक विद्वान कॉम्ट के इस आत्म मूल्यांकन से सहमत हैं।

इस संबंध में प्रोफेसर **हॉकिस बात्र्स**, **बीकर** और **लेवी हुड** आदि का नाम लिया जा सकता है। बात्र्स तथा बीकर का मत है कि 'पॉजिटिव फिलॉसफी' में कॉम्ट के सैद्धांतिक मतों की अधिक विस्तृत विवेचना तथा प्रत्यक्ष वैज्ञानिक आधार पर मित्र राष्ट्रों के निर्माण में उन सिद्धांतों के व्यावहारिक प्रयोग के संबंध के विचार विस्तृत रूप से देखने को मिलते हैं। इन विद्वानों के अनुसार हालांकि 'पॉजिटिव पॉलिटी' में

शब्द अत्यधिक नीरस और बोझिल है फिर भी 'पॉजिटिव फिलॉसफी' की तुलना में इसमें कॉम्ट के प्राय: सभी प्रमुख स्वीकृत सिद्धांत की अवधारणा कहीं अधिक परिपक्व और परिपुष्ट रूप से देखने को मिलती है।

1.1.12 सारांश

इस इकाई में हमने अगस्त कॉम्ट के जीवन-परिचय के साथ-साथ उनकी शैक्षणिक स्थिति, पारिवारिक स्थिति, को जाना। इस इकाई के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि समाजशास्त्र के जन्म के समय फ्रांस एवं यूरोप की तात्कालिक परिस्थितियां क्या थी। इन परिस्थितियों में कॉम्ट ने किस तरह एक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र को जन्म दिया जिसका नाम उन्होंने पहले सामाजिक भौतिकी रखा और बाद में बदलकर समाजशास्त्र रखा। कॉम्ट अपने जीवन में किन-किन दार्शनिकों के संपर्क में आए और उनके विचारों से प्रभावित हुए एवं यह प्रभाव उनकी रचनाओं पर किस हद तक पडा? वे सेंट साइमन से किस हद तक प्रभावित थे और बाद में उनके बड़े आलोचक बने उन्होंने यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया कि सामाजिक समस्याओं का हल केवल काल्पनिक एवं दार्शनिक आधार पर नहीं बल्कि वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक आधार पर किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने समाजशास्त्र एक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया और वे 19वीं सदी के प्रमुख सामाजिक विचारक बन गए।

1.1.13 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट का जन्म किस देश में हुआ था?
   (अ) अमेरिका (ब) फ्रांस
   (स) इंग्लैंड (द) रूस
2. अगस्त कॉम्ट का जन्म किस सन में हुआ था?
   (अ) 1838 (ब) 1820
   (स) 1798 (द) 1788
3. समाजशास्त्र का संस्थापक किसे माना जाता है?
   (अ) दुर्खीम (ब) मैक्स वेबर
   (स) कार्ल मार्क्स (द) अगस्त कॉम्ट
4. पॉजिटिव फिलॉसफी की रचना किसने की?
   (अ) अगस्त कॉम्ट (ब) दुर्खीम
   (स) कार्ल मार्क्स (द) पारसंस
5. समाजशास्त्र का जन्म किस सन में हुआ?

(अ) 1842 (ब) 1840

(स) 1838 (द) 1835

6. पॉजिटिव क्वालिटी का प्रकाशन कितने भागों में हुआ?

(अ) सात (ब) चार

(स) आठ (द) पाच

7. कॉम्ट की पहली कृति का प्रकाशन किस सन में हुआ?

(अ) 1822 (ब) 1850

(स) 1840 (द) 1870

8. सिस्टम आफ पॉजिटिव पॉलिटी अगस्त कॉम्ट की कौन सी रचना थी?

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

9. पॉजिटिव फिलासफी का प्रकाशन किस सन में हुआ ?

(अ) 1822-1830 (ब) 1830-1842

(स) 1851-1854 (द) 1850-1855

10. अगस्त कॉम्ट ने तीन स्तरों के नियम की व्याख्या किस पुस्तक में की है?

(अ) पॉजिटिव फिलॉसफी (ब) सामाजिक भौतिकी

(स) पॉजिटिव क्वालिटी (द) सोसायटी

उत्तरः- 1. ब 2. स 3.द 4.अ 5.स 6.ब 7.अ 8.ब 9.ब 10.अ

दीर्घ एवं लघुउत्तरीय प्रश्न

1. कॉम्ट का जीवन परिचय दीजिए।
2. **2.** कॉम्ट की प्रमुख कृतियों का उल्लेख कीजिए।
3. **3.** कॉम्ट को समाजशास्त्र का जनक मानने के कारण बताइए।
4. **4.** कॉम्ट के समय की फ्रांस और यूरोप की तात्कालिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।
5. **5.** कॉम्ट ने समाजशास्त्र को क्या योगदान दिया है? संक्षेप में लिखिए।

1.1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). समाजशास्त्र. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). सोशल थॉट. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). समाजशास्त्रीय विचारक. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.

इकाई-2 तीन स्तरों का नियम एवं प्रत्यक्षवाद (Law of Three Stages and Positivisam)

इकाई की रूपरेखा

तीन स्तरों के नियम का सिद्धांत

1.2.0 उद्देश्य

1.2.1 प्रस्तावना

1.2.2 तीन स्तरों का नियम (Law of Three Stages)

1.2.3 तीन स्तर के प्रकार

1.2.4 धार्मिक एवं काल्पनिक स्तर

- **1.2.4.1** जीव सत्तावाद या प्रेतवाद (Fetichism)
- **1.2.4.2** बहुदेववाद (polytheism)
- **1.2.4.3** एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद (Monotheism)

1.2.5 दार्शनिक तात्विक या अमूर्त अवस्था

1.2.6 प्रत्यक्षवादी व वैज्ञानिक व्यवस्था

1.2.7 मानव चिंतन के स्तर एवं सामाजिक संगठन

- **1.2.7.1** धार्मिक या काल्पनिक अवस्था में सामाजिक संगठन
- **1.2.7.2** तात्विक स्तर पर सामाजिक संगठन
- **1.2.7.3** वैज्ञानिक स्तर एवं सामाजिक संगठन

1.2.8 समालोचना

1.2.9 आलोचना

प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत

1.2.10 प्रत्यक्षवाद का अर्थ

1.2.11 प्रत्यक्षवाद की परिभाषाएं

1.2.12 प्रत्यक्षवाद के आधार

1.2.13 प्रत्यक्षवाद की विशेषताएं

1.2.14 चैम्बलिश के अनुसार प्रत्यक्षवाद की विशेषताएं

1.2.15 प्रत्यक्षवाद के स्वरूप

1.2.16 आलोचना

1.2.17 सारांश

1.2.18 बोध प्रश्न

1.2.19 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1.2.0 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे-

- विद्यार्थी अगस्त कॉम्ट के तीन स्तरों के नियम सिद्धांत से परिचित होंगे।
- विद्यार्थी इस सिद्धांत को समझने एवं लिखने में सक्षम होंगे।
- विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के उपरांत अगस्त कॉम्ट के सिद्धांत तीन स्तरों के नियम का समालोचना एवं आलोचना समझ तथा कर सकने में सक्षम होंगे।
- विद्यार्थी प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत से परिचित होंगे।
- विद्यार्थी प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत की व्याख्या समझने एवं लिखने लिखने में सक्षम होंगे।

1.2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में अगस्त कॉम्ट के सिद्धांत तीन स्तरों के नियम एवं प्रत्यक्षवाद का वृहद विश्लेषण एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। समाजशास्त्रीय साहित्य में इन दोनों सिद्धांतों को महत्वपूर्ण सिद्धांत माना जाता है। अगस्त कॉम्ट ने इन दोनों सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक विषय के रूप स्थापित करने का प्रयास किया है। इनके अनुसार जिस तरह प्राकृतिक विषयों की अपनी विषय-वस्तु है उसी प्रकार समाजशास्त्र की भी अपनी विषय-वस्तु है। समाजशास्त्र भी प्राकृतिक विज्ञानों की तरह सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने में सक्षम है। अतः समाजशास्त्र एक विज्ञान है। आगे के विश्लेषणों में हम इनके इन सिद्धांतों को वृहद रूप में देखेंगे।

1.2.2 तीन स्तरों का नियम (Law of Three Stages)

समाजशास्त्र में सामाजिक विचारधारा के अंतर्गत तीन स्तरों का नियम कॉम्ट की एक महत्वपूर्ण देन है। यह नियम कॉम्ट के समाजशास्त्र का प्रमुख आधार है। इस नियम का प्रतिपादन कॉम्ट ने 1922 में किया था। इस समय उनकी आयु मात्र 24 वर्ष की थी। इस नियम के प्रतिपादन के साथ ही कॉम्ट ने छोटी सी उम्र में ही अपने आपको सामाजिक विचारक के रूप में स्थापित कर लिया था। हालांकि इस नियम का उल्लेख सेंट साइमन के विचारों में भी मिलता है पर इसे समाजशास्त्रीय स्वरूप कॉम्ट ने प्रदान किया। कॉम्ट ने इसे समूह स्वभाव का एक प्रमुख समाजशास्त्री कारक माना है। उसके अनुसार मानव के बौद्धिक विकास के स्तर के आधार पर सामाजिक विकास का अध्ययन किया जा सकता है।

कॉम्ट ने अपने तीन स्तरों के नियम की अवधारणा में यह बताया कि एक के बाद एक तीन विभिन्न स्तरों से गुजरने के बाद ही कोई भी अवधारणा या ज्ञान की शाखा वैज्ञानिक स्तर पर पहुंचती है। यह तीन स्तर इस प्रकार हैं-

1.2.3 तीन स्तर के प्रकार

1. धार्मिक/आध्यात्मिक या काल्पनिक स्तर (Theological Stage)
2. तात्विक या अमूर्त अवस्था (Mataphysical Stage)
3. प्रत्यक्ष या वैज्ञानिक स्तर (Positive or scientific Stage)

उपरोक्त तीनों स्तरों के आधार पर बौद्धिक विकास की व्याख्या करते हुए **कॉम्ट** लिखते हैं कि "सभी समाजों में सभी युगों में मानव के बौद्धिक विकास का अध्ययन करने पर उस महान आधारभूत नियम का पता चलता है। जिसके अधीन मनुष्य की बुद्धि आवश्यक रूप से होती है। जिसका ठोस प्रमाण हमारे संगठन के तत्वों और हमारे ऐतिहासिक अनुभवों में विद्यमान है।"

इसी आधार पर फ्लेचर (Flether) ने लिखा है "मानसिक तथा सामाजिक विकास की तीन अवस्थाएं सहयोग की अनुभूति, व्यक्ति तथा समाज के चिंतन और क्रिया से संबंधित होती है।"

कॉम्ट ने समाजशास्त्र की शुरूआत में ही लिखा कि सभी समाजों में अधिकांश व्यक्ति लगभग एक समान रूप से चिंतन करते है। अतः एक निश्चित अवधि में समाज को चिंतन की किसी विशेष अवस्था से ही सबंधित माना जा सकता है। कॉम्ट के अनुसार "हमारी प्रत्येक प्रमुख अवधारणा और ज्ञान की प्रत्येक शाखा एक के बाद एक तीन सैद्धांतिक दशाओं से होकर गुजरती है और ए तीनों सैद्धांतिक दशाएं धार्मिक, तात्विक और वैज्ञानिक हैं। अर्थात मानव मस्तिष्क का विकास प्रत्येक युग में इन्ही तीन निश्चित अवस्थाओं के अनुसार होता है। सामाजिक घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मानव समाज का मानसिक दृष्टिकोण इन्ही तीन अवस्थाओं के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। इसे ही अगस्त कॉम्ट ने चिंतन का त्रिस्तरीय नियम या त्रिस्तरीय अवस्था कहा है।

12..4 धार्मिक या काल्पनिक अवस्था (Theological Stage)

कॉम्ट के अनुसार चिंतन एवं बौद्धिक विकास की प्रथम अवस्था काल्पनिक अवस्था है। कॉम्ट ने लिखा है कि इस प्रथम अवस्था में सृष्टि की अनिवार्य प्रकृति की समस्त घटनाओं के आदी और अंतिम कारणों अर्थात उत्पत्ति और उद्देश्य की संपूर्ण ज्ञान की खोज करने में जिसमें मनुष्य यह मान लेता है, की समस्त घटनाचक्र अलौकिक प्राणियों की तात्कालिक क्रियाओं का परिणाम है।"

इस अवस्था में घटना की व्याख्या धार्मिक आधार पर की जाती है। इस अवस्था में मानव यह सोचता है कि संसार में घटित होने वाली घटना के पीछे शक्तियों का हाथ है न कि संसार के व्यक्तियों, प्राणियों एवं वस्तुओं का। मानवीय चिंतन के स्तर पर अर्थात प्रथम अवस्था में मनुष्य प्राकृतिक या सामाजिक संसार में जो कुछ भी घटित होता है। उसका कारण संसार की वस्तुओं या प्राणियों में न मानकर किसी परालौकिक शक्तियों में मानता है।

वह प्रत्येक घटना के पीछे किसी न किसी अलौकिक शक्ति की कल्पना करता है। उसे किसी अलौकिक शक्ति की क्रिया का परिणाम मानता है। उसे लगता है कि सम्पूर्ण प्रकृति में कोई बाहरी शक्ति निवास करती है। जिससे सारा संसार संचालित हो रहा है। वर्षा तूफान सर्दी-गर्मी, दिन-रात का होना, नदियों का बहना, बिजली का चमकना, बादल का गरजना, पेड़ पौधों को उगते एवं फलते-फूलते देखना आदि, अलौकिक शक्ति का ही परिणाम मानता है। ऐसी शक्ति जो घटनाओं को नियंत्रित एवं निर्देशित करती है। इस अवस्था में व्यक्ति के विवेक या विचारों का कोई स्थान नहीं रहता। कल्पना के आधार पर ही इन्हें देवी-देवता, ईश्वर की क्रिया का प्रभाव और परिणाम मानता है।

कॉम्ट ने इस अवस्था को तीन उप भागों में बांटा है-

1. जीव सत्तावाद या प्रेतवाद (Fetichism)
2. बहु देवत्व वाद (Polytheism)
3. एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद (Monotheism)

1.2.4.1 जीव सत्तावाद या प्रेतवाद (Fetichism)

आज हम संसार की सभी वस्तुओं को दो भागों में विभाजीत करते हैं- चेतन और अचेतन। हर अवस्था में मानव मानता है कि कोई भी वस्तु जड़ नहीं होती। इस अवस्था में मनुष्य संसार के प्रत्येक पदार्थ में जीवन की कल्पना करता है। इस आधार पर वह मानता है कि पत्थर, पेड़ -पौधे, नदी, तालाब, बादल,चाँद-तारे, सूर्य, नक्षत्र सभी में जीवन व्याप्त है। किसी को भी निर्जीव नहीं माना। सामाजिक विकास की आंरभिक अवस्था में सभी वस्तुओं को चेतन माना जाता था। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं, उन सभी में जीवन है। यही कारण है कि आदिम समाजों में धर्म की उत्पत्ति के संबंध में "माना" सिद्धांत का महत्व अधिक है। मानावाद का अर्थ यह है कि प्रत्येक वस्तु में जीवन है। जीवन में शक्ति का होना नितांत आवश्यक है। इस आधार पर यह माना जाता है कि संसार में जितने पदार्थ है उतनी ही शक्ति है। इस स्तर पर यह माना जाता था कि किसी भी वस्तु के नष्ट हो जाने पर उसमें प्रेतात्मा की बात स्वीकार की जाती थी। प्रेत प्रत्येक वस्तु में निवास करते थे। इस अवस्था में जादू-टोने पर अधिक विश्वास किया जाता है। जनजातियां भी

प्रत्येक वस्तु में आत्मा या अलौकिक शक्ति के निवास को मानती हैं जो प्रत्यक्ष रुप से दिखाई नहीं देती। जिसे वे प्रेतआत्मा भी कहते हैं इसलिए इसे प्रेतवाद कहा जाता है।

1.2.4.2 बहुदेववाद (Polytheism)

अनेक शताब्दियों तक मानव का चिंतन प्रेतवाद के दायरे में ही रहा। विकास की प्रक्रिया में जब मानव के चिंतन का विकास हुआ तब भी उसने अपने को प्रेतों से घिरा हुआ पाया और इन शक्तियों से घबरा सा गया तथा वह इनसे छुटकारा पाने के उपाय ढुंढने लगा। उस समय प्रेतवाद में जितनी वस्तुएं व पदार्थ होते थे, उतनी ही शक्तियां मानी जाती थी और जादु-टोने से संबंधित अनेक क्रियाओं में विश्वास व्यक्त किया जाता था। प्रेतवाद की इस अवस्था में मानव मस्तिष्क अधिक चिंतनशील और विकसित हो गया और धीरे-धीरे समाज में इस तरह की धारणा विकसित होने लगी कि एक ही प्रकार के या संबंधित पदार्थों में एक विशिष्ट देवी देवता का निवास होता है। इस कारण जीवन के विभिन्न पक्षों से जुड़े हुए पदार्थों में एक विशिष्ट देवी-देवता के प्रति विश्वास पनपने लगता है। धार्मिक चिंतन की इस अवस्था को कॉम्ट ने बहुदैवत्ववाद कहा है। इसे प्रेतवाद की विकसित अवस्था कहा जाता है। इस चरण को कॉम्ट ने बृहद साम्राज्यों का काल भी कहा है।

1.2.4.3. एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद (Monotheism)

धार्मिक व काल्पनिक स्तर की यह अंतिम कड़ी है। इस स्तर पर मानव मस्तिष्क एवं चिंतन पर्याप्त रूप से विकसित हो गया। प्रेतवाद या बहुदेववाद में जो अलग-अलग देवी देवताओं की कल्पना की गई थी। वह तार्किक नहीं थी और मनुष्यों में भ्रम व उलझन की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इससे बचने के लिए एक सार्वभौमिक एवं सर्वत्र शक्ति में विश्वास किया जाने लगा। मानव ने सोचा कि संसार की प्रत्येक घटना का संचालन एक ही ईश्वर के द्वारा हो रहा है। सभी जड़ एवं चेतन उसी के द्वारा उत्पन्न है। संसार की व्यवस्था उसी के द्वारा संचालित है। इसी आधार पर एकेश्वरवाद का जन्म हुआ। इससे मानव चिंतन सूक्ष्म गहन और गंभीर हो गया। यहां मानव का ध्यान वस्तु से हटकर सर्वशक्तिमान देवता पर केंद्रित हो गया और माना गया की ईश्वर एक है। वही संपूर्ण संसार का रचयिता एवं सहायक है। संहारक है। यह विश्वास ही एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद के नाम से जाना जाता है। इसमें समस्त चराचर एवं घटनाओं को ईश्वर की रचना माना गया है। कॉम्ट ने धर्मकाल के तीसरे चरण को एकेश्वरवादी कहा है। यह काल उनके अनुसार ईसाई धर्म के आविर्भाव का काल था। यह काल सार्वभौमिक सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना का काल था। इस काल को कॉम्ट ने रोमन काल अथवा रोमनों का काल कहा है।

1.2.5 दार्शनिक तात्विक या अमूर्त अवस्था (Mataphysical)

यह धार्मिक अवस्था एवं वैज्ञानिक अवस्था के बीच की स्थिति है। इसे कॉम्ट ने प्रथम स्तर का संशोधित रूप माना है। आध्यात्मिक अवस्था के पूर्व विकसित होने पर मानव तर्क शक्ति का विकास प्रारंभ हो गया था और उसके मन में अनेक प्रश्न उत्पन्न होने लगे थे। जैसे ईश्वर कौन है? उसका स्वरूप क्या है? कहां है? जब मनुष्य के मन में ऐसे प्रश्न उत्पन्न होते हैं तो वह उसका समाधान ढूंढने के लिए चिंतन एवं मनन करने लगता है। इसके बाद उसे विश्वास होने लगता है। ईश्वर निराकार अमूर्त एवं अदृश्य है, जिसे देखा नहीं जा सकता, उस पर विश्वास ही किया जा सकता है। इस अवस्था में मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ मनुष्य की तर्कशक्ति बढ़ती गई और इस अवस्था में मनुष्य यह सोचने लगा कि प्रत्येक घटना के पीछे ईश्वर प्रत्यक्ष रूप् से उपस्थित नहीं होता। वरन् अमूर्त स्वरूप में सभी जगह विद्यमान होता है। मनुष्य संसार में जो भी कुछ घटित होता है, उसकी व्याख्या ईश्वर के आधार पर नहीं वरन् अदृश्य निराकार या अमूर्त शक्तियों के आधार पर करता है। अमूर्त और निराकार शक्ति के आधार पर जो कुछ भी हो रहा है, वह शाश्वत और स्वंय में पूर्ण है। प्रथम और दूसरी अवस्था में अंतर केवल यह है कि प्रथम अवस्था में ईश्वर की कल्पना मूर्त के रूप् में की जाती है। जबकि दूसरी अवस्था मे ईश्वर को अमूर्त व अज्ञेय माना गया है। जो सभी वस्तुओं मे उपस्थित होता है। इस अदृश्य अमूर्त शक्ति एवं सत्ता में विश्वास करना एवं उसे संसार का आधार मानना ही दार्शनिक व अमूर्त अवस्था है। कॉम्ट के अनुसार "यह अवस्था प्रथम अवस्था का संशोधन मात्र है क्योंकि मानव मस्तिष्क यह मान लेता है कि आलोकिक प्राणियों के स्थान पर अमूर्त शक्तियां सभी जीवो में अंतर्निहित होती हैं और यह सभी प्रकार के घटना चक्र को उत्पन्न करने में समर्थ है।"

इस अवस्था में अलौकिक शक्ति का स्थान अदृश्य शक्ति ले लेती है। धार्मिक अवस्था दार्शनिक अवस्था में परिवर्तित होने लगती है। माना जाने लगता है कि अमूर्त एवं निराकार शक्ति के आधार पर जो कुछ भी हो रहा है। वह शाश्वत एवं स्वयं में पूर्ण है। इस अवस्था का विवेचन करते हुए **जॉन स्टुअर्ट मिल** ने लिखा है "इस अवस्था में कोई ऐसा देवता नहीं रहता है जो प्रकृति के विभिन्न अंगों को उत्पन्न एवं संचालित करता हो बल्कि वह एक सत्ता होती है या एक शक्ति अथवा एक रहस्यपूर्ण गुण जिसकी वास्तविक स्थितियां मानी जाती हैं एवं यह साकार वस्तुओं में विद्यमान होते हुए भी उससे पृथक है।" इस अवस्था में ईश्वर को अमूर्त माना गया है। जो सभी वस्तुओं में उपस्थित रहता है।

इस स्तर में कोई ऐसा ईश्वर नहीं रहता जो विभिन्न प्राकृतिक अंगो को उत्पन्न एवं निर्देशित करता है। अपितु यह एक शक्ति है। एक सत्ता अथवा एक रहस्यपूर्ण गुण, जिसकी वास्तविक स्थितियां मानी जाती है। जो साकार वस्तुओं में विद्यमान होकर भी उनसे पृथक है। इस स्तर में मानव मस्तिष्क में भावना की प्रधानता होती है। विवेक की नहीं, दूसरें शब्दों में इस अवस्था में अलौकिक और दैवीय शक्तियों का स्थान अमूर्त सत्ता ग्रहण कर लेती है। प्रथम और दूसरी अवस्था में अंतर केवल यह है कि प्रथम अवस्था में ईश्वर की कल्पना मूर्त

रूप में की जाती। जबकि दूसरी अवस्था में ईश्वर को अमूर्त व अज्ञेय माना गया है। जो सभी वस्तुओ में उपस्थित होता है। इस स्तर का सामाजिक संगठन प्रथम स्तर के सामाजिक संगठन की तुलना में प्रगतिशील होता है।

इस स्तर पर ईश्वर की व्यक्तिगत शक्ति की धारणा का लोप हो जाता है। ईश्वर का चिंतन व्यक्ति के रूप मे न होकर एक अमूर्त शक्ति के रूप में होता है। जो कुछ भी संसार में हो रहा है। वह एक व्यक्ति के रूप में ईश्वर के कारण नहीं बल्कि एक अदृश्य या निराकार शक्ति के कारण हो रहा है। इस शक्ति का अस्तित्व है पर इसका संबंध किसी शरीर विशेष या व्यक्ति विशेष से नहीं है। उस अमूर्त निराकार शक्ति के आधार पर जो कुछ भी हो रहा है, वह शाश्वत है, और स्वंयपूर्ण है। इस स्तर की कोई विशिष्ट विशेषता उल्लेखनीय नहीं है क्योंकि यह स्तर धार्मिक और प्रत्यक्षात्मक स्तर के बीच का है।

1.2.6 प्रत्यक्षवादी या वैज्ञानिक अवस्था (Positive or Scientific Stage)

मानव चिंतन के विकास का यह तीसरा एवं वैज्ञानिक स्तर है। इस अवस्था में मानव मस्तिष्क धार्मिक एवं काल्पनिक विचारों को छोड़कर घटनाओं की व्याख्या तर्क एवं वैज्ञानिक आधार पर करने लगता है। यहां मानव पूरी सृष्टि को बौद्धिक दृष्टि से दिखने लगता है। मानव घटनाओं के विवेचन में कल्पना एवं भावना के स्थान पर निरीक्षण एवं परीक्षण को महत्व देने लगता है अर्थात समाज वैज्ञानिक अवस्था व प्रत्यक्षवाद के स्तर पर आ जाता है। तात्विक विचार शाश्वत या स्वंयपूर्ण हो सकता है पर वास्तविक तर्कों तथा तथ्यों पर आधारित नहीं हो सकता। जब व्यक्ति तात्विक विचारों को छोड़कर निरीक्षण और तर्कों के आधार पर इस संसार की घटनाओं को समझने और परिभाषित करने लगता है। तभी उसका वैज्ञानिक और प्रत्यक्षात्मक स्तर में प्रवेश होता है। कॉम्ट का कथन है कि तर्क और निरीक्षण संयुक्त रूप से वास्तविक ज्ञान का आधार है। जब हम किसी घटना की व्याख्या करते है तो कुछ सामान्य तथ्यों और कुछ उस घटना विशेष के बीच के संबंधों को ढुंढने का प्रयास करते हैं। यह अन्वेषण निरीक्षण के द्वारा ही यथार्थ हो सकता है। निरीक्षण ही प्रमाण है क्योकि वह वास्तविक है न की काल्पनिक। मानव कार्य-कारण संबंधों के आधार पर तथ्यों और घटनाओं का निरीक्षण, परीक्षण व वर्गीकरण करके घटनाओं को प्रभावित एवं संचालित करने वाले सामान्य नियमों की खोज करता है और ज्ञान का संग्रह ही उसका उद्देश्य हो जाता है। कॉम्ट के अनुसार विश्व के विभिन्न तथ्यों घटनाओं आदि को समझने का वास्तविक तथा निर्भर योग्य साधन निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण है। प्रत्यक्षात्मक स्तर पर मनुष्य इसलिए न तो काल्पनिक किला बनाता है और न ही तात्विक दृष्टि से संसार विभिन्न तत्वों को देखने का प्रयास करता है। इस स्तर पर ज्ञान का संग्रह ही एक मात्र साध्य या अंतिम उद्देश्य है। कॉम्ट के अनुसार "अंतिम प्रत्यक्षात्मक अवस्था में मानव का मस्तिष्क निरपेक्ष धारणाओं विश्व की उत्पत्ति एवं लक्ष्य तथा घटनाओं के कारणों की व्यर्थ खोज को त्याग कर देता है तथा उसके नियमों अर्थात अनुक्रम तथा समरूपता के स्थिर संबंधों के अध्ययन में लग जाता है।" चिंतन की इस अवस्था में

निरीक्षण एवं परीक्षण को ही केवल सत्य का आधार माना जाता है। जिन तथ्यों का स्पष्टीकरण अवलोकन के आधार पर नहीं होता है, उन्हें अस्वीकार कर दिया जाता है। अगस्त कॉम्ट स्वयं लिखते हैं कि “जिस समय मानवीय बुद्धि विश्व के समस्त घटनाक्रम को नियमित और निर्देशित करने वाले किसी अकेले नियम को खोज लेती है। उस समय वैज्ञानिक अवस्था अपने विकास के चरम छोर पर होती है।”

कॉम्ट का कहना है कि एक परिपक्व एवं वयस्क मस्तिष्क हमेशा उन्ही तथ्यों पर विश्वास करता है। जिसमें की निरीक्षण, परीक्षण और तर्क की विशेषताएं सम्मिलित हो। मानव चिंतन के इस वैज्ञानिक स्तर में निरीक्षण, परीक्षण और तर्क के महत्व को स्पष्ट करते हुए कॉम्ट कहते हैं कि तर्क एवं निरीक्षण का अपेक्षित सम्मेलन ही इस ज्ञान का साधन है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि वस्तुएं जिस रूप में हैं उसी रूप में अवलोकन करना प्रत्यक्षवाद या वैज्ञानिक चिंतन का मूल आधार है।

इस स्तर का सामाजिक संगठन प्रथम दो स्तरों की तुलना में अलग होता है। भिन्न होता है। उन्नत किस्म का होता है। सामाजिक पुनर्निर्माण वास्तव में इसी अवस्था से प्रारंभ होता है। थियोडोर एबल के अनुसार कॉम्ट के सामाजिक गत्यात्मक का प्रमुख आधार मानव विकास का तीन स्तरों का नियम ही है। यद्यपि यह नियम ऐतिहासिक अधिक है और सामाजिक कम तथा साथ ही मानवीय जीवन के सामाजिक पहलुओं की अपेक्षा बौद्धिक पहलुओं को अधिक महत्व देता है। फिर भी समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास में इस नियम का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में कॉम्ट धार्मिक, तात्विक व वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग दार्शनिक व्यवस्थाओं के रूप में न करके समाज के सदस्यों के विचारों एवं विश्वासों के रूप में करते हैं। ए विचार और विश्वास समूह द्वारा मान्य होते है। इसलिए सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

समाजशास्त्री अगस्त कॉम्ट ने विकास के इन तीनों स्तरों की व्याख्या अपनी पुस्तक ‘पॉजिटिव फिलॉसफी’ में विस्तृत रूप से की है। इनके अनुसार, हमारे ज्ञान की तीनों शाखाएं सतत रूप से तीन विभिन्न सैद्धांतिक अवस्थाओं धार्मिक या काल्पनिक अवस्था तांत्रिक या अमूर्त अवस्था और प्रत्यक्षवादी या वैज्ञानिक अवस्था है। कॉम्ट के अनुसार उक्त तीनों अवस्थाओं का सिद्धांत व्यक्ति समाज बौद्धिक एवं सामाजिक जीवन पर लागू होता है। सभी समाज इन तीनों स्तरों से गुजरते हैं। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विकास भी इसी स्तर से हुआ है।

1.2.7 मानव चिंतन के स्तर एवं सामाजिक संगठन (Social Organisation and Stages of Thinking)

धार्मिक अवस्था में मानव मस्तिष्क अपनी उत्तपत्ति को प्रकृति या ईश्वर की देन मानता है अर्थात मानव यह सोचता था कि मनुष्य को ईश्वर ने पैदा किया है। **तात्विक** अवस्था में मानव मस्तिष्क यह सोचने

लगा कि उसे विकसित करने में उसके स्वंय के प्रयास ही सफल रहे हैं। वैज्ञानिक अवस्था अर्थात अंतिम अवस्था में वह यह खोजने की कोशिश करता है कि मनुष्य की इस सम्पूर्ण प्रगति के पीछे कौन सा नियम कार्य कर रहा है। यहां पर कॉम्ट ने यह स्पष्ट किया है कि पिछले स्तर के समाप्त होने पर ही अगला स्तर आता है। इन स्तरों से ही मनुष्य के मस्तिष्क के विकास की अवस्थाओं को जाना जा सकता है क्योंकि विकास के ए नियम सम्पूर्ण समाज से जुड़े हुए हैं।

अगस्त कॉम्ट ने तीन स्तरों की अवस्थाओं का संबंध सामाजिक संगठन से जोड़ा है। उनके अनुसार चिंतन के प्रत्येक स्तर में सामाजिक संगठन का भी एक स्तर का पाया जाता है। सामाजिक संगठन वह अवस्था है जिसके द्वारा समाज की विभिन्न संस्थाओं में कार्यात्मक एकता पाई जाती है। कॉम्ट ने सामाजिक संगठन को सामाजिक विकास का आधार माना है। कॉम्ट के अनुसार आदर्श सामाजिक संगंठन मे परिवार, राज्य और चर्च का स्थान महत्वपूर्ण होता है। एक समाज का संगठन दूसरे समाज से भिन्न होता है और इस भिन्नता के लिए अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं। कॉम्ट के अनुसार सामाजिक संगठन को चार तत्व प्रभावित करते हैं -

1. पर्यावरण (Environment)
2. प्रजाति (Race)
3. राष्ट्र (Nation)
4. व्यक्ति (Individual)

कॉम्ट चिंतन की तीन अवस्थाओं के नियम को प्रमाणिकता प्रदान करना चाहते थे। कॉम्ट प्रत्यक्षवादी था और वह अपने सिद्धांत को विज्ञान की कसौटी पर कसना चाहता था। इसलिए अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए उसने इतिहास का सहारा लिया। उसके अनुसार चिंतन की अवस्था एवं सामाजिक संगठन प्रत्यक्ष रुप से एक दूसरे से संबंधित है चिंतन की प्रत्येक अवस्था में एक विशिष्ट प्रकार का सामाजिक संगठन रहा है। चिंतन की प्रत्येक अवस्था एक विशेष प्रकार के सामाजिक संगठन का प्रतिनिधित्व करती है।

1.2.7.1 धार्मिक या काल्पनिक अवस्था में सामाजिक संगठन

इस अवस्था में सामाजिक संगठन को ईश्वर की इच्छा का प्रतिरूप माना गया है। इस समय दैवी सिद्धांत का प्रभाव समाज पर बहुत अधिक था। इसलिए यह माना गया कि समाज की उत्पत्ति एवं विकास और अस्तित्व के लिए ईश्वर की इच्छा ही आधार है। जब मानव ज्ञान धार्मिक अवस्था पर होता है तब प्रत्येक चीज की भांति सामाजिक जीवन तथा संगठन को भी ईश्वरी इच्छा के प्रतिरूप माना जाता है। इस स्तर पर समाज का स्वरूप संबंधी सिद्धांत ईश्वरी सिद्धांत होता है। ईश्वरी आधार पर ही राजनीतिक सत्ता को स्वीकार किया जाता है। पृथ्वी पर ईश्वर के बाद राजा का ही स्थान है। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है। ऐसा

माना जाता है कि राजा ईश्वर की ओर से समाज पर शासन करता है। राजा की आज्ञा का पालन अनिवार्य है। उसकी आज्ञा का उल्लंघन करना ईश्वरी शक्ति का विरोध करना है। राजा की आज्ञा सर्वोपरि है और वह सर्वोच्च शक्ति का प्रतीक होता है। राजा के समस्त आदेशों को उचित या अनुचित का विचार न करते हुए सबको मानना चाहिए। राजा प्रत्येक प्रकार के कार्य को कर सकता है। वह इसके लिए ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य के प्रति उत्तरदायी होगा न ही कोई उसके किसी कार्य को संदेह की दृष्टि से देख सकता है। राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रतिनिधी होता है। इस कारण उसके शब्द ही कानून है। इस प्रकार के कानून के पीछे ईश्वरीय अभिमति होती है। इसलिए किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह इस कानून के उचित-अनुचित पर विचार करे। राजा की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य था। ऐसा न करने पर ईश्वर उसे दंड देता है। इस अवस्था में अंधविश्वासों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। सामाजिक संगठन अंधविश्वासों, रूढ़ियो, लोक प्रथा, परंपराओं आदि से घिरा हुआ था। ईश्वर की सत्ता को ही सामाजिक व्यवस्था एवं संगठन का मूल आधार माना गया था। लोगों में उचित-अनुचित की समझ नहीं थी। तर्क शक्ति का अभाव लोक-कथाओं एवं परंपराओं के द्वारा सामाजिक नियंत्रण का प्रयास किया जाता था। सम्पूर्ण समाज में अंधविश्वासों का प्रचलन था। राजा को चुनौती देने का साहस किसी में नहीं था। समाज का संगठन सरल सुगम एवं कल्पना आश्रित था। राजा को निरंकुश शक्तियां प्रदान करने के कारण इस अवस्था में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना हुई। इस आधार पर हमे इस अवस्था में निम्न विशेषताएं देखने को मिलती है-

1. सामाजिक संगठन को ईश्वरीय इच्छा का प्रतिरूप् माना जाता था।
2. दैवीय सिद्धांत का समाज में बोलबाला था।
3. राजा को पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था।
4. राजा के शब्द ही नियम होते थे और इनका उल्लंघन करना पाप माना जाता था।
5. राजा के दंड को ईश्वरीय आज्ञा मानकर स्वीकार किया जाता था।
6. समाज का संगठन लोकगाथाओं और परम्पराओं पर आधारित था
7. समाज का संगठन अत्यन्त ही सरल था।

1.2.7.2 तात्विक स्तर पर सामाजिक संगठन

तात्विक स्तर पर सामाजिक संगठन और राज्य शक्ति के स्वरूपों में परिवर्तन होता है। ईश्वरीय अधिकार की अवधारणा को त्याग कर प्राकृतिक अधिकारों को अपनाया जाता है। इसी आधार पर मनुष्यों के राजनैतिक संबंध निर्धारित और नियमित होते हैं। इस स्तर का सामाजिक संगठन प्रथम स्तर से अधिक प्रगतिशील होता है। तात्विक स्तर पर राजनैतिक सत्ता अमूर्त अधिकारों के सिद्धातों पर आधारित होती है। इस अवस्था में दैवीय अधिकार लगभग समाप्त हो जाते हैं। इस अवस्था में सामाजिक संगठन का वैधानिक पहलू विकसित होने लगता है। राजा की निरंकुश सत्ता घट जाती है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचार जोर पकड़ने

लगते हैं। इस अवस्था में मानव चिंतन में कल्पना का स्थान भावनाएं ले लेती हैं। जिसका प्रभाव सामाजिक संगठन पर भी पड़ता है। भावात्मक अवस्था में धार्मिक सत्ता की वृद्धि के कारण पुरोहितवाद का विकास होता है। यही कारण है कि दसवीं से 15वीं शताब्दी तक यूरोप में पुरोहितवाद एवं पोपवाद का प्रभुत्व रहा। राज्य की तुलना में उनका स्थान श्रेष्ठ और पवित्र रहा है। कॉम्ट के अनुसार पोप का दावा था कि सेंट पीटर को इस लोक और परलोक दोनों में मनुष्यों का बद्ध और मुक्त करने का अधिकार मिला था। पोप सेंट पीटर का प्रतिनिधि है और इस कारण उसे भी ये अधिकार प्राप्त हैं। संसार या लोक में बद्ध और मुक्त करने के अधिकार का यह अभिप्राय है कि पोप की सत्ता लौकिक विषयों में भी सर्वोच्च है पर उसे उसने स्वयं अपने हाथ में न रखकर सम्राट को हस्तांतरित कर दिया है। अतएव सम्राट को जो कुछ अधिकार मिले है, वे सीधे ईश्वर से न मिलकर पोप से प्राप्त हुए हैं। इस कारण सम्राट का पर पोप के पद से नीचे और उसके आधीन है। इस प्रकार इस युग मे राजकीय शक्ति का ह्रास हुआ एवं धार्मिक शक्ति का उत्थान हुआ। यह भी माना गया है कि धर्म संघ सर्वथा विशुद्ध है और इसी कारण राज्य की तुलना में उसका स्थान श्रेष्ठ और पवित्र है। संक्षेप में इस अवस्था को चिंतन के संक्रमण काल की अवस्था कहा जा सकता है।

इस अवस्था में सामाजिक संगठन इस प्रकार था-

1. ईश्वरीय सिद्धांत का स्थान प्राकृतिक सिद्धांत ने ले लिया था।
2. इस अवस्था में सामाजिक संगठन भावनाओं पर आधारित था।
3. इसमें पुरोहितवाद का जन्म हुआ।
4. राज्य सत्ता में गिरावट के साथ ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता में वृद्धि हुई।
5. संक्षेप में इस अवस्था को चिंतन में संक्रमण काल की अवस्था कहा गया था।

1.2.7.3 वैज्ञानिक स्तर एवं सामाजिक संगठन

कॉम्ट के अनुसार मानव चिंतन की अंतिम अवस्था वैज्ञानिक या प्रत्यक्षात्मक अवस्था है। इस अवस्था में सामाजिक संगठन विश्वास पर आधारित न होकर अवलोकन, परीक्षण एवं प्रयोगों की वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित हो जाता है। इस अवस्था में समाज का वैज्ञानिक आधार पर विकास होने लगता है। तात्विक विचार शाश्वत या स्वयं पूर्ण हो सकते हैं पर वास्तविक तर्को तथ्यों पर आधारित नही होते हैं। अतः जब व्यक्ति तात्विक विचारों को छोड़कर निरीक्षण, परिक्षण और तर्क के आधार पर संसार की घटनाओं को समझने और परिभाषित करने का प्रयास करता है तभी वैज्ञानिक या प्रत्यक्षात्मक स्तर में उसका प्रवेश होता है। इस अवस्था में सम्पूर्ण समाज में नए-नए अविष्कार होने लगते हैं। लोगों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना पनप जाती है। समय का मूल्य बढ़ जाता है। सामाजिक पुर्ननिर्माण तथा शिक्षा को प्रोत्साहन मिलता है।

विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान किए जाने लगते हैं। विज्ञान की सहायता से प्राकृतिक शक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयास किया जाता है।

कॉम्ट का कथन है कि तर्क और निरीक्षण सम्मिलित रूप से वास्तविक ज्ञान का आधार है। जब हम किसी घटना की व्याख्या करते हैं तो कुछ सामान्य तथ्यों और उस घटना के बीच संबंध ढुढंने का प्रयास करते हैं। यह खोज निरीक्षण के द्वारा यथार्थ हो सकती है। क्योकि निरीक्षण ही प्रमाण है। वही वास्तविक है न कि काल्पनिक।

कॉम्ट के अनुसार विश्व के विभिन्न तथ्यों घटनाओं को समझने का वास्तविक तथा निर्भर योग्य साधन निरीक्षण और वर्गीकरण ही है। प्रत्यक्षात्मक स्तर पर मनुष्य इसलिए न तो काल्पनिक किला बनाता है और न ही तात्विक दृष्टि से संसार के विभिन्न तत्वों को देखने का प्रयास करता है। इस स्तर पर ज्ञान का संग्रह ही एक मात्र उद्देश्य है। इस स्तर पर समाज में भौतिक नैतिक एवं बौद्धिक शक्तियों का उचित समन्वय पाया जाता है। इस अवस्था में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था को शासन का सर्वोच्च स्वरूप माना जाता है और विज्ञान की सहायता से सामाजिक संगठन को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। संक्षेप में इस अवस्था की निम्न विशेषताएं थी -

1. सामाजिक संगठन में विश्वास और परम्पराओं के स्थान पर निरीक्षण परीक्षण और वर्गीकरण पर बल दिया गया।
2. इस अवस्था में प्राकृतिक साधनों का उपयोग और औद्योगिक विकास हुआ।
3. व्यक्तिगत स्वतंत्रता में वृद्धि हुई।
4. इस अवस्था में भौतिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति का सामंजस्य हुआ।
5. राजनैतिक जीवन में लोकतंत्र की सत्ता को स्वीकार किया गया।
6. मानवता के धर्म का उदय हुआ।

1.2.8 समालोचना

कॉम्ट के तीन स्तरों के नियमों का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि उन्होंने ऐतिहासिक आधार पर मानव चिंतन की अवस्थाओं को सामाजिक प्रगति के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कॉम्ट का मत है कि मानव मस्तिष्क के विकास के स्तर क्रमानुसार एक के बाद एक आते हैं पर किसी भी नई व्यवस्था का जन्म उस समय तक संभव नहीं था जब तक की पुरानी समाप्त न हो जाए। कॉम्ट मानते हैं कि यह जरूरी नहीं है कि तीनों स्तरों का अस्तित्व अलग-अलग पाया जाए और यह भी आवश्यक नहीं है कि यह स्तर एक के बाद एक निश्चित क्रम अनुसार ही आए। यह तीनों ही स्तर व्यक्ति के मस्तिष्क में एक साथ उपस्थित हो सकते हैं।

आगस्त कॉम्ट कहते हैं "अपने सभी विज्ञानों के सर्वेक्षण में मैंने इस तथ्य को ध्यान में रखने का प्रयास किया है कि तीनों स्तर धार्मिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विभिन्न विज्ञानों में एक ही समय में एक ही मस्तिष्क में रह सकते हैं और रहते हैं।" यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो व्यक्ति का जीवन पूर्ण रूप से वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं चल सकता। सभी व्यक्ति के जीवन में तर्क कल्पना एवं भावना का स्थान महत्वपूर्ण होता है। स्वयं कॉम्ट भी अपने आपको विज्ञानवाद के स्तर पर स्थिर नहीं रख पाए थे। उनके इस सिद्धांत की अनेक समाजशास्त्रियों ने आलोचना की है।

1.2.9 आलोचना

1. **स्पेंसर** का मत है कि है कि "ये चिंतन के तीन स्तर नहीं है वरन ये तो चिंतन योग्यता का धरातल है।"
2. **लेविस कोजर** और **जोनाथन टरनर** के अनुसार कॉम्ट का तीन स्तरों का नियम मानसिक या आदर्शात्मक है। यह सिद्धांत मानसिक प्रगति की व्याख्या करता है जिसमें तर्क कम भावना अधिक है।
3. **सी.ई.वाघन** के अनुसार कॉम्ट का तीन स्तरों का नियम नकारात्मक और विघटनकारी चिंतन पर आधारित है।
4. **जॉन फिस्क** लिखते हैं "ये तीन स्तर समस्या तक पहुंचने की तीन पद्धतियां है। कुछ घटनाओं की व्याख्या धर्म शास्त्रीय दृष्टिकोण से कुछ की तत्व दार्शनिक दृष्टिकोण से और अन्य की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से की गई है।
5. जे. एस. मिल का कहना है की सामाजिक पुनर्निर्माण की व्याख्या में कॉम्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रख सके हैं।
6. **तिमासेफ** के अनुसार कॉम्ट के इस नियम का क्रम असंगत है। आपने बताया कि किसी भी समाज में चिंतन का तात्विक और वैज्ञानिक स्तर विकसित होने पर भी धार्मिक स्तर का प्रभाव बना रहता है। अतः कॉम्ट का यह नियम सत्य नहीं है।
7. इमाइल दुर्खीम के अनुसार इतिहासवाद तथा उद्विकासवाद के आधार पर हम किसी भी सिद्धांत को वैज्ञानिक रूप नहीं दे सकते हैं।
8. थियोडोरएबल के अनुसार कॉम्ट की गत्यात्मकता का प्रमुख आधार मानव विकास का तीन स्तरों का नियम है। यद्यपि यह नियम ऐतिहासिक अधिक और सामाजिक कम है तथा साथ ही मानव जीवन के सामाजिक पहलुओं की अपेक्षा बौद्धिक पहलुओं को अधिक महत्व देता है।

भारतीय साहित्य में प्रसिद्ध तीन शब्द आधिदैविक, आध्यात्मिक, भौतिक, आधिभौतिक इन तीनों शब्दों का प्रयोग अगस्त कॉम्ट ने जियोलाजिकल मेटा फिजिकल तथा पॉजिटिव के लिए किया है। **लोकमान्य तिलक** ने अपने गीतारहस्य में लिखा है कि यह तीन प्राचीन पद्धतियां कॉम्ट की निकाली हुई

नहीं है बल्कि बहुत पुरानी है और यह भारतीय चिंतन की पद्धतिया हैं। अगस्त कॉम्ट इन पद्धतियों को एक ऐतिहासिक क्रम में बांधकर अधिभौतिक को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है और यही उसकी नवीनता है।

उपरोक्त आलोचनाओं एवं कमियों के बाद भी कॉम्ट के तीन स्तरों के नियमों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वयं मानव जीवन इतिहास भी इन्हीं तीनों स्तरों के समान है। प्रत्येक मानव बचपन में काल्पनिक युवावस्था में भावुक और वृद्ध अवस्था में यथार्थवादी होता है। समाज में पहले काल्पनिक भावात्मक एवं बाद में वैज्ञानिक युग में प्रवेश किया। वास्तव में कॉम्ट अपने इस नियम के द्वारा समाजशास्त्री चिंतन का जो मार्ग प्रशस्त किया वह प्रशंसनीय है और समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास में इस नियम का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत

प्रत्यक्षवाद 17 एवं 18वीं शताब्दी में विकसित एक वैज्ञानिक पद्धति है। इसकी उत्पत्ति वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी चिंतन के आधार पर हुई। 19वीं शताब्दी तक यह विधि अन्य सामाजिक विज्ञानों में भी अपनाई जाने लगी थी। इस पद्धति के द्वारा यथार्थ का ज्ञान हो सकता है। इस विधि के द्वारा प्राकृतिक नियमों की तरह ऐतिहासिक और सामाजिक नियमों की व्याख्या की जाती है। कॉम्ट के समाजशास्त्री चिंतन में भी कॉम्ट के प्रत्यक्षवादी दर्शन का प्रवेश हो गया था। कॉम्ट को प्रत्यक्षवाद का जनक कहा जाता है। प्रत्यक्षवाद की विस्तृत व्याख्या कॉम्ट के दो प्रसिद्ध ग्रंथों 'द 'कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलॉसफी' (Course of Positive Philosophy) और दूसरा 'सिस्टम ऑफ पॉजिटिव पॉलिटी' (System of Positive Polity) में मिलती है।

पहले ग्रंथ में कॉम्ट ने प्रत्यक्षवाद के सैद्धांतिक स्वरूप की व्याख्या की है। दूसरे ग्रंथ में कॉम्ट प्रत्यक्षवाद के व्यावहारिक रूप पर प्रकाश डालते हैं। कॉम्ट के अनुसार प्रत्यक्षवाद का अर्थ वैज्ञानिक है और विज्ञान में कल्पना का कोई स्थान नहीं होता। यह निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग एवं वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली होती है। वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा यह समझना ही प्रत्यक्षवाद है और यही कॉम्ट की विचारधारा का आधार है। बाद में यही कॉम्ट का धर्म बन जाता है। अगस्त कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद एक ऐसी जटिल अवधारणा है। जिसका न तो कोई निश्चित अर्थ है और न ही कोई निश्चित प्रणाली।

1.2.10 प्रत्यक्षवाद का अर्थ

अगस्त कॉम्ट प्रत्यक्षवाद के जन्मदाता हैं। उन्होंने समाजशास्त्र की व्याख्या एक प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान के रूप में की तथा प्रत्यक्षवाद की धारणा को अनेक रूपों में व्यक्त किया। प्रत्यक्षवाद का अर्थ है विज्ञानवाद। इस अर्थ के अनुसार संपूर्ण ब्रह्मांड अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों के द्वारा संचालित होता है। इस

संसार को समझने के लिए धार्मिक एवं तार्किक विश्लेषण कारगर नहीं हो सकते। इसका विश्लेषण तो केवल वैज्ञानिक विधियों के द्वारा ही हो सकता है। कॉम्ट के अलावा भी समाजशास्त्र के बहुत से संस्थापकों का विश्वास था कि मानव समाज का अध्ययन उन्हीं सिद्धांतों और पद्धतियों के आधार पर किया जा सकता है। जैसा की प्राकृतिक विज्ञान के अध्ययन में किया जाता है। इसी पद्धति या उपागम को प्रत्यक्षवाद के नाम से जाना जाता है।

अगस्त कॉम्ट जिन्होंने की समाजशास्त्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया और जो इस विज्ञान के जन्मदाता माने जाते हैं की मान्यता थी कि यदि प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों को काम में लिया जाए तो समाज का सकारात्मक विज्ञान उत्पन्न हो जाएगा। समाज के उद्विकास को भी इन्हीं नियमों के आधार पर समझा जा सकेगा प्राकृतिक विज्ञान में पदार्थ के व्यवहार को कारण और प्रभाव के आधार पर समझा जा सकता है। उसी प्रकार मानव के व्यवहार को भी कारण एवं प्रभाव अर्थात कार्य-कारण संबंध के आधार पर समझा जा सकता है। समाजशास्त्र में प्रत्यक्षवादी उपागम इन मान्यताओं को लेकर चलता है। मनुष्य का व्यवहार पदार्थ के व्यवहार के सामान वैषयिकता के साथ मापा जा सकता है। जिस प्रकार पदार्थ के व्यवहार को वजन तापमान दबाव आदि के आधार पर नापते हैं। उसी प्रकार मनुष्य के व्यवहार को नापने के लिए भी वैसे ही पद्धतियों का विकास किया जा सकता है। व्यवहार की व्याख्या करने के लिए उसका मापन अति आवश्यक है।

इसलिए प्रत्यक्षवाद में उस व्यवहार पर विशेष बल दिया जाता है जिसे प्रत्यक्ष रूप से अवलोकित किया जा सके। प्रत्यक्षवादी अवलोकित किए जाने वाले तथ्यों पर इस कारण से बल देते हैं कि मानव व्यवहार की व्याख्या उसी तरीके से की जाए जिस तरह से की प्राकृतिक विज्ञान में पदार्थ के व्यवहार की व्याख्या की जाती है।

प्रत्यक्षवादियों की स्पष्ट मान्यता है कि मानव व्यवहार का एक विज्ञान संभव है और समाजशास्त्र को भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा जीवशास्त्र के समान वैज्ञानिक स्थिति प्राप्त करने का भी पूरा अधिकार है। अगस्त कॉम्ट की मान्यता है कि सामाजिक जगत का व्यवहार उन्हीं नियमों के आधार पर निर्देशित होता है। जिन आधारों पर प्राकृतिक जगत का व्यवहार निर्देशित होता है। हालांकि कुछ समाजशास्त्री मानते हैं कि विज्ञानों की पद्धति मानव व्यवहार के अध्ययन के लिए उपयुक्त नहीं है। इसलिए वे समाजशास्त्र के विज्ञान होने में शंका व्यक्त करते हैं। इसके बावजूद अधिकांश समाजशास्त्री सामाजिक अनुसंधान में प्राकृतिक विज्ञानों की शोध पद्धतियों का ही उपयोग करते हैं। इसलिए मानव समाज के अध्ययन के लिए प्रयोग की जाने वाली इस पद्धति या उपागम को प्रत्यक्षवाद के नाम से पुकारा जाता है।

अगस्त कॉम्ट को प्रत्यक्षवाद का संस्थापक माना जाता है। प्रत्यक्षवाद के आधार पर कॉम्ट ने अनेक अवधारणाओं को जन्म दिया है किंतु कॉम्ट ने कहीं भी प्रत्यक्षवाद की सुनिश्चित एवं स्पष्ट व्याख्या नहीं दी है। उन्होंने प्रत्यक्षवाद की अवधारणाओं का उल्लेख अपनी दोनों रचनाओं 'पॉजिटिव फिलॉसफी' एवं 'पॉजिटिव पॉलिटी' में किया हैं। पॉजिटिव फिलॉसफी में उन्होंने प्रत्यक्षवाद की सैद्धांतिक व्याख्या की है तथा पॉजिटिव पॉलिटी में प्रत्यक्षवाद की व्यावहारिक व्याख्या की है।

अगस्त कॉम्ट प्रत्यक्षवाद को वैज्ञानिक बताते हैं। इसका तात्पर्य है कि प्रत्यक्षवाद और विज्ञान का अर्थ एक है। अतः जो वैज्ञानिक है वही प्रत्यक्षवादी भी है। कॉम्ट के अनुसार यदि हमें प्रकृति एवं ब्रह्मांड की घटनाओं को समझना है तो उसकी व्याख्या धार्मिक, तात्विक, एवं आलौकिक आधार पर नहीं बल्कि वैज्ञानिक विधि के आधार पर करनी होगी। वैज्ञानिक विधि में कल्पनाओं का सहारा नहीं लिया जाता है और घटनाओं की व्याख्या निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग एवं वर्गीकरण के आधार पर की जाती है।

कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद का अर्थ वैज्ञानिक ज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति से है। वैज्ञानिक पद्धति का आधार अनुभव निरीक्षण परीक्षण प्रयोग और वर्गीकरण है। विज्ञानों में घटनाओं का अध्ययन वैज्ञानिक विधियों के द्वारा किया जाता है। उसी तरह सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करना प्रत्यक्षवाद कहलाता है। सामाजिक घटना आकस्मिक नहीं होती हैं और उनका संचालन भी कुछ निश्चित सिद्धांत और नियमों के आधार पर ही होता है। इसलिए हम सामाजिक घटनाओं के कारणों की खोज वैज्ञानिक विधि के द्वारा ही कर सकते हैं।

अगस्त कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद में कल्पना का कोई अंश नहीं है। अभी तक मानव जाति धार्मिक और तत्व दार्शनिक चिंतन के आधीन रही है। हमें उसे इस विचारधारा से मुक्ति दिलाने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान एवं विधि का सहारा लेना होगा। जिसके आधार पर घटनाओं के बारे में तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त की जा सके। प्रत्यक्षवाद के आधार पर सामाजिक घटनाओं की व्याख्या कैसे की जाती है? इसका प्रमुख उदाहरण देते हुए **ब्रिजेस** ने समझाया है कि मान लो एक व्यक्ति जहर खा कर मर जाता है। इस घटना की व्याख्या धर्मशास्त्री, तत्व दार्शनिक और वैज्ञानिक तीनों के द्वारा अलग-अलग ढंग से की जाती है। धर्मशास्त्रीय विचारक इसे एक दैविक घटना मानकर ईश्वर की इच्छा के रूप में इसे स्वीकार करेगा जबकि तत्व दार्शनिक कहेगा कि मिलना और बिछड़ना प्रकृति का शाश्वत नियम है। अतः जन्म के समान मृत्यु भी एक स्वाभाविक घटना है। जबकि प्रत्यक्षवादी शव के वैज्ञानिक परीक्षण के बाद जहर का शरीर पर प्रभाव का अध्ययन करेगा और व्यक्ति की मृत्यु किस तरह से हुई है उस पर अपना विचार प्रकट करेगा। इस तरह एक वैज्ञानिक किसी भी घटना को किसी के कहने मात्र से ही सच नहीं मान लेता बल्कि निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण के आधार पर ही उसे स्वीकार करेगा या अस्वीकार करेगा।

इस तरह हम कह सकते हैं कि सामाजिक घटनाओं के बारे में निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग एवं वर्गीकरण के आधार पर वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करके ज्ञान अर्जन करना, नवीन तथ्यों को खोजना, नियमों, सिद्धांतों एवं निष्कर्षों को निकालना ही प्रत्यक्षवाद है।

1.2.11 प्रत्यक्षवाद की परिभाषाएं (Definition)

प्रत्यक्षवाद को निम्नलिखित विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है-

अगस्त कॉम्ट के अनुसार- "निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण आदि पर आधारित वैज्ञानिक विधियों के द्वारा सामाजिक घटनाओं का अध्ययन कर उनका विश्लेषण करना एवं उन घटनाओं को संचालित एवं निर्देशित करने वाले निश्चित नियमों का पता लगाना ही प्रत्यक्षवाद कहलाता है।"

रेमंड एरन (Raymond Aron) के अनुसार- "'प्रत्यक्षवाद का संबंध घटनाओं के निरीक्षण उसके विश्लेषण तथा उसके परस्पर संबंधों को विनियमित करने वाले नियमों की खोज करने से है।"

चैम्बलीस (Chamblis) के अनुसार- कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद अत्यंत अमूर्त धारणा है। धर्म, लोकतंत्र, रूढ़ियां आदि अन्य ऐसी ही अमूर्तताओं की भांति इससे अधिक स्पष्ट अर्थ नहीं हो सकता है।"

"प्रत्यक्षवाद का संबंध काल्पनिक की अपेक्षा वास्तविक जगत से है। समस्त ज्ञान की अपेक्षा उपयोगी ज्ञान से है। उन तथ्यों से है जिनका अवलोकन निश्चित रूप से संभव हो सके। यह विस्तृत अस्पष्ट भावों की अपेक्षा संक्षिप्त ज्ञान से निरपेक्ष की अपेक्षा सापेक्ष से संबंधित है।"

एम. डब्लू. वाने (M.W.Vine) के अनुसार- "प्रत्यक्षवाद का वैज्ञानिक अर्थ होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि निरीक्षण, परीक्षण एवं वर्गीकरण आदि पर आधारित वैज्ञानिक विधियों के द्वारा घटनाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करना तथा उन घटनाओं को प्रचलित एवं निर्देशित करने वाले निश्चित नियमों का पता लगाना ही प्रत्यक्षवाद है।"

अगस्त कॉम्ट ने अपने सिद्धांत में बताया कि तथ्यों के बाहर किसी भी घटना का विवेचन नहीं करना चाहिए। उन्हीं घटनाओं को अपने अध्ययन में शामिल करना चाहिए जिनका परीक्षण करना संभव हो। कॉम्ट के अनुसार स्वर्ग-नर्क, आत्मा-परमात्मा ऐसे तथ्य हैं। जिसकी सत्यता को न तो सिद्ध किया जा सकता है और न ही अस्वीकार किया जा सकता है। प्रत्यक्षवाद ऐसी घटनाओं से दूर रहने की प्रेरणा देता है। कॉम्ट के अनुार प्रत्यक्षवाद वैज्ञानिक विचारधारा ही नहीं बल्कि वह एक धर्म भी है।

अगस्त कॉम्ट ने प्रत्यक्षवाद को धर्म के रूप में भी परिभाषित किया है। **कॉम्ट** के अनुसार "प्रत्यक्षवाद मानवता का एक धर्म है। कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद को मानवता का धर्म कहने के पीछे तर्क यह है कि

जो धर्म का उद्देश्य है वही प्रत्यक्षवाद का उद्देश्य है। धर्म का सबसे महत्वपूर्ण कार्य या उद्देश्य जनता के सम्मुख कुछ नैतिक नियमों को प्रस्तुत करना है। जिसके आधार पर समाज के सदस्य एक सूत्र में बंध जाए तथा समाज में नैतिकता पनप सके। यह एकता या नैतिक विकास तभी संभव होगा। जब जनता का बौद्धिक स्तर या ज्ञान का स्तर ऊंचा होगा। जनता का बौद्धिक स्तर तब ऊंचा होगा। जब प्रत्यक्षवाद के आधार पर लोग घटनाओं का वर्णन करेंगे तथा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत में विश्वास करेंगे। अतः प्रत्यक्षवाद लोगों में ज्ञान की वृद्धि कर उन्हें एकता के सूत्र में बांधने में सहायक होगा।"

कॉम्ट के अनुसार प्रत्यक्षवाद हमारी प्रगति का आधार है। इनके अनुसार मानव की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि लोग एकता के सूत्र में बंध जाएं। जब मानव के ज्ञान के स्तर में वृद्धि होगी। लोगों के ज्ञान के स्तर में वृद्धि प्रत्यक्षवाद के आधार पर ही हो सकती है। प्रत्यक्षवाद एक वैज्ञानिक विचारधारा के साथ ही साथ मानवता का धर्म भी है। इसका उद्देश्य मनुष्य का अधिक से अधिक कल्याण करना है। कॉम्ट ने संपूर्ण मानव समाजों के विकास एवं विशिष्ट रूप में यूरोप के राष्ट्रों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रत्यक्षवाद की अवधारणा को विकसित किया। प्रत्यक्षवाद यह बताता है कि केवल भौतिक प्रगति से ही मानव का कल्याण नहीं हो सकता बल्कि मानव के कल्याण के लिए भौतिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास आवश्यक है।

1.2.12 प्रत्यक्षवाद के आधार

अगस्त कॉम्ट समाजशास्त्र को प्रत्यक्षवादी विज्ञान की तरह स्थापित किया है। उनके अनुसार प्रत्यक्षवाद के निम्न आधार होते हैं -

1. समाज में जिस तरह प्राकृतिक घटनाओं की गतिविधियों के अध्ययन के लिए प्राकृतिक विज्ञान है। ठीक उसी तरह सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए भी समाजशास्त्र जैसा विज्ञान होना चाहिए। मानव समाज की आदिम अवस्था से वर्तमान सभ्य अवस्था तक की प्रगति के नियमों की खोज प्रत्यक्षवाद ही करता है।
2. सामाजिक घटनाओं को हम ईश्वर परक विधियों से नहीं समझ सकते एवं तात्विक सिद्धांत भी इन्हें समझने में पूर्णता सफल नहीं होते हैं। इसलिए सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग ही लाभदायक हो सकता है इसलिए समाजशास्त्र का प्रत्यक्षवादी होना आवश्यक है।
3. प्रत्यक्षवाद कभी भी तथ्यों से अलग नहीं होता इसके लिए किसी भी विश्लेषण में तथ्यों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। सिद्धांत कभी भी तथ्यों के अनुगामी नहीं होते सिद्धांत गौण होते हैं और तथ्य प्राथमिक होते हैं।

1.2.13 प्रत्यक्षवाद की विशेषताएं (Characteristics of Positivism)

रॉलिंन चैम्बलिस ने प्रत्यक्षवाद की विशेषताओं की चर्चा करते हुए अपनी पुस्तक सोशल 'Social Thought' में लिखा है "कॉम्ट ने यह स्वीकार किया था कि प्रत्यक्षवाद अनीश्वरवादी है क्योंकि यह किसी भी रुप में अलौकिकता से संबंधित नहीं है। उनका यह भी दावा था कि प्रत्यक्षवाद भाग्यवादी नहीं है क्योंकि वह यह स्वीकार करता है कि बाहरी अवस्था में परिवर्तन हो सकता है। यह आशावादी भी नहीं है क्योकि इसमें आशावाद के आध्यात्मिक आधार का आभाव है। यह भौतिकवादी भी नहीं है क्योंकि यह भौतिक शक्तियों को बौद्धिक शक्ति के अधीन करता है। प्रत्यक्षवाद का संबंध वास्तविकता से है, काल्पनिकता से नहीं, उपयोगी ज्ञान से है न की समस्त ज्ञान से। इसका संबंध यथार्थ ज्ञान से है न की समस्त ज्ञान से। इसका संबंध उन निश्चित तथ्यों से है जिनका की पूर्व ज्ञान संभव है।"

प्रत्यक्षवाद की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. सामाजिक घटनाओं के लिए निश्चित नियम (Certain Law for Social Phenomen)

प्रत्यक्षवाद के अनुसार समाज में घटने वाली प्रत्येक घटना के पीछे कुछ निश्चित नियम होते हैं। सामाजिक घटनाएं कभी भी आकस्मिक नहीं होती है। सामाजिक घटनाओं में परिवर्तन भी कुछ नियमों के अनुसार ही होते हैं। प्राकृतिक घटनाएं, दिन एवं रात, ऋतु का बदलना, बाढ़, भूकंप एवं सूखा नियमों पर आधारित है। जिसके कारणों का पता लगाया जा सकता है और इसके लिए हम वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हैं। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए भी हम वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हैं। इसलिए अगस्त कॉम्ट प्रत्यक्षवाद को कुछ नियमों द्वारा संचालित मानते हैं ।

2. वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method)

प्रत्यक्षवाद की प्रकृति वैज्ञानिक है। यह इसकी मौलिक विशेषता है। इसमें कल्पना और भावनाओं का कोई स्थान नहीं रहता। इसमें किसी भी सामाजिक समस्या का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किया जा सकता है। इसे हम इस तरह से समझ सकते हैं कि हमारे सामने संपूर्ण ब्रह्मांड है और इस ब्रह्मांड का संचालन कुछ नियमों के अधीन होता है। ब्रह्मांड का संचालन जिन नियमों के अधीन होता है, उसमें दो विशेषताएं पाई जाती हैं-

1. ये नियम प्राकृतिक होते हैं
2. ये नियम अपरिवर्तनीय होते हैं

कॉम्ट का कहना है कि इन नियमों का ज्ञान धार्मिक आध्यात्मिक आधार पर न होकर वैज्ञानिक आधार पर होता है। इसलिए इसके अंतर्गत दो तत्वों को सम्मिलित किया है-

1. अवलोकन
2. वर्गीकरण

कॉम्ट का कहना है कि वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से सामाजिक घटना का भी ज्ञान हो सकता है। क्योंकि सामाजिक घटना भी प्रकृति का ही एक अंग है। घटनाओं के अध्ययन के लिए अनुभव, अवलोकन एवं वर्गीकरण ही पर्याप्त है। उन घटनाओं को प्रभावित करने वाले कारणों की खोज की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि घटनाओं के कारणों की यथार्थ खोज असंभव है। प्रत्यक्षवाद का उद्देश घटनाओं एवं तथ्यों का यथास्थिति यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षवाद की प्रथम मान्यता यह है कि इसके द्वारा सामाजिक घटनाओं के क्रम को यथार्थ रूप से समझा जा सके। इस प्रकार सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करके सामाजिक नियमों का निर्माण भी किया जा सकता है।

3. अध्ययन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Attitude of Study)

प्रत्यक्षवाद में हम हर घटना का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति यानी निरीक्षण, परीक्षण एवं वर्गीकरण के द्वारा करते हैं। सामान्यतः समाज में जब कोई दुर्घटना होती है या कोई जन-धन की हानि होती है तो उसे धर्मवादी ईश्वर की इच्छा मानकर अस्वीकार करता है। तत्वज्ञानी उससे तार्किक आधार पर समझने की कोशिश करते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं। जबकि प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से घटनाओं को समझ कर निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

4. वास्तविक ज्ञान (Real Knowledge)

प्रत्यक्षवाद किसी भी प्रकार के निरपेक्ष विचार को स्वीकार नहीं करता है। क्योंकि कॉम्ट ने प्रत्यक्षवाद की विवेचना वास्तविक ज्ञान के आधार पर की है काल्पनिक आधार पर नहीं। प्रत्यक्षवाद विशुद्ध वैज्ञानिक चिंतन है। जिसमें यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने पर जोर दिया जाता है और तथ्य की खोज निरीक्षण एवं परीक्षण के द्वारा की जाती है।

5. ज्ञान से संबंधित (Concernned with Knowledge)

प्रत्यक्षवाद में अज्ञात शक्तियों को सम्मिलित नहीं किया जाता। इसमें घटनाओं के क्रियान्वयन के नियमों को ढूंढा जाता है। इसमें हम केवल उन्हीं घटनाओं का अध्ययन करते हैं जिन्हें हम प्रत्यक्ष रुप से देख सकते हैं।

6. धर्म एवं विज्ञान (Religion and Science)

कॉम्ट के अनुसार प्रत्यक्षवाद धर्म और विज्ञान दोनों का सम्मिश्रण है। यह विज्ञान को विकास का साधन मानता है। साध्य नहीं। कॉम्ट प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक सिद्धांत के द्वारा समाज की उन्नति का लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। प्रत्यक्षवाद में धर्म और विज्ञान दोनों का समन्वय है।

7. सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार (Basis of Social Reconstruction)

अगस्त कॉम्ट ने प्रत्यक्षवाद के आधार पर एक ऐसी व्यावहारिक योजना प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो समाज में भौतिक, नैतिक एवं बौद्धिक प्रगति को बढ़ाती है। वह सामाजिक पुनर्निर्माण के माध्यम से ऐसी कल्पना का निर्माण करना चाहते हैं, जहां भय, असुरक्षा, स्वार्थ, ईर्ष्या एवं जलन जैसी भावनाएं तथा अन्य विघटनकारी तत्व न हो। वे सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन कर समाज को एक नई व्यवस्था प्रदान करना चाहते थे। उनके सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार प्रत्यक्षवाद था। सामाजिक पुनर्निर्माण की यह योजना सामाजिक संगठन के लिए अद्वितीय है।

8. भविष्यवाणी करने वाला विज्ञान (Predictive Science)

कॉम्ट का कहना है कि प्रत्यक्षवाद की सहायता से समाजशास्त्र को एक ऐसा विज्ञान बनाया जा सकता है जो भविष्यवाणी करने में भी समर्थ होगा। समाजशास्त्र के अंतर्गत समाज की घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. भूत कालीन घटनाओं का अध्ययन
2. वर्तमान कालीन घटनाओं का अध्ययन

भूत कालीन घटनाओं का अध्ययन करके इन घटनाओं के साथ वर्तमान का संबंध स्थापित किया जा सकता है और भविष्य के संबंध में निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं। कॉम्ट का कहना है कि यदि हम वर्तमान कालीन घटनाओं का अध्ययन प्रत्यक्षवाद की सहायता से करें तो भविष्य की घटनाओं के बारे में भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं। इस प्रकार समाजशास्त्र ऐसा विज्ञान है जो भविष्यवाणी करने में समर्थ है।

9. जन राज्य की स्थापना (Formulation of Common Wealth)

कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत के प्रतिपादन का उद्देश्य यूरोप में एक जन राज्य की स्थापना करना था। इसकी सहायता से वह यूरोपीय देशों के बीच होने वाले युद्ध को समाप्त करके शांति और व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे। उनका कहना था कि कभी भी जोर जबरदस्ती से कल्याणकारी राज्य की स्थापना

संभव नहीं है। इसके लिए शांति के तरीके अधिक उपयुक्त हैं। उसने कल्याणकारी राज्य की स्थापना को कार्य विधि के स्थापना की कार्य विधि के अंतर्गत दो तत्वों को सम्मिलित किया-

1. प्रदर्शन (Demonstration)
2. अनुनय (Persuation)

1. **प्रदर्शन (Demonstration)** - कुछ देश शांति और व्यवस्था स्थापित करके दूसरे देशों के लिए प्रदर्शन का कार्य करें। ऐसा करने से अधिक से अधिक राष्ट्र इस व्यवस्था की ओर अग्रसर होंगे।
2. **अनुनय (Persuation) -** दूसरा तरीका अनुनय विनय का है। इसमें समझा बुझाकर इससे होने वाले लाभों से अवगत कराकर कल्याणकारी राज्य की स्थापना की जा सकती है। इस तरह के राज्य की स्थापना में जो तत्व सहायक हो सकते हैं उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. **सिद्धांत -** कल्याणकारी राज्य की स्थापना का पहला तत्व सिद्धांत है। जब तक हमारे सामने किसी भी प्रकार का सिद्धांत नहीं होगा हमारे कार्य की सफलता में संदेह होगा। कॉम्ट ने कहा है कि कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रमुख सिद्धांत है, प्रेम और इसमें मानवता के प्रति प्रेम सम्मिलित है।
2. **आधार -** कल्याणकारी राज्य की स्थापना का दूसरा प्रमुख तत्व आधार है। जीवन और संसार में प्रत्येक का आधार ही नहीं होते हैं मौलिक प्रश्न यह है कि जब हम कल्याणकारी राज्य की स्थापना की बात कर रहे हैं तो उसका आधार क्या होगा? कॉम्ट के अनुसार व्यवस्था के माध्यम से यूरोपीय देशों में कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सकती है। कॉम्ट का व्यवस्था से सीधा संबंध सामाजिक व्यवस्था से था।
3. **उद्देश्य -** प्रत्येक कार्य का कोई न कोई निश्चित उद्देश्य होता है और कल्याणकारी राज्य की स्थापना का उद्देश्य प्रगति करना है। यहां पर प्रगति का अर्थ दूसरों के लिए जियो से है।

कॉम्ट के इस सिद्धांत को गणितीय आधार पर भी इस प्रकार समझाया जा सकता है-

A. सिद्धांत = प्रेम = मानवता से प्रेम

Principle = love = Love of Humanity

B. आधार = व्यवस्था = सामाजिक व्यवस्था

Basis = Order = Social Order

C. उद्देश्य = प्रगति = दूसरों के लिए जियो

Aim = Prograss = Live for other

1.2.14 रौलिन चैम्बालिस के अनुसार प्रत्यक्षवाद की विशेषताएं -

रौलिन चैम्बालिस ने प्रत्यक्षवाद की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया है-

1. प्रत्यक्षवाद अलौकिक शक्तियों से संबंधित होने के कारण अनीशवरवादी है, ईश्वर वादी नहीं है।
2. प्रत्यक्षवाद भाग्यवादी नहीं है क्योंकि वह यह स्वीकार करता है कि बाहरी व्यवस्था में परिवर्तन हो सकता है।
3. प्रत्यक्षवाद आशावादी नहीं है क्योंकि इसमें आशावाद के आध्यात्मिक आधार का अभाव है।
4. प्रत्यक्षवाद भौतिकवादी भी नहीं है क्योंकि यह भौतिक शक्तियों को बौद्धिक शक्तियों के अधीन करता है।
5. प्रत्यक्षवाद का संबंध वास्तविकता से है कल्पना से नहीं।
6. प्रत्यक्षवाद का संबंध उपयोगी ज्ञान से है न कि समस्त ज्ञान से।
7. प्रत्यक्षवाद का संबंध उन निश्चित तथ्यों से है जिनका की पूर्व ज्ञान संभव है।
8. इसका संबंध यथार्थ ज्ञान से है न कि स्पष्ट विचारों से।
9. प्रत्यक्षवाद सावयवी सत्य से संबंधित है न कि शाशवत सत्य से।
10. इसका संबंध सापेक्ष से है न कि निरपेक्ष से।
11. प्रत्यक्षवाद सहानुभूति पूर्ण है। यह उन सब लोगों को एक सखापन में संबंध करता है जो कि इसके मूल सिद्धांत और अध्ययन प्रणालियों पर विश्वास रखते हैं।
12. प्रत्यक्षवाद विचार की वह पद्धति है जो कि सार्वभौमिक रूप से सभी को मान्य हो।

1.2.15 प्रत्यक्षवाद के स्वरूप (Forms of Positivism)

प्रत्यक्षवाद जीवन के किन पहलुओं में उपयोगी है इसका जीवन में क्या उपयोग है इस दृष्टि से अगस्त कॉम्ट ने प्रत्यक्षवाद को तीन भागों में विभाजित किया है इसका उद्देश्य मानव का अधिक से अधिक कल्याण करना है कॉम्ट में प्रत्यक्षवाद को तीन भागों में बांटा है-

1. विज्ञानों का दर्शन (Philosophy of Science)

इस धारणा के आधार पर मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। उसे अपनी स्थिति में परिवर्तन के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। उसे अपनी उन्नति के लिए स्वयं प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके लिए उसे स्वयं की मदद के सिद्धांत को अपनाना चाहिए। प्रत्यक्षवाद का यह भाग स्वयं के प्रयासों में विश्वास

करने एवं कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। यह हमें भाग्यवादी नहीं मानता इसके अंतर्गत कॉम्ट में गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणीशास्त्र एवं समाजशास्त्र को सम्मिलित किया है।

2. वैज्ञानिक धर्म एवं नीति (Scientific Religion and Ethnic)

अगस्त कॉम्ट के अनुसार प्रत्यक्षवाद मानवतावादी धर्म है और उसका संबंध अलौकिक प्राणियों एवं शक्तियों से नहीं है। मानव कल्याण इसका प्रमुख उद्देश्य है। इसका संबंध मानव मूल्य एवं नैतिकता से है। इसके द्वारा मानव कल्याण के लिए कार्य किए जाते हैं। प्रत्यक्षवाद का नैतिक नियम है दूसरों की भलाई के लिए नैतिक, बौद्धिक एवं भौतिक विकास करना। यह समाज के लिए उच्च आदर्श प्रस्तुत करता है।

3. प्रत्यक्षवादी राजनीति (Positive Politics)

कॉम्ट के अनुसार प्रत्यक्षवादी राजनीति का मुख्य उद्देश्य युद्ध की संभावनाओं को समझना है। युद्ध से मानव का कल्याण नहीं हो सकता। अतः मनुष्य को युद्ध का बहिष्कार करना चाहिए तथा प्रेम एवं स्नेह के सिद्धांत पर काम करना चाहिए। इसी से मानव कल्याण एवं मानव विकास संभव है। इस सिद्धांत का उद्देश्य था "युद्ध को समाप्त करना एवं समकालीन यूरोप के समस्त राज्यों को मिलाकर एक मित्र राष्ट्र की स्थापना करना।"

अगस्त कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद के संबंध में **जे.एच.ब्रीजेस** (J.H.Bridges) ने लिखा है "अगस्त कॉम्ट घटनाओं की दुनिया के उस पार अव्यवस्थित गूढ़ रहस्य के संबंध में अत्याधिक सचेत थे। इसे वह प्रत्येक पग पर उसी तरह अनुभव करते रहे। जिस प्रकार एक नाविक उस अथाह समुद्र के विषय में सचेत रहता है। जिसके बीच से होकर उसे अपना मार्ग निश्चित करना पड़ता है। उस रहस्य को भेद करना मनुष्य का काम नहीं है। इसलिए उसे अपनी क्रियाओं को उस क्षेत्र की ओर मोड़ना होगा जहां कि उसे उसका फल मिल सके। पृथ्वी का आकर्षण शक्ति का अंतिम स्रोत, पंच महाभूत के अंतिम गठन, विद्युत शक्ति, रासायनिक संबंध आदि की पूर्ण एवं अंतिम व्याख्या यह सभी विषय हमसे सदैव ही छिपे रहे हैं। उसी प्रकार जीवन की उत्पत्ति और प्रेम की पृथम प्रवृत्ति भी कम अंधकार में नहीं है। इसका क्यों? और कहां? से हम नहीं जान सकते यही हमारे लिए पर्याप्त होगा कि हम इनके कैसे को अर्थात इनकी क्रियाशीलता को जान ले।"

1.2.16 कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद की आलोचना (Criticism of Comte's Positivism)

अगस्त कॉम्ट को प्रत्यक्षवाद का जन्मदाता कहा जाता है। विभिन्न सिद्धांतों का अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि अगस्त कॉम्ट अपने प्रत्यक्षवादी सिद्धांतों पर स्वयं स्थिर नहीं रह सके। कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद सिद्धांत में अनेक कमियां हैं। इसलिए यह सिद्धांत आलोचनाओं से परे नहीं है। कॉम्ट के इस सिद्धांत के विभिन्न आलोचना की गई है जो इस प्रकार है-

1. प्रत्यक्षवाद एक चिंतन प्रणाली है। यह प्रत्यक्षवादी पद्धति में सामाजिक घटनाओं के अध्ययन की बात करती है, वहीं इसमें धर्म, नैतिकता के लिए भी कुछ विचार प्रस्तुत किए गए हैं जो विज्ञान की अपेक्षा कल्पना और दर्शन पर आधारित है।
2. प्रत्यक्षवाद में कॉम्ट ने धर्म को समाज का आधार स्तंभ बताया है। लेकिन एक धार्मिक सिद्धांत के रूप में प्रत्यक्षवाद कोई ऐसी योजना प्रस्तुत नहीं करता जिससे व्यावहारिक और वैज्ञानिक कहा जा सके।
3. कॉम्ट के सिद्धांत की सबसे बड़ी आलोचना यह है कि यह इनका मौलिक सिद्धांत नहीं है। **बान्र्स** (Barne) के अनुसार, अगस्त कॉम्ट से पहले भी **ह्यूम** (Hume) **कॉम्ट** (Kant) एवं **गाल** (Gall) आदि विद्वानों ने प्रत्यक्षवाद की अवधारणा प्रस्तुत की थी। इस आधार पर कहा जाता है कि कॉम्ट प्रत्यक्षवाद की अवधारणा में वे अपने पूर्ववर्ती विचारों से प्रभावित प्रतीत होते हैं।
4. कॉम्ट ने प्रत्यक्षवाद का कोई मौलिक सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किया है। यह विचार बान्र्स (Barnes) ने दिया है। बान्र्स का यह कथन प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत पर भी लागू होता है। प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत **प्लेटो** (Plato) के 'Philosophers State' एवं **अरस्तु** (Aristotle) के 'Practical States' सिद्धांतों से भी बहुत हद तक मिलता-जुलता है।
5. **ग्राहम वाल्स** ने मानव जीवन की उत्पत्ति के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय धर्म का सिद्धांत प्रतिपादित किया। उसका कहना है कि संसार के सभी धर्मों के मूल सिद्धांतों के आधार पर एक अंतर्राष्ट्रीय धर्म की स्थापना होनी चाहिए और इस धर्म का प्रमुख उद्देश्य पूर्ण मानवता का कल्याण करना होगा। इस तरह से वॉल्स ने संसार के सभी लोगों को एक अंतरराष्ट्रीय धर्म के अंतर्गत सम्मिलित करने का प्रयास किया है। वह कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद से मिलता-जुलता है।
6. अगस्त कॉम्ट प्रत्यक्षवादी सिद्धांत में नैतिकता बौद्धिकता धर्म और विज्ञान के जाल में उलझ कर उसे वैज्ञानिकता प्रदान करने में समर्थ नहीं रहे। **रेमंड एरन** के अनुसार "प्रत्यक्षवाद का जन्मदाता ही सबसे अधिक अवैज्ञानिक है।"
7. समाजशास्त्री **कोजर** ने प्रत्यक्षवाद की आलोचना करते हुए लिखा है कि "इसमें वैज्ञानिकता कम धार्मिकता अधिक है।"
8. **तिमासेफ** का कहना है कि कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद अवलोकन और अनुमान के स्तर से एकाएक सिद्धांत पर पहुंचने का काम है। कॉम्ट के प्रत्यक्षवादी विचारों में इतनी परिपक्वता नहीं है कि उसके आधार पर कोई समाजशास्त्री सिद्धांत विकसित किया जा सके।
9. अगस्त कॉम्ट के इस सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि कॉम्ट अपने धार्मिक या नैतिक पक्ष को वैज्ञानिक पक्ष से अधिक महत्व प्रदान किया है। कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद धर्म तथा विज्ञान दोनों ही है। कॉम्ट के इस विचार से उनके प्रशंसक व समर्थक नाराज हो गए थे, क्योंकि इन

लोगों के विचार से वैज्ञानिकता का विकास करना कॉम्ट का मूल उद्देश्य था, पर वे लंबे समय तक इस पर कायम नहीं रह सके। उनकी विचारधारा के इस परिवर्तन को उनके समर्थकों ने अगस्त कॉम्ट के पतन के रूप में देखा।

10. यदि वे अपना प्रारंभिक स्वरूप बनाए रखते तो आज वे विश्व के प्रमुख प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक माने जाते। किंतु सामाजिक पुनर्निर्माण की स्वप्निल योजना ने उन्हें प्रत्यक्षवाद से दूर कर दिया। इसलिए उनके बारे में यह कहा जाता है कि प्रत्यक्षवाद का जन्मदाता ही सबसे कम प्रत्यक्षवादी था। **जे. एस. मिल** ने तो इस संबंध में यहां तक कह डाला कि "कॉम्ट के इस दयनीय पतन पर मुझे रोना आता है।"

कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद की आलोचना के बावजूद कहा जा सकता है कि वे असाधारण प्रतिभा के धनी विचारक थे। उन्होंने अपने चिंतन से धर्म और विज्ञान को एक दूसरे के निकट लाकर विश्व बंधुत्व को साकार करना चाहा। इसलिए उनका योगदान अविस्मरणीय है।

1.2.17 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से विद्यार्थियों को यह समझने में सहायता मिलेगी की अगस्त कॉम्ट का तीन स्तरों का नियम क्या है? तीन स्तरों के नियमों की अवधारणा के बाद विद्यार्थी यह भी समझ सकेंगे कि किस तरह से मानव के बौद्धिक विकास के स्तर के आधार पर सामाजिक विकास का अध्ययन किया जा सकता है। ज्ञान की प्रत्येक शाखा तीन स्तरों से गुजरते हुए वैज्ञानिक स्तर पर कैसे पहुंचती है? अगस्त कॉम्ट के इस सिद्धांत के माध्यम से जीव सत्तावाद, प्रेतवाद, बहु देववाद और एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद के अर्थ को समझ ।इन तीनों युगों में समाज का विकास एवं मानव मस्तिष्क का विकास किस तरह से हुआ यह भी उन्हें स्पष्ट हो जाएगा एवं उस समय समाज के विकास पर इनका क्या प्रभाव पड़ा, को समझने में सफल होंगे। मानव चिंतन के स्तर की प्रत्येक अवस्था किस तरह सामाजिक संगठन का प्रतिनिधित्व करती है? समाज में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना कैसे हुई? संक्रमण काल में किस तरह कल्पना का स्थान भावना ने लिया और अंत में मानवता के धर्म का विकास हुआ।

प्रत्यक्षवाद के उपरोक्त अध्ययन के बाद कहा जा सकता है कि कॉम्ट ने प्रत्यक्षवाद को एक विज्ञान, एक धर्म एवं एक राजनीति के रूप में स्वीकार किया एक विज्ञान के रूप में वह अनुभव, अवलोकन, परीक्षणों एवं वर्गीकरण पर जोर देता है। जबकि वह एक धर्म के रूप में प्रत्यक्षवाद समाज की भौतिक, नैतिक और बौद्धिक प्रगति चाहता है तथा वह लोगों की अधिक से अधिक सेवा करना चाहता है।

एक राजनीति के रूप में प्रत्यक्षवाद का लक्ष्य युद्ध को समाप्त कर विश्व तथा प्रमुख रूप से यूरोप के राज्यों का एक राष्ट्रमंडल बनाना था। यह हिंसात्मक उपायों का विरोधी है। प्रत्यक्षवाद प्रेम, व्यवस्था, प्रदर्शन

और प्रोत्साहन में विश्वास करता है और दूसरों के लिए जीना इसका नारा होगा। **रोलिंन चैम्बलिस** ने कहा है "सारे रूप में प्रत्यक्षवाद वह चिंतन प्रणाली है जो सार्वजनिक रूप से ग्रहण की जा सकती है।" किंतु आगे जाकर कॉम्ट का प्रत्यक्षवाद केवल विज्ञान के रूप में ही जीवित रह सका है। आपने कॉम्ट के बारे में लिखा है कि "यह विश्वास करना अधिक सरल है कि वहा दो कॉम्ट थे एक तीक्ष्ण बुद्धि वाला वैज्ञानिक और दूसरा सामान्य प्रतिभा वाला धार्मिक व्यक्ति।"

1.2.18 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट ने तीन स्तरों के नियमों का प्रतिपादन किस सन में किया था?

(अ) 1822 (ब) 1838

(स) 1836 (द) 1848

2. अगस्त कॉम्ट ने 3 स्तरीय नियम की व्याख्या किस पुस्तक में की है?

(अ) पॉजिटिव फिलासफी (ब) पॉजिटिव पॉलिटी

(स) सोसायटी (द) सोशलॉजी

3. अगस्त कॉम्ट के तीन स्तरों के नियम में कौन सा नियम शामिल नहीं है

(अ) आध्यात्मिक (ब) राजनैतिक

(स) तात्विक (द) प्रत्यक्ष

4. तीन स्तरों के नियम का प्रतिपादन करते समय कॉम्ट की उम्र कितनी थी?

(अ) 16 (ब) 18

(स) 24 (द) 26

5. तीन स्तरों के नियमों का विचार कॉम्ट के अलावा किन विद्वानों में भी मिलता है?

(अ) टरगट एवं सेंट साइमन (ब) वानर्स एवं बेकर

(स) जे एस मिल (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

6. प्रत्यक्षवाद वाद के जनक कौन थे?

(अ) कॉम्ट (ब) दुर्खीम

(स) सेंट साइमन (द) फूको

7. प्रत्यक्षवाद का जन्मदाता ही सबसे अधिक अवैज्ञानिक है। यह कथन किसका है?

(अ) कोजर (ब) वेबर

(स) रेमंड एरन (द) तिमासेफ

8. कॉम्ट ने प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान के रूप में व्याख्या की है?

(अ) भौतिकशास्त्र (ब) अर्थशास्त्र
(स) समाजशास्त्र (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

9. ...यह वास्तविक ज्ञान पर आधारित है न कि काल्पनिक ज्ञान पर?

(अ) प्रत्यक्षवाद (ब) त्रिस्तरीय नियम
(स) आत्मा वाद (द) प्रेतवाद

10. "साररूप में प्रत्यक्षवाद वह चिंतन प्रणाली है जो सार्वभौमिक रूप से ग्रहण की जा सकती है" यह कथन किसका है?

(अ) रोलिन चैम्बलिस (ब) मैक्स वेबर
(स) कोजर (द) साइमन

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तरः-

1. अ 2. अ 3. ब 4. स 5. अ

6. अ 7. स 8. स 9. अ 10. अ

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कॉम्ट के तीन स्तरीय नियम के स्तरों को बताइए।
2. एकेश्वरवाद से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. धार्मिक स्तर को समझाइए।
4. धार्मिक स्तर के कौन से तीन स्तर हैं? समझाइए।
5. त्रिस्तरीय नियम की आलोचना कीजिए।
6. प्रत्यक्षवाद का अर्थ बताइए।
7. प्रत्यक्षवाद क्या है? परिभाषाएं दीजिए।
8. प्रत्यक्षवाद की प्रमुख मान्यताएं बताइए।
9. प्रत्यक्षवाद के प्रमुख विभागों को समझाइए।
10. प्रत्यक्षवाद की आलोचना कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट के तीन स्तरों के नियमों की विवेचना कीजिए।
2. अगस्त कॉम्ट के त्रिस्तरीय नियम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3. अगस्त कॉम्ट द्वारा प्रस्तुत मानव चिंतन के तीन स्तर के नियमों की व्याख्या कीजिए।
4. अगस्त कॉम्ट के तीन स्तरों के नियम को सामाजिक संगठन के परिपेक्ष में समझाइए।
5. अगस्त कॉम्ट द्वारा प्रस्तुत समाज का विकास समझाइए।
6. प्रत्यक्षवाद से आप क्या समझते हैं? कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
7. प्रत्यक्षवाद के संबंध में कॉम्ट के विचारों की व्याख्या कीजिए।
8. कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
9. प्रत्यक्षवाद का अर्थ और परिभाषा बताते हुए इसके प्रमुख आधारों की विवेचना कीजिए।
10. प्रत्यक्षवाद की प्रमुख विशेषताओं एवं विभाजन की विवेचना कीजिए।

1.2.19 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 3 विज्ञानों का संस्तरण, सामाजिक स्थिति एवं सामाजिक गति विज्ञान

इकाई की रूपरेखाः

विज्ञानों के संस्तरण का सिद्धांत

1.3.0 उद्देश्य

1.3.1 प्रस्तावना

1.3.2 कॉम्ट से पहले विज्ञानों का वर्गीकरण

1.3.3 विज्ञानों के वर्गीकरण का आधार

1.3.4 विज्ञानों के वर्गीकरण का नियम

1.3.4.1 पराश्रयता वृद्धि क्रम सिद्धांत

1.3.4.2 घटती हुई सामान्यता एवं बढ़ती हुई जटिलता का सिद्धांत

1.3.5 विज्ञानों का वर्गीकरण

1.3.5.1 गणितशास्त्र

1.3.5.2 खगोलशास्त्र

1.3.5.3 भौतिकशास्त्र

1.3.5.4 रसायनशास्त्र

1.3.5.5 प्राणीशास्त्र

1.3.5.6 समाजशास्त्र

1.3.6 विज्ञानों के संस्तरण की व्याख्या

1.3.7 तीन स्तरों के संबंध में कॉम्ट की मान्यताएं

1.3.8 आलोचना

सामाजिक स्थिति एवं सामाजिक गति विज्ञान का सिद्धांत

1.3.9 प्रस्तावना

1.3.10 कॉम्ट के समाजशास्त्र का अर्थ

1.3.11 परिभाषा

1.3.12 सामाजिक व्यवस्था

1.3.13 सामाजिक प्रगति

1.3.14 कॉम्ट के समाजशास्त्र की विशेषताएं

1.3.15 कॉम्ट के समाजशास्त्र के भाग

1.3.16 सामाजिक स्थिति विज्ञान

1.3.16.1 परिभाषाएं

1.3.17 सामाजिक गति विज्ञान

1.3.18 सारांश

1.3.19 बोध प्रश्न

1.3.20 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी जान पाएंगे ...

- विज्ञान का वर्गीकरण को जान पाएंगे।
- कॉम्ट से पूर्व के विज्ञानों के वर्गीकरण को जान पाएंगे।
- कॉम्ट के विज्ञानों के वर्गीकरण का क्रम क्या है? यह जानने में सक्षम होंगे।
- विज्ञानों के वर्गीकरण की आलोचनाओं को समझ पाएंगे।
- कॉम्ट के विज्ञानों के वर्गीकरण के प्रति विद्यार्थियों की एक समझ विकसित हो पाएगी।
- सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक प्रगति के बारे में जान पाएंगे।
- सामाजिक स्थितिशास्त्र को समझ सकेंगे।
- सामाजिक गतिशास्त्र को समझ सकेंगे।

विज्ञानों का संस्तरण (Hierarchy of Science)

1.3.1 प्रस्तावना

कॉम्ट समाजशास्त्र के जन्मदाता थे। समाजशास्त्र को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करना चाहते थे। जिससे सामाजिक विज्ञानों में उसका स्थान महत्वपूर्ण रहे। इसलिए उन्होंने विज्ञान के विकास का सिद्धांत प्रतिपादित किया। अगस्त कॉम्ट ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'पॉजिटिव फिलॉसफी' (Positiv Philosophy) में विज्ञानों का एक व्यवस्थित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

अगस्त कॉम्ट ने सेंट साइमन के विचारों से प्रभावित होकर विज्ञानों के वर्गीकरण को प्रस्तुत किया। वे बहुत हद तक साइमन के विचारों से सहमत थे पर उनका वर्गीकरण सेंट साइमन से कहीं अधिक वैज्ञानिक एवं भिन्न प्रकार का था। कॉम्ट ने विज्ञानों के वर्गीकरण द्वारा समाजशास्त्र को नवीन एवं जटिल विज्ञान प्रमाणित किया। जिसका क्षेत्र अन्य विज्ञानों की तुलना में अधिक व्यापक है। इस वर्गीकरण के पीछे कॉम्ट का प्रमुख उद्देश्य समाजशास्त्र को एक नवीन विज्ञान के रूप में सुदृढ़ आधार प्रदान करना था। इसी उद्देश्य से उन्होंने

विज्ञानों का एक नवीन वर्गीकरण उच्चता एवं निम्नता के क्रम के आधार पर प्रस्तुत किया। इसके माध्यम से वे प्रत्येक विज्ञान के विकास की स्थिति को स्पष्ट करना चाहते थे। समाजशास्त्र का अन्य विज्ञानों की शाखाओं से संबंध स्पष्ट करना चाहते थे, साथ ही यह स्पष्ट करना चाहते थे कि समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र अन्य विज्ञानों की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

तीन स्तरों के नियम एवं प्रत्यक्षवाद के बाद विज्ञानों का वर्गीकरण कॉम्ट की प्रमुख देन है। कॉम्ट के बारे में जैसा कि **बोगार्ड्स** ने कहा है "कॉम्ट की योजना का तीसरा चरण विज्ञानों का वर्गीकरण था। इसके अंतर्गत समाजशास्त्र को नवीनतम किंतु सर्वश्रेष्ठ विज्ञान के रुप में दर्शाया गया है।"

1.3.2 कॉम्ट से पहले विज्ञानों का वर्गीकरण

अगस्त कॉम्ट का विज्ञानों का वर्गीकरण अपने ढंग का निराला था। कॉम्ट से पहले भी विज्ञानों का वर्गीकरण किया गया था। ग्रीक विचारकों ने तीन श्रेणियों में विज्ञानों का वर्गीकरण किया था -

1. भौतिकशास्त्र (Physics)
2. नीतिशास्त्र (Ethics)
3. राजनीति (Politics)

बेकन (Bacon) इंग्लैंड का एक विचारक एवं शिक्षाविद था। उसने भी विज्ञानों के वर्गीकरण को प्रस्तुत किया था। उसने मानसिक योग्यता के तीन पक्षों स्मरण शक्ति, कल्पना शक्ति और तर्क शक्ति को वर्गीकरण का आधार माना था और इसी के आधार पर विज्ञान को तीन भागों में स्पष्ट किया था।

इतिहास (History) - इतिहास मानसिक योग्यता पर आधारित पहला विज्ञान था। **बेकन** ने स्मरण शक्ति को इस विज्ञान का आधार बताया। उनके अनुसार भूतकाल की जो घटनाएं हमें याद रहती हैं उसे इतिहास में सम्मिलित किया जाता है।

काव्यशास्त्र (Peotry) - बेकन के अनुसार दूसरा विज्ञान काव्यशास्त्र है। काव्य का आधार कल्पनाशक्ति है। काव्य में ही मानव की कल्पनाएं समाहित होती हैं।

विज्ञान (Science) - बेकन के अनुसार का तीसरा भाग विज्ञान है। जिसमें बुद्धि, विवेक एवं तर्कशक्ति को प्रमुख आधार माना गया है। इसके अंतर्गत प्रत्यक्ष घटनाएं सम्मिलित होती हैं।

1.3.3 विज्ञानों के वर्गीकरण का आधार

अगस्त कॉम्ट के द्वारा विज्ञानों का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है के निम्न आधार हैं

1. विज्ञानों के वर्गीकरण का पहला प्रमुख आधार यह है कि संसार की सभी घटनाएं चिंतन के तीन प्रमुख क्रमों से गुजरती हैं। जब सभी घटनाएं तीन क्रमों से गुजरती हैं तो विज्ञान को भी इन्हीं तीनों क्रमों से गुजरना पड़ता है। क्योंकि विज्ञान भी प्राकृतिक घटना का ही एक भाग है।
2. प्रारंभिक काल से वर्तमान काल तक जीवन और जगत की घटनाओं का अध्ययन करने वाले विज्ञानों की संख्या अनेक है। लेकिन यदि हम विकास की अवस्था में देखें तो सभी विज्ञान एक समान नहीं है। कुछ विज्ञान अधिक विकसित हो गए हैं जबकि कुछ का विकास होना अभी बाकी है। इस प्रकार कॉम्ट ने निष्कर्ष निकाला कि कुछ विज्ञान धार्मिक अवस्था में, कुछ तार्किक अवस्था में और कुछ प्रत्यक्षवाद अवस्था में हैं।
3. कॉम्ट का कहना है कि प्रत्येक विज्ञान को इन तीनों अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। प्रत्येक अवस्था में विज्ञान का स्वरूप अलग-अलग था। इस प्रकार विज्ञानों के वर्गीकरण में प्रत्येक स्तर का स्वरूप भिन्न-भिन्न है।

1.3.4 विज्ञानों के वर्गीकरण के नियम

प्रत्येक विज्ञान का संबंध किसी न किसी विषय या अनिश्चित घटना से होता है। जिसका अध्ययन विज्ञान में किया जाता है और उसी के माध्यम से विज्ञान की प्रकृति निर्धारित होती है। कॉम्ट के विज्ञानों के वर्गीकरण का आधार भी यह तथ्य है। जैसा कि हमें ज्ञात है कि विज्ञानों के वर्गीकरण का विचार कॉम्ट को **सेंट साइमन** से मिला था। कॉम्ट साइमन के इन विचारों से सहमत तो थे किंतु विज्ञानों का वर्गीकरण वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिए पर वे सेंट साइमन की वर्गीकरण से सहमत नहीं थे। उनका दावा था कि सेंट साइमन से अधिक वैज्ञानिक आधार पर वे विज्ञानों का वर्गीकरण प्रस्तुत कर सकते हैं। अगस्त कॉम्ट का 'पॉजिटिव फिलॉसफी' (Positive Philosophy) लिखने का उद्देश्य अपने नवीन विज्ञान समाजशास्त्र के लिए दृढ़ तथा वैज्ञानिक नींव को ढूंढना था। जिससे कि समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र और उसका अन्य विज्ञानों से संबंध स्पष्ट हो जाए इसी उद्देश्य से कॉम्ट ने विज्ञानों के एक नवीन वर्गीकरण को दो आधार पर प्रस्तुत किया है -

1. पराश्रयता या निर्भरता वृद्धि क्रम का सिद्धांत
2. घटती हुई सामान्यता एवं बढ़ती हुई जटिलता का सिद्धांत

1.3.4.1 पराश्रयता निर्भरता वृद्धि के क्रम का सिद्धांत

कॉम्ट ने विज्ञानों के वर्गीकरण को प्रस्तुत करने के लिए पराश्रयता वृद्धि क्रम के सिद्धांत को चुना। कॉम्ट के अनुसार ज्ञान या विज्ञान की प्रत्येक शाखा अपने से पहली शाखा या विज्ञान के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर आश्रित होती है। इस निर्भरता का परिणाम यह होता है कि जैसे-जैसे विज्ञान की एक शाखा दूसरी शाखा से आगे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उस शाखा की पराश्रयता में वृद्धि होती जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार जो विज्ञान सर्वप्रथम आया है, वह किसी पर निर्भर नहीं है। इसके बाद जो दूसरा विज्ञान विकसित होगा वह प्रथम विज्ञान पर आश्रित या निर्भर होगा। जो तीसरे होगा वह पहले और दूसरे विज्ञान पर आश्रित होगा। जो चैथा विज्ञान होगा वह पहले दूसरे और तीसरे विज्ञान पर आश्रित होगा। इस क्रम से विज्ञान की प्रत्येक शाखा में पराश्रयता एवं निर्भरता में वृद्धि होती जाती है। इस तरह हम कह सकते हैं कि प्रत्येक नवीन विज्ञान अपने से पहले विकसित हुए विज्ञानों पर निर्भर होगा और इसी क्रम में विज्ञान की प्रत्येक शाखा की निर्भरता बढ़ती जाती है। इस आधार पर जो विज्ञान जितना अधिक आश्रित होगा वह उतना ही नवीनतम माना जाता है। हम कह सकते हैं कि विज्ञानों के वर्गीकरण एवं संस्तरण में प्रत्येक विज्ञान की श्रेणी अपने से पूर्व विकसित विज्ञान की श्रेणी के नियमों और सिद्धांतों पर आश्रित होती है। इस निर्भरता का परिणाम यह होता है कि विज्ञान की एक शाखा नवीन विकास के साथ-साथ विज्ञान की दूसरी शाखाओं पर निर्भर होती चली जाती है। इस नियम के अनुसार प्राचीनतम विज्ञान सबसे अधिक आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र होता है और नवीनतम विज्ञान सबसे अधिक आश्रित होता है।

1.3.4.2 घटती हुई सामान्यता और बढ़ती हुई जटिलता का सिद्धांत

कॉम्ट के अनुसार विज्ञानों का विकास एक विशेष क्रम से होता है और वह क्रम है घटती हुई सामान्यता और बढ़ती हुई जटिलता है। कॉम्ट का कहना है कि जैसे-जैसे नवीन विज्ञान का विकास होता है वैसे-वैसे उस विज्ञान के अध्ययन वस्तु क्रमशः कम सामान्य और अधिक जटिल होती जाती है। कॉम्ट के वर्गीकरण के सिद्धांत के अनुसार एक विज्ञान के अध्ययन वस्तु जिस प्रकार की होती है उसीके अनुसार उस विज्ञान की अन्य विज्ञानों पर निर्भरता तथा विज्ञानों के संस्तरण में उसका स्थान निश्चित होता है। अध्ययन वस्तु जितनी विशिष्ट तथा जटिल होगी उस विज्ञान की अपने से पहले वाले विज्ञान पर निर्भरता और पराश्वेता उतनी ही अधिक बढ़ती जाएगी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पहला विज्ञान वह है जो सबसे सरल विषय घटनाओं का अध्ययन करता है और जो घटना सबसे अधिक सरल है वह सबसे अधिक सामान्य भी होती है। सामान्य का अर्थ यह है कि वह सब जगहों पर विद्यमान है। इस प्रकार सबसे प्रथम विज्ञान सबसे अधिक सामान्य और सबसे कम जटिल घटनाओं या विषयों से संबंधित होता है। इस तथ्य का मूल रहस्य है कि यदि घटनाएं सरल प्रकृति की हैं तो उनका अध्ययन भी सरल होगा। सरल घटनाओं का अध्ययन इसलिए सरल है

क्योंकि वह सामान्य प्रकृति होती हैं। स्वयं कॉम्ट कहते हैं कि ‘‘सर्वाधिक सरल घटनाएं सर्वाधिक सामान्य होती हैं। सामान्य इस अर्थ में कि वे प्रत्येक स्थान पर उपस्थित होती हैं।’’

कॉम्ट का कथन है कि प्रथम विज्ञान के बाद जिन अन्य विज्ञानों का विकास हुआ उनका अध्ययन विषय क्रमशः कम सामान्य और अधिक जटिल होता गया। इस प्रकार दूसरा विज्ञान प्रथम विज्ञान से अधिक जटिल विषय वस्तु से संबंधित होता है और तीसरा विज्ञान दूसरे विज्ञान से कम सामान्य और अधिक जटिल विषय से संबंधित होता है। यही क्रम निरंतर चलता रहता है। विज्ञानों के विकास के क्रम में चूँकि प्रत्येक विज्ञान का अध्ययन विषय निरंतर जटिल होता जाता है। इस कारण प्रत्येक विज्ञान अपने से पहले के विज्ञान विज्ञान की खोजों निष्कर्षों और सिद्धांतों पर अधिक निर्भर होता जाता है अर्थात उसकी पराश्रयता में क्रमशः वृद्धि होती जाती है। इस तरह प्रत्येक विज्ञान अपने से पहले के विज्ञान या विज्ञानों पर आधारित रहते हुए अगले विज्ञान के लिए आधार प्रस्तुत करता है। प्रत्येक विज्ञान अपने पहले विज्ञान या विज्ञानों पर केवल निर्भर ही नहीं रहता बल्कि वह पिछले विज्ञान या विज्ञानों को अपनी खोजों से सींचता एवं समृद्ध बनाता है तथा सर्वाधिक जटिल एवं विशिष्ट विज्ञानों के क्रम में हमेशा अंत में रहता है। कॉम्ट समाजशास्त्र को भौतिक एवं प्राकृतिक विज्ञानों की श्रेणी में रखना चाहते थे इसलिए अन्य विज्ञानों की तुलना में वे इसे ज्यादा महत्वपूर्ण बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे।

1.3.5 विज्ञानों का वर्गीकरण

कॉम्ट के द्वारा विज्ञानों का जो वर्गीकरण किया गया है वह निम्न तालिका से स्पष्ट है-

विज्ञानों का वर्गिकरण

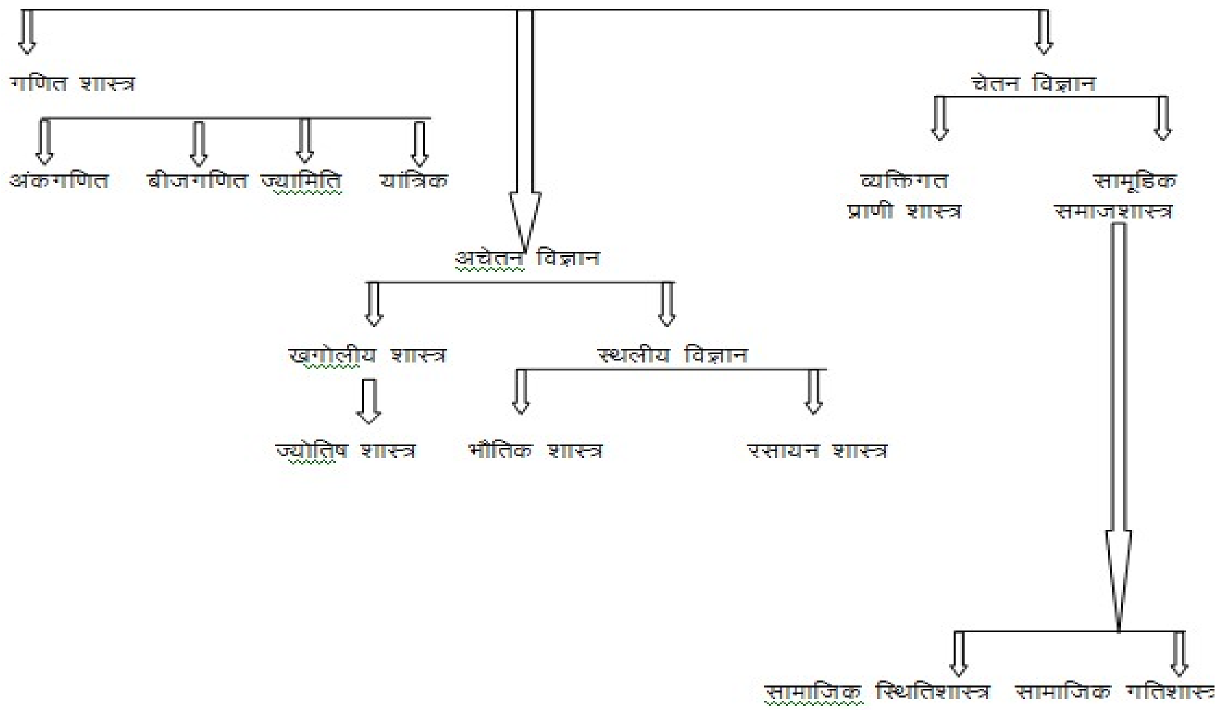

1.3.5.1 गणितशास्त्र

कॉम्ट के अनुसार गणितशास्त्र सबसे प्राचीन आधारभूत सामान्य कम जटिल एवं दोष रहित विज्ञान है। कॉम्ट इसे पूर्ण विज्ञान मानते हैं। इसलिए इसे प्रथम स्थान पर रखा गया है। सामान्य अर्थ में गणित मात्रा एवं अंकों का विज्ञान है। इसकी व्याख्या करते हुए कॉम्ट ने लिखा है "गणित सबसे प्राचीन प्रथम एवं आधारभूत विज्ञान है और सभी विज्ञानों में परिपूर्णता का दावा करता है।" सामाजिक एवं प्राकृतिक घटनाओं के बारे में अनुसंधान एवं नवीन नियमों की खोज गणित के द्वारा ही संभव है। इसके सहारे के अभाव में सभी विज्ञान पंगु हैं। इसके नियम ही स्थाई होते हैं। सदियों बाद भी इसमें किसी भी प्रकार का बदलाव नहीं हुआ है। यह सर्वप्रथम विज्ञान होने एवं सरल घटनाओं का अध्ययन करने के कारण अन्य विज्ञानों पर कम से कम निर्भर है।

गणित के चार भाग होते हैं - गणित के ये सभी भाग अत्यंत सरल हैं और वे किसी भी अन्य विषय पर आधारित नही हैं।

1.3.5.1.1..अंकगणित (Arithmetics)

अंक गणित अंकों का विज्ञान है। यह सरलतम विज्ञान है। अंक मौलिक तत्व होते हैं। यह किसी पर आश्रित नहीं होते। इनका कार्य सामान्य एवं सरल घटनाओं एवं वस्तुओं का लेखा जोखा प्रस्तुत करना होता है। इसलिए अंकगणित के द्वारा यथार्थ एवं निश्चित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

1.3.5.1.2 बीजगणित (Algibra)

यह गणित का दूसरा भाग है। यह गणित की वह शाखा है जिसमे अंकों के लिए चिन्हों का प्रयोग किया जाता है जैसे- $(x+y)^2=x^2+y^2=2xy$ यहां पर चिन्हों का प्रयोग प्रतीक स्वरूप ही किया गया है। इसके अर्थ को समझने के लिए अंकों का सहारा लेना पड़ता है। इसलिए बीजगणित प्रत्यक्ष रुप से अंकगणित पर आश्रित है।

1.3.5.1.3 ज्यामिति (Geometry)

यह गणित का तीसरा भाग है इसे रेखागणित भी कहते हैं। इसमें रेखाओं की सहायता से अंको को नापा जाता है जैसे-

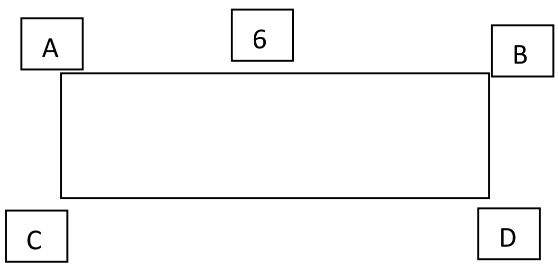

लम्बाई X चैडाई = क्षेत्रफल 6 X 3 = 9

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है की ज्यामिति में अंकगणित और बीजगणित दोनों का प्रयोग होता है। इसलिए यह अंक गणित एवं बीजगणित दोनों पर आश्रित है। इसलिए यह इनसे जटिल है।

1.3.5.1.4 यांत्रिकी (Mechanism)

यह गणित का चैथा भाग है। इसे अभियांत्रिकी भी कहते हैं। यह वह विज्ञान है जिसकी सहायता से यंत्र बनाए जाते हैं। यंत्र प्रकार की संरचना को कहते हैं। संरचना निर्माण में अंकगणित, बीजगणित एवं रेखागणित तीनों की सहायता ली जाती है। इसलिए यांत्रिकी इन तीनों की अपेक्षा अधिक जटिल है एवं तीनों पर आश्रित है।

1.3.5.1.5 समाकलन अवकलन (Calculus)

कॉम्ट ने गणित के एक और विभाग की चर्चा की थी और कहा था कि अन्य विज्ञानों में इसका न्यूनतम प्रयोग किया जा रहा है। विज्ञान के संस्तरण में सर्वप्रथम स्थान गणितशास्त्र का है। गणित ही वह सबसे शक्तिशाली साधन है जिसको उपयोग में लाए बिना प्राकृतिक नियमों की खोज असंभव है। गणित मानव चिंतन का सबसे मौलिक उपकरण है। किसी भी अनुसंधान के क्षेत्र में चाहे वह प्राकृतिक हो या सामाजिक

गणितशास्त्र से अधिक निर्भर योग्य कोई और विज्ञान नहीं है। क्योंकि तथ्यों का यथार्थ ज्ञान और विभिन्न तत्वों के बीच पारस्परिक संबंधों को सुनिश्चित करना गणितशास्त्र के माध्यम से ही संभव है। अन्य कोई भी विज्ञान अपने अनुसंधान कार्य में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह गणितशास्त्र की सहायता न ले क्योंकि यही समस्त विज्ञानों का आधार है। इसी आधार पर अन्य सभी विज्ञान खड़े हैं और विज्ञान कहलाने के योग्य हैं। इसलिए कॉम्ट विज्ञानों के संस्तरण में गणित को प्रथम और आधारभूत स्थान प्रदान करते हैं।

1.3.5.2 खगोल शास्त्र

विज्ञान के वर्गीकरण में अन्य विज्ञानों के स्थानों को निश्चित करने के लिए सभी प्राकृतिक घटनाओं को दो बड़े भागों में बांटा गया है-

1. **आजीवक (Inorganic)**
2. **जीवक (Organic)**

आजीवक घटनाओं को भी दो भागों में बांटा जा सकता है -

A. **खगोल संबंधी घटनाएं (Astronomical)**
B. **स्थलीय घटनाएं (Terrestrial)**

खगोलशास्त्र का संबंध खगोल संबंधी घटनाओं से होता है। खगोलीय घटनाएं अत्यंत सामान्य होती हैं। खगोलीय घटनाओं का संबंध सूर्य, चंद्र, तारों, उल्का, ग्रह और उपग्रहों से होता है। खगोलशास्त्र में ग्रह, नक्षत्रों की ब्रह्मांड में स्थिति पृथ्वी से उनकी दूरी सभी ग्रहों, उपग्रहों के बीच की दूरी उनका पारस्परिक आकर्षण एवं आकाशीय घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।

उदाहरण के लिए सूर्य एक नक्षत्र है और बुध, गुरु, शुक्र, पृथ्वी, शनी, अरुण, वरुण व कुबेर गृह हैं। चंद्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह है। ये वास्तव में विभिन्न नक्षत्र ग्रह और उपग्रह एक दूसरे से कितनी दूरी पर स्थित है। यह किस प्रकार पारस्परिक आकर्षण शक्ति द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं? इनका आधार क्या है? नक्षत्र परिवार क्या है? इनकी गति क्या है? इनका एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है? आदि विषयों का अध्ययन खगोलशास्त्र के द्वारा किया जाता है।

यहां पर प्रश्न यह है कि इस प्रकार के अध्ययन का समाजशास्त्र के लिए क्या महत्व है या धरती के मनुष्य के लिए खगोलीय आकाशीय घटनाओं को जानने की क्या आवश्यकता हो सकती है? उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है। हम अपने समाज और धरती संबंधी घटनाओं के बारे में उस समय तक कुछ नहीं जान सकते जब तक कि हम पृथ्वी की प्रकृति तथा दूसरे ग्रह नक्षत्रों के साथ उसके संबंधों को न समझने। यह ज्ञान हमें खगोलशास्त्र

से ही प्राप्त होता है। इसलिए कॉम्टे ने गणित के बाद खगोलशास्त्र को स्थान दिया है क्योंकि यह गणित पर आश्रित है और गणित की अपेक्षा जटिल है।

1.3.5.3 भौतिकशास्त्र

स्थलीय घटनाओं के अंतर्गत दो विज्ञानों का समावेश है। भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र भौतिक पदार्थों के विषय में जानने के लिए उनका भौतिक या रासायनिक विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। इस कार्य के लिए ही दो अलग-अलग विज्ञान बनाए गए हैं। विज्ञानों के वर्गीकरण में कॉम्ट अपने भौतिकशास्त्र को तीसरे स्थान पर रखा है। अगस्त कॉम्ट के अनुसार भौतिकशास्त्र का अध्ययन विषय रसायनशास्त्र के अध्ययन विषय की अपेक्षा अधिक सामान्य है। रासायनिक घटनाएं भौतिकशास्त्र के नियमों पर आधारित होती हैं। पर भौतिकशास्त्र के नियम रासायनिक घटनाओं द्वारा प्रभावित नहीं होते। भौतिकशास्त्र का स्थान रसायनशास्त्र से पहले आता है। भौतिकशास्त्र पर गणित तथा खगोलशास्त्र दोनों का प्रभाव पड़ता है। विभिन्न प्रकार के ग्रहों एवं उपग्रहों का सभी भौतिक पदार्थों पर एक विशिष्ट और निश्चित प्रभाव पड़ता है। अजय घटनाओं का अध्ययन खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र के द्वारा किया जाता है।

1.3.5.4 रसायन शास्त्र

अगस्त कॉम्ट ने विज्ञानों के वर्गीकरण के चौथे स्थान पर रसायनशास्त्र को रखा है। इसके अंतर्गत रासायनिक प्रक्रिया, रासायनिक संरचना एवं रासायनिक स्वरूपों का अध्ययन किया जाता है। रसायनशास्त्र एवं रासायनिक क्रियाओं पर गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र एवं भौतिकशास्त्र का प्रभाव पड़ता है। पर रसायनशास्त्र का प्रभाव गणितशास्त्र एवं भौतिकशास्त्र पर नहीं पड़ता क्योंकि रासायनिक प्रक्रिया विद्युत भार एवं उष्णता से प्रभावित होती हैं और संचालित होती हैं। इसलिए रसायनशास्त्र का स्थान भौतिकशास्त्र के बाद आता है। विज्ञानों को छोड़कर अन्य विज्ञानों की तुलना में रसायनशास्त्र की जटिलता कम है। यह विज्ञान अपने पूर्व के विज्ञानों से अपने अध्ययन में मदद लेता है और दूसरी ओर अपने बाद में आने वाले विज्ञानों के लिए आधार प्रस्तुत करता है।

कॉम्ट के वर्गीकरण का तीसरा भाग चेतन विज्ञानों का है।

इसके अंतर्गत जिन तत्वों का अध्ययन किया जाता है। वह अधिक जटिल होते हैं। चेतन घटनाओं को दो भागों में बांटा जाता है-

1. व्यक्तिगत
2. सामूहिक

व्यक्तिगत घटनाओं का संबंध प्राणीशास्त्र से होता है।

1.3.5.5 प्राणीशास्त्र

जीवज घटनाओं के भी दो प्रकार होते हैं। व्यक्तिगत और सामूहिक। व्यक्तिगत के अंतर्गत वनस्पति और पशु जगत की समस्त व्यक्तिगत या शारीरिक स्वरूपों की क्रियाएं तथा संरचनाएं आ जाती हैं। जो कि प्राणीशास्त्र का अध्ययन विषय है। इसमें समस्त जीवन से संबंधित नियमों का अध्ययन सम्मिलित किया जाता है। यह विषय रसायनशास्त्र पर निर्भर होता हैं। कॉम्टे के अनुसार जीवशास्त्र संपूर्ण जीवन और उससे संबंधित सामान्य नियमों का विज्ञान है। स्पष्ट है कि प्राणीशास्त्र, रसायनशास्त्र पर निर्भर होता है। क्योंकि पोषण तथा ग्रंथि के रस से निकलने के समस्त विश्वसनीय नियम हमें रसायनशास्त्र से ही प्राप्त होते हैं। प्राणीशास्त्र का संबंध भौतिकशास्त्र से भी है क्योंकि भौतिकशास्त्र प्राणीशास्त्र को जीवित प्राणियों के भार ताप और अन्य संबंधित तथ्यों का ज्ञान करवाता है। यदि पृथ्वी की गति उसकी वर्तमान गति से बढ़ जाए तो उसका परिणाम मनुष्य के शरीर पर भी पड़ता है। यानी कि शरीर संबंधी घटनाओं की गति भी निश्चित रूप से बढ़ जाएगी और मनुष्य के जीवन की अवधि कम हो जाएगी। इस तरह पृथ्वी पर होने वाले किसी भी परिवर्तन का प्रभाव मनुष्य के ऊपर पड़ता है और यह जानकारी हमें खगोलशास्त्र के माध्यम से ही प्राप्त होती है। इसलिए प्राणीशास्त्र हमेशा खगोलशास्त्र का ऋणी भी है।

कॉम्ट के अनुसार जीवशास्त्र संपूर्ण जीवन और उससे संबंधित सामान्य नियमों का विज्ञान है। इस विज्ञान में यथार्थता, निश्चितता एवं विश्वसनीयता पाई जाती है। जोकि गणित नियमों पर निर्भर होती है। इस तरह प्राणीशास्त्र अपने अध्ययन में गणितशास्त्र का भी उपयोग करता है। यदि प्राणीशास्त्र अपने अध्ययन में गणितशास्त्र का सहारा न ले तो वह वास्तव में दोषपूर्ण अनिश्चित और अविश्वसनीय होता। इस तरह प्राणीशास्त्र विज्ञानों के संस्तरण में गणितशास्त्र पर भी आश्रित है। उसकी निर्भरता सभी विज्ञानों पर है। अगस्त कॉम्ट मनोविज्ञान को शरीरशास्त्र अथवा प्राणीशास्त्र का एक अंग मानते हैं।

1.3.5.6 समाजशास्त्र

अगस्त कॉम्ट ने विज्ञानों के वर्गीकरण में समाजशास्त्र को सबसे अंतिम एवं छठवें स्थान पर रखा है। जैविक घटनाओं का दूसरा भाग सामूहिक होता है और इस भाग का अध्ययन समाजशास्त्र के द्वारा ही होता है। इसलिए कॉम्ट ने अपने समाजशास्त्र को सबसे अधिक पराश्रित विज्ञान माना हैं यह अन्य विज्ञानों की तुलना में अधिक विशिष्ट है। इसलिए वह अपने अध्ययन कार्य में गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र एवं प्राणीशास्त्र सभी पर निर्भर है। कॉम्ट ने अपने प्रारंभिक वर्गीकरण में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र को सर्वोच्च स्थान पर रखा था। परंतु मानवता के धर्म से संबंधित अपना उनका कोई नीतिशास्त्र सिद्धांत प्रतिपादित नहीं हो पाया। इसलिए उन्होंने विज्ञानों का वर्गीकरण पूर्वानुसार ही रखा। जिसमें की समाजशास्त्र का स्थान सर्वोच्च है। कॉम्ट का यह भी कहना है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन से संबंधित

सभी पक्षों का अध्ययन एक ही विज्ञान के द्वारा किया जाना उचित होगा। यह समाजशास्त्र में ही संभव है। समाजशास्त्र अपने से पूर्व की सभी विज्ञानों पर आश्रित है। इसलिए इसमें कम निश्चितता पाई जाती है किंतु अन्य विज्ञान विकास के क्रम में अनिश्चितता से निश्चिता की ओर अग्रसर हुए हैं। ठीक उसी प्रकार से समाजशास्त्र भी चिंतन के तीन स्तरों से गुजरता हुआ निश्चितता के लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ है। कॉम्टे के अनुसार "सामाजिक एंद्रीयक विज्ञान समाजशास्त्र है, समाजशास्त्र एक नया विज्ञान है, नव विकसित होने के कारण पूर्ण रूप से निश्चित अवस्था में नहीं पहुंचा है, यह विज्ञान अभी विकसित हो रहा है, पर यह स्पष्ट है कि इसके विकास की दिशा अनिश्चितता की ओर ही है।"

कॉम्ट के विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांत से स्पष्ट है कि कॉम्ट ने अपने विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांतों को विज्ञानों की आश्रितता का उत्तरोत्तर वृद्धि क्रम तथा घटती हुई समानता एवं बढ़ती हुई। जटिलता के नियमों पर आधारित किया है। विज्ञान जितना अधिक नवीन होगा उतना ही वह जटिल होगा और अन्य विज्ञानों पर आश्रित होगा। समाजशास्त्र तो एक नवीनतम एवं विशिष्ट विज्ञान है। इसलिए यह अपने पूर्ववर्ती विज्ञानों पर आश्रित है।

कॉम्ट के द्वारा प्रस्तुत विज्ञानों के वर्गीकरण को हम संक्षेप में इस प्रकार देखते हैं। इनके वर्गीकरण को विज्ञान के ज्ञान की सीढ़ी भी कहा गया है-

1. **समाजशास्त्र -** गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र एवं प्राणीशास्त्र पर आश्रित और इन पांचों से जटिल।
2. **प्राणीशास्त्र -** गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र एवं रसायनशास्त्र पर आश्रित और इन चारों से जटिल।
3. **रसायनशास्त्र -** गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र पर आश्रित और इन तीनो से जटिल।
4. **भौतिकशास्त्र -** गणित एवं खगोलशास्त्र पर आश्रित और इन दोनों से जटिल।
5. **खगोलशास्त्र -** गणितशास्त्र पर आश्रित एवं प्रथम से जटिल।
6. **गणितशास्त्र -** सामान्य, सरल, स्वतंत्र, संपूर्ण एवं सर्वाधिक प्राचीन विज्ञान

1.3.6 विज्ञानों के संस्तरण की व्याख्या

संक्षेप में कॉम्ट के विज्ञानों के संस्तरण की व्याख्या निम्नानुसार है

1. समाज में प्रथम और प्राचीन विज्ञान गणित है। यह एक स्वतंत्र विज्ञान है और किसी अन्य विज्ञान पर आश्रित नहीं है। गणित के बाद एवं गणित के आधार पर ही अन्य विज्ञानों का जन्म हुआ है।

2. समाज में अन्य विज्ञानों की शुरुआत गणित के बाद ही हुई है। जैसे की खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र और समाजशास्त्र गणित के बाद आने वाले सभी विज्ञान इसी पर आश्रित होते हैं। विज्ञान अपने नियमों की परीक्षा के लिए गणित की सहायता लेते हैं।
3. विज्ञानों के संस्तरण में प्रथम स्थान पर गणित और छठवें स्थान पर समाजशास्त्र है। क्योंकि यह नवीनतम विज्ञान है और यह अन्य सभी विज्ञानों पर आश्रित है। अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को विज्ञानों की श्रेणी में इसलिए स्थान दिया क्योंकि इसकी विधि प्रत्यक्षवादी है। वैज्ञानिक किसी भी विज्ञान को प्रत्यक्षवादी कहते हैं तो इसका तात्पर्य होता है कि यह विज्ञान निश्चित है। औपचारिक है और इसकी व्याख्या स्पष्ट है। इसमें निहित जो ज्ञान है वह निरपेक्ष है और इसमें विवाद की कोई गुंजाइश नहीं है। इन्हीं तीनों मान्यताओं के आधार पर विज्ञानों के संस्तरण को प्रस्तुत किया है।

1.3.7 तीन स्तरों के संबंध में कॉम्ट की मान्यताएं

अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को एक प्रत्यक्षवादी विज्ञान कहा और इसे स्पष्ट करने के लिए, इसे स्थापित करने के लिए और इसे सबसे महत्वपूर्ण विज्ञान बनाने के लिए कॉम्टे ने विज्ञानों के एक श्रेणीक्रम का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और इस श्रेणीक्रम में समाजशास्त्र को सबसे ऊपर रखा। अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र शब्द का उपयोग समाज विज्ञानों के कुल योग के रूप में करते हैं। अगस्त कॉम्ट ने विज्ञानों का श्रेणीक्रम बनाने के लिए वही आधार अपनाया जो वे समाजों के आदिम काल से अब तक के विकास को समझने के लिए अपनाते हैं। विज्ञानों का श्रेणी क्रम बनाने में कॉम्ट ने कुछ विशेष मान्यताओं को स्वीकार किया है-

1. कॉम्ट का मानना था कि विज्ञानों का एक सामान्य वर्गीकरण किया जाए उन्होंने विज्ञानों को मूर्त एवं अमूर्त दो भागों में बांट दिया। अमूर्त विज्ञान, गणित घटनाओं के सामान्य नियमों को जानने का प्रयास करता है। जबकि मूर्त विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान इन नियमों को वास्तविक क्षेत्रों में लागू करने का प्रयास करते हैं। विज्ञानों के श्रेणी क्रम में अमूर्तता से मूर्तता की ओर संक्रमण होता है। इस वर्गीकरण की श्रेणी के क्रम में सबसे नीचे गणित है जो सबसे अमूर्त है और सबसे ऊपर समाजशास्त्र है जो की मूर्त है।
2. कॉम्ट के अनुसार मानव जीवन के 5 पक्ष हैं और उन्होंने इन पांचों पक्षों की एक सूची बनाई। जिसमें उन्होंने प्राकृतिक जगत के पांचों पक्षों को रखा। इनमें खगोलीय, भौतिक, रासायनिक, जैविक एवं सामाजिक पक्ष को जोड़ा है। कॉम्ट का कहना है कि सच्चाई का पता करने के लिए यह पांचो पक्ष विश्व के किसी भी क्षेत्र में एक समान होंगे, चाहे वह क्षेत्र इंग्लैंड, अमेरिका या भारत हो। इन पक्षों में सरलता से जटिलता का आरोही क्रम भी स्थापित किया है। इन पक्षों में खगोल विज्ञान सबसे सरल और समाज विज्ञान सबसे जटिल है। कॉम्ट ने अपने इन्हीं पक्षों के आधार पर समाज विज्ञान में प्रत्यक्षवादी पद्धति को संपूर्णता से लागू करने की बात कही है।

3. कॉम्ट ने श्रेणी क्रम का तीसरा नियम समाजों के परिवर्तन संबंधी क्रम के रूप में रखा है। मानव समाज विकास के क्रम के बाद एक सीडी चढ़ता है और अपने पूर्व के समाज की उपलब्धियों को बुनियाद बनाता हुआ ऊपर आता है। ऐसा विज्ञानों के विकास के साथ भी है। इसलिए जो विज्ञान सबसे ऊपर होता है वह अपने से ठीक नीचे वाले विज्ञान से अधिक जुड़ा होता है। उस पर अधिक निर्भर भी होता है। यही कारण है कि अलग-अलग विज्ञान अलग-अलग गति से प्रगति करते हैं। विकास के क्रम में यह भी देखा गया है कि जो विषय सामान्य सरल और दूसरों से स्वतंत्र होते हैं। वह तेजी से विकसित होते हैं खगोलशास्त्र में ये सारी विशेषताए हैं। इसलिए इसका विकास तेजी से हुआ। यह विषय प्राकृतिक विज्ञान में सबसे सरल एवं सामान्य है।
4. कॉम्ट के विज्ञानों के श्रेणीक्रम के विकास में चैथा नियम है कि जो विज्ञान जटिल है और अपने विकास के लिए दूसरों पर सबसे अधिक निर्भर है, वह विकास क्रम की श्रेणी में सब ऊपर होते हैं। समाजशास्त्र भी अपने पूर्ववर्ती सभी विज्ञानों से ग्रहण करता है और उन पर निर्भर है। यह सबसे ज्यादा जीव विज्ञान पर निर्भर है। जो श्रेणी क्रम में ठीक इसके नीचे है।
5. विज्ञानों की श्रेणी क्रम के एक आधार के रूप में कॉम्ट इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि ऐसे विज्ञान जो टुकड़ों में अपनी विषय-वस्तु का अध्ययन करते हैं अथवा कर सकते हैं, वह श्रेणीक्रम के आधार के अधिक निकट होते हैं। लेकिन जो विज्ञान अपने विषय को संपूर्णता में देखते हैं। वह श्रेणीक्रम में हमेशा ऊपर की ओर होते हैं। जीव विज्ञान सावयवी संपूर्णता में अपने विषय को देखता है। इसलिए वह समाजशास्त्र के अधिक निकट है। समाजशास्त्र अपनी विषय-वस्तु का अध्ययन हमेशा ही संपूर्ण समाज के संदर्भ में करता है।
6. कॉम्ट का कहना है कि हम विज्ञानों के विकास में जैसे-जैसे ऊपरी पायदान की ओर बढ़ते हैं वैसे-वैसे विषय-वस्तु अधिक मूर्त, अधिक जटिल, मापन के अनुपयुक्त एवं भविष्यवाणी के अनुपयुक्त होती जाती है। कॉम्ट का कहना है कि जो विज्ञान जितना जटिल है उसका मापन भी उतना ही कठिन है। पर समाजशास्त्र में यह असंभव नहीं है। क्योंकि समाजशास्त्र ने सभी विज्ञानों से सहायता ली है। समाजशास्त्र ऐतिहासिक तकनीकी का प्रयोग करता है। जबकि दूसरे विज्ञान ऐसा नहीं करते।

अगस्त कॉम्ट ने विज्ञानों को श्रेणीक्रम में बनाने के लिए जिस सोच का उपयोग किया वह उस समय के प्राकृतिक विज्ञान में प्रचलन में थी। कॉम्ट ने अलग-अलग विज्ञानों में संरचनात्मक संबंध तो खोज लिए थे परंतु वह उत्पत्ति संबंधी संबंध नहीं खोज पाए। कॉम्ट के श्रेणीक्रम का यह सिद्धांत समन्वय के सिद्धांत पर आधारित है। यह सिद्धांत प्रभाव पर आधारित नहीं है।

एल.ए. कोजर ने कहा है कि कॉम्ट का यह सिद्धांत बहुत अंशों में सार्थक तर्कों पर आधारित है। फ्रांस के के. आंद्रे. क्रेशन जो कि विज्ञान के इतिहास के अधिक जानकार थे ने कहा कि अगस्त कॉम्ट ने

विज्ञान रूपी पंछी के परों को अधिक से अधिक तराश दिया है। उनका कहना है कि अगस्त कॉम्ट ने विज्ञानों के बारे में जो कहा है वह विज्ञान उससे कहीं अधिक क्षमता वान है। विज्ञानों को अलग-अलग श्रेणियों में समय के अनुसार बांटना ठीक नहीं है।

1.3.8 आलोचना

कॉम्ट के विज्ञानों के वर्गीकरण से यह पता चलता है कि उन्होंने समाजशास्त्र को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ढंग से प्राकृतिक एवं भौतिक विज्ञान की श्रेणी में रखने का प्रयास किया है। वह सभी के बीच संबंधों को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया है। फिर भी उसमें कुछ कमियां रह गई है और उसकी आलोचना की गई हैं। कॉम्ट के विज्ञान के वर्गीकरण के सिद्धांत की आलोचना निम्नलिखित इस प्रकार है –

1. अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को एक अमूर्त विज्ञान कहा है। अमूर्त घटनाओं की अवधारणा भौतिक एवं प्राकृतिक घटनाओं के संबंध में तो ठीक है पर सामाजिक जीवन के संबंध में यह बात उचित प्रतीत नहीं होती।
2. कॉम्ट ने अपने इस वर्गीकरण में कहा है कि नया विज्ञान अपने अध्ययन में पूर्ववर्ती विज्ञानों से मदद लेता है। लेकिन बाद में आने वाले विज्ञानों के लिए आधार प्रस्तुत करता है। यह विचार पक्षपातपूर्ण है।
3. कॉम्ट का यह वर्गीकरण समाज व अन्य सामाजिक विज्ञानों के बीच एकतरफा संबंधों को दर्शाता है। समाजशास्त्र तो अन्य सामाजिक विज्ञानों को अध्ययन में मदद करता है और मदद भी लेता है।

कॉम्ट द्वारा विज्ञानों के वर्गीकरण का प्रमुख उद्देश्य समाजशास्त्रीय अध्ययन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करके समाजशास्त्र को सुदृढ़ आधार प्रदान करना था। यह एक नवीन विशिष्ट एवं जटिल विज्ञान है और विज्ञानों के संस्तरण में सर्वोच्च शिखर पर है।

सामाजिक स्थिति एवं सामाजिक गति विज्ञान का सिद्धांत

1.3.9 प्रस्तावना

अगस्त कॉम्ट समाजशास्त्र के जनक थे। एक प्रत्यक्षवाद विचारक के रूप में कॉम्ट ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक आधार को महत्व देते थे। अगस्त कॉम्ट एक ऐसे विज्ञान का निर्माण करना चाहते थे जो अवलोकन, वर्गीकरण, प्रयोग आदि के आधार पर सामूहिक जीवन का अध्ययन कर सके। कॉम्ट का विचार था कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन हेतु काल्पनिक और भावात्मक पद्धतियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जिस तरह व्यक्तिगत जीवन के अध्ययन के लिए एक पृथक विज्ञान है उसी प्रकार सामूहिक जीवन के

प्रत्यक्षवादी अध्ययन के लिए भी एक पृथक विज्ञान होना चाहिए। जो वैज्ञानिक ढंग से सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक जीवन का अध्ययन कर सके।

कॉम्ट किसी भी घटना की व्याख्या की अपेक्षा संश्लेषण के अधिक पक्षधर थे। इसलिए उन्होंने समाजशास्त्र की विषय-वस्तु को समग्र मानवीय प्रजाति बताया। कॉम्ट को यह आशा थी कि समाजशास्त्र मानवीय एवं सामाजिक संगठन को प्राप्त करने, आधुनिक समाज के तनाव को दूर करने तथा समाज के पुनर्निर्माण के लिए वैज्ञानिक आधार प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होगा। इसलिए कॉम्ट ने समाजशास्त्र का निर्माण एक संश्लेषण विज्ञान के रूप में किया। जो नियमों एवं उद्विकास के मौलिक नियमों से प्रारंभ होता है तथा अंतिम वास्तविकता तक पहुंचने में मदद करता है।

1.3.10 कॉम्ट के समाजशास्त्र का अर्थ

कॉम्ट ने समाजशास्त्र को जन्म दिया। प्रारंभ में अगस्त कॉम्ट ने इस नवीन विज्ञान को सामाजिक भौतिकी नाम दिया था पर 1838 में उन्होंने अपनी पुस्तक 'Positive Philosophy' के चतुर्थ खंड में इस नवीन विज्ञान का नाम समाजशास्त्र रखा। कॉम्ट को समाजशास्त्र विषय का जनक केवल इसीलिए नहीं माना जाता कि उन्होंने एक नवीन विज्ञान को जन्म दिया और इसे एक विशेष नाम दिया। अपितु इसलिए भी की आपने इस विज्ञान का विज्ञानों के संस्करण में तार्किक व उचित स्थान दिलवाने के तथा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग की संभावनाओं को जोरदार शब्दों में व्यक्त करने में भी सफलता प्राप्त की थी। **हॉबहाउस** का कहना है कि "कॉम्ट का अंतिम उद्देश्य सामाजिक विज्ञान के मौलिक सिद्धांतों का निर्माण करना था।" कॉम्ट, सेंट साइमन से बहुत अधिक प्रभावित थे। साइमन चाहते थे कि कोई ऐसा विज्ञान बने जिसमें सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जा सके। कॉम्ट ने साइमन से प्रभावित होकर ही समाजशास्त्र की आधारशिला रखी थी।

कॉम्ट का यह नवीन विज्ञान अवलोकन, वर्गीकरण, प्रयोग आदि वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करके सामूहिक जीवन को निर्देशित और निश्चित करने वाले सामान्य नियमों को ज्ञात करने वाला विज्ञान है। कॉम्ट समाजशास्त्र को भी एक प्रत्यक्षवादी विज्ञान की श्रेणी में लाना चाहते थे। कॉम्ट चाहते थे कि एक ऐसा विज्ञान हो जो सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक एवं प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण से अध्ययन करें। जिसमें घटनाओं का निरीक्षण, परीक्षण एवं वर्गीकरण हो तथा सामान्य सिद्धांतों की खोज की जा सके। आने वाले विघटनकारी परिस्थितियों पर नियंत्रण के साधन जुटा जा सके। इस प्रकार सामाजिक पुनर्निर्माण और मानवतावादी दृष्टिकोण वाले विज्ञान के रूप में कॉम्ट ने अपने समाजशास्त्र को देखा था।

अगस्त कॉम्ट अपने समाज को भी एक व्यवस्था के रूप में देखा। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों में एक व्यवस्था पाई जाती है। उसी प्रकार समाज भी एक शरीर के समान है, जिसके विभिन्न अंग एवं

इकाइयां एक दूसरे पर आश्रित रहते हुए अपने विशिष्ट कार्यों को करते हुए परस्पर संबंधित रहते हैं। समाज में दिखाई देने वाला यह समायोजन और इसके विभिन्न इकाइयों में पाया जाने वाली एकजुटता ही सामाजिक व्यवस्था है। समाजशास्त्र इसी सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करता है।

कॉम्ट का समाजशास्त्र केवल इसी व्यवस्था के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है। अपितु यह एक उपयोगितावाद विज्ञान है। यह उन सभी नैतिक तथा बौद्धिक नियमों और सिद्धांतों का अध्ययन व प्रतिपादन भी करता है। जिसके द्वारा समाज एवं संपूर्ण मानवीय प्रजाति की प्रगति संभव हो सके।

1.3.11 अगस्त कॉम्ट के समाजशास्त्र की परिभाषा

कॉम्ट का समाजशास्त्र वह विज्ञान है जिसमे सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। कॉम्ट समाजशास्त्र के जनक थे। इसलिए उन्होंने इस विज्ञान को अधिक से अधिक प्रायोगिक बनाने का प्रयास किया था। आपने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है –"समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था एवं प्रगति का विज्ञान है।" **(Sociology is the science of Social order and progress)**

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि कॉम्ट ने समाजशास्त्र के अध्ययन के अंतर्गत दो पहलुओं को सम्मिलित किया है-

A. **सामाजिक व्यवस्था (Social Order)**
B. **सामाजिक प्रगति (Social Progress)**

1.3.12 सामाजिक व्यवस्था (Social Order)

समाज संपूर्ण ब्रह्मांड में है। इस ब्रह्मांड की घटनाओं का संचालन प्रकृति के द्वारा होता है। इस संचालन में एक व्यवस्था है। प्रकृति में स्वयं ही एक व्यवस्था पाई जाती है और समाज प्रकृति का एक भाग है। प्रकृति की व्यवस्था के समान ही समाज में भी एक व्यवस्था पाई जाती है। कॉम्ट के अनुसार यह सामाजिक व्यवस्था है। यह कई उप व्यवस्थाओं से मिलकर बनती है। यह व्यवस्थाएं परस्पर एक दूसरे पर निर्भर है और एक दूसरे से संबंधित होती हैं। इसे स्पष्ट करने के लिए कॉम्ट सावयव का सहारा लिया है। जिस प्रकार मानव एक सावयव है और उसके शरीर के विभिन्न अंग हाथ-पैर, नाक-कान, हृदय, फेफड़े आदि परस्पर संबंधित होते हैं और एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। इन सभी अंगों के बीच में एक व्यवस्था पाई जाती है। ठीक उसी प्रकार समाज भी एक सावयव है जिसकी विभिन्न इकाईयां हैं, जैसे परिवार, धार्मिक संस्थाएं, राजनीतिक संस्थाएं, शैक्षणिक संस्थाएं और यह सभी संस्थाएं एक दूसरे पर निर्भर हैं और एक दूसरे से संबंधित हैं। समाज की विभिन्न इकाइयों में निहित सामंजस्य और एकजुटता के कारण ही सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है और इसी सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन समाजशास्त्र में किया जाता है।

1.3.13 सामाजिक प्रगति (Social Progress)

अगस्त कॉम्ट का विचार है कि समाजशास्त्र सामाजिक प्रगति का भी विज्ञान है। समाज कोई स्थाईतत्व नहीं है। इसमें निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के कारण समाज की प्राचीन व्यवस्थाएं बदलती हैं और उसके स्थान पर नई व्यवस्थाएं आती हैं। अगस्त कॉम्ट प्रगति को समाज का मौलिक आधार रूप मानते हैं। कॉम्ट ने मानव के बौद्धिक एवं नैतिक विकास को उसकी प्रगति माना है। प्रगति कुछ नैतिक एवं बौद्धिक सिद्धांतों पर निर्भर होती है। जिसका निर्माण समाजशास्त्रियों के द्वारा किया जाता है। प्रगति व्यवस्था का मूल आधार एवं परम लक्ष्य है। कॉम्ट के अनुसार समाजशास्त्र उन सभी बौद्धिक, भौतिक एवं नैतिक नियमों की खोज व स्थापना करता है, जिसके द्वारा समाज में प्रगति की जा सके। इसलिए कॉम्ट के समाजशास्त्र को सामाजिक प्रगति का विज्ञान भी कहा गया है।

1.3.14 कॉम्ट के समाजशास्त्र की विशेषताएं

अगस्त कॉम्ट ने विज्ञानों का वर्गीकरण किया और इस वर्गीकरण में समाजशास्त्र को सर्वोच्च स्थान दिया कॉम्ट ने समाजशास्त्र को स्थितिशास्त्र एवं गतिशास्त्र दो भागों में विभाजित किया। वह समाजशास्त्र को प्रत्यक्षवादी बनाना चाहता था और उसका विश्वास था कि प्रत्यक्षवादी अध्ययन की सहायता से ही समाज का अध्ययन किया जा सकता है। प्रत्यक्षवादी अध्ययन पद्धति के द्वारा ही उसने समाजशास्त्र की विशेषताओं को अधिक स्पष्ट किया है। कॉम्ट का प्रमुख उद्देश्य समाजशास्त्र को वैज्ञानिक स्तर तक पहुंचाना। इसलिए उन्होंने समाजशास्त्र की निम्न विशेषताएं निर्धारित की हैं-

1. मानव प्रकृति का विज्ञान (Science of Human Nature)

समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, जिसके माध्यम से हमें मानव प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है। कॉम्ट के अनुसार समाजशास्त्र नवीनतम विज्ञान है। विज्ञानों के सोपान परंपरा में सर्वोच्च है। समाज का अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्री को गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र और प्राणीशास्त्र के सामान्य किंतु महत्वपूर्ण सिद्धांतों की जानकारी होनी चाहिए। जिससे कि हम मनुष्य की मूल प्रवृत्ति एवं उसके स्वभाव के बारे में समुचित और यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकें। क्योंकि मनुष्य ही सामाजिक अस्तित्व का आधार है। मानव की प्रकृति स्वयं में इतनी जटिल है कि इसको जानने के लिए हमारे लिए विज्ञानों का अध्ययन और ज्ञान आवश्यक है। इसलिए कॉम्ट ने मनुष्य की प्रकृति की विशेषताएं निर्धारित की है वह इस तरह से हैं-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ व भावना प्रधान भी है। मनुष्य में स्वाभाविक रूप से भिन्नता पाई जाती हैं। भिन्नताएं तीन प्रकार की होती हैं, शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक।

प्रत्येक मनुष्य में स्वार्थ और पदार्थ दोनों भावनाएं पाई जाती है। मनुष्यों में सार्वभौमिकता के गुण भी पाए जाते हैं।

मानव की प्रकृति अत्यंत जटिल है। इसके बारे में ज्ञान प्राप्त करना इतना सरल नहीं है। जितना की लोग समझते हैं। इसलिए कॉम्ट का विचार है कि मानव की प्रकृति को समझने के लिए मानव के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए अन्य विज्ञानों के सहयोग की आवश्यकता होती है। इसलिए हमें अन्य विज्ञानों के बारे में जानकारी होनी चाहिए जिससे कि मानव की वास्तविक प्रकृति को समझा जा सके।

2. अमूर्त विज्ञान (An Abstract Science)

कॉम्ट का समाजशास्त्र एक अमूर्त विज्ञान है। समाजशास्त्र में समाज का अध्ययन करने का मुख्य विषय सैद्धांतिक होना चाहिए इसलिए समाजशास्त्र की रुचि तथ्यों में न होकर नियमों की खोज में होनी चाहिए। अगस्त कॉम्ट का कहना है कि समाजशास्त्र समाज का अमूर्त अर्थात गुणात्मक विज्ञान है। जो समस्त सामाजिक विज्ञानों के मूलभूत गुणों की खोज करता है। यह केवल आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैधानिक घटनाओं का विज्ञान नहीं है बल्कि यह समाज में कार्य करने वाले मूल सिद्धांतों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने वाला विज्ञान है। कॉम्ट का मानना है कि समाज में अराजकता का कारण सामाजिक व्यवस्था एवं प्रगति के नियमों के प्रति लोगों की अज्ञानता है। इसलिए यह आवश्यक है कि समाजशास्त्र वह कार्य करे जिससे की लोगों की अज्ञानता को मिटाया जा सके और नए नियमों को खोजा जा सके।

3. वैषयिक विज्ञान (Objective Science)

समाजशास्त्र एक प्रत्यक्षवादी विज्ञान है। इसके द्वारा सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों का निष्पक्ष वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। वैज्ञानिक अध्ययन किए जाने के कारण समाजशास्त्र में भावनाओं का कोई स्थान नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि अन्य विज्ञानों की भांति मानव बुद्धि का भी विकास होना चाहिए। समाजशास्त्र द्वारा समाज का अध्ययन करने के लिए आवश्यक नहीं है कि वह उन सब वैज्ञानिक पद्धतियों उपकरणों और प्रणालियों का प्रयोग करें जिसका की प्रयोग अन्य विज्ञानों में किया जाता है। इसके स्थान पर कॉम्ट ऐतिहासिक पद्धति के प्रयोग को समाजशास्त्र में अधिक उपयोगी मानते हैं।

4. समन्वयात्मक विज्ञान (Integrative Science)

अगस्त कॉम्ट समाजशास्त्र को समन्वयात्मक विज्ञान मानते हैं। यह समाज का समग्र रूप से अध्ययन करता है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष एक दूसरे से संबंधित एवं एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। इसलिए इनका अध्ययन एक साथ किया जाना चाहिए। समाजशास्त्र एक समन्वयात्मक विज्ञान इस अर्थ में भी है कि

वह अपने से पहले के सभी विज्ञानों के द्वारा प्रतिपादित नियमों एवं उनके सिद्धांतों पर आधारित है। यही कारण है कि कॉम्ट ने विज्ञानों के संस्तरण में समाजशास्त्र को सबसे ऊपर रखा है। सबसे ऊपर रहने की यह स्थिति इस बात का प्रमाण है कि यह विज्ञान अपने से पहले सभी विज्ञानों के प्रमुख नियमों एवं सिद्धांतों को अपने में समेटे हुए हैं। कॉम्ट ने लिखा है कि "इस अंतिम विज्ञान में हम तब तक कोई प्रगति नहीं कर सकते जब तक हमें बाहरी दुनिया और व्यक्तिगत जीवन के संबंध में पर्याप्त अमूर्त ज्ञान एवं इन नियमों का सामाजिक घटनाओं के विशिष्ट नियमों पर पड़ने वाले प्रभाव को परिभाषित करने के लिए, प्राप्त न हो जाएगा।"

5. **भविष्यवाणी करने वाला विज्ञान (Predictive Science)**

कॉम्ट का कहना है कि विज्ञान में भविष्यवाणी करने की क्षमता होती है। जो भविष्यवाणी नहीं कर सकता वह विज्ञान नहीं है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान में भविष्यवाणी करने की क्षमता होती है। उसी प्रकार समाजशास्त्र में भी भविष्यवाणी करने की क्षमता है। समाजशास्त्र में सामाजिक घटनाओं का अध्ययन सूक्ष्म, निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण के आधार पर किया जाता है। जो उसके भविष्य की ओर संकेत करता है। इसलिए यह ऐतिहासिक और वर्तमान घटनाओं के आधार पर भविष्य के बारे में निश्चित भविष्यवाणी करने की क्षमता रखता है। अन्य विज्ञानों की तुलना में समाजशास्त्र में भविष्यवाणी करने की क्षमता कम है। फिर भी यदि अन्य परिस्थितियां सामान्य रहे तो समाजशास्त्रीय नियम भी अन्य विज्ञानों के नियमों के समान सत्य सिद्ध होते हैं और उनके बारे में की गई भविष्यवाणियां भी सत्य सिद्ध होंगी

6. **सामाजिक पुनर्निर्माण का विज्ञान (Science of Social Reconstruction)**

कॉम्ट समाजशास्त्र को एक व्यावहारिक विज्ञान मानते हैं। उनका कहना है कि समाजशास्त्र का मूल उद्देश्य केवल वैज्ञानिक आधार पर सामाजिक घटनाओं के बारे में यथार्था की जानकारी प्राप्त करना नहीं है बल्कि इसके आधार पर सामाजिक पुनर्निर्माण करना भी है। कॉम्ट का कहना है कि भौतिक पदार्थों का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक भले ही मानव कल्याण संबंधी विचारों को त्याग सकते हैं किंतु मानव की सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन करने वाले विज्ञानों को मनुष्य को सुखी बनाने के विचारों को नहीं त्यागना चाहिए।

कॉम्ट के अनुसार वैज्ञानिक को मात्र 'क्या है' बता कर ही चुप नहीं रहना चाहिए वरन् "क्या उचित है" को भी स्पष्ट करना चाहिए। कॉम्ट का मत है कि विज्ञान मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य विज्ञान के लिए। इसलिए समाजशास्त्र का यह कर्तव्य है कि वह पुनर्निर्माण मे योगदान दे। समाजशास्त्री मानवता के सेवक बने यही समाजशास्त्र की चरम सार्थकता है।"

1.3.15 कॉम्ट के समाजशास्त्र का भाग

अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को एक व्यापक शास्त्र के रूप में स्वीकार किया है। कॉम्ट ने समाजशास्त्र को सामाजिक व्यवस्था तथा प्रगति का विज्ञान मानते हुए समाजशास्त्र को दो भागों में बांटा है -

1. सामाजिक स्थिति विज्ञान (Social Statics)
2. सामाजिक गति विज्ञान (Social Dynamics)

कॉम्ट अपने दार्शनिक विचारों के आधार पर बताया है कि सामाजिक घटनाओं के दो स्वरूप स्थिर और गतिशील होते हैं अतः समाजशास्त्र को इन दोनों भागों का अध्ययन करना चाहिए।

1.3.16 सामाजिक स्थिति विज्ञान (Social Static)

सामाजिक स्थिति विज्ञान का संबंध समाज की वर्तमान अवस्था एवं व्यवस्था से है। समाजशास्त्र के इस विभाग के अंतर्गत समाज के वर्तमान नियमों का अध्ययन किया जाता है। यह देखा जाता है कि वर्तमान सामाजिक नियम कैसा प्रभाव डाल रहे हैं। वर्तमान सामाजिक संगठन का अध्ययन एवं मूल्यांकन भी सामाजिक स्थिति विज्ञान द्वारा ही होता है। सामाजिक स्थिति विज्ञान वर्तमान समाज में व्याप्त सामाजिक घटनाओं के अस्तित्व संबंधी रूप का भी अध्ययन करता है।

सामाजिक स्थिति विज्ञान समाजशास्त्र की वह शाखा है, जो समाज का पूर्ण विभाग के रूप में अध्ययन करती है। दूसरे शब्दों में सामाजिक व्यवस्था है। संरचना के अंतर्गत अनेक भाग होते हैं। सामाजिक स्थिति विज्ञान इन समस्त भागों का अलग-अलग ही नहीं बल्कि एक संपूर्ण व्यवस्था के रूप में भी अध्ययन करता है। यह सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों की क्रिया और प्रतिक्रियाओं के नियमों को भी खोजने का प्रयत्न करता है। सामाजिक स्थिति विज्ञान समाज रूपी शरीर के विभिन्न भागों में परस्पर समायोजन उत्पन्न करने वाले सामान्य नियमों की खोज करता है। सामाजिक स्थिति विज्ञान में समाज की उन घटनाओं का अध्ययन किया जाता है जो स्थिर होती हैं।

1.3.16.1 परिभाषाएं (Definition)

एम.डब्ल्यू.वाइन के अनुसार- "सामाजिक स्थिति विज्ञान समाजशास्त्र की वह शाखा है जो संपूर्णता के रूप में कार्य करने वाले समाज के विभिन्न भागों का अध्ययन करती है।"

ई.एस.बोगार्डस के अनुसार- "सामाजिक स्थिति विज्ञान सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों के क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के नियमों का अध्ययन है।"

उपर्युक्त परिभाषा से निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक स्थितिशास्त्र समाजशास्त्र की वह शाखा है, जिसके अंतर्गत सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक ढांचे का अध्ययन किया जाता है। साथ ही इस ढांचे में जो भी क्रिया और प्रतिक्रिया होती है उसका अध्ययन भी इसके अंतर्गत किया जाता है। सामाजिक स्थिति विज्ञान में समाज के विभिन्न भागों में सामंजस्य स्थापित करने वाले तत्वों का भी अध्ययन किया जाता है। इन भागों में पाई जाने वाली शारीरिक एकमतता को ढूंढने का प्रयास किया जाता हैं। इस एकमत्ता को तीन रूपों में स्वीकार किया गया है- भौतिक, बौद्धिक और नैतिक। इससे समाज में स्थिरता उत्पन्न होती है और यही स्थिति सामाजिक व्यवस्था का आधार है। अगस्त कॉम्ट ने स्थिति विज्ञान के अंतर्गत तीन तत्वों को सम्मिलित किया है-

1. **व्यक्ति (Individuals) -** व्यक्ति परिवार में जन्म लेता है और व्यक्तियों के योग से ही परिवार का निर्माण होता है। इस प्रकार समाज में व्यक्ति का स्थान केंद्र में है।
2. **परिवार (Family) -** परिवार समाज की मौलिक इकाई है। व्यक्ति के बाद परिवार का स्थान दूसरा है। परिवार से ही समाज का निर्माण होता है। परिवार के विकास के आधार पर ही समाज का विकास होता है। परिवार की उत्पत्ति और विकास की मौलिक इकाई परिवार ही है। समाजशास्त्र के अंतर्गत परिवार का अध्ययन किया जाता है। अगस्त कॉम्ट ने परिवार के अंतर्गत दो तत्वों को सम्मिलित किया है-

A. **यौन संबंध (Sex Relations)**

B. **माता-पिता के संबंध (Parental Relations)**

3. **समाज (Society)** - सामाजिक स्थिति विज्ञान में व्यक्ति और परिवार के बाद समाज का स्थान आता है। समाज परिवारों का योग है। समाज के अंतर्गत भी निम्न तत्वों का अध्ययन किया जाता। सामाजिक स्थिति विज्ञान में व्यक्ति और परिवार के बाद समाज का स्थान आता है। समाज के अंतर्गत भी निम्न तत्वों का अध्ययन किया जाता है-

A. प्रारंभिक अधीनता

B. सरकार के द्वारा सत्य सिद्धांत का आधार

C. सुविधाएं

D. समाज की सरकार के प्रति प्रवृत्ति

E. सेवाओं का वितरण

उपरोक्त आधार पर हम कह सकते हैं कि एक समाज व्यवस्था के लिए समाज के विभिन्न अंगों में एकमतता होना आवश्यक है। समाज विभिन्न अंगों से बनी एक शारीरिक संरचना के समान है। जिसमें संतुलन रहना आवश्यक है। इस संतुलन को हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब संपूर्ण समाज के साथ उसके विभिन्न

अंगों में परस्पर समायोजन हो। एकमतता सामाजिक व्यवस्था में स्थिरता एवं स्थायित्व उत्पन्न करता है अर्थात सामाजिक स्थिति विज्ञान उन नियमों की खोज करता है जो सामाजिक स्थिरता की दशाओं को उत्पन्न करते हैं।

कॉम्ट का यह विश्वास है कि वह ऐसे युग में रह रहे हैं जहाँ सामाजिक संतुलन अत्याधिक बिगड़ा हुआ है। इस कारण सामाजिक स्थिति विज्ञान का एक कर्तव्य है कि वह उन अवस्थाओं का भी अध्ययन करें जो सामाजिक संतुलन की पुनर्स्थापना के लिए आवश्यक है। इस प्रकार सामाजिक स्थिति विज्ञान किसी एक समय तथा स्थान में पाए जाने वाले एकमतता के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है। सामाजिक सावयव के लिए उचित मौलिक एकमत से भी संबंधित है। इसमे सभी समाजों का भूत और वर्तमान के लौकिक एकमत का अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक स्थिति विज्ञान की सार्थकता यह है कि यह विज्ञान सामाजिक व्यवस्था के मूल सिद्धांतों से हमारा परिचय करवाता है। जिससे कि हम इसके महत्व को समझ सके और अपने सामाजिक जीवन को इस प्रकार से संगठित करें जिससे कि सामाजिक संतुलन बिगड़ न पाए और मानव के भौतिक, नैतिक और बौद्धिक तीनों पक्षों का संतुलित विकास हो।

कॉम्ट मध्य युग के कैथोलिक धर्म द्वारा स्थापित एकमतता से बहुत प्रभावित थे। उनका विश्वास था कि उस धर्म ने संगीत कला विज्ञान और उद्योग को एक महान धार्मिक व्यवस्था में समायोजित कर दिया था। इस प्रकार एक संगठन के लिए नैतिक आधार भी प्रस्तुत किया। इसलिए कॉम्ट का विश्वास था कि धर्म में सामाजिक पुनर्निर्माण के अत्यंत प्रभावशाली एवं बलशाली तत्वों छिपे हुए हैं। जिसका उपयोग करके उससे लाभ उठाया जा सकता है। कॉम्ट का कहना है कि इन्हीं प्रभावशाली तत्वों के कारण ही धर्म बिना किसी रक्तपात के विदेशों में धार्मिक साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहा। कैथोलिक धर्म ने अध्यात्म तथा अलौकिक शक्ति के बीच स्पष्ट भेद किया है और इस प्रकार ईसाई धर्म की सार्वभौमिक नैतिकता को लौकिक क्षेत्र से ऊपर बताया है। इस प्रकार इस धर्म ने ऐसे तत्व को समाज में बलशाली बताया जिसका आदर दास और राजा दोनों करते हैं। इस प्रकार मध्यकालीन कैथोलिक धर्म उच्च स्तर के एक मत का उदाहरण प्रस्तुत करता है। कॉम्ट का मत है कि वह इस प्रकार की व्यवस्थाओं का विश्लेषण करें और उसमें निहित शक्तिशाली स्रोतों का पता लगाए। कॉम्ट का विश्वास है कि एकमतता के सिद्धांत सदा एक जैसे ही होते हैं चाहे सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति धार्मिक हो तात्विक या प्रत्यक्ष।

1.3.17 सामाजिक गति विज्ञान (Social Dynamics)

सामाजिक गति विज्ञान मानव के विकास या प्रगति का अध्ययन है। यह मानवता की आवश्यक तथा निरंतर गति का विज्ञान है। सामाजिक गति विज्ञान के अंतर्गत वे निश्चित नियम आते हैं जिनके अनुसार समाज

का क्रमिक विकास हुआ है और सामाजिक परिवर्तन होता है। कॉम्ट का कहना है कि यह प्रमाणित करना सरल है कि समाज का क्रमिक परिवर्तन सदैव एक ही दिशा में या एक निश्चित क्रम से हुआ है। यह क्रम निरपेक्ष तो नहीं है फिर भी कुछ समानताएं तथा आवश्यक अनुक्रम को तो ढूंढा जा सकता है। सामाजिक गति विज्ञान के अंतर्गत इन सभी का अध्ययन किया जाता है। कॉम्ट सामाजिक परिवर्तन को एक निरंतर प्रक्रिया मानते हैं। सामाजिक गति विज्ञान, मानव किन-किन अवस्थाओं से गुजर कर वर्तमान अवस्था तक पहुंचा है, केवल इसका ही अध्ययन नहीं करता बल्कि वह सामाजिक भविष्य को बताने का प्रयास भी करता है। कॉम्ट का कहना है कि मानव समाज एक निश्चित क्रम के आधार पर ही प्रगति करता है।

कॉम्ट के अनुसार "प्रगति व्यवस्था ही है और व्यवस्था के मूर्त रूप को ही प्रगति समझा जाता है।" सामाजिक प्रगति को आवश्यक मानते हुए कॉम्ट ने कहा है कि मानव तो सामाजिक प्रगति में केवल एक साधन मात्र है। सामाजिक व्यवस्था के नियमों की खोज करना समाजशास्त्र का कार्य है।

कॉम्ट के अनुसार सामाजिक गति विज्ञान ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। सामाजिक गति विज्ञान इतिहास से अपने तथ्यों का संकलन करता है। इसीलिए इसे इतिहास का विज्ञान भी कहा गया है। यह सामाजिक घटनाओं की उत्पत्तिओं के विषय में अध्ययन इतिहास से प्रारंभ करता है न की तात्विक विचारों से। सामाजिक गति विज्ञान केवल भूत या वर्तमान का अध्ययन करके ही नहीं रुक जाता बल्कि समाज में व्यक्ति की वर्तमान अवस्था पहले की अवस्था का परिणाम है। भविष्य वर्तमान से संचालित होता है का भी अध्ययन करता है। इस तरह सामाजिक गति विज्ञान का आशय है, परस्पर संबंधित सामाजिक तथ्यों की क्रमिक अवस्था में परिवर्तन का विश्लेषण करना।

कॉम्ट ने यह दावा किया कि सामाजिक गति विज्ञान यह प्रमाणित करता है कि -

A. मृत सदैव जीवित पर शासन करते हैं
B. मनुष्य उत्तरोत्तर धार्मिक होता जा रहा है

सामाजिक स्थिति विज्ञान और सामाजिक गति विज्ञान कॉम्ट के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कॉम्ट का समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन का विज्ञान है।

1.3.18 सारांश

अंत में हम कह सकते हैं कि विज्ञानों के संस्तरण को प्रस्तुत करने का कॉम्ट का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न विज्ञानों की सापेक्षिक पूर्णता एवं यथार्थता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना था। कॉम्ट कहते हैं कि "यह वर्गीकरण यथार्थता के साथ-साथ विभिन्न विज्ञानों की सापेक्षिक पूर्णता पर भी प्रकाश डालता है। जो ज्ञान की परिशुद्धता की मात्रा में एवं उसकी विभिन्न शाखाओं के संबंध में पाई जाती है। विज्ञानों के

संस्तरण में समाजशास्त्र सबसे ऊपर है जो कि अन्य विज्ञानों की तुलना में सबसे नीचे सबसे अधिक विशिष्ट तथा जटिल विज्ञान है। कॉम्ट ने अंत में सातवें नए विज्ञान को भी विज्ञानों के संस्तरणमें शामिल किया। उन्होंने आचार शास्त्र (Ethic) का नाम दिया।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात विद्यार्थी अगस्त कॉम्ट के विज्ञानों के वर्गीकरण को बहुत अच्छे से समझ जाएंगे। विज्ञानों के वर्गीकरणों का क्या आधार है? वर्गीकरण के क्या नियम है? और किस तरह से विज्ञानों का विकास हुआ है? विद्यार्थियों को कॉम्ट का निर्भरता का वृद्धि क्रम का सिद्धांत एवं घटती हुई सामान्यता और बढ़ती हुई जटिलता के सिद्धांत को भी समझने में आसानी होगी। कॉम्ट ने अपने सिद्धांत के विकास में समाजों के आदिम काल से अब तक के विकास के नियमों को भी समझाने का प्रयास किया है।

हमने कॉम्ट के समाजशास्त्र की उत्पत्ति, कॉम्ट के द्वारा प्रस्तुत समाजशास्त्र की परिभाषा, एवं विशेषताओं पर चर्चा की है। कॉम्ट के द्वारा बताए गए सामाजिक गति विज्ञान एवं स्थिति विज्ञान पर चर्चा की तथा उन पहलुओं पर भी प्रकाश डाला है जिसमें समाजशास्त्र सामाजिक संरचना के अंतर्गत आने वाले भागों का अध्ययन करता है। साथ ही उन तत्वों पर भी प्रकाश डाला गया है जिसके द्वारा मानव विकास और प्रगति का अध्ययन होता है।

कॉम्ट का स्थिति विज्ञान समाज की संरचना से तथा सामाजिक गति विज्ञान उसके विकास से संबंधित है। सामाजिक स्थिति विज्ञान सामाजिक संरचना के अंतर्गत आने वाले भागों की संपूर्णता का अध्ययन करता है। यह सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों की क्रिया और प्रतिक्रिया के नियमों को ढूंढने का प्रयत्न करता है। सामाजिक स्थिति सामाजिक सावयव के लिए उचित मौलिक एकता से भी संबंधित है। सामाजिक स्थिति विज्ञान में सभी समाजों के मूल एवं वर्तमान की एकमतता का अध्ययन किया जाता है। उनका मानना है कि एकमतता के सिद्धांत सदा ही एक जैसे होते हैं। चाहे सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति धार्मिक, तात्विक हो या प्रत्यक्षवादी हो।

1.3.19 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विज्ञानों के वर्गीकरण का विचार कॉम्ट ने किससे ग्रहण किया था?
   (अ) बोगार्डस (ब) बेकन
   (स) सेंट साइमन (द) रेमंड एरन
2. निम्न में से कौन सा विज्ञान प्रथम एवं प्राचीन है?
   (अ) गणित (ब) समाजशास्त्र

(स) रसायनशास्त्र (द) भौतिकी

3. बेकन ने ज्ञान को कितने भागों में बांटा है?

(अ) एक (ब) तीन

(स) दो (द) चार

4. किस विज्ञान में आकाश से संबंधित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है?

(अ) गणित शास्त्र (ब) समाजशास्त्र

(स) खगोल शास्त्र (द) भूगोल

5. ग्रीक विचारकों ने ज्ञान को कितने भागों में बांटा है?

(अ) तीन (ब) दो

(स) चार (द) आठ

6. "समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है।" उक्त कथन किसका है?

(अ) अगस्त कॉम्ट (ब) सेंट साइमन

(स) हॉबहाउस (द) कोजर

7. अगस्त कॉम्ट अपने सामाजिक स्थितिशास्त्र के अंतर्गत कितने तत्वों को सम्मिलित किया है?

(अ) तीन (ब) चार

(स) आठ (द) पाँच

8. "सामाजिक गतिशास्त्र प्रगति के नियमों पर विचार करता है।" उक्त कथन किसका है?

(अ) अगस्त कॉम्ट (ब) बोगार्डस

(स) सेंट साइमन (द) पारसंस

9. अगस्त कॉम्ट ने प्रगति को कितने भागों में बांटा है?

(अ) दो (ब) चार

(स) पाँच (द) तीन

10. अगस्त कॉम्ट समाजशास्त्र को कितने भागों में बांटा है?

(अ) दो (ब) चार

(स) तीन (द) छै

उत्तरः- 1.स 2.अ 3.ब 4.स 5.अ

6 अ 7 अ 8 ब 9 द 10 स

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विज्ञानों का संस्तरण क्या है?
2. कॉम्ट द्वारा प्रदत्त विज्ञानों के संस्तरणका का क्रम बताइए।
3. कॉम्ट के संस्तरण के दो प्रमुख सिद्धांत या आधार बताइए।
4. पराश्रिता वृद्धि क्रम क्या है? स्पष्ट कीजिए।
5. घटती हुई सरलता और बढ़ती हुई जटिलता को समझाइए।
6. कॉम्ट का समाजशास्त्र क्या है? स्पष्ट कीजिए।
7. कॉम्ट के समाजशास्त्र की विशेषताएं बताइए।
8. अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को कितने भागों में बांटा है।
9. सामाजिक स्थिति विज्ञान से आप क्या समझते हैं?
10. सामाजिक गति विज्ञान की अवधारणा को समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट के विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।
2. विज्ञानों के वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं? विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
3. विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. अगस्त कॉम्ट के ज्ञान के वर्गीकरण के सिद्धांत के आधार की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिए।
5. विज्ञानों के संस्तरण पर निबंध लिखिए।
6. सामाजिक व्यवस्था और प्रगति से आप क्या समझते हैं? विवेचना कीजिए।
7. कॉम्ट का समाजशास्त्र क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
8. सामाजिक स्थिति विज्ञान की परिभाषा देते हुए स्थिति विज्ञान की विवेचना कीजिए।
9. कॉम्ट का समाजशास्त्र क्या है? इसमें सामाजिक गति विज्ञान की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
10. कॉम्ट द्वारा वर्णित समाजशास्त्र की शाखाओं की विस्तृत विवेचना कीजिए।

1.3.20 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई-4 सामाजिक पुनर्निर्माण का सिद्धांत (Theory of Reconstruction of Society)

इकाई की रूपरेखा

1.4.0 उद्देश्य

1.4.1 प्रस्तावना

1.4.2 सामाजिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता

1.4.3 पुनर्निर्माण का आधार

1.4.4 सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना

1.4.4.1 बौद्धिक शक्ति

1.4.4.2 भौतिक शक्ति

1.4.4.3 नैतिक शक्ति

1.4.5 सामाजिक पुनर्निर्माण में नैतिकता का महत्व

1.4.6 सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रत्यक्षवादी योजना का संचालन एवं प्रशासन

1.4.6.1 उद्योगपति

1.4.6.2 पुरोहित

1.4.6.3 स्त्री

1.4.7 सारांश

1.4.8 बोध प्रश्न

1.4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे-

- अगस्त कॉम्त के सामाजिक पुनर्निर्माण के सिद्धांत से परिचित होंगे।
- सामाजिक पुनर्निर्माण के अर्थ और परिभाषा समझ सकेंगे।
- सामाजिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- पुनर्निर्माण सिद्धांत की आलोचनात्मक व्यख्या करने में सक्षम होंगे।
- इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी सामाजिक पुनर्निर्माण से संबंधित प्रश्नों को हल करने में सक्षम होंगे।

1.4.1 प्रस्तावना

कॉम्ट एक वैज्ञानिक विचारक होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। कॉम्ट के सामाजिक विचारों को अभिव्यक्त करने का प्रमुख उद्देश्य प्रत्यक्षवाद के आधार पर सामाजिक पुनर्निर्माण को प्रस्तुत करना था। जिस समय कॉम्ट की विचारधारा परिपक्व हो रही थी उस समय फ्रांस की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज अनेक समस्याओं से ग्रस्त तथा समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए कॉम्ट ने एक योजना का प्रारूप बनाया। इस प्रारूप का उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक 'ए प्लान ऑफ द साइंटिफिक ऑपरेशन नेसेसरी फॉर रीऑर्गेनाइजिंग सोसाइटी (A Plan of the Scientific Operation Necessary for Reorganiziting Society)' में किया था। इसका प्रकाशन 1822 में हुआ इस रचना की दो प्रमुख विशेषताएं थी-

1. इसके माध्यम से उन्होंने समाज सुधार एवं सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना प्रस्तुत करने का प्रयास किया।
2. यह रचना सामाजिक विकास का आधार प्रस्तुत करती है।

कॉम्ट के सामाजिक पुनर्निर्माण की शुरुआत इसी योजना से हुई। इस सिद्धांत को समझने के लिए हमें कॉम्ट के समय की सामाजिक अवस्था को देखना होगा। कॉम्ट के समय फ्रांस के समाज में दो बातें दिखाई दे रही थी -

1. सामंतवादी संगठन की जगह औद्योगीकरण एवं पूंजीवाद का विकास।
2. फ्रांस की प्राचीन सामाजिक संगठन का विघटन।

कॉम्ट की सोच थी कि पूंजीवादी संगठन सामंतवादी संगठन की जगह ले रहा है। यह समाज के विकास के लिए तो ठीक है लेकिन पूंजीवाद के विकास से जो बुराइयां समाज में आ रही है। उससे कॉम्ट की चिंता बढ़ रही थी उन्होंने देखा कि समाज तीन श्रेणियों में बटा हुआ है-

1. सामंतवादी (Feudaltardes)
2. मध्य श्रेणी (Bourgeoisie)
3. काम करने वाला सर्वहारा वर्ग (Proletarial)

इनमें से मध्यम श्रेणी का व्यक्ति उद्योगों एवं कारखानों की स्थापना करके व्यापारी वर्ग बन गए। वे पूंजीपति होते जा रहे थे। यह लोग पैसे कमाने के लोभ में श्रमिकों का शोषण कर रहे थे। उस समय 90 से 95 प्रतिशत संख्या सामान्य लोगों की थी। कॉम्ट का विचार था कि मशीनीकरण के कारण श्रमिकों की अवस्था में सुधार होना चाहिए। परंतु इससे उल्टा हो रहा था श्रमिकों की स्थिति निरंतर खराब हो रही थी। उन्हें किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। पूंजीपति यह सोचने लगे थे कि श्रमिकों का जन्म तो मेहनत करने पसीना बहाने एवं दुख झेलने के लिए ही होता है। उस समय का समाज अस्त-व्यस्त था और अनेक सामाजिक समस्याएं जन्म ले रही थी। समाज की इस अवस्था में सुधार कैसे किया जाए यह कॉम्ट की चिंता का विषय

था।

1.4.2 सामाजिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता (Need of Social Reconstruction)

कॉम्ट सामाजिक पुनर्निर्माण क्यों चाहते थे? उन्होंने उस समय की पुनर्निर्माण की आवश्यकता क्यों महसूस की? कुछ निम्न कारणों के आधार पर हम यह स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि पुनर्निर्माण की आवश्यकता क्यों महसूस की गई-

1. सामाजिक व्यवस्था एवं संगठन की दृष्टि से कॉम्ट का काल उत्तम नहीं था। उस काल में सामाजिक स्थिति ढुलमुल थी। सामाजिक नियम एवं मूल्य फीके पड़ गए थे।
2. कॉम्ट के समय में सामाजिक संगठन टूट गया था। अनेक सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो गई थी। संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। इन सब में बदलाव लाने के लिए कॉम्ट ने पुनर्निर्माण की आवश्यकता का अनुभव किया।
3. सामंतवादी व्यवस्था कमजोर पड़ गई थी, उसका स्थान पूंजीवादी व्यवस्था ग्रहण कर रही थी। मौलिक रूप से कॉम्ट पूंजीवाद के विरोधी नहीं थे परंतु उस युग में जिस तरह से पूंजीवाद पनप रहा था, वह कॉम्ट को पसंद नहीं था।
4. उस युग की आर्थिक व्यवस्था ने समाज को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित कर दिया था। सामंतवादी वर्ग, मध्यम वर्ग और श्रमिक वर्ग जिसे सर्वहारा वर्ग भी कहा जा सकता था।
5. पूंजीपति मशीन का उपयोग करके अपने उद्देश्यों और हितों को प्राप्त कर रहे थे। मशीन एवं तकनीकी का उपयोग श्रमिकों के हित में अथवा उनकी दशा को सुधारने के लिए नहीं हो रहा था। समाज के इस व्यवस्था से कॉम्ट काफी चिंतित थे।
6. उस समय जो लोग मध्यम वर्ग के थे, वे व्यापार में उद्योगों के माध्यम से धन कमाकर पूंजीपति बनते जा रहे थे। इन लोगों का उस समय मुख्य उद्देश्य केवल धन कमाना था।
7. पूंजीवादी शोषणकारी व्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए कॉम्ट सामाजिक पुनर्निर्माण को आवश्यक मानते थे।
8. कॉम्ट के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था भी लाभकारी हो सकती है। यदि उसे संचालित एवं नियंत्रित करने के लिए सामाजिक नीति बनाई जाए।
9. पूंजीवादी व्यवस्था पर नियंत्रण के अभाव में श्रमिकों का शोषण जारी रहेगा। इसलिए पूंजी का समुचित सदुपयोग करने की दृष्टि से सामाजिक पुनर्निर्माण आवश्यक है।
10. कॉम्ट चाहते थे कि पूंजीपतियों में सामाजिक और औद्योगिक नैतिकता पनपे।
11. पूंजीपति पूंजी को समाज की धरोहर माने और उसका प्रयोग समाज कल्याण के लिए करें।

12. कॉम्ट का अनुभव था कि समाज में धार्मिक एवं नैतिक आचार व्यवस्था का अभाव है, यदि पूंजीपति श्रमिकों के प्रति स्नेह, प्रेम, न्याय, सहानुभूति एवं सहयोग की भावना से प्रेरित होकर समाज की उन्नति के लिए प्रयत्न करें तो एक आदर्श समाज की संरचना संभव है।
13. कॉम्ट नैतिकता को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करना चाहते थे। वे समाज में नैतिक नियमों का संगठन चाहते थे। उनके अनुसार नैतिक दृष्टि से सभी पूंजीपतियों को स्वयं पूंजी का स्वामी न मानकर सार्वजनिक संपत्ति का नैतिक रक्षक माना जाना चाहिए।
14. कॉम्ट जानते थे कि औद्योगीकरण के परिणाम स्वरुप वर्गों का निर्माण होगा और वर्ग संघर्ष होगा। कॉम्ट वर्ग संघर्ष पर नियंत्रण रखने के लिए सामाजिक पुनर्निर्माण चाहते थे।

1.4.3 सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार (Major Means of Social Reconstruction)

कॉम्ट ने सामाजिक पुनर्निर्माण में नैतिकता को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की है, आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यों को नहीं। उनके अनुसार नियमों का विकास ही सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार है। इसके लिए आवश्यक है की नैतिक शिक्षा, आध्यात्मिक शक्ति की स्थापना पर निर्भर हो। कॉम्ट के समय में समाजवादी विचार चल रहे थे। उस समय के विचारकों का कहना था कि शासन की संपूर्ण व्यवस्था राज्य के हाथों में आ जानी चाहिए। कुछ विचारको का मानना था कि इस प्रकार के कानून बनाए जाएं जिससे श्रमिक वर्ग का इस तरह से पालन पोषण हो जैसे एक पिता अपने पुत्र का करता है।

उनका मत था कि राजनीतिक एवं आर्थिक उपायों से पूंजीपति एवं श्रमिकों के बीच के झगड़ों को नहीं निपटाया जा सकता। उनके अनुसार राजनीतिक प्रतिबंधों के द्वारा पूंजी का कुछ व्यक्तियों के हाथों में होने वाले विकेंद्रीकरण को रोका जा सकता है पर ऐसा करने से भी पूंजीपति पूंजी का विनियोग बंद कर देंगे। इससे औद्योगिक विकास प्रभावित होगा और झगड़ों का अंत भी नहीं होगा। दूसरा उपाय है, ऐसे कानून बनाना जिससे पूंजीपति कुछ सीमा तक पूंजी अपने पास रखें और उनके आगे की कमाई राज्य के पास चली जाए। जैसे अतिरिक्त टैक्स लगाना, श्रमिकों की कमाई का हिस्सा श्रमिकों के बीच बंटवारा आदि पर यहां पर पूंजीपति धोखा देकर अपनी कमाई को छुपाएंगे एवं कर देने से बचने का प्रयास करेंगे। श्रमिकों के बीच आय का बंटवारा न हो। इसलिए आय भी कम दिखाएंगे तो फिर इस समस्या का समाधान क्या है? कॉम्ट कहते हैं कि जब तक पूंजीपतियों में **सामाजिक नैतिकता Social Morelity), औद्योगिक नैतिकता (Industrial Morality),** की भावना पैदा नहीं होती, तब तक इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यदि पूंजीपति और श्रमिक वर्ग न्याय परस्पर सहयोग और नैतिक नियमों के आधार पर चलेंगे तो शोषण व वर्ग संघर्ष समाप्त हो जाएगा। कॉम्ट के अनुसार आधुनिक व्यवस्था का सामाजीकरण राजनीतिक उपायों की तुलना में नैतिक उपायों पर अधिक निर्भर करता है, किंतु वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था में नैतिक नियमों की स्थापना न होने के कारण व्यक्तिगत स्वार्थ एवं आर्थिक उद्देश्य पूरी औद्योगिक व्यवस्था को संचालित कर रहे हैं। इसलिए पूंजीपतियों एवं श्रमिकों के बीच तनाव की स्थिति देखने को मिलती है। इससे मुक्ति पाने के लिए

सामाजिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। कॉम्ट का कहना है कि सामाजिक पुनर्निर्माण करते हुए पूंजीवाद को नष्ट नहीं करना है। हमें पूंजीपतियों को सार्वजनिक संपत्ति का नैतिक रक्षक बना देना है (Moral Guardian of The Public Capital)। इस प्रकार का समाज कैसे बनेगा? इसके लिए कॉम्ट ने एक योजना बनाई, उसी योजना को सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना कहा जाता है।

1.4.4 सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना (Plan of Social Reconstruction)

सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना बनाते हुए कॉम्ट ने मनोविज्ञान को इसका आधार माना है - कॉम्ट के अनुसार मन की तीन अवस्थाएं होती हैं-

1. इच्छा व अनुभूति (Feeling)
2. ज्ञान व बुद्धि (Intelligence)
3. धर्म या क्रिया (Action)

कॉम्ट के अनुसार समाज का संचालन तीन व्यक्तियों के द्वारा ही होता है। स्त्री, पुरोहित एवं नेतां। स्त्री की इच्छा प्रेम की प्रतिनिधि है। पुरोहित ज्ञान का प्रतिनिधि है, समाज नेता (उद्योगपति) कर्म का प्रतिनिधि है। प्रत्येक शहर में शहर की जनता में समाज का संचालन इन्हीं तीनों के द्वारा होता है।

कॉम्ट के अनुसार छोटे से छोटे नगरों में जहां पृथक अस्तित्व संभव है। हम इन वर्गों का दर्शन कर सकते हैं। वहां पुरोहित मिलेंगे जो हमारे अनुमानों को निर्देशित करते हैं। वहां स्त्रियां हैं जो हमारे उच्चतम स्नेह को प्रेरणा प्रदान करती हैं। वहां व्यवहारिक नेता हैं, जो हमारे कार्यों को निर्देशित करते हैं।

कॉम्ट का मत है कि इन तीनों के आधार पर सामाजिक निर्माण की प्रत्यक्षवादी योजना में तीन प्रकार की शक्तियों का समन्वय आवश्यक है -

1.4.4.1 बौद्धिक शक्ति (Intelligence Force)

बौद्धिक शक्ति से तात्पर्य प्रत्यक्षवादी ज्ञान का विस्तार एवं प्रसार है। बौद्धिक शक्ति का जन्म मानवीय चिंतन एवं मनन पर आधारित है। यह विभिन्न अवधारणाओं के रूप में अभिव्यक्त होती है। इसका उत्तरदायित्व पुरोहित वर्ग पर निर्भर है। समाज अपनी प्रगति के लिए निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण के द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान का अर्जन करें। विज्ञान के आधार पर ही नवीन अविष्कारों एवं योजनाओं का निर्माण संभव है। यही बौद्धिक शक्ति का प्रतीक है।

1.4.4.2 भौतिक शक्ति (Material Force)

भौतिक शक्ति मानवीय क्रियाकलापों पर आश्रित है तथा यह व्यक्तियों के परिश्रम के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होती है। इसका उदय संपत्ति और संस्था के रूप में होता है। किसी भी समाज में संपत्ति अर्जन एवं सामाजिक संगठन के लिए यह आवश्यक है। समाज के सदस्य संगठित रूप से संपत्ति का अर्जन करें। यह भौतिक शक्ति है।

1.4.4.3 नैतिक शक्ति (Moral Force)

नैतिक शक्ति मानवीय स्नेह पर आधारित है। नैतिक शक्ति की अभिव्यक्ति आज्ञा देने एवं आज्ञा पालन के रूप में प्रकट होती है। इसे हृदय से प्रेरणा मिलती है। समाज में वैज्ञानिक खोज से उपलब्ध परिणामों को समाज पर लागू करने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति एवं समाज में एकता हो, नए ज्ञान को ग्रहण करने की क्षमता हो। इसके लिए आज्ञा देना और आज्ञा मानना आवश्यक है। यह कार्य सत्ता की शक्ति या दबाव पर आधारित न होकर नैतिक शक्ति पर आधारित होना चाहिए। आज्ञा देने वाला भी चरित्रवान हो और उसमें परमार्थ की भावना हो एवं आज्ञा का पालन करने वाला व्यक्ति भी बिना भय व दबाव के मन से ऐसा करने के लिए तैयार हो। कॉम्ट के अनुसार सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में इन तीनों शक्तियों का समुचित समन्वय होगा।

1.4.5 सामाजिक पुनर्निर्माण में नैतिकता का महत्व

कॉम्ट के समय में समाज में जो परिवर्तन हो रहा था, उसमें समाजवाद की चर्चा सबसे ज्यादा हो रही थी। लोग अपने-अपने तरह के सुझाव प्रस्तुत कर रहे थे। कुछ लोगों का कहना था कि संपूर्ण आर्थिक व्यवस्था पर राज्य का अधिकार होना चाहिए और पूंजीपतियों का महत्व कम होना चाहिए। जबकि इसके विपरीत कुछ विचारक श्रमिकों की दशा के सुधार के पक्षधर थे। परंतु कॉम्ट इन दोनों में से किसी के भी सुझाव से सहमत नहीं थे, क्योंकि उनका उस समय विचार था कि पूंजीपति और श्रमिकों के बीच में समझौता होना संभव नहीं है। उस समय जो राजनैतिक उपाय सुझाए जा रहे थे। जिसमें कहा गया था कि शक्ति के द्वारा पूंजीपतियों की शक्ति को छीनकर श्रमिकों को दे दिया जाए तो भी कोई समाधान नहीं होगा, क्योंकि कुछ समय बाद श्रमिक वर्ग भी पूंजीपति की श्रेणियों में आ जाएंगे और यह व्यवस्था पुनः भंग हो जाएगी। इससे कोई अंतिम समाधान प्राप्त नहीं होगा। इसके अतिरिक्त आर्थिक उपाय भी उपयोगी नहीं होंगे, इसके लिए आवश्यक है कि पूंजीपतियों की आय में श्रमिकों को भागीदार बनाया जाए अथवा उन पर अतिरिक्त कर लगाए जाए। कॉम्ट के अनुसार इस स्थिति में कोई भी समाधान प्राप्त नहीं हो सकता। इस स्थिति में पूंजीपति लोग अपनी आय को छिपाएंगे और धोखाधड़ी करेंगे। कॉम्ट इस समस्या का स्थाई रूप से समाधान प्रस्तुत करने के लिए नैतिक समाधान के समर्थक थे।

अगस्त कॉम्ट का विचार था कि सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए समाज में एक विशेष प्रकार की औद्योगिक नैतिकता की आवश्यकता है। इसके लिए आवश्यक है कि हम सामान्य सामाजिक नैतिकता को शक्तिशाली बनाएं, यदि उद्योगपतियों में नैतिकता की भावना जागृत हो जाएगी तो वह संपत्ति को धरोहर मानेंगे और इस तरह से धन का अपव्यय रुकेगा और उस धन का उपयोग समाज के कल्याण के लिए किया जा सकेगा। वह अपने आपको सार्वजनिक संपत्ति का रक्षक मानेंगे। कॉम्ट का कहना था कि सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए पूंजीवाद को समाप्त करना आवश्यक नहीं है, आवश्यकता इस बात की है कि हम पूंजीपतियों को नैतिकता के प्रति सचेत करें।

1.4.6 सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रत्यक्षवादी योजना का संचालन एवं प्रशासन Direction and Administration of Positivistic Plan of Social Reconstruction)

अगस्त कॉम्ट सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में भौतिक, बौद्धिक व नैतिक शक्तियों के संचालन और प्रशासन से संबंधित विचारों को भी व्यक्त किया है, जो इस प्रकार हैं-

1.4.6.1 उद्योगपति (Industrialist)

कॉम्ट के अनुसार, उद्योगपति कर्म का प्रतीक है और यह व्यवसाय व्यक्ति प्रधान है। सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में औद्योगिक शक्ति तथा शासन की शक्ति का संचालन उद्योगपतियों या मालिक वर्ग के आधीन होगा। मालिक वर्ग में साहूकार, बैंकर्स, व्यापारी, शिल्पी और कृषक वर्ग शामिल हैं। मालिक वर्ग में बैंकर्स अधिक अधिकार प्राप्त एवं प्रभावशाली होंगे। इनका स्थान सर्वोच्च होगा पर यह संख्या में कम होंगे। मालिक को यह अधिकार होगा कि वह अपने व्यवसाय से अधिक से अधिक आय प्राप्त करें पर उसे लालच एवं व्यक्तिगत स्वार्थ से दूर रहना होगा। उद्योग में उतना ही प्रबंध कार्य लेना होगा जिससे संचालन अच्छे से कर सके। इस क्षेत्र में पुरोहितों का कर्तव्य होगा कि वे उद्योगपतियों को उनके कर्तव्यों की याद दिलाते रहे और नैतिकता के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा देते रहें।

अगस्त कॉम्ट ने सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना के अंतर्गत शक्ति का बंटवारा कर दिया था। उनके अनुसार धार्मिक एवं नैतिक शक्ति पुरोहितों के हाथ में थी तथा औद्योगिक, राजनीतिक और भौतिक शक्ति वे उद्योगपतियों को सौंपना चाहते थे। इस वर्गीकरण में कॉम्ट ने बैंकर्स को सर्वोच्च स्थान दिया था। राजनीतिक सत्ता उद्योगपतियों के हाथ में रखी थी, किंतु पुरोहितों की सत्ता इनसे ऊपर थी अपने कर्तव्य के प्रति सचेत रहने तथा सत्ता के उचित प्रयोग के लिए भी पुरोहितों के परामर्श का महत्व रखा गया था। इस तरह कॉम्ट का विचार था कि औद्योगिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होंगे और प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अधिक से अधिक सुखमय और व्यवस्थित होगा।

कॉम्ट के सामाजिक पुनर्निर्माण में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है -

1. जिस सम्पत्ति का कोई व्यक्ति सदा से उपयोग करता आ रहा है। वह सदा उस संपत्ति का स्वामी या मालिक माना जाएगा।
2. प्रत्येक श्रमशील नागरिकों को अपने पारिवारिक जीवन को चलाने एवं विकसित करने के लिए आजीविका के साधन एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी।
3. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति को हस्तांतरित करने का अधिकार प्राप्त होगा पर इसकी सूचना उसे अपने संभावित अवकाश प्राप्ति के सात साल पहले देनी होगी।

कॉम्ट का विचार था कि औद्योगिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होगा और प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अधिक से अधिक सुखमय और व्यवस्थित होगा।

1.4.6.2 पुरोहित (Priest)

कॉम्ट के अनुसार पुरोहित ज्ञान के प्रतीक हैं। इसलिए उन्हें बौद्धिक शक्ति का प्रतिनिधि माना जाता है। निर्माण की योजना में बौद्धिक का योगदान बहुत अधिक है। इसका कार्य प्रत्यक्षवादी ज्ञान को प्राप्त करना एवं उसका प्रचार करना है। पुरोहित अपनी योग्यता, विशिष्ट ज्ञान, क्षमता एवं प्रशिक्षण के द्वारा समाज की उन्नति एवं प्रगति के लिए कार्य करेंगे एवं समाज के लोगों का मार्गदर्शन करेंगे।

कॉम्ट का कहना है कि समाज का पुनर्निर्माण इस प्रकार होना चाहिए, जिससे 10,000 परिवारों पर एक पुरोहित हो और उन सब पर मानव धर्म का मुख्य पुरोहित हो। कॉम्ट का विचार था कि पश्चिमी यूरोप में 20,000 मानव धर्म पुरोहित हो धर्म के मुख्य पुरोहित का कार्यालय एवं निवास स्थान पेरिस में हो। उनके अधीन सात मुख्य पुरोहित हो और जब संपूर्ण विश्व में मानव धर्म का प्रचार हो जाए तो इनकी संख्या सात से बढ़ाकर 49 कर दी जाए। कॉम्ट ने पुरोहितों के वर्गीकरण का विचार कैथोलिक संप्रदाय से लिया था। यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि एं पुरोहित प्रचलित धर्म के पुरोहित नहीं हैं, बल्कि यह कॉम्ट के काल्पनिक धर्म के मानव धर्म के पुरोहित है। एं धर्मशास्त्री न होकर समाजशास्त्री थे। इनका कार्य संसार में मानव धर्म की मानवता की स्थापना करना है। इनका मुख्य कार्य समाज के भावी नागरिकों को मानव धर्म की शिक्षा देना है। इनका कार्य है कि वह समाज के प्रत्येक बच्चे को सामाजिक व्यवस्था में स्थान पाने के प्रयत्न में सहायता दें एवं उचित परामर्श दें। कॉम्ट स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि जब तक मनुष्य मुख्य व्यवसाय के द्वारा अपनी योग्यता को प्रमाणित न कर दे तब तक किसी की योग्यता एवं सामर्थ्य को जानना कठिन है, किंतु कॉम्ट के अनुसार पुरोहितों को यह जानने का प्रयास अवश्य करते रहना चाहिए। कॉम्ट के अनुसार संसार में अधिकांश समस्याएं नैतिकता के अभाव के कारण पैदा होती हैं। इसलिए पुरोहितों को नैतिकता का स्तर बनाए रखना है। पुरोहित वर्ग की स्थापना एवं मानव धर्म की स्थापना की आवश्यकता ही इसलिए हुई ताकि समाज में नैतिकता का वातावरण बना रहे। उच्च नैतिकता से समाज की अनेक समस्याएं अपने आप समाप्त हो जाएंगी। कॉम्ट का विचार था कि पुरोहितों का समाज में स्थान तो उच्च होना चाहिए पर उन्हें वेतन कम मिलना चाहिए ताकि इस पद पर योग्य व्यक्ति ही आए और ऊंचा पद एवं अधिक वेतन पाने का किसी को प्रलोभन ही ना हो।

पुरोहित वर्ग की शक्ति एवं सत्ता धार्मिक एवं आध्यात्मिक होनी चाहिए। राजनीतिक एवं सांसर्गिक नहीं। आज धार्मिक एवं राजनीतिक सत्ता एक स्थान केंद्रित हो गई है और झगड़े की जड़ यही है। पहले धर्म राजनीतिक सत्ता थी, फिर राजनीति में धार्मिक सत्ता आ गई। कॉम्ट के अनुसार धर्म और राजनीति का मेल टूटने से सामाजिक समस्याएं सुलझेंगी। इसलिए कॉम्ट ने पुरोहित वर्ग को आध्यात्मिक व सत्ता का प्रतीक और उद्योगपति एवं पूंजीपतियों को राजनीतिक सत्ता का प्रतिनिधि बताया है।

सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में पुरोहितों के निम्न अधिकार एवं कर्तव्य होंगे-

1. समाज की बौद्धिक शक्ति पुरोहितों के हाथ में होगी, अतः एं नागरिकों को बौद्धिक सलाह प्रदान

करेंगे।

2. पुरोहितों को शिक्षित होना आवश्यक है, जिससे समाज में उनका स्थान उच्च बना रहे।
3. पुरोहित समाजशास्त्री होंगे न कि धर्मशास्त्री इसलिए इनका काम संसार में मानवता के धर्म की स्थापना करना होगा।
4. पुरोहितों का कर्तव्य है कि वह समाज में प्रत्यक्षवादी विचारों का प्रचार प्रसार करते रहे।
5. पुरोहित समाज में ऐसी व्यवस्था बनाए रखेंगे जिससे प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता के अनुसार समाज में उचित स्थान प्राप्त हो।
6. कॉम्ट पुरोहितों को आध्यात्मिक सत्ता का प्रतिनिधि मानते हैं। इसलिए कॉम्ट ने उन्हें राजनीतिक सत्ता से दूर रहने की सलाह दी है।
7. कॉम्ट के अनुसार संसार में सभी समस्याओं की जड़ में नैतिकता की कमी है। इसलिए पुरोहितों का कर्तव्य है कि वह समाज में नैतिकता को ऊंचा बनाए रखने के लिए हमेशा कार्य करते रहें।

1.4.6.3 स्त्री (Women)

कॉम्ट ने स्त्री को नैतिक शिक्षा का प्रतीक माना है। कॉम्ट के अनुसार प्रत्यक्षवादी समाज में नैतिक शक्ति का संचालन स्त्रियों के द्वारा ही किया जाएगा। कॉम्ट के अनुसार पारिवारिक क्षेत्र में नैतिक शिक्षा का संचालन भी स्त्रियों के द्वारा ही किया जाएगा, क्योंकि स्त्रियाँ ही मानवता का प्रतीक होती हैं। इसलिए स्त्रियों को विकास के सभी अवसर उपलब्ध होने चाहिए कॉम्ट ने महिलाओं के लिए कुछ नियम निर्धारित किए हैं-

1. स्त्रियों को एक विवाह प्रथा का अनुसरण करना चाहिए। ऐसा करने से वे समाज में अपने नैतिक प्रभाव को अधिक स्थाई रख सकेंगी।
2. स्त्रियों को तलाक देने की छूट नहीं होनी चाहिए और ना ही पुनर्विवाह की अनुमति होनी चाहिए।
3. स्त्रियां अपनी सहानुभूति प्रेम स्नेह तथा नैतिकता के द्वारा लोगों के आचरण को सात्विक तथा पवित्र बनाएंगीं।
4. कॉम्ट स्त्रियों के लिए सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र को वर्जित मानते हैं तथा उनके कार्यों को परिवार तक ही सीमित रखना चाहते थे।
5. कॉम्ट का विचार है कि नैतिकता परिवार से प्रारंभ होना चाहिए और इस का प्रारंभ महिलाओं के द्वारा ही होता है। पारिवारिक नैतिकता से ही सामाजिक नैतिकता का विकास होता है। पारिवारिक नैतिकता के विका में महिलाओं के योगदान को समाज में स्त्रियों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होगा।

कॉम्ट अपनी सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में सामाजिक व्यवस्थाओं को अहिंसक तरीके से बदलने के लिए प्रयासरत रहें एवं बौद्धिक एवं नैतिक शक्तियों के समन्वय से समाज की प्रगति करना चाहते थे। कॉम्ट की सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में प्रत्यक्षवादी समाज का निर्देशक तत्व प्रेम होगा तथा सुव्यवस्था एवं प्रगति इसका ध्येय होगा।

बार्न्स के अनुसार "कॉम्ट की सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना राजनीतिक या आर्थिक आधार की तुलना में नैतिक आधार पर स्थापित थी।"

स्त्रियों के संबंध में **कॉम्ट** ने लिखा है कि "स्नेह, शक्ति में अधिक श्रेष्ठ और बौद्धिक व क्रियाशील शक्तियों को निरंतर उच्चतर भावनाओं के अधीन रखने की क्षमता की अधिकारिणी बनकर स्त्रियां मानवता तथा पुरुषों के बीच एक स्वाभाविक मध्यस्थ कड़ी बन गई हैं।" स्त्रियों में ईश्वर ने नैतिक गुणों को विशेष रुप से भर दिया है और उनको विश्व प्रेम के एक जीवंत दृष्टांत के रुप में उपस्थित किया है। ईश्वर की यह इच्छा है कि हम सब स्त्रियों की नैतिक अभिभावकता या संरक्षकता में ही रहें। उनका यह नैतिक अभिभावक का रूप माँ, पत्नि एवं पुत्री के रूप में प्रकट होता है। इन तीनों रूपों में एकता या संगठन के तीन आवश्यक तत्व छिपे हुए हैं। आज्ञाकारिता, मिलन एवं संरक्षण। माँ के रूप में स्त्री पुरुष से अपनी आज्ञा का पालन करवाती है। पत्नी के रूप में उसे पुरुष का शारीरिक व हृदय गति मिलन होता है और पुत्री के रूप में वह स्नेह एवं संरक्षण प्रदान करती है। तीनों रूप सामाजिक निरंतरता के तीनों कालों की ओर संकेत करते हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य।

कॉम्ट के आलोचक कॉम्ट की पुनर्निर्माण की योजना को सर्वथा काल्पनिक मानते हैं। जिस प्रकार की थॉमस मूर ने यूटोपिया की कल्पना की थी। जो कि क्रियान्वित नहीं हो सकी। उसी तरह यह योजना भी कल्पना मात्र है और वास्तविकता से दूर है। फिर भी कॉम्ट की इस योजना की प्रशंसा की जानी चाहिए क्योंकि इसमें नैतिकता एवं परमार्थ की भावना पर बल दिया गया है।

1.4.7 सारांश

कॉम्ट ने समाजशास्त्र के पुनर्निर्माण की एक योजना प्रस्तुत की है। इसमें आप नैतिकता का विकास करके पूंजीवादी औद्योगिक व्यवस्था के सभी दोषों को पूरी तरह से समाप्त करने के पक्ष में थे। उन्होंने भौतिक, मानसिक व नैतिक तीनों तरह की शक्तियों के विकास पर बल दिया और इस योजना में उन्होंने पुरोहित वर्ग, स्त्री वर्ग तथा औद्योगिक वर्ग की भूमिका की विस्तृत विवेचना भी की। अगस्त कॉम्ट के आलोचक कॉम्ट की पुनर्निर्माण की योजना को सर्वथा काल्पनिक मानते हैं जिस प्रकार की थॉमस मूर ने यूटोपिया की कल्पना की थी जो कि कार्यान्वित नहीं हो सकी उसी तरह सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना भी कल्पना मात्र है और वास्तविकता से दूर है।

यह थोड़ी बहुत रूपरेखा है। कॉम्ट स्वप्न लोकीय समाज का निर्माण करना चाहते थे पर जैसे अन्य विचारको कि स्वप्नलोक कि कल्पनाएं क्रिया में परिणत नहीं हो सकी उसी तरह से कॉम्ट की कल्पना भी कल्पना ही बनकर रह गई। इन आलोचनाओं के बावजूद हम कह सकते हैं कि कॉम्ट की इस योजना की प्रशंसा की जानी चाहिए, क्योंकि इसमें नैतिकता एवं परमार्थ की भावना पर बल दिया गया है। कॉम्ट का सामाजिक विचारधारा को व्यवस्थित रूप प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

4.1.8 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. कॉम्ट के सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना किन सिद्धांतों पर आधारित है?

    (अ) धार्मिक सिद्धांतों पर **(ब)** प्रत्यक्षवादी सिद्धांतों पर

    (स) आर्थिक सिद्धांतों पर **(द)** नैतिक सिद्धांतों पर

2. कॉम्ट ने सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना में मुख्य रूप से कितने वर्गों का उल्लेख किया है?

    (अ) 3 **(ब)** 4

    (स) 6 **(द)** 8

3. कॉम्ट ने सामाजिक पुनर्निर्माण में निम्न में से किस शक्ति को आवश्यक नहीं माना है?

    (अ) धार्मिक शक्ति **(ब)** बौद्धिक शक्ति

    (स) भौतिक शक्ति **(द)** नैतिक शक्ति

4. कॉम्ट ने पुरोहितों के कितने कार्यों का उल्लेख किया है?

    (अ) 6 **(ब)** 7

    (स) 5 **(द)** 4

5. कॉम्ट के अनुसार मुख्य पुरोहितों का निवास स्थान कहां होगा?

    (अ) लंदन **(ब)** वेटिकन नगर

    (स) बेल्जियम **(द)** पेरिस

6. "इस तरह कॉम्ट की सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना राजनीति या आर्थिक आधार की तुलना में नैतिक आधार पर स्थापित थी।" यह कथन किसका है?

    (अ) सेंट साइमन **(ब)** एमाइल दुर्खीम

    (स) बानस **(द)** रेमंड एरन

7. सामाजिक पुनर्निर्माण में कॉम्ट ने कितने प्रकार की नैतिकता का उल्लेख किया ?

    (अ) चार **(ब)** दो

    (स) आठ **(द)** पॉच

8. कॉम्ट के अनुसार राष्ट्रीय पुरोहितों की संख्या कितनी होगी?

    (अ) 5 **(ब)** 7

    (स) 9 **(द)** 11

9. कॉम्ट के अनुसार संपूर्ण पश्चिमी यूरोप में प्रत्यक्ष समाज की स्थापना हेतु कितने पुरोहितों की आवश्यकता होगी?

    (अ) पॉच हजार **(ब)** दस हजार

(स) बीस हजार **(द)** पच्चीस हजार

10. "अगस्त कॉम्ट को मानव और सामाजिक एकता का प्रथम समाजशास्त्री ही समझा जा सकता है।" उक्त कथन किसका है?

(अ) रेमंड एरन **(ब)** सेंट साइमन

(स) एंजिल्स **(द)** मैक्स वेवर

उत्तर- 1 स 2 अ 3 अ 4 ब 5 द

6 स 7 ब 8 ब 9 स 10 अ

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. सामाजिक पुनर्निर्माण क्या है?
2. कॉम्ट ने सामाजिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता क्यों महसूस की?
3. सामाजिक पुनर्निर्माण के आधार क्या है?
4. सामाजिक पुनर्निर्माण में पुरोहितों की भूमिका को समझाइए।
5. सामाजिक पुनर्निर्माण में स्त्रियों का क्या योगदान हो सकता है? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कॉम्ट के द्वारा प्रस्तुत सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना का विवरण दीजिए?
2. सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रत्यक्षवादी शक्तियों की विवेचना कीजिए?
3. सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना के संचालन एवं प्रशासन को समझाइए?
4. सामाजिक पुनर्निर्माण योजना की आवश्यकता एवं आधार को समझाते हुए स्पष्ट कीजिए कि कॉम्ट इस योजना में कहां तक सफल हुए हैं?
5. कॉम्ट की सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

1.4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.

10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.

11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.

12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

खंड 02 हरबर्ट स्पेंसर (HERBERT SPENCER)

इकाई 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ (Biographical sketch and Important works)

इकाई की रूपरेखा

2.1.0 उद्देश्य

2.1.1 प्रस्तावना

2.1.2 प्रारंभिक जीवन

2.1.3 शैक्षणिक जीवन

2.1.4 बौद्धिक पृष्ठभूमि

2.1.5 आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

2.1.6 स्पेंसर के विचारों पर प्रभाव

2.1.7 प्रमुख रचनाएं

2.1.8 सारांश

2.1.9 बोध प्रश्न

2.1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1.2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी---

- हरबर्ट स्पेंसर के बारे में जान पाएंगे।
- हरबर्ट स्पेंसर के जीवन से परिचित होंगे।
- हरबर्ट स्पेंसर की शैक्षणिक जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हरबर्ट स्पेंसर के जीवन काल के पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे।
- उस समय की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि को समझने में सहायता मिलेगी।
- हरबर्ट स्पेंसर पर किन-किन विद्वानों के विचारों का प्रभाव पड़ा इसके बारे में भी जानकारी प्राप्त होगी।

1.2.1 प्रस्तावना

एक प्राचीन कहावत है कि प्रतिभा जन्मजात होती है। किसी भी व्यक्ति पर प्रतिभा लादी नहीं जा सकती यह बात हरबर्ट स्पेंसर पर भी पूरी तरह से लागू होती है। स्पेंसर प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। उन्हें **समाजशास्त्र** के **अंग्रेज पिता** के रूप में भी जाना जाता है। अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र की जो आधारशिला

रखी थी स्पेंसर ने उसके निर्माण में अपना सक्रिय योगदान दिया और समाजशास्त्र के सिद्धांतों को आगे बढ़ाया।

समाजशास्त्र के क्षेत्र में अगस्त कॉम्ट की विचारधाराओं को और स्पष्ट उन्नत तथा विस्तृत रूप में प्रस्तुत करने का कार्य ब्रिटिश समाजशास्त्री व दार्शनिक हरबर्ट स्पेंसर ने अपने हाथों में लिया और उन्होंने उनकी सामाजिक विचारधारा को एक नया मोड़ प्रदान किया। स्पेंसर ने सिर्फ समाजशास्त्र के क्षेत्र में ही कार्य नहीं किया अपितु उन्होंने जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र जैसे गंभीर विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किए थे। स्पेंसर की मौलिक विशेषता इस बात में देखने को मिलती है कि उन्होंने सार्वभौमिक सिद्धांतों की सहायता से सभी विज्ञानों के बीच में एकता स्थापित करने का प्रयास किया था ।

स्पेंसर का नाम उन विद्वानों की सूची में बहुत आगे है जिन्होंने कि प्राणीशास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर समाज का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। समाजशास्त्र के संस्थापक के रूप में अगस्त कॉम्ट के नाम के साथ स्पेंसर का नाम भी लिया जाता है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि स्पेंसर, कॉम्ट को अपना वैज्ञानिक अग्रणी मानते हैं। जैसा कि **हैरी एलमर** ने लिखा है कि "बात कुछ और ही थी, जब स्पेंसर ने अपनी प्रथम समाजशास्त्री रचना **"सामाजिक स्थिति विज्ञान"** का प्रकाशन किया उस समय उन्हें कॉम्ट के विचारों का कोई विस्तृत ज्ञान नहीं था लेकिन इस ग्रंथ को पढ़ने से ऐसा लगता है कि उनके विचार मिलते-जुलते हैं पर वास्तव में दोनों लेखकों के विचार में समानता केवल संयोग ही था। इतना होने के बाद भी स्पेंसर के इस दावे को पूर्णता स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके विचार कॉम्ट के विचारों से पूर्णतया स्वतंत्र है और दोनों के विचारों में कोई बुनियादी मतभेद है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए **हेनरी माइकल** ने लिखा है कि "जिस किसी ने भी कॉम्ट को पढा है वह यह नहीं मान सकता कि स्पेंसर के द्वारा रचित समाजशास्त्र के सिद्धांत वस्तुतः स्पेंसर की मौलिक पुस्तक है। उस समय के अनेक विद्वानों का कहना है कि कॉम्ट ने तो जो रूपरेखा खींची थी, स्पेंसर ने उसमें रंग भरा है।

मेज ने लिखा है कि "स्पेंसर का स्थान इतिहास के महानतम दर्शन निर्माताओं में है। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्पेंसर का व्यक्तित्व मौलिक प्रतिभा से परिपूर्ण था। इसीलिए विश्व के अधिकांश विद्वानों ने स्पेंसर में रुचि ली थी और उनकी रचनाओं और उनकी सिद्धांतों का मनन और चिंतन किया था। स्पेंसर के विचारों में एक क्रमबद्धता के दर्शन होते हैं। ऐसी क्रमबद्धता उस समय इंग्लैंड के किसी भी विचारक की विचारधारा में नहीं देखी गई। आज स्पेंसर की रचनाओं का अनुवाद विश्व की अनेक प्रमुख भाषाओं में हो गया है। समाजशास्त्री उनके सिद्धांतों का अध्ययन और अध्यापन भी करते हैं। **मेज** ने लिखा था कि "स्पेंसर ने सिद्धांतों का अमूर्तिकरण, वर्गीकरण, सामान्यीकरण करते हुए अमूर्त एकीकरण तब तक बढ़ता गया जब तक कि वह एक ऐसे बिंदु पर नहीं पहुंच गया जहां पर वह संपूर्ण विश्व का सारांश एक ही सूत्र में देख सकता था। परिणामस्वरूप उसने एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया जिसमें प्रत्येक वस्तु का अपना स्थान निश्चित था। यह व्यवस्था इतनी निर्भीकता पूर्वक आयोजित और कुशलता पूर्वक व्यवस्थित की कि उसके प्रति हमारा

दृष्टिकोण चाहे कुछ भी क्यों न हो किंतु हम उसकी प्रशंसा किए बगैर नहीं रह सकते स्पेंसर का स्थान इतिहास के महानतम दर्शन निर्माताओं में है।"

1.2.2 प्रारंभिक जीवन

समाजशास्त्र के अंग्रेज पिता **हरबर्ट स्पेंसर** का जन्म **इंग्लैंड** के **डर्बी** नामक स्थान पर **27 अप्रैल 1820** को एक साधारण परिवार में हुआ था। आपके पिता **जॉर्ज स्पेंसर** प्रोटेस्टेंट और परंपरा विरोधी अध्यापक थे। आपके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। स्पेंसर अपने पिता की सबसे बड़े संतान थे। उनके 8 बच्चे थे परंतु कोई बड़ा होने तक बचा नहीं था। स्पेन्सर बचपन से ही कमजोर थे। परिवार की आर्थिक स्थिति उनके कमजोर स्वास्थ्य के कारण पिता ने अपने इकलौते पुत्र होने के बाद भी उन्हें औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए नहीं भेजा और उनके पिता एवं चाचा ने घर पर ही उन्हें शिक्षा प्रदान की। स्पेंसर के चाचा का नाम **टॉमस स्पेंसर्स** था वह पादरी और अध्यापक थे इसलिए 13 वर्ष की उम्र में स्पेंसर अपने चाचा के पास पढ़ने के लिए चले गए थे। स्पेंसर न तो कभी स्कूल गए और न ही कॉलेज हालांकि उनके पिता ने कैंब्रिज में पढ़ाई की थी लेकिन स्पेंसर की शारीरिक कमजोरी और इकलौतेपन ने उन्हें यह मौका नहीं दिया।

1.2.3 शैक्षणिक जीवन

स्पेंसर का स्वास्थ्य बचपन से ही नाजुक था और अंत समय तक रहा। कमजोर स्वास्थ्य के होने के कारण स्पेंसर को उनके माता-पिता ने किसी भी स्कूल में भर्ती नहीं किया था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उनके पिता और चाचा के द्वारा घर पर ही हुई थी। इंग्लैंड के शैक्षणिक क्षेत्र में स्पेंसर को कोई भी स्थान इसलिए नहीं मिला क्योंकि उन्होंने किसी भी विषय में महाविद्यालय या विश्वविद्यालय से औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त की थीं। वे अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान **जॉन स्टूअर्ट मिल** से बहुत अधिक प्रभावित थे। स्पेंसर की जीवशास्त्र में बचपन से ही रुचि थी इसलिए वे कीड़े-मकोड़ों को भी बड़े शौक से पालते थे। इसके अलावा यांत्रिकी में भी विशेष रुचि रखते थे। 17 वर्ष की आयु में सन 1837 में लंदन के बरमिंघम नगर में रेलवे रोड में सिविल इंजीनियर के पद पर नियुक्त हो गए। रेलवे लाइन एव रेलवे के पुलों के निर्माण के कार्य को आपने 11 वर्ष तक किया पर रेल कंपनी का काम बंद होने पर वे अपने घर लौट आए और यहां उन्होंने पढ़ना और सामाजिक लेखन करना शुरू किया। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि स्पेंसर का स्वास्थ्य बचपन से ही खराब था। इस कारण उन्होंने किसी विद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। उन्हें सामाजिक संपर्क में रहने का मौका नहीं मिला था, यही कारण है कि उनके विचारों में व्यक्तिवादी विचारधारा उभर कर सामने आई इसके अतिरिक्त खराब स्वास्थ्य होने के कारण वह एकांत प्रिय भी हो गए थे

और उन्होंने अहस्तक्षेप की नीति को स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया था। पर वह प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे इसलिए इंग्लैंड जैसे राजनीतिक वातावरण में रहकर उससे प्रभावित न होना स्पेंसर के लिए असंभव था। वे इंग्लैंड की सामाजिक और राजनीतिक जीवन में रुचि लेने लगे थे। उन्होंने 1842 में **नॉन नॉनकन्फोमिस्ट (Non Conformist)** पत्रिका में लेख लिखा था जो सामाजिक और राजनीतिक जीवन से संबंधित था। इसके बाद स्पेंसर ने कई लेख लिखें और उनका प्रकाशन इस पत्रिका में हुआ।

1848 में इंजीनियर के पद से त्यागपत्र दे दिया और इंग्लैंड के साप्ताहिक पत्रिका **इकोनॉमिस्ट** में उप संपादक हो गए। यहीं से उनके साहित्यिक जीवन की शुरुआत होती है। इस समय उनका संपर्क अनेक साहित्यकारों एवं राजनीतिज्ञों एवं विभिन्न विचारकों से हुआ स्पेंसर ने इस पत्रिका में लगभग 5 वर्षों तक लेखन कार्य और उसके संपादन का कार्य किया इसी के परिणामस्वरूप समाजशास्त्र और सामाजिक जीवन की ओर उनकी रुचि बढ़ती गई और उन्होंने सिर्फ 30 वर्ष की आयु में अपनी पहली पुस्तक सामाजिक स्थितिशास्त्र (Social Static) की रचना की और उसका प्रकाशन किया जिसमें उन्होंने सामाजिक उद्विकास के विचारों को प्रतिपादित किया।

हरबर्ट स्पेंसर के जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो बहुत कम लोगों के सामने आया कि वह अपने अकड़ और सनकी स्वभाव के कारण दूसरे लोगों से ज्यादा मिलना पसंद नहीं करते थे। वह दूसरों की बातों को सुनना भी नहीं चाहते थे। कहा जाता है कि वह जब दूसरों से मिलते थे तो अपने कानों में रुई लगा दिया करते थे। यहां तक कि जब वे क्लब जाते थे तो उनके कानों में रुई लगी होती थी।

पत्रकारिता की नौकरी ने स्पेन्सर को एक नई दुनिया दिखा दी थी। वे पुस्तकें लिखने लगे थे। इस दौरान उनका संपर्क अनेक विद्वानों से हुआ पर जैसा कि हमने ऊपर कहा है हरबर्ट स्पेंसर का स्वास्थ्य प्रारंभ से ही ठीक नहीं था उनकी आर्थिक स्थिति भी कमजोर थी। लेकिन 1853 में उनके चाचा की मृत्यु के बाद वसीयत के रूप में धन मिला। इसलिए उन्होंने इकोनॉमिस्ट की नौकरी छोड़ दी। उन्होंने अपने लिए अनेक सहायक नियुक्त किए जो उनके लिए पुस्तक लिखने की सामग्री जमा करते थे। स्पेंसर ने इनके सहयोग से बहुत लेखन कार्य किया। स्पेंसर आजीवन अविवाहित रहे आपके बारे में किसी भी प्रकार की प्रेम प्रसंग का उल्लेख नहीं मिलता। कहा जाता है कि उनकी दोस्ती **जॉर्ज इलियट** नामक बौद्धिक महिला से थी उससे विवाह नहीं कर सके। अगस्त कॉम्ट से जब उनकी पहली और आखिरी मुलाकात हुई थी तब कॉम्ट ने स्पेंसर को विवाह कर लेने का सुझाव दिया था। 1860 के दशक में स्पेंसर मानसिक रूप से बीमार पड़ गए। इस मानसिक बीमारी के कारण बिना उद्देश्य के दिन भर घूमते रहते थे। वे कुछ लिख नहीं पाते थे और न ही कुछ पढ़ते थे। लगभग डेढ़ वर्ष बाद ठीक होने पर भी वे अनिद्रा के शिकार हो गए कुछ समय बाद ठीक होने पर उन्होंने पुनः लेखन कार्य किया स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी आपने सामाजिक विज्ञान पर अनेक पुस्तकें एवं लेख लिखें आप अपनी सारी आय पुस्तकों के प्रकाशन पर ही खर्च कर देते थे। 1868 के बाद स्पेंसर एक प्रमुख सामाजिक

विचारक के रूप में उभरे उनकी पुस्तकों की बिक्री होने लगी इससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और उनका शेष जीवन सुखमय बिता। 8 दिसंबर 1930 को 83 वर्ष की आयु में स्पेन्सर की मृत्यु हो गई।

2.1.4 बौद्धिक पृष्ठभूमि

स्पेंसर ने साहित्य दर्शन और इतिहास बहुत अधिक नहीं पढ़ा था। **लेविस कोजर** ने लिखा है कि संभवत: **स्पेंसर** अपनी दिमाग की सेहत के लिए दूसरों को पढाना पसंद नहीं करते थे। स्पेंसर ने अपनी आत्मकथा में इस बात को भी स्वीकार किया कि उन्होंने दर्शन का अध्ययन कभी भी गंभीर रूप से नहीं किया। उन्होंने इमानुएल कांट को कुछ पढ़ा परंतु पसंद नहीं किया। उनके व्यक्तिगत पुस्तकालय में थॉमस हॉब्स, जॉन लॉक, डेविड ह्यूम, कॉम्ट आदि की पुस्तकें नहीं थी। इसके विपरीत स्पेंसर ने एडम स्मिथ की 'वेल्थ ऑफ नेशन' विलियम हेनरी माल्थस की किताब 'एन एस्से ऑन पापुलेशन' डार्विन की 'ओरिजन आफ स्पीशीज' को पढ़ना पसंद किया। जॉन स्टुअर्ट मिल उनके परिचित थे मिल से वे बहुत ज्यादा प्रभावित थे। अगस्त कॉम्ट की पुस्तकों को उन्होंने पढ़ा था। स्पेंसर को कॉम्ट के अधिकतर विचार पसंद नहीं थे।

स्पेंसर अपने समय के थॉमस हक्सले आदि से प्रभावित थे। स्पेंसर हमेशा हक्सले की विद्वता की प्रशंसा करते थे पर उनके विचार हक्सले से मिलते नहीं थे। **स्पेंसर** को **डार्विन** का **बुलडॉग** कहा जाता था। डार्विन से बहुत पहले ही स्पेंसर ने विकास की धारणा को अपनाया था और योग्यतम की जीविता की धारणा को प्रस्तुत किया था। स्पेंसर दूसरे उद्विकासवादियों जैसे कि टाइलर, मार्गन, हेनरीमैन, मेकलेनन आदि के विचारों से परिचित थे। स्पेंसर ने लामार्क से उद्विकास की धारणा को अपनाया और बहुत दिनों तक वह लामार्क के सिद्धांत को मानते रहे। समकालीन विद्वानों में सबसे ज्यादा अपने मित्र जॉर्ज लीविस से प्रभावित थे। दर्शन संबंधी जानकारियां उन्होंने इन्हीं से ही प्राप्त की थी। स्पेंसर के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने जो विचार बौद्धिक विकास के आरंभिक दौर में विकसित किए थे। उसमें उन्होंने कोई भी गुणात्मक परिवर्तन अंत समय तक नहीं किया यही कारण है कि स्पेंसर अपने जीवन के अंतिम दिनों में उपेक्षित से हो गए थे लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका में उनकी लोकप्रियता लगातार बनी रही। **विलियम ग्राहम समनर** उनसे बहुत अधिक प्रभावित थे **बान्स** और **बेकर** ने अपनी पुस्तक में **समनर** को **अमरीकी पोशाक** में **हरबर्ट स्पेंसर** के विश्लेषण से विभूषित किया था।

1.2.5 सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

स्पेंसर इंग्लैंड में मध्य विक्टोरिया काल के प्रतिनिधि माने जाते हैं। **लेविस कोजर** के अनुसार, हम मध्य विक्टोरिया काल का आरंभ 1851 से मान सकते हैं। जब महारानी विक्टोरिया ने क्रिस्टल महल का उद्घाटन किया था, यह संयोग की बात है कि उसी वर्ष स्पेंसर की पहली पुस्तक का प्रकाशन हुआ। यह समय इंग्लैंड के लिए समृद्धि और संतोष का काल था। औद्योगिकरण एवं औद्योगिक विकास में इंग्लैंड ने अन्य देशों

को पीछे छोड़ दिया था। कहा जाता है कि 1848 में एक ऐसा देश था जो कि विश्व के लगभग आधा लोहे का उत्पादन कर रहा था और विश्व व्यापार में इंग्लैंड की भागीदारी फ्रांस और जर्मनी से दुगनी से भी अधिक थी। इस कारण इंग्लैंड के मध्यम वर्ग के लोगों की स्थिति काफी अच्छी थी। इस काल में बड़े किसान कुशल मजदूर शिल्पकार काफी खुशहाल हो गए थे। लेकिन निचला तबका इस समय भी अभाव ग्रस्त था। इस सामाजिक परिस्थिति जिसमें इंग्लैंड के लोगों को निजी व्यापार व्यवसाय अनुशासन और कुशलता पर अधिक विश्वास था और उस समय लोगों का मानना था कि वही सरकार सबसे अच्छी होती है जो सबसे कम शासन करें इन परीस्थितियों का प्रभाव स्पेंसर के विचारों पर पड़ा और उन्होंने इसे अपनी रचनाओं में व्यक्त किया। स्पेंसर के अनुसार राज्य को उद्योगों का विकास करने के लिए सभी चीजें निजी उद्यमियों के हवाले कर देना चाहिए क्योंकि इससे स्वस्थ प्रतियोगिता को बढ़ावा मिलेगा और योग्य व्यक्ति आगे आएंगे और एक समृद्ध समाज का निर्माण होगा। हालांकि ब्रिटिश की यह समृद्धि बहुत दिनों तक नहीं टिक सकी थी और ब्रिटिश शासन का स्वर्ण युग 1877 आते-आते समाप्त हो गया था। अमेरिका विकास की दौड़ में आगे आ गया था, इसके अतिरिक्त जर्मनी भी इंग्लैंड का प्रतिद्वंदी बनता जा रहा था। इंग्लैंड में 1890 की मंदी ने मजदूर संघों की सक्रियता को बढ़ा दिया था। लोकप्रिय जनतंत्र की गतिविधियों में मजदूर अधिक से अधिक सम्मिलित होने लगे थे। उस समय जो परिस्थितियां उत्पन्न हुई स्पेंसर उन सबके विरोधी थे।

विश्व में अपना साम्राज्य फैलाने के लिए दौड़ जारी थी। उसने भारत पर अपना कब्जा जमाया दक्षिण अफ्रीका पर भी करना चाह रहा था पर फ्रांस और अन्य यूरोपीय देश उसे ऐसा करने से रोक रहे थे। उसका दक्षिण अफ्रीका से मिस्र तक अपना झंडा फहराने का सपना पूरा नहीं हुआ था। 1899 में इंग्लैंड बोअर युद्ध में फॅस गया था। इसके बावजूद भी उसने उत्तरी वर्मा एवं उत्तरी बोन एरिया अपने नियंत्रण में ले लिया था। इंग्लैंड ने पूरे विश्व में फैले साम्राज्य के माध्यम से जिन देशों को अपने नियंत्रण में किया था वहां पर उनको कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए बाध्य किया था लेकिन उन देशों में कल्याण कम हुआ था पर ब्रिटिश सरकार के हाथ लंबे होते, स्पेंसर जो की स्वयं एक स्वतंत्र प्रतियोगिताओं के समर्थक थे घटनाओं की गवाह थे। इंग्लैंड में इतनी समृद्धि के बाद भी धार्मिक उदारता नहीं थी इंग्लैंड मे ऐसे लोग थे जो की लीक पर नहीं चलते थे। उन्हें नान कानफरमर्स्टि कहा जाता था। चर्च ऑफ इंग्लैंड ऐसे लोगों के प्रति भेदभाव करते थे। ए धर्मनिरपेक्षता के समर्थक अनुशासित और परिश्रमी थे स्पेंसर भी उनमें से एक थे।

स्पेंसर ने उस समय मध्यम वर्ग के लिए लिखा उद्विकास की धारणा और सिद्धांत से उन्होंने इस बात की व्याख्या की कि क्यों कुछ समाज पिछड़ गए और विश्व में विभिन्न समाजों में असमानता है। उद्विकासवादी धारणा एवं योग्यतम की जीविता की चर्चा से उन्होंने मध्यम वर्ग की कल्पना, विलासिता को भी विराम दिया। जो कभी समृद्धि में दरिद्रता के अंधकार से विचलित हो जाता है। हालांकि स्पेंसर ने उस समय जो विचार व्यक्त किए थे उनके जीवन के अंतिम दिनों में वे स्वयं उसके संबंध में प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ नहीं थे।

1.2.6 स्पेंसर के विचारों पर प्रभाव

स्पेंसर का चिंतन अत्यंत ही जटिल है और उसे समझने के लिए स्पेंसर जैसी बहुमुखी प्रतिभा का होना भी आवश्यक है। यदि हम स्पेंसर के दर्शन को समझना चाहते हैं तो इसके लिए आवश्यकता है की स्पेंसर पर पड़ने वाले प्रभावों को समझ लिया जाए, स्पेंसर ने अपने समय के अनेक विद्वानों और उस समय की परिस्थितियों से प्रेरणा प्राप्त की और उन्हें एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। स्पेंसर को निम्नलिखित विद्वानों ने प्रभावित किया-

1. अगस्त कॉम्ट

स्पेंसर, कॉम्ट से बहुत अधिक प्रभावित थे। कॉम्ट को यदि समाजशास्त्र का पिता कहा जाता है तो स्पेंसर को समाजशास्त्र का अंग्रेज पिता के नाम से जाना जाता है। कॉम्ट ने सबसे पहले समाजशास्त्र के सिद्धांतों की व्याख्या की थी यदि हम स्पेंसर के समाजशास्त्र के सिद्धांत नामक ग्रंथ का अध्ययन करें तो हमें इस ग्रंथ पर कॉम्ट के विचारों की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। स्पेंसर पर कॉम्ट के कई विचारों का प्रभाव पड़ा है जिनमें से कुछ इस तरह है-

1. अगस्त कॉम्ट का विचार था कि समस्त घटनाएं परस्पर अंतर संबंधित हैं। स्पेंसर ने अपनी पुस्तकों में ऐसा विचार व्यक्त किया की सभी घटनाएं संबंधित होती है।
2. अगस्त कॉम्ट ने विज्ञानों का वर्गीकरण किया था और लिखा था कि सभी विज्ञान अंतःसंबंधित है। स्पेंसर के अनुसार भी सभी विज्ञान अंतःसंबंधित है।
3. अगस्त कॉम्ट प्रत्यक्षवादी था और अवलोकन तथा वर्गीकरण को ज्ञान का आधार मानता था।
4. स्पेंसर ने भी इसी तरह के विचार व्यक्त किए और कहा कि विज्ञान को कार्य-कारण पर आधारित होना चाहिए।
5. कॉम्ट के अनुसार प्राकृतिक नियम अटल होते हैं। स्पेंसर ने भी इसी तरह के विचार व्यक्त किए हैं।

2. इंग्लैंड के सुधारवादी आंदोलन

स्पेंसर के विचारों को प्रभावित करने में इंग्लैंड की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण रहा है। जिस समय स्पेंसर के विचारों में परिपक्वता आ रही थी उस समय इंग्लैंड में सुधारवादी आंदोलन उग्र रूप में था। स्पेंसर के चाचा इस आंदोलन के समर्थक थे इसलिए स्पेंसर का इस आंदोलन से प्रभावित होना स्वाभाविक था। इस आंदोलन से प्रभावित होकर ही उन्होंने 'दी प्रॉपर स्फीयर आफ गवर्नमेंट' नामक एक निबंध लिखा था जो उनके नान करफर्स्ट में छपा था। इस सुधारवादी आंदोलन के अनेक विचारकों के विचार एवं उनके चिंतन का प्रभाव भी स्पेंसर के ऊपर पड़ा था। इनमें से कुछ प्रमुख इस तरह हैं-

3. एडम स्मिथ

एडम स्मिथ मूल रूप से इंग्लैंड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे। उनका जन्म 1723 में और मृत्यु 1790 में हुई थी । उन्होंने **'वेल्थ ऑफ नेशन' (Wealth of Nations)** नामक एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की थी और इस ग्रंथ में उन्होंने दो प्रमुख सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था

1. व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सिद्धांत
2. व्यापार में अहस्तक्षेप का सिद्धांत

स्पेंसर **एडम स्मिथ** से बहुत अधिक प्रभावित थे इसलिए उन्होंने अपने सिद्धांतों में व्यक्तिवाद और अहस्तक्षेप के सिद्धांत को भी प्राथमिकता दी है।

4. बेंथम

बेंथम इंग्लैंड का दूसरा विचारक था। जिसने की स्पेंसर को प्रभावित किया। बेंथम का जन्म 1728 मृत्यु 1832 में हुई थी। बेंथम सुखवादी दर्शन में विश्वास करता था। उसने लिखा था कि राज्य का कर्तव्य है कि वह अधिक से अधिक व्यक्तियों का कल्याण करें। बेंथम एक उपयोगितावादी सामाजिक विचारक था उसके विचारों ने भी स्पेंसर को बहुत अधिक प्रभावित भी किया था।

5. माल्थस

माल्थस इंग्लैंड का प्रसिद्ध जनसंख्याशास्त्री था। उसका जन्म 1766 में और मृत्यु 1834 में हुई थी। माल्थस ने जनसंख्या के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धांत में माल्थस ने इस बात की पुष्टि की थी कि जनसंख्या और खाद्य वृद्धि मे समानता न होने से खाद्य सामग्री और जनसंख्या के बीच में सामाजिक असंतुलन पैदा हो जाता है। माल्थस ने अपने सिद्धांत के माध्यम से जनसंख्या के संबंध में एक निराशावादी दृष्टिकोण को अपनाया था। स्पेंसर माल्थस के सिद्धांत से बहुत अधिक प्रभावित थे पर उससे असहमत होते हुए उन्होंने लिखा था कि सभ्यता के विकास के साथ ही मानव की प्रजनन शक्ति कम होती जाएगी। इस प्रकार स्पेंसर के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि का सिद्धांत आशावादी होना चाहिए।

6. डार्विन

सामाजिक विकास के क्षेत्र में डार्विन का नाम हमेशा ऊंचे स्थान पर है। डार्विन का जन्म 1809 में और मृत्यु 1882 में हुआ था। डार्विन ने अपनी पुस्तक 'जाति वर्गों का जन्म' (Origin of Species) में लिखा है कि समाज का निरंतर विकास होता रहता है। सामाजिक उद्विकास की भांति ही प्राणियों का भी विकास हुआ है। स्पेंसर ने भी उद्विकास के सिद्धांत की विवेचना की है। उन्होंने अपने उद्विकास के सिद्धांतों को तीन भागों में विभाजित किया था---

1. प्राकृतिक उद्विकास
2. प्राणीशास्त्री उद्विकास

3. सामाजिक उद्विकास
7. **कार्ल मार्क्स**

मार्क्स का जन्म 1818 में जर्मनी में और मृत्यु 1883 में हुई थी। स्पेंसर के समय मार्क्स के साम्यवादी घोषणा पत्र की चर्चा हर जगह पर हो रही थी और स्पेंसर अपने विचारों को उनसे अछूता नहीं रख पाए थे। इसलिए उनके साम्यवादी घोषणापत्र का प्रभाव स्पेंसर के विचारों में देखने को मिलता है।

1.2.7 हरबर्ट स्पेंसर की प्रमुख रचनाएं (Important works of Herbert Spencer)-

हरबर्ट स्पेंसर ने अपने जीवन काल में सामाजिक विज्ञानों पर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें तथा लेख लिखें उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं -

1. Social statics (1850)
   सामाजिक स्थितिशास्त्र
2. Synthetic philosophy (1859)
   समन्वयात्मक दर्शन
3. Frist principles (1863)
   प्रथम सिद्धांत
4. Principle of biology I (1864)
   जीव विज्ञान के सिद्धांत
5. Principle of biology II (1867)
   वजी विज्ञान के सिद्धांत-2
6. Principle of psychology- I (1870)
   मनोविज्ञान के सिद्धांत-1
7. Principle of psychology II (1872)
   मनोविज्ञान के सिद्धांत-2
8. The study of sociology (1873)
   समाजशास्त्र का अध्ययन
9. Principle of sociology I (1876)
   समाजशास्त्र के सिद्धांत-1
10. Principle of sociology II (1879)
    समाजशास्त्र के सिद्धांत-2
11. Principle of sociology III (1896)
    समाजशास्त्र के सिद्धांत-3

12. Principle of ethics-I (1879)
नीतिशास्त्र के सिद्धांत-1

13. Principle of ethics-II (1893)
नीतिशास्त्र के सिद्धांत-2

14. Descriptive Sociology
विवरणात्मक समाजशास्त्र

15. Article and editing
लेख एवं संपादन

सामाजिक स्थितिशास्त्र Social statics (1850) - इस ग्रंथ का प्रकाशन 1850 में हुआ था। यह स्पेंसर की पहली रचना है। इस ग्रंथ के प्रकाशन के समय स्पेंसर की आयु मात्र 30 वर्ष की थी। इस ग्रंथ में स्पेंसर ने जिन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया है, उन्हे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

- इस पुस्तक के प्रथम भाग में स्पेंसर ने मानव और समाज के संबंधों का विश्लेषण किया है।
- दूसरे भाग में स्पेंसर ने समाज के विकास की उपकल्पना की थी। इसलिए यह रचना उद्विकास की व्याख्या करने वाली प्रथम रचना मानी जाती है। इसके प्रकाशन के 9 वर्ष बाद 1859 में डार्विन ने अपने विकासवादी सिद्धांत की व्याख्या की थी।

समन्वयात्मक दर्शन synthetic philosophy (1859)- सामाजिक स्थितिशास्त्र के प्रकाशन के 9 वर्ष बाद 1859 में स्पेंसर ने अपनी दूसरे ग्रंथ समन्वयात्मक दर्शन का प्रकाशन किया। इस पुस्तक में उन्होने एक योजना बनाई थी। जिसमें उद्विकास की सार्वभौमिकता पर बल दिया गया था। यह पुस्तक 10 भागों में विभक्त है और इसकी रचना 1859 से 1898 के बीच की थी।

प्रथम सिद्धांत first principles (1863)- स्पेंसर के इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है- स्पेंसर ने समन्वयात्मक दर्शन नामक ग्रंथ के जिन 10 भागों का प्रकाशन किया था। उनमें यह पहला है इसलिए स्पेंसर ने इसका नाम प्रथम सिद्धांत रखा। इसका प्रकाशन 1863 में हुआ था। इसमें वैज्ञानिक ज्ञान के तीन तत्वों की विवेचना की गई थी-

1. पदार्थ (Matter)

.2गति (Motion)

3. शक्ति (Force)

जीव विज्ञान के सिद्धांत principle of biology I (1864)- यह ग्रंथ भी समन्वयात्मक दर्शन का ही एक भाग है। यह ग्रंथ भी दो भागों में विभक्त है इसमें पहले भाग का प्रकाशन 1864 में और दूसरे भाग का प्रकाशन

1867 में हुआ था। इस ग्रंथ में स्पेंसर ने प्राणीशास्त्रीय उद्विकास के सिद्धांत की व्याख्या की थी।

मनोविज्ञान के सिद्धांत principle of psychology- I (1870)- इस ग्रंथ की रचना स्पेंसर ने समाज के विकास को मनोवैज्ञानिक आधार पर समझाने के प्रयास के रूप में की थी। यह ग्रंथ भी समन्वयात्मक दर्शन का ही भाग है। यह ग्रंथ दो भागों में विभक्त है। इसके पहले भाग का प्रकाशन 1870 में और दूसरे भाग का प्रकाशन 1872 में हुआ था। **समाजशास्त्र का अध्ययन The study of sociology (1873)-** इसका प्रकाशन 1873 में हुआ था। यह ग्रंथ समन्वयात्मक दर्शन की योजना से अलग करके लिखा गया था। समाजशास्त्र के क्षेत्र में स्पेंसर की इस कृति का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

समाजशास्त्र के सिद्धांत principle of sociology (1876)- यह ग्रंथ भी समन्वयात्मक दर्शन की योजना का एक भाग है। यह ग्रंथ तीन भागों में प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम भाग का प्रकाशन 1876 में दूसरे भाग का प्रकाशन 1879 और तीसरे भाग का प्रकाशन 1896 में हुआ था। इस ग्रंथ के अंतिम भाग से जिसका प्रकाशन 1896 में हुआ था स्पेंसर के समन्वयात्मक दर्शन की योजना समाप्त हो जाती है। इस ग्रंथ मे स्पेंसर ने समाजशास़्त्र के सिद्धातों की व्याख्या की है।

नीतिशास्त्र के सिद्धांत principle of ethics (1879)- यह ग्रंथ भी समन्वयात्मक दर्शन की योजना का एक भाग है। इसका प्रकाशन भी दो भागों में हुआ है। इसके प्रथम भाग का प्रकाशन 1879 मे और दूसरे भाग का प्रकाशन 1893 में हुआ था। इस ग्रंथ में स्पेंसर ने नीतिशास्त्र पर भी विकासवादी सिद्धांत लागू किया है।

विवरणात्मक समाजशास्त्र Descriptive Sociology उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त आप के निर्देशन में Descriptive Sociology के नाम से 8 विस्तृत एटलस का भी प्रकाशन किया गया जिसमें हरबर्ट स्पेंसर के अनेक लेख प्रकाशित हुए।

लेख एवं सम्पादन Article and editing - स्पेंसर का पहला लेख 1842 में नॉनकन्फरमिस्ट में प्रकाशित हुआ था साथ ही उन्होने “इकोनोमिस्ट” साप्ताहिक पत्रिका मे संपादकीय का कार्य भी किया था।

1.2.8 सारांश

समाजशास्त्र के संस्थापक के रूप में कॉम्ट के नाम के साथ स्पेंसर का नाम भी लिया जाता है। पर इसका अर्थ यह नही है कि स्पेंसर कॉम्ट को अपना अग्रणी मानते थे। हैरी एल्मर बॉन्स ने लिखा है कि बात कुछ और ही थी। दोनो लेखकों के विचार में समानता संयोग मात्र ही थी। स्पेंसर का चिंतन अत्यंत ही जटिल है। और उसे समझने के लिए स्पेंसर जैसी बहुमूखी प्रतिभा का होना आवश्यक है। यदि हम स्पेंसर के दर्शन का समझना चाहते है तो इसके लिए आवश्यक है कि स्पेंसर पर पड़ने वाले प्रभावों को समझ लिया जाए। स्पेंसर ने अनेक विद्वानों और परिस्थितियों से प्रेरणा प्राप्त की थी और उसे एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया था। सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में स्पेंसर की देन महत्वपूर्ण है। उन्होने सामाजिक विचारधारा को एक निश्चित दिशा प्रदान करने का प्रयास किया है।

2.1.9 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

1. हरबर्ट स्पेंसर का जन्म कब हुआ था?

(अ) 1820 (ब) 1830

(स) 1835 (द) 1822

2. स्पेंसर की पहली रचना किस सन में प्रकाशित हुई थी?

(अ) 1845 (ब) 1876

(स) 1867 (द) 1850

3. किस समाजशास्त्री को अमेरिकी पोशाक में हरबर्ट स्पेंसर के विश्लेषण से विभूषित किया गया?

(अ) समनर (ब) अगस्त कॉम्ट

(स) कार्ल मार्क्स (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

4. फर्स्ट प्रिंसिपल का प्रकाशन किस सन में हुआ?

(अ) 1872 (ब)1867

(स) 1854 (द) 1863

5. योग्यतम की उत्तरजीविता के मुहावरे की रचना किसने की?

(अ) डार्विन (ब) हरबर्ट स्पेंसर

(स) समनर (द) अगस्त कॉम्ट

6. स्पेंसर ने अपनी किस रचना में उद्विकास की सार्वभौमिकता पर बल दिया?

(अ) सोशल स्टेटिक (ब) फर्स्ट प्रिंसिपल

(स) सिंथेटिक फिलॉसफी (द) द स्टडी ऑफ सोशियोलॉजी

7. “हरबर्ट स्पेंसर का स्थान इतिहास के महानतम दर्शन निर्माताओं में है।” उक्त कथन किसका है?

(अ) मेज (ब) समनर

(स) रेमंड एरन (द) डार्विन

8. समाजशास्त्र का अंग्रेज पिता किसे कहा जाता है?

(अ) अगस्त कॉम्ट (ब) समनर

(स) हरबर्ट स्पेंसर (द) दुर्खीम

9. विवरणात्मक समाजशास्त्र (Discriptive Sociology) में समाजशास्त्र से संबंधित कितने एटलसों (Atlases) का प्रकाशन किया गया है?

(अ) दस (ब) तीन

(स) चार (द) आठ

10. स्पेंसर की मृत्यु किस सन में हुई थी?

(अ) 1903 (ब) 1803

(स) 1890 (द) 1905

उत्तर

1 अ 2 द 3 अ 4 द 5 ब

6 स 7 अ 8 स 9 द 10 अ

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. हरबर्ट स्पेंसर के जीवन परिचय पर प्रकाश डालिए।
2. हरबर्ट स्पेंसर के समय की सामाजिक आर्थिक परिस्थिति क्या थी।
3. हरबर्ट स्पेंसर के विचारों पर किन-किन विद्वानों का प्रभाव पड़ा।
4. स्पेंसर के शैक्षणिक जीवन पर प्रकाश डालिए।
5. स्पेंसर की प्रमुख रचनाएं कौन-कौन सी हैं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. स्पेंसर के जीवन परिचय एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. स्पेंसर की विचारधारा पर किन-किन विद्वानों का प्रभाव पड़ा विवेचना कीजिए।
3. स्पेंसर की किन्हीं दो प्रमुख रचनाओं के बारे में विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. स्पेंसर के समकालीन समय में इंग्लैंड की परिस्थिति कैसी थी और उन परिस्थितियों ने हरबर्ट स्पेंसर की विचारधारा को किस तरह प्रभावित किया समझाइए।
5. हरबर्ट स्पेंसर का समाजशास्त्र को क्या योगदान है समझाइए।

2.1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण .गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ.रविंद्र . (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन .
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ.रविंद्र . (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ.रविंद्र . (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.

इकाई -02 सामाज एक सावयव के रूप में (Sociaty as an Organism)

इकाई की रूपरेखा

2.2.0 उद्देश्य

2.2.1 प्रस्तावना

2.2.2 व्यक्ति और समाज के संबंध

2.2.3 सामाजिक संविदा का सिद्धांत

2.2.4 समाज का सावयवी सिद्धांत

2.2.5 समाज व प्राणी में समानताएं

- **2.2.5.1 जड़ पदार्थों से भिन्नता**
- **2.2.5.2 परिणाम की वृद्धि के साथ रचना में विषमता**
- **2.2.5.3 रचना और कार्य में विषमता**
- **2.2.5.4 कार्यों की विषमता के साथ आपसी समन्वय**
- **2.2.5.5 अवयवों के नष्ट होने से सावयव की मृत्यु नहीं होती**
- **2.2.5.6 दोनों की प्रक्रिया एवं प्रणाली समान है**

2.2.6 समाज व प्राणी में असमानताएं

- **2.2.6.1 मूर्त एवं अमूर्त स्वरूप**
- **2.2.6.2 शरीर के अंग अभिन्न तथा समाज के अंग भिन्न रह सकते हैं**
- **2.2.6.3 केंद्रीय भूत चेतना संबंधी विभिन्नता**
- **2.2.6.4 शरीर के अंग शरीर के लिए हैं पर समाज के अंगों के लिए समाज है**
- **2.2.6.5 शरीर नष्ट हो सकता है समाज बहुत देर से नष्ट होता है**
- **2.2.6.6 शरीर संरचना में शारिरीक व्यापकता नहीं होती**

2.2.7 विकसित समाज के अंग

- **2.2.7.1 समर्थनकारी व्यवस्था**
- **2.2.7.2 वितरण की व्यवस्था**
- **2.2.7.3 नियंत्रणकारी व्यवस्था**

2.2.8 आलोचना

2.2.9 सारांश एवं निष्कर्ष

2.2.10 बोध प्रश्न

2.2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने से विद्यार्थी -

- स्पेंसर द्वारा प्रस्तुत सावयव के सिद्धांत को समझने में सफल होंगे।
- समाज की तुलना किस तरह से प्राणी से की जा सकती है, इसे समझा जा सकेगा।
- व्यक्ति और समाज के बीच के संबंधों को समझने में मदद मिलेगी।
- सामाजिक संविदा का सिद्धांत स्पष्ट होगा।
- समाज का सावयवी सिद्धांत स्पष्ट होगा।
- समाज और प्राणियों में पाई जाने वाली समानता के बारे में जानकारी मिलेगी।
- समाज और प्राणियों में पाई जाने वाली असमानताओं के बारे में समझ सकेंगे।
- विकसित समाज के अंगों को समझ पाएंगे।
- हरबर्ट स्पेंसर के इस सिद्धांत की आलोचनाओं को भी समझ पाएंगे।

2.2.1 प्रस्तावना

हरबर्ट स्पेंसर उन्नीसवीं सदी के प्रमुख विकासवादी विचारक एवं समाजशास्त्रीय थे। हरबर्ट स्पेंसर के काल में सामाजिक चिंतन पर प्राणीशास्त्रीय सिद्धांतों का प्रभाव था। प्रत्येक सामाजिक चिंतन के विवेचन में किसी न किसी प्रकार से प्राणीशास्त्रीय सिद्धांतों की मदद ली जाती थी। हरबर्ट स्पेंसर की विचारधारा भी इस प्रभाव से अलग नहीं थी। स्पेंसर ने भी सामाजिक संरचना की विवेचना के लिए समाज की तुलना एक जीवित प्राणी से की थी। समाज की शरीर से तुलना का विचार वैदिक काल से ही चला आ रहा है। वेदों एवं उपनिषदों में भी समाज को एक अवयव माना गया है- वेदों में 'ब्राह्मणोस्य मुखामसीद बाहू राजन्यः तः' इस प्रकार के विचार व्यक्त किए गए हैं अर्थात कहा गया है कि मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति भुजाओं से क्षत्रियों की उत्पत्ति उदर से वैश्यों की उत्पत्ति और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। जिस प्रकार शरीर का निर्माण विभिन्न अंगों से होता है ठीक उसी प्रकार समाज के निर्माण में भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का योगदान होता है। जैसे कि हमारे देश में व्यक्ति और समाज के सामंजस्य के लिए दो प्रकार के व्यवस्थाओं का प्रतिपादन किया गया है---

1. वर्ण व्यवस्था
2. आश्रम व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था समाज का विभाजन है जबकि आश्रम व्यवस्था में व्यक्ति के जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया है। वर्ण और आश्रम एक दूसरे के पूरक हैं और इन्हें अलग-अलग करके नहीं समझा जा सकता दोनों मिलकर वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादन करते हैं। इस सिद्धांत के माध्यम से अस्तित्व के लिए संघर्ष

और योग्यता की जीत नामक सिद्धांत की अपेक्षा की गई थी और समाज को एक दूसरे का पूरक माना गया है।

हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार जिस तरह से शरीर के विभिन्न अंग या अवयव होते हैं और उनसे मिलकर शरीर बनता है उसी तरह समाज रूपी अवयव के भी कई अंग होते हैं। जिससे समाज बनता है। प्लेटो, अरस्तु आदि के ये विचार मान्य थे। मध्य युग के विचारक भी इस विचार को आधार मानकर समाजशास्त्रीय विचारों का प्रतिपादन करते थे। आगस्त कॉम्ट ने भी इस विचार को स्वीकार किया था। हरबर्ट स्पेंसर ने इस विचार को बहुत अधिक महत्व दिया और इस पर बहुत विस्तार से लिखा इसलिए समाज का सावयवी सिद्धांत स्पेंसर की समाजशास्त्र को दूसरी महत्वपूर्ण देन मानी जाती है।

हरबर्ट स्पेंसर का कहना है कि सारा समाज मिलकर एक शरीर बनता है। जिस प्रकार प्राणी शरीर की सत्ता अंगों से मिलकर बनती है, शरीर के बिना अंगो का कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। उसी प्रकार व्यक्ति की सत्ता समाज के बिना नहीं है। हरबर्ट स्पेंसर एक व्यक्तिवादी विचारक थे इसलिए वह इस बात को स्वीकार कर ही नहीं सकते थे कि व्यक्ति अपना व्यक्तित्व समाज की सत्ता में खो देता है। इसलिए उन्होंने प्राणियों की समाज से तुलना मात्र की है इससे अधिक कुछ नहीं। समाज तथा प्राणीशास्त्र की तुलना को सावयव कहा जा सकता है। वास्तव में सावयवी विचार सामाजिक समष्टि की एकात्मक दृष्टि से जुड़ा है।

2.2.2 व्यक्ति और समाज के संबंध (Relationships between Man & Society)

व्यक्ति और समाज परस्पर रूप से संबंधित होते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्यों से ही समाज का निर्माण होता है मानव समाज के बिना अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि समाज में रहकर ही व्यक्ति सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्राणी के रूप में विकसित होता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि जहां एक तरफ व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज पर निर्भर है वहीं दूसरी तरफ समाज का अस्तित्व भी व्यक्तियों के बिना संभव नहीं है। जब हम मानव जीवन का विश्लेषण करते हैं तो हमें इस विश्लेषण के दो आधार देखने को मिलते हैं।

1. प्राणीशास्त्रीय आधार
2. सामाजिक आधार।

इन्हीं आधारों के समन्वय से मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है। सामाजिक शब्द सामाजिक आधार और प्राणी शब्द प्राणीशास्त्रीय आधार का परिचायक है। व्यक्ति जब जन्म लेता है तो वह केवल प्राणीशास्त्री प्राणी होता है। वंशानुक्रम से उसे कुछ मानसिक और शारीरिक विशेषताएं प्राप्त होती हैं परंतु उसे एक सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित करने में समाज का योगदान सर्वाधिक होता है। अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक विकास का आधार समाज ही है। हमारे सामने ऐसे अनेक उदाहरण है जिसमे हमने पाया कि प्राणीशास्त्री गुण रहने के बाद भी यदि मनुष्य समाज के संपर्क में नहीं रहता है तो वह मनुष्य नहीं बन पाता है। उसका सामाजिक विकास नहीं हो सकता लेकिन यहां पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि समाज भी किसी

सामाजिक प्राणी का विकास तब तक नहीं कर सकता जब तक कि उसे प्राणीशास्त्री रूप में मानव प्राप्त न हो। अर्थात सामाजिक प्राणी का निर्माण कोई चमत्कार नहीं है अपितु व्यक्ति और समाज के परस्पर समन्वय से ही प्राणीशास्त्रीय प्राणी सामाजिक प्राणी बनता है। इसलिए व्यक्ति और समाज दोनों की महत्वपूर्ण हैं, दोनों एक दूसरे पर आधारित हैं, दोनों एक दूसरे के पूरक है।

कई शताब्दियों से अनेक लेखकों ने मनुष्य और समाज के संबंध में अनेक उपागमों एवं दृष्टिकोणों का प्रतिपादन किया। मनुष्य और समाज के बीच में पाए जाने वाले संबंधों को समझने के लिए आवश्यक है, कि हम इन दृष्टिकोण को समझें और उससे परिचित हो जाएं-

2.2.3 सामाजिक संविदा का सिद्धांत (The Contract Theory of Society)

इसे समाज की व्यक्तिवादी विचारधार (Tomistic view of Society) भी कहते हैं **ईशा** से **5 शताब्दी** पूर्व के अनेक दार्शनिकों का मानना है कि मनुष्य ने अपने कुछ लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जानबूझकर समाज के संगठन का निर्माण किया है जैसा कि **टॉमस हॉब्स** का कहना है कि वीं17 शताब्दी के लेखकों के अनुसार समाज वह साधन है, जिसे मनुष्य ने अपनी अनियमित प्रतिक्रियाओं के परिणामों के विरुद्ध अपनी रक्षा के लिए बनाया है। जबकि **एडम स्मिथ** जैसे अर्थशास्त्री आर्थिक दर्शन के आधार पर यह मानते हैं कि समाज पारस्परिक अर्थ व्यवस्था के लिए मनुष्यों के द्वारा निर्मित एक योजना है। इस तरह 18 वीं शताब्दी तक के व्यक्तिवादियो ने यह घोषित किया था कि मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में स्वतंत्र और सामान पैदा हुआ, उसने सामाजिक संबंधों की स्थापना केवल सुरक्षा व्यवस्था और सामाजिक सुविधाओं को पाने के लिए किया है। सामाजिक संविदा के सिद्धांत के अनेक प्रतिपादकों में तीन नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है- **हॉब्स, लॉक** और **रूसो**। **हॉब्स** की धारणा थी कि मनुष्य मूलतः प्राकृतिक अवस्था में रहता था, उस समय न समाज था और न ही राज्य अपने जीवन की रक्षा करना उनके सभी कामों के मूल में मुख्य प्रेरणा थी। **हॉब्स** ने प्रकृति का नकारात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। हॉक्स का कहना है कि प्राकृतिक व्यवस्था में मनुष्य निर्मम, स्वार्थी, एकांकी, दीन-हीन एवं पाशविक थे। प्रत्येक मनुष्य को एक दूसरे से भय था। उस समय जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला सिद्धांत प्रचलन में था, न कोई कानून था न ही लोगों में उचित और अनुचित अथवा न्याय और अन्याय की चेतना थी। उनमें प्रतिस्पर्धा, एक दूसरे का भय और वैभव की आकांक्षा बलवती थी। केवल शक्ति और छल कपट का बोलबाला था। मनुष्य का जीवन एकांकी, दरिद्रता पूर्ण, पशुवत, और अल्प था। उस समय बुद्धि का स्थान गौण और भावना एवं इच्छा को महत्वपूर्ण माना जाता था।

हॉब्स ने जिस अराजकता और प्राकृतिक अवस्था की कल्पना की थी, उसकी ऐतिहासिकता पर अनेक आलोचकों ने संदेह व्यक्त किया है। समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि आदिकालीन मानव जीवन में भी किसी न किसी प्रकार का सामाजिक जीवन अवश्य रहा होगा।

इस तरह हॉब्स ने मनुष्यों की पाशविक प्रकृति का दर्शन किया जबकि **लॉक** ने मनुष्यों के मानवीय

गुणों पर अधिक बल दिया और कहा कि मनुष्य एक नैतिक व्यवस्था को स्वीकार करने वाला एवं उसके अनुसार आचरण करने वाला प्राणी है। **लॉक** का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था का समाज लगातार युद्धरत समाज नहीं था, पर एक ऐसा समाज अवश्य रहा जिसमें की शांति की पूर्ण व्यवस्था नहीं थी। इसलिए अपनी सुविधाओं का अंत करने के लिए मनुष्यों के द्वारा सामाजिक समझौता किया गया और सामाजिक संविदा द्वारा व्यवस्था का निर्माण किया गया। **हॉब्स** एवं **लॉक** के विचारों के आधार पर **रूसो** ने कहा कि मनुष्य स्वभाव से एक सदाशय और श्रेष्ठ प्राणी है किंतु दूषित एवं सामाजिक संस्थाओं के कारण वह बुरा बन जाता है। रूसो का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य बिल्कुल भय मुक्त होकर जीवन यापन करता था और सहज वृति एवं सहानुभूति की भावना से प्रेरित होकर ही एक दूसरे के साथ गठबंधन किया। रूसो का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था के अंतिम चरण की अराजकता से जब व्यक्ति दुखी हो गया था, तब उसने स्वयं को एक ऐसी संस्था में संगठित कर लेने की आवश्यकता को महसूस किया जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की जान माल की रक्षा हो सके तथा व्यक्तियों की स्वतंत्रता भी बनी रहे।

कसामाजि समझौते के सिद्धांत को हालांकि बाद में अस्वीकार कर दिया गया था। इसके कुछ महत्वपूर्ण कारण थे क्योंकि यह सिद्धांत मिथ्या मान्यता पर आधारित था। मनुष्य समाज में प्रवेश करने से पूर्व व्यक्ति, संपत्ति, अधिकार, जीवन की सुरक्षा और अन्य किसी इच्छित उद्देश्य की पूर्ति के लिए सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करते हैं।

2.2.4 समाज का सावयवी सिद्धांत (The Organismic Theory of Society)-

सावयवी विचारधारा के अनुसार सामाजिक जीवशास्त्रीय व्यवस्था एक विशालतम व्यवस्था है। जिसमें व्यक्तिगत सावयव के बाद सामान ही संरचना प्रकार्य और एकता दिखाई देती है तथा जिस पर विकास प्रौढ़ता एवं पतन के समान नियम लागू होते हैं। व्यक्ति समाज के सैल (Cell) हैं और समूह व संस्थाएं उसके अंग और व्यवस्थाएं हैं। यह सिद्धांत समाज के विशिष्ट संस्थाओं तथा शारीरिक अवयवों को व्यवस्थाओं के समरूप मानता है। यद्यपि कुछ लेखक समाज में मस्तिष्क, फेफड़ों अथवा शरीर के अंगों के प्रति रूपों के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं।

सामाजिक संविदा के सिद्धांतवादियों की आलोचना करते समय हमें सावधान रहना चाहिए कि कहीं समाज को अथवा उसके किसी भी क्षेत्र को एक प्रकार का सावयव मानने की भूल न कर बैठे यह विचार उतना ही प्राचीन है जितना कि संविदात्मक विचार। समाजशास्त्री अगस्त कॉम्ट का मानना है कि समाज की एकता और उसमें व्यक्तियों के सहयोग का विचार सावयव को लेकर ही होना चाहिए। कुछ अन्य विचारक जैसे **सोरोकिन** "यह बताना चाहते हैं कि समाज जन्म, यौवन, प्रौढ़ता, वृद्धावस्था, और मृत्यु की सावयवी क्रियाओं से ही आगे बढ़ता है।" यह विचार की समाज को अधिक बड़ा शरीर मानने की अपेक्षा एक संयुक्त मस्तिष्क मानना चाहिए। सावयव का यह विचार है कि समाज को अधिक बड़ा शरीर मानने की अपेक्षा एक संयुक्त मस्तिष्क मानना चाहिए सावयव के सिद्धांत से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।

यह सिद्धांत प्राचीन एवं आधुनिक दोनों है। **प्लेटो** की प्रसिद्ध पुस्तक **'रिपब्लिक' हीगल** के राजनीतिक दर्शन संप्रदाय में और सामूहिक मस्तिष्क को यथार्थ मानने वाले मेकडूगल आदि विद्वानों के कथन में इसी सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। **प्लेटो** का कथन है कि समाज एक विस्तृत अर्थात बड़े डील-डौल वाले व्यक्ति के समान है। उसने व्यक्ति को समाज या राज्य का सूक्ष्म रूप मानते हुए कहा है कि "यदि समाज समस्त विश्व है तो व्यक्ति उसका सूक्ष्म अणु है।" **सिसरो** ने लिखा है कि "राज्य के मुखिया का राज्य में वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का होता है।"

हॉब्स ने राज्य की तुलना एक कल्पित महामानव एवं दैत्य लेवियाथन (Laviathan) से की है। उसने समाज की कमजोरियों की तुलना मानव शरीर की बीमारियों के साथ की है वीं19 शताब्दी में समाज का सावयवी सिद्धांत काफी लोकप्रिय हो गया। फिर जर्मन दार्शनिक **ब्लंशली** एवं प्रसिद्ध अंग्रेज समाजशास्त्री **हरबर्ट स्पेंसर** ने व्यक्ति के शरीर व समाज की संरचना में सूक्ष्मतम समानताएं ढूँढ़कर समाज के सावयवी सिद्धांतों को महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया। **ब्लंशली** ने लिखा है कि "राज्य की व्यवस्था प्राणी शारीर की व्यवस्था की अनुकृति मात्र है।"

2.2.5 समाज और प्राणी में समानताएं (Similarities between individual society) -

स्पेंसर का स्वयं से एक प्रश्न था कि क्या सामाजिक वास्तविकता यथार्थ है? स्पेंसर के लिए एक समस्या यह भी थी कि यदि सामाज एक वास्तविक वस्तु है, जिसकी अपनी विशेषता है तो हम इसे क्या कहेंगे कार्बनिक या अकार्बनिक। हरबर्ट स्पेंसर ने इसलिए मशीनी सदृश्यों का प्रयोग किया है जैसे समाज को सामाजिक संग्रह कहना। परंतु इन बातों से भी समाज के संबंध में सामाजक सिद्धांत प्रस्तुत नहीं कर सके थे। इसलिए उन्होंने समाज का सावयवी मॉडल प्रस्तुत किया जो जटिल एवं गत्यात्मक था। इसलिए उन्होंने अपनी पुस्तक प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी (Principle of Sociology) के एक अध्याय का शीर्षक "समाज एक जीव" रखा था। हरबर्ट स्पेंसर ने बताया कि सामाज, कार्बनिक है न कि अकार्बनिक। स्पेंसर ने यह अनुभव किया कि समाज रूपी जीव एवं जैविक जीव में समानताएं भी हैं और विभिन्न समानताएँ भी हैं। इस सादृश्य में शाब्दिक दृष्टि से केवल कार्यात्मक समानताओं का वर्णन होता है परंतु व्यवहार में स्पेंसर ने संरचनात्मक एवं कार्यात्मक समानताएं एवं विभिन्नताओं का उल्लेख किया है। समाज और जीव में पाई जाने वाली विभिन्न समानताएं इस प्रकार हैं।

5.2.2.1 जड़ पदार्थों से (Different from the Matter)

समाज और प्राणी की समानता को दर्शाने के लिए हरबर्ट स्पेंसर ने दोनों की तुलना जड़ पदार्थों से की है। उनके अनुसार जड़ पदार्थों में कभी वृद्धि नहीं होती परंतु समाज और प्राणी में निरंतर वृद्धि होती रहती है। दोनों में यह भी समानता है कि दोनों का विकास धीरे-धीरे होता है। उदाहरण के लिए जब एक बच्चा जन्म लेता है तो वह धीरे-धीरे बढ़ता है वह बड़ा होकर जीवन पथ पर आगे चलता है। इसी तरह जनसंख्या की वृद्धि

के साथ-साथ समाज का आकार भी धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। स्पेंसर ने वृद्धि का उदाहरण देकर समझाया की जड़ पदार्थ अनेक शताब्दियों के बाद भी उसी प्रकार रह जाते हैं जैसा कि पहले थे किंतु समाज और शरीर में देखते ही देखते परिवर्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगते है। समाज और शरीर छोटे से बड़े हो जाते हैं किंतु जड़ पदार्थ उतने के उतने ही बने रहते हैं।

5.2.2.2 परिणाम की वृद्धि के साथ रचना में विषमता

समाज एवं प्राणी की दूसरी समानता को निर्धारित करने के लिए दोनों के परिमाण वृद्धि को आधार माना गया है। हरबर्ट स्पेंसर का कहना है कि ज्यो-ज्यों समाज एवं शरीर के परिमाण में वृद्धि होती है, त्यों त्यों उसकी रचना में परिवर्तन होने लगता है। रचना क्रमशः जटिल होती जाती है। विकास क्रम के प्रथम स्तर पर जीवन मात्र एक जीव (कोस्ट(के रूप में होता है। उसका केवल एक शारीरिक ढांचा होता है जो साधारण रहता है पर ज्यों-ज्यों विकास होता है उसके अंगों में वृद्धि होती जाती है और शरीर रचना में जटिलता आ जाती है। जैसे पहले शिशु छोटा होता है फिर वह किशोर होता है, फिर वयस्क होने पर उसका शरीर पूर्णतया विकसित हो जाता है। यह आकार बढ़ने का क्रम है। यही तथ्य समाज के ढांचे पर भी लागू होता है। प्रारंभ में समाज का स्वरूप सीमित एवं संरचना सरल होती है। गांव, कस्बा बन जाता है। शहर नगर हो जाता है और नगर महानगर का आकार ले लेता है। एक छोटा राज्य साम्राज्य बन जाता है। परिवार जाति में परिवर्तित हो जाती है और जाति एक सांस्कृतिक समूह बन जाती है। इस भांति मनुष्य की देह संरचना और समाज की संरचना दोनों के आकार में वृद्धि होती है और समाज में भी विकास के साथ-साथ नए सामाजिक संबंधों सामाजिक संगठनों एवं सामाजिक संस्थाओं का जन्म होता है। फलस्वरुप सामाजिक ढांचे की जटिलता में भी वृद्धि होती है।

5.2.2.3 रचना और कार्य में विषमता-

समाज एवं प्राणी में तीसरी समानता यह है कि दोनों में विकास के साथ-साथ उसकी संरचना में भी जटिलता आती है। समाज की संरचना बदलने से उसके अंग अर्थात समुदायों एवं समूहों के कार्य बदल जाते हैं। अधिक विशेषीकृत हो जाते हैं। यह तथ्य प्राणी शरीर पर भी लागू होता है। प्राणी शरीर की रचना भिन्न होने पर, शरीर के विकसित हो जाने पर, कार्य भी भिन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जब एक बच्चा छोटा होता है तो वह केवल सरल एवं छोटे-मोटे कार्य ही कर पाता है, जबकि बड़ा होने पर उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि होती है और वह जटिल कार्य भी करने लगता है। ठीक यही बात समाज पर भी लागू होती है। यदि हम नगरीय एवं ग्रामीण समाज की तुलना करें तो पाते हैं कि शहर आदि अन्य जटिल समाजों का कार्य ग्रामीण समाजों के कार्यों से जटिल होता है।

5.2.2.4 कार्यों की विषमता के साथ आपसी समन्वय -

समाज तथा प्राणी दोनों में विकास के साथ-साथ अंगों में विषमता पैदा होती है परंतु इस विषमता के होते हुए भी विभिन्न अंगों के कार्यों में समन्वय रहता है। दोनों का प्रत्येक भाग या अंग दूसरे भाग के कार्य में

सहायक होता है विरोधी नहीं। शरीर की रचना तथा उसके कार्य में विकास से जो विषमता की प्रक्रिया विकसित होती है, उसमें विषमता ही नहीं होती बल्कि समन्वय भी होता है। इसी तरह समाज रूपी सावयवी के घटक व्यक्ति, परिवार, समुदाय ये सभी सामाजिक विकास की प्रक्रिया में पैदा होते हैं। इनके विभिन्न कार्यों के बीच समन्वय रहता है और यह समाज के सामूहिक कार्य में सहायक होते हैं। हरबर्ट स्पेंसर का कहना है कि “यह तथ्य समाज एवं प्राणी पर समान रूप से लागू होता है अतः समाज और प्राणी में विषमता एवं समन्वय है”।

5.2.2.5 अवयवों के नष्ट होने से सावयव की मृत्यु नहीं होती

माजस अवयवी है और प्राणी भी अवयवी है। दोनों की समानता दर्शाने के लिए स्पेंसर कहते हैं कि समाज और प्राणी के अवयव नष्ट हो जाने से वे स्वयं नष्ट नहीं होते। उदाहरण के लिए शरीर के किसी एक अंग के नष्ट होने पर शरीर नष्ट नहीं होता है। यदि किसी व्यक्ति के एक हाथ को शरीर से अलग कर दिया जाए तो वह नष्ट नहीं होता लेकिन वह हाथ अस्तित्वहीन हो जाता है। इसी तरह समाज में व्यक्तियों तथा परिवारों और कभी-कभी समुदायों के नष्ट हो जाने पर भी समाज ज्यों का त्यों बना रहता है।

5.2.2.6 दोनों की प्रक्रिया एवं प्रणाली समान है

समाज एवं शरीर के ढांचे में एक और अन्य समानता भी है। हरबर्ट स्पेंसर का कहना है कि जिस प्रकार शरीर की व्यवस्था बनाए रखने के लिए विभिन्न संस्थान जैसे नाड़ी संस्थान, स्नायु संस्थान आदि अपना-अपना कार्य करते हैं उसी प्रकार समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए समाज की विभिन्न संस्थाएं अपना अपना-कार्य करती हैं। जैसे उत्पादन, वितरण, शिक्षा यातायात आदि की व्यवस्था के लिए विभिन्न संस्थान कार्यरत हैं।

स्पेंसर ने कुछ उदाहरण के द्वारा समाज और शरीर की प्रक्रियाओं की तुलना की है-

1. जिस प्रकार शरीर में आमाशय होता है, जिससे भोजन की पहचाना होती है, ठीक उसी प्रकार समाज का भी आमाशय होता है। जिससे समाज का भोजन पचता है। स्पेंसर ने उपभोग (Consumption) को समाज का आमाशय माना है।
2. जिस प्रकार शरीर में रक्त संचालन संस्थान है, जो रक्त को सारे शरीर में पहुंचाता है। उसी प्रकार समाज में भी रक्त संचालन संस्थान है। इसे स्पेंसर ने उत्पादन (Production) का नाम दिया है।
3. जिस प्रकार मस्तिष्क के द्वारा शरीर पर नियंत्रण बना रहता है। ठीक उसी प्रकार सरकार और कानून के द्वारा समाज नियंत्रित रहता है।
4. जिस प्रकार शरीर के अंगों के कार्य अलग-अलग होते हैं जैसे- आंख, कान, हाथ-पैर आदि का काम एक दूसरे से अलग है ठीक उसी प्रकार समाज के अंगों के काम भी अलग-अलग है। जैसे परिवार, धर्म, राज्य आदि के कार्य एक दूसरे से भिन्न है।

2.2.6 समाज व प्राणी में असमानताएं

स्पेंसर ने इस विचार का खंडन किया कि समाज व्यक्तियों का साधारण संग्रह नहीं है। यह संपूर्ण व्यक्तियों का संकलन है। उन्होंने कहा है कि सामाज एक जीव नहीं बल्कि महाजीव है। स्पेंसर के अनुसार समाजों की आंतरिक संरचना में भिन्नता होती है, जैसे कि आदिवासी समाज इस भिन्नता के बावजूद प्रत्येक सामाजिक महाजीव (सुपर ऑर्गेनिक(है। इसी अर्थ में स्पेंसर ने संस्कृति को अधिसावयवी या सुपरऑर्गेनिक कहा है। संभवत स्पेंसर ने अपने व्यक्तिवादी विचारों के कारण समाज को बार-बार अधिसावयवी अस्तित्व कहा है। स्पेंसर के लिए यह आवश्यक था कि वह समाज और जीव की इन भिन्नताओं को दर्शाए क्योंकि उन्हें जीव को स्वतंत्र प्रथक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट प्रस्तुत करना था। यही कारण है कि उन्होंने सदृश्य शब्द का प्रयोग किया समानता शब्द का नहीं। स्पेंसर ने कॉम्ट का अनेक कारणों से विरोध किया परंतु एक बड़ा कारण कॉम्ट का समूह या सामूहिकतावाद एवं स्पेंसर का व्यक्तिवाद था। इसलिए स्पेंसर ने जीव और समाज में कुछ भिन्नताओं को दर्शाया है-

6.2.2.1 मूर्त एवं अमूर्त स्वरूप

मनुष्य एवं समाज में सबसे पहली विभिन्नता यह है कि मानव अंग मूर्त होते है जबकि समाज अमूर्त होता है। मानव अंग को देखा एवं छुआ जा सकता है पर समाज को देखा को छुआ नहीं जा सकता।

6.2.2.2 शरीर के अंग अभिन्न तथा समाज के अंग भिन्न रह सकते हैं -

शरीर और समाज के बीच की समानता स्पष्ट करते हुए स्पेंसर ने बताया है कि शरीर के विभिन्न अंग शरीर से अलग नहीं रह सकते शरीर के विभिन्न अंगों के मिलने से एक सत्ता उत्पन्न होती है। शरीर से अलग अंगों की कोई सत्ता नहीं है। जैसे हाथ और पैर की सत्ता या उसका अस्तित्व तब तक ही है जब तक उसका सीधा संबंध शरीर से है। समाज के विभिन्न अंग मिलकर समाज को बनाते हैं, पर यह समाज से अलग भी अपनी सत्ता रख सकते है। यह सत्य है कि समाज परिवारों समुदायों और समूहों आदि से बनता है पर समाज से भिन्न व्यक्तियों के परिवारों की स्वतंत्र सत्ता बनी रहती है।

6.2.2.3 केंद्रीय भूत चेतना संबंधी विभिन्नता-

शरीर के विभिन्न अंगों में अलग-अलग चेतना अथवा चिंतन शक्ति नहीं होती शरीर की एक केंद्र में चेतना शक्ति होती है। सारे शरीर की चेतना तथा सारे शरीर का चिंतन एक केंद्र से होता है। इसके विपरीत समाज में चेतना तथा चिंतन का केंद्र किसी एक बिंदु में समाया हुआ नहीं है। समाज में जितने व्यक्ति होंगे, जितने परिवार होंगे, समूह होंगे, उन सब का चिंतन अलग-अलग होगा।

स्पेंसर का कहना है कि शरीर का विकास चूकि एक केंद्र से होता है। अतः संपूर्ण शरीर का कल्याण व्यक्ति की चेतना करती है। समाज का विकास क्योंकि एक केंद्र से नहीं होता इसलिए व्यक्ति का विकास और

उसका कल्याण समाज पर नहीं छोड़ा जा सकता। समाज पर तो सामाजिक कल्याण के कार्य को तब छोड़ा जा सकता है जब समाज के चिंतन का केंद्र बिंदु एक ही होता है। इसलिए व्यक्ति के कल्याण की बात व्यक्ति पर ही छोड़नी चाहिए समाज पर नहीं।

6.2.2.4 शरीर के अंग शरीर के लिए हैं पर समाज के अंगों के लिए समाज है-

समाज और शरीर दोनों ही अवयवी हैं पर समाज और शरीर में भिन्नता यह है कि शरीर अंगों के लिए नहीं अंग शरीर के लिए है। हरबर्ट स्पेंसर का कहना है कि ठीक इसके विपरीत व्यक्ति समाज के लिए नहीं समाज व्यक्ति के लिए है। इस संबंध में अगस्त कॉम्ट एवं हरबर्ट स्पेंसर के विचारों में बहुत अधिक भिन्नता है। कॉम्ट तो समाजशास्त्र में व्यक्ति का कोई अस्तित्व ही नहीं मानते पर हरबर्ट स्पेंसर चूकि व्यक्तिवादी हैं और उनके व्यक्तिवादी विचारों के अनुसार व्यक्ति का महत्व अधिक है। इसलिए उनका कहना है कि व्यक्ति समाज के लिए नहीं है। समाज व्यक्ति के लिए है।

6.2.2.5 शरीर नष्ट हो सकता है पर समाज बहुत देर से नष्ट होता है-

स्पेंसर ने देह संरचना और समाज की समतुल्यता को बड़े विस्तार से रखा है। इस संबंध में वे एक बात कहते हैं। उनका कहना है कि कोई भी शरीर संरचना, समाज की एक इकाई है। इकाइयों को जोड़ने से ही समाज बनता है। जब हम किसी देश की बात करते हैं तो इससे हमारा आशय है कि राष्ट्र अनेकों शरीर संरचना यानी व्यक्तियों से बना है। व्यक्ति का जीवन अल्प समय का होता है। जैसे 100 या उससे कुछ और वर्ष लेकिन समाज और राष्ट्र का जीवन लंबी अवधि में बंधा होता है सभ्यताएं बनती है और नष्ट होती हैं, लेकिन समाज को नष्ट होने में हजारों साल लग जाते हैं।

6.2.2.6 शरीर संरचना में शारीरिक व्यापकता नहीं होती

मानव का शरीर निश्चित अंगों से बना होता है जैसे दो हाथ, दो आंख और दो हाथ, पैर व्यक्ति के वयस्क होने पर यह शारीरिक अंग बढ़ते नहीं है आकार में बस बदलाव होता है। तीन आंखें या तीन हाथ पैर नहीं हो सकते जबकि समाज में दूसरी तरफ पूरी व्यापकता होती है, उदाहरण के तौर पर आदिम समाजों में साहित्य और कला एवं उद्योगों का विकास उतना नहीं था जितना कि आज के विकसित समाजों में हमें देखने को मिल रहा है -

2.2.7 विकसित समाज के अंग -हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार किसी भी विकसित समाज में समाज के तीन अंग होते है-

2.2.7.1 समर्थनकारी व्यवस्था (Suppertive System)- यह उन अंगो से बनती है जो जीवित चीजों को पौष्टिकता प्रदान करते हैं। यह स्वयं भी समाज में महत्वपूर्ण उत्पादकों से पैदा किए जाते हैं।

2.2.7.2 वितरण की व्यवस्था (Distributive System)- यह श्रम विभाजन के द्वारा समाज के अलग-अलग अंगों में संबंध स्थापित करती है।

2.2.7.3 नियंत्रणकारी व्यवस्था (Regulative System)- राज्य की संस्था के रूप में समष्टि के

सम्मुख अंगो की कमजोर स्थिति को प्रकट करती है। समाज के स्पष्ट अंग एवं संस्था होती हैं। हरबर्ट स्पेंसर ने 6 प्रकार की संस्थाओं की चर्चा की है-

1. **घरेलू संस्था-** इसमें नातेदारी, परिवार, विवाह आदि सम्मिलित होते हैं।
2. **धर्म-** यह कर्म एवं कर्मकांड से जुड़ी संस्था है। जिसमें केवल कर्मकांड और धार्मिक क्रियाएं सम्मिलित होती हैं।
3. **राजनीतिक संस्था-** इसमें राज्य सरकार कानून आदि सम्मिलित होते हैं।
4. **चर्च-** यह धर्म से अलग संगठन एवं नियमों की व्यवस्था है।
5. **पेशेवर अथवा व्यवसायिक संस्था-** यह संस्थाएं अलग व्यवसाय एवं उसकी विशेषताओं से जुड़ी है।
6. **औद्योगिक संस्था-** व्यापार व्यवसाय से जुडी होती है।

समाजशास्त्र में स्पेंसर ने 1862 में सबसे पहले संस्था शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक फर्स्ट प्रिंसिपल (First Priencible) में किया। 1885 में प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी (Priencible of Sociology) में सामाजिक संरचना (Social Structure) शब्द का प्रयोग भी पहली बार किया और स्पष्ट किया कि संस्थाओं के सहयोग से ही सामाजिक संरचना बनती है। हरबर्ट स्पेंसर जीव एवं समाज में समानता स्थापित करके प्रकार्यवाद के अग्रदूत साबित हुए **एल.ए.कोजर** ने कहा है कि "हरबर्ट स्पेंसर एक ओर साम्यवाद एवं दूसरी ओर व्यक्तिवाद में सैद्धांतिक रूप से तालमेल नहीं बिठा सके ऐसी कठिनाई अगस्त कॉम्ट को नहीं हुई क्योंकि सावयवी दृष्टि के साथ वे समूह वादी थे।" आएगर कॉन ने लिखा है कि सावयवी दृष्टिकोण के द्वारा हरबर्ट स्पेंसर ने स्वतंत्र प्रतियोगिता एवं निजी उद्योगों को बढ़ावा देने की वकालत की।" यह विश्लेषण सिद्धांत पर कम और विचारधारा पर अधिक आधारित है।

.22.8 आलोचना

आधुनिक समाजशास्त्रीय स्पेंसर द्वारा प्रस्तुत की गई व्याख्या को स्वीकार नहीं करते हैं। हालांकि प्राणी शास्त्रीय सिद्धांत के आधार पर लंबे समय तक व्यक्ति की समाज पर पूर्ण निर्भरता व्यक्त की जाती रही है। पर वर्तमान में यह सिद्धांत अप्रमाणिक एवं अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुका है। जीव रचना और समाज रचना में कुछ ऐसे मौलिक अंतर हैं कि दोनों को समान नहीं माना जा सकता इसलिए स्पेंसर के इस सिद्धांत की निम्न आलोचना की गई है।

1. यह सत्य है कि समाज और शरीर दोनों का ही निर्माण अंगों के द्वारा होता है पर समाज के अंगों के कार्य स्पष्ट नहीं है तथा इस में परिवर्तन किया जा सकता है। जबकि शरीर के अंगों के कार्य स्पष्ट हैं, किंतु दूसरे अंगों के कार्यों को करने की क्षमता इन अंगों में नहीं होती। जैसे आंख का काम कान नहीं कर सकते।
2. समाज और व्यक्ति के बीच चेतनता की दृष्टि से भी अंतर है चेतन का संबंधी अंतर समाज और शरीर

के मध्य पाए जाते हैं।

3. शरीर की चेतना का केंद्र बिंदु होता है, जबकि समाज की चेतना का कोई भी केंद्र बिंदु नहीं होता है।
4. शरीर की मृत्यु से चेतना समाप्त हो जाती है, जबकि समाज की चेतना का कभी भी अंत नहीं होता।
5. इस सिद्धांत से समाजिक घटना की धारणा स्पष्ट होने की अपेक्षा और अधिक उलझ जाती है तथा जटिल प्रतीत होने लगती है।
6. इस सिद्धांत के आधार पर समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता साथ ही सामान्यीकरण करना भी असंभव है।
7. इस सिद्धांत से समाज के लक्षण उसके क्रियात्मक संबंध भी स्पष्ट नहीं होते है।
8. स्पेंसर के सिद्धांत की आलोचना यह कह कर की जाती है कि उन्होंने अपने सिद्धांत में सावयव और समाज की भिन्नता का बृहद वर्णन नहीं किया है। क्योंकि उन्होंने जो भिन्नताएं इस सिद्धांत में बताई हैं उसके अतिरिक्त भी बहुत भिन्नताएं देखने को मिलती हैं जिसे स्पेंसर ने छोड़ दिया है। जैसे अगस्त कॉम्ट के अनुसार सावयव का जीवन सीमित होता है जबकि समाज का असीमित।
9. मानव सभ्यता एवं समाज में कुछ समानताओं के आधार पर सादृश्य (Anology) को स्थापित करने का विचार उचित प्रतीत नहीं होता।
10. स्पेंसर ने अपने सिद्धांत में एक जगह व्यक्ति को सेल (Cell) तथा दूसरी जगह उसी व्यक्ति को समाज का एक अंग बताया है जबकि सेल (Cell) एवं पार्ट (Part) दोनों भिन्न चीजें हैं। इस अर्थ में उनकी सादृश्यता(Anology) दोषपूर्ण प्रतीत होती है।
11. हरबर्ट स्पेंसर के सिद्धांत की चौथी आलोचना यह है कि उन्होंने समाज को एक व्यवस्था न मानकर एक अवयव की तरह माना है जो उचित प्रतीत नहीं होता। **विल्फ्रेड परेटो** और **मैकाइवर** के अनुसार समाज एक व्यवस्था है इसे अवयव की तरह मानना उचित नहीं है। **मैकाइवर** और **पेज** के अनुसार "यह कहना बड़ा भ्रामक है कि हम समाज के उसी तरह अंग है जिस प्रकार पत्तियां पेड़ों की होती है। या अवयव शरीर के होते हैं।" इससे स्पष्ट है कि इस स्पेंसर का समाज को एक व्यवस्था न मानने संबंधी विचार दोषपूर्ण है।
12. हरबर्ट स्पेंसर ने अमूर्त संगठन एवं मूर्त तथ्य के बीच समानता को स्थापित करने का प्रयत्न किया है जो कि उचित नहीं है। समाज में मानव शरीर रचना को किसी भी प्रकार समान आधारों पर नहीं समझा जा सकता क्योंकि समाज एक अमूर्त संगठन है। शरीर रचना एक मूर्त तथ्य है।
13. हरबर्ट स्पेंसर ने सामाजिक सावयव सिद्धांत को मस्तिष्क का कीड़ा कहकर संबोधित किया है। **टार्डे** ने लिखा है कि "शरीर सावयववाद मात्र दोषपूर्ण नहीं है, अपितु खतरनाक भी है, संभवत यह तात्विक चिंतन का सबसे बुरा प्रकार है।"
14. **सोरोकिन** ने हरबर्ट स्पेंसर के सावयव सिद्धांत की आलोचना करते हुए लिखा है कि सावयववाद

की प्राणीशास्त्रीय परिपूर्णता का फार्मूला समाजशास्त्र में न तो संचरित किया जा सकता है और न ही समाज पर लागू होता है।

15. **बार्न्स** ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हरबर्ट स्पेंसर का सामाजिक सावयव का सिद्धांत भले ही रुचिकर हो किंतु जब हम सबको सामाजिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण की दृष्टि से देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, इस सिद्धांत का कोई मूल्य नहीं है।
16. **बोगार्डस** ने हरबर्ट स्पेंसर के इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहा कि स्पेंसर की शरीर रचना संबंधी अवधारणा से संबंधित तर्क उसके लिए समाजशास्त्रीय पतन के अलावा कुछ भी नहीं है।

2.2.9 सारांश -

स्पेंसर ने अपनी सिद्धांत के माध्यम से समाज और शरीर के बीच में समानता स्थापित की और शरीर के सामान समाज में भी जागरूकता के होने के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। जैवकीय उपमाओं का मानवीय समाजों के लिए प्रयोग किए जाने की स्पेंसर की प्रवृत्ति को समाजशास्त्र में आजकल त्याग दिया गया है। इसलिए वर्तमान समय में उनके विचारों का महत्व कम है क्योंकि मानवीय समाजों और जैवकीय समाजों में अनेक अंतर है। फिर भी सामाजिक व्यवस्था की महत्ता उसके कार्य करने और बदलने के तरीकों पर स्पेंसर द्वारा प्रारंभिक रूप से रेखांकित किया जाना सामाजिक जीवन के बारे में सोचने के एक तरीके के रूप में समाजशास्त्र के विकास के प्रति उनका एक अमूल्य योगदान कहा जा सकता है।

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात विद्यार्थियों को समाज एक सावयव के रूप में स्पेंसर के विचार अवगत हो जाएंगे। समाज और प्राणीशास्त्र में किस तरह की समानताएं हैं और विभिन्नताए हैं ,इसकी स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त विकसित समाज के अंगों के बारे मे भी चर्चा की गई है। सिद्धांत की उपयोगिता एवं उसके आलोचना के बारे में भी चर्चा की गई है। जिससे कि विद्यार्थी अपने ज्ञान का विस्तार कर सकेंगे।

2.2.10 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही विकल्प का चयन कीजिए

1. स्पेंसर ने समाज और व्यक्ति के बीच कितनी समानताओं का वर्णन किया है?

   (अ) चार (ब) आठ

   (स) सात (द) तीन
2. “शरीर सावयववाद मात्र दोषपूर्ण नहीं है, अपितु खतरनाक भी है। संभवत यह तात्विक चिंतन का सबसे बुरा प्रकार है।” यह कथन किसका है?

(अ) टाडे (ब) स्पेंसर

(स) बानर्से (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

3. हरबर्ट स्पेंसर ने कितने प्रकार की संस्थाओं की चर्चा की है?

(अ) 6 (ब) 7

(स) 4 (द) 3

4. "यह कहना बड़ा भ्रामक है कि हम समाज के उसी तरह अंग है जिस प्रकार पत्तियां पेड़ों की होती है या अवयव शरीर के होते हैं।" यह कथन किसका है?

(अ) अगस्त कॉम्ट (ब) सोरोकिन

(स) मैकाइवर और पेज (द) वोगार्डेस

5. सामाजिक समझौते के सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया?

(अ) मैकाइवर और पेज (ब) सोरोकिन

(स) हरबर्ट स्पेंसर (द) हॉबस लॉक और रूसो

6. व्यक्ति को अधिक महत्वपूर्ण और समाज को गौण किसने माना है ?

(अ) रूसो (ब) लॉक

(स) मेकाइवर और पेज (द) हॉर्स

7. "राज्य के मुखिया का राज्य में वही स्थान, शरीर में आत्मा का होता है।" यह कथन किसका है?

(अ) अरस्तु (ब) प्लेटो

(स) स्पेंसर (द) सिसरो

8. 'रिपब्लिक' पुस्तक के लेखक कौन है?

(अ) प्लेटो (ब) स्पेंसर

(स) अरस्तु (द) अगस्त कॉम्ट

9. हरबर्ट स्पेंसर ने अपनी किस पुस्तक में समाज और सावयव के बीच आठ बुनियादी समानताओं का उल्लेख किया है?

(अ) प्रिंसिपल ऑफ सोशलॉजी (ब) फर्स्ट प्रिंसिपल

(स) प्रिंसिपल आफ साइकोलॉजी (द) प्रिंसिपल ऑफ बायोलॉजी

10. सावयवी सिद्धांत को समाज की किस विचारधारा के नाम से संबोधित किया जाता है?

(अ) व्यक्तिवादी विचारधारा (ब) समस्तीवादी विचारधारा

(स) समझौता वादी विचारधारा (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर 1 ब 2 अ 3 अ 4 स 5 द

6 द 7 द 8 अ अ9 10 ब

लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. सावयव की अवधारणा को स्पष्ट करें।
2. समाज और प्राणीशास्त्र की समानताओं को बताइए।
3. स्पेंसर द्वारा वर्णित विकसित समाज के अंगों को समझाइए।
4. समाज और प्राणी के बीच पाई जाने वाली विभिन्नताओं को समझाइए।
5. समाज और सावयव अवधारणा की आलोचना कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. स्पेंसर ने समाज की सावयवी व्याख्या किस प्रकार की है विवेचना कीजिए।
2. स्पेंसर द्वारा प्रतिपादित समाज के सावयवी सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।
3. समाज और प्राणी शरीर के बीच पाई जाने वाली समानताओं एवं असमानताओं की विवेचना कीजिए।
4. स्पेंसर द्वारा वर्णित छह प्रकार की संस्थाओं की विवेचना कीजिए।
5. स्पेंसर के समाज के सावयवी सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

2.2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्णगोपाल .(2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस. बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ.रविंद्र . (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन .
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ.रविंद्र . (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ.रविंद्र . (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, कुमार.महेंद्र . (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर प्रकाशन.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, कुमार, राजेंद्र. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्री विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 3 सामाजिक उद्विकास के नियम (Theory of Evolution)

इकाई की रूपरेखा

2.3.0 उद्देश्य

2.3.1 प्रस्तावना

2.3.2 उद्विकास का अर्थ

2.3.3 उद्विकास की परिभाषाएं

2.3.4 उद्विकास की विशेषताएं

2.3.5 उद्विकास की प्रक्रिया

2.3.6 उद्विकास के चरण

2.3.7 उद्विकास के कारक

2.3.8 सामाजिक उद्विकास के स्वरूप

2.3.8.1 समरखीय उद्विकास

2.3.8.2 बहुउद्देशीय विकास

2.3.8.3 चक्रीय उद्विकास

2.3.8.4 सार्वभौमिक उद्विकास

2.3.9 क्या उद्विकास में प्रगति है।

2.3.10 डार्विन का उद्विकास का सिद्धांत

2.3.11 स्पेंसर का उद्विकास का सिद्धांत

2.3.11.1 भौतिक विकास का सिद्धांत

2.3.12 विकास के चार गौण नियम

2.3.12.1 नियमों की एकता का नियम

2.3.12.2 रूपांतरण तथा समानता का नियम

2.3.12.3 अधिकतम आकर्षण तथा न्यूनतम प्रतिरोध का नियम

2.3.12.4 लय तथा क्रमिक गति का नियम

2.3.13 जीवशास्त्रीय उद्विकास का नियम

2.3.14 सामाजिक उद्विकास के नियम

12.3.15 स्पेंसर के सामाजिक विकास के सिद्धांत के महत्वपूर्ण तत्व

2.3.16 उद्विकास के सिद्धांत की आलोचना

2.3.17 सारांश

2.3.18 बोध प्रश्न

2.3.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी उदविकास के बारे में संपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे इसके अतिरिक्त -

- उद्विकास का अर्थ और परिभाषा को समझ पाएंगे।
- उद्विकास की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- सामाजिक उद्विकास की क्या प्रक्रिया है, इसे समझने में सहायता मिलेगी।
- उद्विकास के चरणों को समझ सकेंगे।
- उद्विकास के स्वरूप क्या है, यह समझ सकेंगे।
- इस बात को भी समझ सकेंगे कि क्या उद्विकास में प्रगति निहित है।
- स्पेंसर के सामाजिक सिद्धांत के महत्वपूर्ण तत्व कौन-कौन से हैं।
- स्पेंसर के सिद्धांत की कौनलोचना की गई हैकौन सी आ-, को समझने में सहायता मिलेगी।

सामाजिक उद्विकास के नियम (Theory of Evolution)

2.3.1 प्रस्तावना

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। एक सीधी-साधी और सरल वस्तु का धीरेधीरे एक - जटिल अवस्था में बदल जाना उद्विकास कहलाता है।प्राणीशास्त्र में उद्विकास के नियम के प्रतिपादक **डार्विन (Darwin)** माने जाते हैं, जिन्होंने अपनी पुस्तक **'ओरिजिन ऑफ स्पीसीज' (Origin of Specie)** में प्राणीशास्त्रीय विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और कहा कि जीवो का उद्विकास सरलता से जटिलता तथा समानता से विभिन्नता की ओर हुआ है। बाद में स्पेंसर एवं मार्गन जैसे समाजशास्त्रियों ने उद्विकास के विचारों को समाज और संस्कृति पर लागू किया और स्पष्ट किया कि जीवो के उद्विकास की ही भांति समाज का उद्विकास हुआ। **हरबर्ट स्पेंसर** के सामाजिक उद्विकास के नियम समाजशास्त्र को सबसे बड़ी देन है। स्पेंसर ने सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत को एक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया। सामाजिक उद्विकास के नियम को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने भौतिक (Physical Evolution) एवं जैव विकास (Biological evolution) के सिद्धांत को आधार बनाया। स्पेंसर ने अपने उद्विकास के नियम की व्याख्या अपनी प्रथम पुस्तक **फर्स्ट प्रिंसिपल**) First Principles(में की थी। यह सिद्धांत मूल रूप से इस बात पर आधारित है कि समाज की

उत्पत्ति और उनका निरंतर विकास होता रहा है। सारा संसार अत्यंत ही जटिल है और जिन पदार्थों से संसार का निर्माण हुआ है, वे एक दूसरे से घुले हुए हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

हॉबहाउस ने स्पेंसर के उद्विकास के सिद्धांत को सामाजिक सावयव के सिद्धांत से अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए लिखा है कि ''स्पेंसर ने ऐसा दावा किया था कि समाजशास्त्र में उनका सामाजिक उद्विकास का सिद्धांत सामाजिक सावयव के सिद्धांत की तुलना में अधिक मौलिक है।'' उद्विकास के सिद्धांत के प्रतिपादक डार्विन है। जिन्होंने शरीर में होने वाली जैविक परिवर्तनों के लिए इस प्रक्रिया को लागू किया जबकि मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र में हरबर्ट स्पेंसर, मार्गन तथा टॉयलर ने समाज के संदर्भ में इस सिद्धांत को लागू किया। स्पेंसर के सिद्धांत को समझने के लिए आवश्यक है कि हम उद्विकास के अर्थ को समझें।

2.3.2 उद्विकास का अर्थ (Meaning of Evolution)

उद्विकास निरंतर चलाने वाली एक प्रक्रिया है। उद्विकास अंग्रेजी भाषा के (Evolution) का हिंदी रूपांतरण है। 'Evolution' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Evolver' शब्द से हुई है। इसमें 'E' का अर्थ है। 'बाहर की ओर' (Out) तथा 'Volvere' का अर्थ है। 'प्रकट होना' (to unfold या ('विकसित होना' (ToDevelop) इस अर्थ में किसी भी वस्तु के बाहर की ओर फैलने को उद्विकास कहते हैं, पर यदि हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या करें तो यह अर्थ अपूर्ण है। किसी भी वस्तु के बाहर की ओर फैलने को उद्विकास कहते हैं। वैज्ञानिक अर्थ में उद्विकास एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें एक सीधी-साधी सरल वस्तु क्रमिक परिवर्तन के कारण जटिल रूप धारण कर लेता है। किसी भी वस्तु के बाहर की ओर फैलने को उद्विकास कहते हैं। समाजशास्त्र में उद्विकास की अवधारणा प्राणीशास्त्र से ली गई है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें एक सीधी-साधी वस्तु या सावयव क्रमिक परिवर्तन के कारण जटिल रूप धारण करती है। जैसे एक बीज का अंकुरित होकर वृक्ष का रूप धारण करना या एक सेल का मानव शिशु के रूप में परिवर्तित हो जाना उद्विकास है। इसी तरह जब किसी वस्तु के गुण ढांचे व कार्य में एक निश्चित दिशा में परिवर्तन हो तो हम उसे उद्विकास कहते हैं इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

निरंतर परिवर्तन + निश्चित दिशा + गुणात्मक अंतर + ढांचे व कार्य में भिन्नता =**उद्विकास**

2.3.3 उद्विकास की परिभाषाएं (Definition)

निम्नलिखित विद्वानों ने उद्विकास को इस प्रकार परिभाषित किया है-

मैकाइवर एवं पेज (Maciver and Pageन की एक दिशा है।के अनुसार उद्विकास परिवर्त (जिसमें बदलते हुए पदार्थ की विविध दिशाएं प्रकट होती हैं, जिससे उस पदार्थ की वास्तविकता का पता चलता है।"

आगबर्न एवं निमकॉफ(Ogburn and Nimkoff) "उद्विकास केवल एक निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन है।"

स्पेंसर ने उद्विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है। "उद्विकास कुछ तत्वों का एकीकरण तथा उससे संबंधित वह गति है। जिसके दौरान कोई तत्व एक अनिश्चित तथा असंबद्ध समानता से निश्चित और संबद्ध विभिन्नता में बदल जाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उद्विकास एक विशेष दिशा में होने वाला परिवर्तन है। जो वस्तुओं की आंतरिक शक्ति के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होता है। जिससे वस्तुओं में जटिलता बढ़ती है।

2.3.4 उद्विकास की विशेषताएं (Characteristics of Evoluvation)

1. **उद्विकास निरंतर एवं धीमी गति से होने वाला परिवर्तन है-** जैसा कि उद्विकास के अर्थ से स्पष्ट है कि उद्विकास समाज में होने वाला परिवर्तन है। लेकिन परिवर्तन की गति इतनी धीमी होती है कि इसे देख पाना असंभव होता है। परिवर्तन को हम एक निश्चित समय के पश्चात समझ पाते हैं। यदि हम जैविक परिवर्तन की बात करें तो भी देखते हैं कि एक बालक किशोर और युवा हो जाता है किंतु हमें उसके बड़े होने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देती। यह बात समाज पर भी लागू होती है। समाज में भी निरंतर परिवर्तन जारी है लेकिन इस परिवर्तन को हम एक लंबे समय के बाद अनुभव कर पाते हैं।
2. **उद्विकास सदैव सरलता से जटिलता की ओर होता है-** किसी भी वस्तु के बाहर की ओर फैलने को हम उद्विकास कहते हैं और यह प्रक्रिया हमेशा सरलता से जटिलता की ओर होती हैं। कोई भी वस्तु प्रारंभ में आपस में इतनी घुली मिली और सरल होती है कि उसके बीच में अंतर स्पष्ट करना कठिन होता है। किसी भी प्राणी या वस्तु का स्वरूप तभी निश्चित होता है, जबक वह पृथक हो जाती हैं, किसी भी क्षेत्र में विकास चाहे वह सामाजिक विकास हो या जैविक विकास हो दोनों की प्रारंभिक अवस्था बहुत ही सरल होती है। जैसे-जैसे उनमें विकास होता है उनका स्वरूप जटिल होता जाता है। उदाहरण के तौर पर एक पौधा जब छोटा रहता है तो हम उसके पत्ते और तने तक को गिन सकते हैं लेकिन जैसे ही वह बड़ा होता है, उसमें इतनी जटिलता आ जाती है कि हम उसके तने तक को भी नहीं गिन पाते हैं। यही बात मानव शरीर पर भी लागू होती है। प्रारंभ में मानव भ्रूण केवल एक मांस का टुकड़ा होता है पर विकास के क्रम में धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर, नाक-कान, ऑख आदि विकसित होते हैं और दिखाई भी देने लगते हैं। समय के परिवर्तन के साथ मानव मस्तिष्क में जटिलता भी बढ़ती जाती है।
3. **यह विभेदीकरण की प्रक्रिया है-** उद्विकास के दौरान समाज के विभिन्न अंगों के बीच में विभिन्नता पैदा होती है। उद्विकास के दौरान मानव के विभिन्न अंग एक दूसरे से पृथक हो जाते हैं और उनके

कार्यों में बटवारा हो जाता है। उसी तरह से समाज के विभिन्न अंग भी पृथक होते हैं। कार्य क्षेत्र भी अलग-अलग होते हैं। यह प्रक्रिया विभेदीकरण की प्रक्रिया कहलाती है। इस तरह उद्विकास को विभेदीकरण की प्रक्रिया कह सकते हैं।

4. **उद्विकास एक निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन है-** उद्विकास निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन है। हालांकि यह कभी निश्चित नहीं होता है। यदि हम समाज के और मानव शरीर के विकास की प्रक्रिया को देखें तो हमें यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि प्रारंभ में समाज का स्वरूप बहुत सरल था और विकास के क्रम में निरंतर आगे की ओर बढ़ रहा है, प्रगति की ओर है, मानव शरीर भी प्रारंभ में बाल्यावस्था में रहता है, उसके बाद में किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में पहुंचता है। यह उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि उद्विकास एक निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन है।
5. **वस्तु की आंतरिक वृद्धि उद्विकास है-** उद्विकास हमेशा वस्तु की आंतरिक वृद्धि के कारण होता है। यदि किसी वस्तु में कोई परिवर्तन नहीं होगा तो उद्विकास की प्रक्रिया संभव नहीं है।
6. **वस्तु और समाज में गुणात्मक परिवर्तन-** यदि किसी वस्तु और समाज में गुणात्मक परिवर्तन होता है। तभी उद्विकास की प्रक्रिया संभव है। उद्विकास के दौरान समाज मे और वस्तु में गुणात्मक परिवर्तन होता है न कि संख्यात्मक। गुणात्मक परिवर्तन को हम अनुभव कर सकते हैं उसका मापन संभव नहीं है।
7. **उद्विकास निश्चित चरणों एवं क्रम में होने वाला परिवर्तन है-** उद्विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि विकास क्रम में प्रथम चरण के बाद द्वितीय चरण, द्वितीय के बाद तृतीय एवं चतुर्थ चरण में आता है। ऐसा नहीं हो सकता कि प्रथम के बाद तृतीय चरण आ जाए, तृतीय के बाद पंचम आए और फिर द्वितीय चरण आए। उदाहरण के तौर पर ऐसा नहीं हुआ है कि औद्योगिक युग के बाद हम आखेट अवस्था पर आए हो या विकास शारीरिक विकास के क्रम में एक बच्चा पहले युवा हो फिर बाल्यावस्था में आए और इसके बाद में वृद्धावस्था में पहुंचे।
8. **उद्विकास एक मूल्य रहित प्रक्रिया है-** उद्विकास एक निरंतर होने वाली प्रक्रिया है और इस परिवर्तन को भी हम लंबे समय के बाद समझ पाते हैं। प्रगति की तरह इसका संबंध समाज की अच्छाई और बुराइयों से नहीं होता है। इसका सामना हमें एक निश्चित समय के पश्चात करना पड़ता है। उद्विकास का परिणाम अच्छा है या बुरा इसलिए हम इसे एक मूल्य रहित प्रक्रिया कहते हैं।
9. **उद्विकास के चरणों की पुनरावृत्ति नहीं होती-** उद्विकास एक क्रम में होने वाला परिवर्तन होता है। इसलिए जिस क्रम को छोड़ दिया गया है। उसे पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता जैसे एक बालक युवा होने के बाद पुनः बाल्यावस्था में नहीं आ सकता या उस अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता।

10. **उद्विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है-** उद्विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। क्योंकि यह हर स्थान में हर समय पाई जाती है।

2.3.5 सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया (Process of Evolution)

सामाजिक उद्विकास के डार्विन के सिद्धांत से प्रभावित होकर समाजशास्त्रियों ने इसे समाज पर भी लागू करके देखा और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि समाज में भी उद्विकास की प्रक्रिया होती है। इस सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया की अवधारणा का विकास सर्वप्रथम **हरबर्ट स्पेंसर** के द्वारा किया गया। स्पेंसर के अनुसार उद्विकास की प्रक्रिया को चिन्हित करने का एक तरीका नियंत्रण की व्यवस्था को पहचानना है। स्पेंसर का कहना था कि आदिवासी समाज में राज्य और सरकारें नहीं होती हैं। सामंती समाज में राज्य और सरकार का विकास होता है। यहां पर वंशानुक्रम पर आधारित राजशाही होती है। औद्योगिक जटिल समाजों में राज्य और सरकार का चरित्र बदल जाता है। और यह जनभागीदारी पर आधारित होता है। **लेविस कोजर** के अनुसार ''हरबर्ट स्पेंसर ने उद्विकास के लक्षणों को अलगअलग मानकर भ्रम पैदा किया है।-''

स्पेंसर सिद्धांत रूप में उद्विकास को प्रगतिशील विभ ेदीकरण एवं एकीकरण कहते हैं। स्पेंसर के अनुसार उद्विकास पदार्थ का एकीकरण तथा उसी से संबंधित गति का आचरण परिवर्तन है। जिसके मध्य पदार्थ एक सापेक्षतया अनिश्चित असंबद्ध एकरूपता से सापेक्षतया निश्चित संबंध अनेकरूपता में बदल जाता है और जिसके मध्य पदार्थ की गति भी समानांतर परिवर्तन से गुजरती है।

स्पेंसर ने मानव समाज में भी सामाजिक उद्विकास को विभेदीकरण एवं एकीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से लागू किया है। स्पेंसर का कहना है कि सामाजिक उद्विकास यह दर्शाता है कि मानव समाज सैनिकवाद से औद्योगिकवाद के स्तर पर पहुंचा है। इस बात को **गुमपलोविज (Gumploviz)** तथा **ओपेनहीमर (Oppenheimer)** ने सामाजिक उद्विकास को विभिन्न समाजों के बीच अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रक्रिया के माध्यम से स्पष्ट किया है। इस आधार पर इसमें केवल वे ही समाज के स्वरूप एवं प्रकार स्थाईत्व प्राप्त कर सके हैं जो संघर्ष में स्वयं को शक्तिशाली एवं सफल सिद्ध कर पाए थे।

सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया में विश्वास करने वाले समाजशास्त्रियों का कथन है कि सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों का विकास निरंतर होता रहता है। विकास के कुछ निश्चित स्तर होते हैं और इन स्तरों का एक क्रम भी होता है। समाज की सभी संस्थाओं एवं समितियों को सभी स्तरों में एक ही क्रम के अनुसार गुजरना पड़ता है। इस तरह सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया में निम्न बातें देखी जा सकती हैं -

1. प्रत्येक सामाजिक संस्था एवं समिति का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर उसमें आंतरिक वृद्धि अर्थात विकास की प्रक्रिया देखी जाती है।
2. उद्विकास सरलता से जटिलता की ओर होता है। अर्थात समाज अपने-अपने प्रारंभिक स्तर पर सरल स्वरूप में था परंतु जैसे-जैसे उसका विकास होता गया उसमें जटिलता आती जाती है।

3. उद्विकास की प्रक्रिया निरंतर होती है और यह धीरे-धीरे होती है। निरंतरता तो विकास का आधारभूत गुण है और धीरे-धीरे होना भी उसका स्वभाव है।
4. उद्विकास की यह प्रक्रिया समाज में कुछ निश्चित स्तरों से होकर गुजरती है और यह निश्चित स्तर प्रत्येक समाज में एक ही क्रम में आते हैं।
5. सामाजिक उद्विकास सामाजिक परिवर्तन का ही एक स्वरुप है।
6. सामाजिक उद्विकास किसी की इच्छा अथवा अनिच्छा पर आश्रित नहीं है।
7. विकास का कोई लक्ष्य नहीं होता, अतः इसकी दिशा के बारे में कोई अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता।
8. उद्विकास की प्रक्रिया आकार के बढ़ने या जनसंख्या के बढ़ने से होती है। जनसंख्या के बढ़ने से संरचनाएं बढ़ती और जटिल होती जाती है।
9. उद्विकास की प्रक्रिया में श्रम विभाजन बढ़ता है। इसके कारण नए कार्यों के साथ-साथ नई संस्थाओं का उदय होता है और इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि होती जाती है।
10. इस प्रकार उद्विकास की इस प्रक्रिया को समाज की हर समिति, संस्था तथा सांस्कृतिक इकाई में स्पष्ट देखा जा सकता है।

धर्म, कला, परिवार, विवाह, आर्थिक जीवन, समाज, संस्कृति और सभ्यता सभी में उद्विकास पाया जाता है। इस सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विद्वानों में **स्पेंसर, सोरोकिन, लुईस मार्गन, अगस्त कॉम्ट, ममफोर्ड** और **परेटो** है। इन सभी विद्वानों ने खुद विकासवादी सिद्धांत का समर्थन किया है। **स्पेंसर** का कहना है कि उद्विकास का सिद्धांत प्रगति का सिद्धांत है। उद्विकास की अबाध प्रक्रिया से ही समाज एक समन्वय की ओर बढ़ रहा है। स्पेंसर ने जनसंख्या के परिवर्तनों के संबंध में इस आधार पर माल्थस का विरोध किया था। पूंजीवाद के आरंभिक दौर में जनसंख्या बढ़ गई थी। **माल्थस** का मानना था कि जनसंख्या पर नैसर्गिक और नकारात्मक नियंत्रण करना आवश्यक है पर स्पेंसर का कहना था कि इस नैसर्गिक एवं नकारात्मक नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होगी। स्पेंसर के अनुसार जनसंख्या उद्विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया के परिणामस्वरुप स्वतः व्यवस्थित हो जाएगी। प्रगति की प्रक्रिया ऐसी प्रक्रिया है जो सर्वजन हिताय उपायों एवं सुविधाओं को विकसित करेगी। प्रगति से समाज के अलगमाज में विरोध और असंतोष नहीं अलग पक्षों में तालमेल होगा स-होगा तथा सभी के लिए संसाधन और सुविधाएं उपलब्ध होंगी।

स्पेंसर के अनुसार उद्विकास की प्रक्रिया एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह क्रमिक स्वचालित और सामान्य प्रक्रियाहै। इस प्रक्रिया में नियोजन और बाहरी हस्तक्षेप से गड़बड़ हो जाती है। स्पेंसर इस उद्विकासीय योजना से पूंजीवादी समाज के स्वतः विकास की प्रक्रिया को प्रस्तुत कर रहे थे। वे यथास्थितिवादी थे वैचारिक दृष्टि से वे भौतिकवादी थे। उन्होंने किसी भी प्रकार की क्रांतिकारी बदलाव का विरोध नहीं किया।

2.3.6 उद्विकास के चरण (Stages of Social Evolution)

समाजशास्त्रियों ने सामाजिक उद्विकास केविभिन्न चरणों का वर्णन किया है। इन समाजशास्त्रियों के अनुसार मानव समाज सभ्यता और संस्कृति के उद्विकास को एक सामान्य क्रमिक योजना में देखा जा सकता है। **अगस्त कॉम्ट, हरबर्ट स्पेंसर, दुर्खीम, मार्क्स, वेब्लेन** आदि विद्वान इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं इनमें से कुछ के द्वारा बताए गए विकास के चरण इस प्रकार हैं -

1. अगस्त कॉम्ट ने सभ्यता एवं सामाजिक विकास के क्षेत्र को तीन स्तरों में विभक्त किया है-

A. धार्मिक अवस्था (Theological Stage)
B. तात्विक अवस्था (Mataphysical Stage)
C. वैज्ञानिक अवस्था (Positive Stage)

कॉम्ट के अनुसार अपने प्रारंभिक समय में समाज **धार्मिक** स्तर पर था। सामाजिक क्रियाएं धर्म की परिधि पर केंद्रित होती थी। विकास के दूसरे स्तर में समाज **दार्शनिक विचारों** से युक्त था। दार्शनिक विचारधारा और भौतिक संस्कृति का विकास इस युग की विशेषता थी। सामाजिक उद्विकास के अंतर्गत विकास की तीसरी अवस्था है **वैज्ञानिक अवस्था**। इस अवस्था में समाज में विज्ञान का बोलबाला है। समाज के सदस्य हर बात को वैज्ञानिक तर्कों के बाद ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार सामाजिक उद्विकास के तीन स्तर धार्मिक तात्विक और वैज्ञानिक है।

2. **मुर्डोक (Murdock)** जो कि एक अमेरिकन मानवशास्त्री हैं ने 1965 में 915 विद्यमान समाजों के अध्ययन के आधार पर सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया है। इसमें सरल से सरल लघु समुदायों से लेकर उन्नत व जटिल समाज भी सम्मिलित थे। इन समाजों के वर्गीकरण के अध्ययन से समाज के प्रकार व समाज में इनके उद्विकास का भी अनुमान हो जाता है।
3. भारतीय समाजशास्त्री **श्यामाचरण दुबे** ने भी सामाजिक संरचनाओं के संभावित उद्विकास के चरणों की रूपरेखा प्रस्तुत की है। जो निम्नलिखित इस प्रकार हैं-

1. **सरल शिकारी एवं खाद्यान्न संग्राहक समाज-**

श्यामाचरण दुबे के अनुसार सरल शिकारीएवं खाद्यान्न संग्राहक समाज सामाजिक संरचना का सबसे पहला स्वरुप है। इस तरह का समाज आज से 35000 वर्ष पूर्व विद्यमान थे। इनके यंत्र बड़े सीधे-साधे और अपरिपक्व रूप में थे।

2. **उन्नत शिकारी एवं खाद्य संग्राहक समाज**

यह विकास के दूसरे चरण को प्रकट करता है। इसमें उन्नत यंत्र एवं हथियार विकसित हो गए थे जैसे धनुष-बाण आदि आज भी ऐसे समाज विश्व के अनेक भागों में पाए जाते हैं। **एसदुबे .सी.** ने बागवानी समाज को भी दो भागों में बांटा है। **सरल बागवानी** समाज और **उन्नत बागवानी** समाज। सरल बागवानी समाजों में उन समाजों को रखा है। जिन्होंने की प्रारंभ में ही पेड़ पौधों को लगाना सीख लिया था परंतु वह उन्नत

औजारों आदि का उपयोग नहीं करते थे दूसरी श्रेणी में उन बागवानी समाज को रखा गया है। जो उन्नत औजारों का प्रयोग कर रहे थे।

3. इसके बाद तीसरे क्रम में **कृषक समाजों** का स्थान होता है। इन कृषक समाज को भी बागवानी समाज की भांति यांत्रिकी विकास के बाद में सरल एवं उन्नत समाज में रखा जा सकता है।
4. चौथे क्रम में **औद्योगिक समाजों** का उदय हुआ। ये उन्नत विज्ञान, तकनीकी, यंत्र एवं नए शक्ति के साधनों के उपयोग पर आधारित हैं। ये समाज विकास के क्रम में बाद में विकसित हुए हैं। इसी युग में कृषि एवं उद्योगों का यंत्रीकरण एवं औद्योगिकरण हुआ। यातायात एवं संचार के साधनों का विकास हुआ और इस विकास ने विश्व को ही एक नए समुदाय और बाजार के रूप में परिवर्तित कर दिया औद्योगिक समाज के विकास का चरम बिंदु अणु ऊर्जा एवं इलेक्ट्रॉनिक्स के रूप में देखा जा रहा है।

डेनियल बेल तथा **टॉफलर** जैसे विचारको का मत है कि मानव समाज उत्तरोत्तर समाज के रूप में विकसित होता जा रहा है। इसलिए हम दुबे के सामाजिक उद्विकास की उपर्युक्त योजना में एक और चरण जोड़ सकते हैं और वह होगा **उद्योगोत्तर समाज**। यह समाज नवीन संभावनाओं को प्रकट कर रहा है और इससे सामाजिक जीवन में नवीन परिवर्तनों की आहट होने लगी है।

उद्विकास ही क्रम के संबंध में हम निम्न बातों पर ध्यान दे सकते हैं -

1. सामाजिक विकास के चरण सार्वभौमिक या अवश्यंभावी नहीं है। कोई भी समाज किसी विकास के क्रम पर रुक गया है। तो कोई किसी अन्य चरण पर।

2. यह भी आवश्यक नहीं है कि एक समाज विकास के एक चरण से दूसरे चरण में होकर ही अंतिम चरण में पहुंचा होगा।

3. ये चरण सामाजिक संरचनाओं के आदर्श प्रारूपों को बताते हैं। वास्तविक समाज मिश्रित प्रकृति के भी हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर हम भारतीय समाज को उद्योगोन्मुख कृषक समाज कह सकते हैं।

2.3.7 सामाजिक उद्विकास के कारक (Factors of Social Evolution)

आगबर्न ने सामाजिक उद्विकास की चार कारकों का उल्लेख किया है-

1. **आविष्कार (Invention) -** समाज में परिवर्तन आविष्कार के कारण होते हैं। समाज में होने वाले यह अविष्कार मानसिक योग्यता, मांग अन्य सांस्कृतिक तत्वों पर आधारित होते हैं। समाज में इन तीनों चीजों की उपलब्धि जितनी अधिक। वह समाज उतने ही अधिक नए-नए अविष्कार करेगा और इस अविष्कार के परिणामस्वरुप समाज मे परिवर्तित होगा।
2. **संचय (Accumulation) -** किसी भी समाज में संस्कृति के तत्वों का जैसे-जैसे संचय बढ़ता जाता है। वह संस्कृति उतनी ही समृद्ध होती जाती है और इससे अविष्कार के भी अवसर बढ़ते हैं।

3. प्रसार (Diffusion) -एक समाज के द्वारा किए गए आविष्कार का प्रसार दूसरे समाज में भी होता है। जिससे सामाजिक विकास एवं परिवर्तन व्यापक एवं शीघ्र होते हैं।

4. सामंजस्य (Adjustment) - विभिन्न समाजों में तथा अपने ही समाज में विभिन्न समूहो, संगठनों एवं संस्थाओं के बीच सामंजस्य बढ़ने पर भी परिवर्तन तीव्रता से होते हैं क्योंकि एक अंग में परिवर्तन दूसरे में परिवर्तन पैदा करता है।

2.3.8 उद्विकास के स्वरूप (Forms of Evolution)

उद्विकासवादियों ने उद्विकास के चार प्रमुख स्वरूपों का उल्लेख किया है।

2.3.8.1 समरेखीय उद्विकास (Unlinear Evolution)

प्रारंभिकउद्विकासवादियों की मान्यता थी कि समरेखीय उद्विकास, उद्विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें उद्विकास एक सीधी रेखा में और एक निश्चित क्रम में हुआ है। आज हम विश्व के सभी समाजों और संस्कृतियों का अध्ययन करें तो पाते हैं कि यह सभी कुछ निश्चित स्तरों से होकर प्रगति की ओर बढ़ रही हैं और इनका अंतिम उद्देश्य पूर्णता की स्थिति को प्राप्त करना है।

समरेखीय उद्विकास में निम्न विशेषताएं पाई जाती हैं -

1. यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वृद्धि और विकास एक ही दिशा में होता है। जिन चरणों से होकर वह एक बार गुजर जाए पुनः लौटकर वहां नहीं पहुंच सकता।
2. प्रत्येक समाज विकास के कुछ निश्चित चरणों से गुजरता है।
3. उद्विकास में प्रगति निहित है। प्रत्येक अगला चरण पिछले चरण से उच्च एवं उत्तम समझा जाता है।
4. समरेखीय उद्विकास को मानने वाले विद्वानों में मार्गन, अगस्त कॉम्ट, बैकोफैन, टॉयलर, हेडन, लेबिबुहल , आदि प्रमुख है। समरेखीय विकासवादी समाज, संस्कृति, धर्म, आर्थिक जीवन, परिवार, विवाह, भाषा आदि के विकास के निश्चित स्तरों एवं क्रम का उल्लेख करते हैं।

जैसे**मार्गन** समाज का विकास जंगली अवस्था, बर्बर अवस्था एवं सभ्य व्यवस्था में मानते हैं। मार्गन ने परिवार के उद्विकास के पांच स्तरों का वर्णन किया हैयह हैं समरक्त परिवार -, समूह परिवार, सिंडेसिमयन परिवार, पितृसत्तात्मक परिवार तथा एक विवाही परिवार।

टायलर धर्म का विकास **बहुदेववाद** से **एकदेववाद** की ओर मानते हैं। आर्थिक जीवन का विकास भी शिकारी अवस्था, पशुपालन अवस्था, कृषि एवं प्रौद्योगिक अवस्थाओं के रूप में हुआ है। कला का उद्विकास भी प्राकृतिक, प्रतीकात्मक एवं ज्यामिति स्तरों से हुआ है। कोई भी समाज या संस्कृति विकास के किस स्तर पर है। इसका मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि वे किस अवस्था को पार करके वर्तमान अवस्था में आए हैं।

अगस्त कॉम्ट के अनुसार मानव इतिहास भी सभ्यता के तीन स्तरों से गुजरा हुआ माना जाता है-

1. दैवीय और सैनिक युग -इस युग में सामान्य सैद्धांतिक अवधारणाओं पर ईश्वरी प्रभाव रहता है। इसमें कल्पना को महत्व दिया जाता है। अवलोकन एवं अन्वेषण को स्वीकार नहीं किया जाता सामाजिक संबंधों का प्रमुख आधार सेना होती है तथा विजय प्राप्त करना ही समाज का प्रमुख उद्देश्य होता है।

2. तात्विक और न्यायिक युग - यह युग संक्रांति काल माना जाता है। इसमें उद्योगों का विकास प्रारंभ होने लगता है। पर समाज का स्वरूप न तो पूर्णतः सैनिक होता है और न ही औद्योगिक।

3. विज्ञान और उद्योग का युग - इस युग में सभी विशिष्ट एवं सामान्य सैद्धांतिक अवधारणाएं वैज्ञानिक हो जाती हैं। अवलोकन एवं अन्वेषण को महत्व मिलने लगता है। इस युग में वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति को प्राप्त करना ही प्रमुख उद्देश्य होता है। इस अवस्था में सामाजिक तकनीकी और आध्यात्मिक सभी दृष्टि से प्रगति होती है।

मार्क्स और एंजल्स ने भी समाज के विकास को एक रेखीय रूप में प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार भी प्रत्येक समाज तीन स्तरों से गुजरता है -

1. सामंतवादी समाज
2. पूंजीवादी समाज
3. साम्यवादी समाज

सभ्यता के प्रत्येक स्तर में इनकी विनाश के बीज भी मौजूद होते हैं, जो उसे आगे के स्तर के लिए तैयार करते हैं। एक स्तर से दूसरे स्तर में संक्रमण ऐतिहासिक दृष्टि से आवश्यक एवं अनिवार्य है।

2.3.8.2 बहु रेखीय उद्विकास (Multilinear Evolution)

जूलियन स्टीवर्ट ने उद्विकास के समरेखीय सिद्धांत के स्थान पर बहुरेखीय सिद्धांत को प्रस्तुत किया है। इनका मानना है कि विश्व के सभी समाज और संस्कृति उद्विकास के समान स्तरों से नहीं गुजरे हैं बल्कि अलग अलग रहा है।-अलग क्षेत्रों में उनके विकास का क्रम अलग-**स्टीवर्ट** ने अमेरिका, मेसोपोटामिया, मिस्र और चीन की संस्कृतियों और समाज का अध्ययन करने के बाद बताया कि यह सभी विभिन्न क्रमों से उद्विकसित होकर सामान्य अवस्था में पहुंचे हैं। सिद्धांत के इस विचारधारा के समर्थकों का मत है कि उद्विकास का कोई एक क्रम न होकर अनेक क्रम होते हैं। उदाहरण के तौर पर एक समाज पहले पशुपालन अवस्था में रहकर फिर शिकारी, कृषि, औद्योगिक अवस्था को प्राप्त करता है। उसी तरह परिवार भी बहु पत्नी विवाह, बहुपति विवाह, समूह विवाह से एक विवाह की स्थिति में पहुंचता है। इस विचारधारा का जन्म समरेखीय उद्विकास की आलोचना के रूप में हुआ है।

2.3.8.3 चक्रीय उद्विकास (Cyclic Evolution)

इस प्रकार के उद्विकास में विश्वास रखने वाले विद्वानों का मत है कि उद्विकास कभी भी एक सीधी रेखा में नहीं होता है। बल्कि यह **चक्र** के रूप में **पेंडुलम** की तरह होता है। यह उतारचढ़ाव के रूप में- होता

है। उद्विकास का यह मत सबसे बाद में आया है। इसलिए इसे नव उद्विकासवादी विचारधारा भी कहते हैं। लेसली व्हाइट, ओसवाल्ड, स्पैंगलर, सोरोकिन, टॉयनवी, आदि इस विचारधारा का समर्थन करते हैं। इसके समर्थकों का कहना है कि कोई भी सामाजिक संस्था एक विशिष्ट रूप में प्रारंभ होती है। पर वह धीरेधीरे - इसके विपरीत दिशा की ओर भी विकसित हो सकती है। और आगे चलकर वह पुनः अपने रूप में भी आ सकती है। इसे हम उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं कि प्रारंभ में समाज में सामूहिक संपत्ति का महत्व था पर धीरेधीरे व्यक्तिगत संपत्ति का महत्व बढ़ने लगा।-

पुनः सामूहिक अधिकार और सामूहिक स अब ंपत्ति की अवधारणा पनपने लगी है। **स्पैंगलर** ने सभ्यताओं के उत्थान और पतन के चक्र को प्रस्तुत किया और उद्विकास का चक्रीय रूप समझाया। **टायनबी** ने अपनी पुस्तक **'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' (A study of History)** में विश्व की अध्ययन संस्कृतियों का 20 कर उनमें वृद्धि के समान प्रतिमानो को ढूंढा तथा उनके उद्विकास के इतिहास का उल्लेख किया। **सोरोकिन** ने भी समाज के उद्विकास के चक्रीय स्वरूप को व्यक्त किया है।

2.3.8.4 सार्वभौमिक उद्विकास (Universal Evolution)

उद्विकास की इस विचारधारा के अनुसार मानव समाज का विकास सरलता से जटिलता की ओर हुआ है। यह उद्विकास के निश्चित चरणों मे या सम रेखीय उद्विकास में विश्वास नहीं रखता और न ही इस बात को मानता है कि सभी समाजों के विकास सामान स्तरों से गुजरते हैं। सार्वभौमिक उद्विकास का सिद्धांत ही मानता है कि संपूर्ण मानव समाज का उद्विकास हुआ है और इसके परिणाम एवं स्वरूप अलग-अलग रहे हैं। इस विचारधारा के समर्थक स्पेंसर हैं जो उद्विकास को समानता से असमानता की ओर और समरूपता से बहुरुपता की ओर परिवर्तित होना मानते हैं।

2.3. 9 क्या उद्विकास में प्रगति ही होती है?

सर ने उद्विकास की जो व्याख्या की हैहरबर्ट स्पें, उसके आधार पर यह सवाल भी उठता रहा है कि क्या उद्विकास हमेशा समाज को प्रगति की ओर ले जाता है। इस प्रश्न का उत्तर कहीं पर भी स्पेंसर ने निर्धारित शब्दों में नहीं दिया है। एक स्थान पर वे कहते हैं कि जहां कहीं उद्विकास होता है, आवश्यक नहीं है कि उसमें समाज प्रगति करें। उद्विकास में दोनों ही बातें हो सकती हैं समाज उन्नति भी कर सकता है और समाज का पतन भी हो सकता है।

अपनी बाद की रचनाओं में हरबर्ट स्पेंसर ने लिखा है कि उद्विकास एक रेखीय होता है। साधारणतया उद्विकास का परिणाम प्रगति ही होता है। अपने इस कथन के लिए वे मनुष्य के जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक का दृष्टांत देते हैं। जन्म के पश्चात शिशु विकसित होता है, किशोर बनता है, वयस्क होता है एवं इस तरह से विकास की गति चलती रहती है। स्पेंसर का यह कथन ठीक है लेकिन कहींयं अपने इस कथन कहीं स्पेंसर स्व-से भी मुकर जाते हैं। वे विविध सभ्यताओं के इतिहास को रखते हैं और यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इन

सभ्यताओं ने सामान्य तौर पर उन्नति की है, लेकिन ऐसी भी सभ्यताएं हैं जिनका की आज कोई नाम नहीं लेता। निष्कर्ष में यही कहां जा सकता है कि साधारणतया उद्विकास जब विभाजिता की ओर बढ़ता है उन्नति को लाता है। लेकिन सदैव ऐसा होना जरूरी नहीं है। उद्विकास पतन भी ला सकता है।

2.3.10 डार्विन का उद्विकासीय सिद्धांत (Darwin's Theory of Evolution)

सामाजिक उद्विकास का सिद्धांत डार्विन के उद्विकासवाद पर आधारित है। समाजशास्त्र में उद्विकास की अवधारणा प्राणीशास्त्र से ग्रहण की गई है। 1859 में डार्विन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज** का प्रकाशन किया इसमें उन्होंने जीवो की उत्पत्ति के बारे में उद्विकासीय सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अब तक यह धारणा चली आ रही थी कि पेड़, पौधे और जीव-जंतुओं की सृष्टि ईश्वर ने की है। किंतु डार्विन ने अपने लंबे समय के अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष दिया कि प्राणियों का उद्विकास सरलता से जटिलता एवं समानता से भिन्नता की ओर हुआ है। प्रारंभ में पृथ्वी पर कोई भी जीव नहीं थे। विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के कारण जीवो का जन्म हुआ। आरंभिक अवस्था में जीव एक कोशिकीय थे। धीरेधीरे - उनकी शरीर संरचना में परिवर्तन हुआ, उनमें भिन्नता आती गई और विभिन्न अंग पृथक हुए। **डार्विन** का मत है कि प्रारंभ में जीव बहुत सरल कोटि का होता है। उसके विभिन्न अंगों में अनिश्चित संबद्धता होती हैं। जिसे पहचाना नहीं जा सकता और न ही पृथक किया जा सकता है। पर उसमें धीरेधीरे परिवर्तन दिखाई देने लगता - है।उद्विकास का यह प्रथम चरण है। जिसमें सरलता, अस्पष्टता एवं अभिन्नता धीरेधीरे जटिलता स्पष्टता एवं - संबद्धता में बदल जाती है। ज ीव के उद्विकास के दूसरे चरण में विभिन्न अंग अलग-अलग कार्य करने लगते हैं और उनमें श्रम विभाजन भी पैदा हो जाता है। यह अंग एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव को भी प्रभावित करते हैं। उद्विकास की यह प्रक्रिया निरंतर एवं धीमी गति से विभिन्न चरणों में होती है। इसलिए नया रूप सामने आने पर ही परिवर्तन ज्ञात होता है। उद्विकास के दौरान वस्तु के आंतरिक गुणों में भी परिवर्तन आ जाता है।

उद्विकास की विचारधारा से संबंधित डार्विन के सिद्धांत को समझने से स्पष्ट होता है कि इसमें 5 बातों की प्रधानता होती है।–

1. प्रत्येक जीवित प्राणी सरलतम प्रारंभिक अवस्था से जटिलतम अवस्था की ओर बढ़ता जाता है।
2. विभिन्नीकरण की प्रक्रिया द्वारा जैसेजैसे स्वरूप निश्चित होता जाता है। वैसे ही उन अंगों के कार्य भी - निश्चित होते जाते हैं।
3. विभिन्नता होने पर भी सभी अंग परस्पर संबंधित रहते हैं। इनमें अंतर्संबंध और आत्मनिर्भरता बनी रहती है।
4. निरंतरता उद्विकास का प्रमुख आधार है।

5. प्रत्येक पदार्थ एक निश्चित स्तर से होता हुआ अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त करता है। जैसे मनुष्य जन्म के पश्चात शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था को प्राप्त करता हुआ अंत में मृत्यु को प्राप्त करता है।

2.3.11 स्पेंसर का उद्विकास का सिद्धांत (Spencer's Theory of Evolution)

डार्विन के उद्विकासीय सिद्धांत को समाज पर लागू करने का श्रेय अंग्रेज समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेंसर को है। उन्होंने अपनी पुस्तक प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी में समाज और सावयव में सादृश्यता स्थापित करके सामाजिक उद्विकास की अवधारणा को जन्म दिया था। हरबर्ट स्पेंसर ने सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत को एक विशिष्ट रुप में प्रस्तुत किया है। स्पेंसर के सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत को समझने के लिए उसके भौतिक उद्विकास का सिद्धांत एवं जीवशास्त्र के सिद्धांत को समझना होगा।

2.3.11.1 भौतिक विकास का सिद्धांत

भौतिक विकास के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए स्पेंसर ने दो भागों में बांटा है-

1. अज्ञेय (Unknowable)
2. ज्ञेय (Knowable)

स्पेंसर के अनुसार जो ज्ञान से परे हैं वह **अज्ञेय (Unknowable)** है। अज्ञेय का संबंध धर्म से है। उसका विषय आत्मा परमात्मा है। विज्ञान का इस से कोई संबंध नहीं इसलिए मनुष्य का ज्ञान उस क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाता है। अतः हम उस क्षेत्र को छोड़ देते हैं। विज्ञान का संबंध **ज्ञेय (Knowable)** से है। इसका काम उन विषयों को खोजना है। जो हमारे ज्ञान की सीमा में आते हैं। इसलिए हम उसे ही खोजने का प्रयास करते हैं। इसके द्वारा विश्व के पदार्थों की उत्पत्ति तथा विकास के नियमों एवं सिद्धांतों को ज्ञात किया जाता है।

स्पेंसर के अनुसार जो सिद्धांत भौतिक जगत के विकास पर लागू होते हैं, वही नियम सामाजिक विकास पर भी लागू होते हैं। इसलिए सामाजिक विकास को जानने के लिए भौतिक विकास के नियमों को जानना आवश्यक है। स्पेंसर ने इस नियम का विस्तृत वर्णन अपनी पुस्तक 'फर्स्ट प्रिंसिपल' (First Principle) में किया है। स्पेंसर के अनुसार बौद्धिक विकास को समझने के लिए भौतिक जगत के कारणों को जानना आवश्यक है। स्पेंसर कहता है कि प्रत्येक विचारक कारणों की खोज करता है और उसे ज्ञात होता है कि भौतिक विकास का मूल कारण **शक्ति (Force)** है। शक्ति का अपना क्या रूप है। यह हम नहीं जानते क्योंकि **शक्ति अज्ञेय** है। पर शक्ति के दो रूप हैं जो ज्ञेय है। यह है -**पदार्थ (Matter)** एवं **गति (Motion(** स्पेंसर के अनुसार इसी आदिशक्ति के क्रियाशील हो जाने पर पदार्थ एवं गति के माध्यम से विकास होता है। इस भौतिक विकास की प्रक्रिया के तीन बुनियादी नियम हैं-

1. **शक्ति के स्थायित्व का नियम (Law of persistence of Force)**

शक्ति का यह बुनियादी नियम है कि यह कारणों का आदि कारण है। शक्ति में स्थायित्व रहता है। स्थायित्व का अर्थ है कि इसकी मात्रा घटती-बढ़ती नहीं है। यह केवल विकास का कारण है। इसलिए विकास होने पर इसके स्थायित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

2. **पदार्थ की अविनाशिता का नियम (Law of Indestructibility of Matter)**

भौतिक विकास को समझाने के लिए स्पेंसर ने पदार्थ की अविनाशिता का दूसरा बुनियादी नियम प्रस्तुत किया। इस नियम के अनुसार पदार्थ का विनाश नहीं होता क्योंकि पदार्थ स्वयं शक्ति का एक पहलू है। पदार्थ को हम स्थाई तो नहीं कह सकते क्योंकि उसका रूप समयसमय पर- बदलता रहता है। पदार्थ का स्थायित्व इसी बात में है कि वह नष्ट नहीं होता पर विकास की प्रक्रिया में आकर परिवर्तित हो जाता है। पदार्थ के रूप में परिवर्तन करने से ही विकास की प्रक्रिया चलती है।

3. **गति की निरंतरता का नियम (Law continuity of motion)**

भौतिक विकास का तीसरा बुनियादी नियम गति से संबंधित है। पदार्थ की तरह गति का भी कभी विनाश नहीं होता, गति रूप बदलती रहती है। गति में भी स्थिरता का नियम काम करता है। स्थिरता का अर्थ है कि विकास की प्रक्रिया में आकर गति परिवर्तित होती है, रूप बदलती है, पर नष्ट नहीं होती।

2.3.12 विकास के चार गौण नियम

शक्ति पदार्थ एवं गति के संबंध में तीन बुनियादी या प्राथमिक नियम (Three fundamental law) का प्रतिपादन करने के बाद स्पेंसर ने विकास के चार गौण नियमों (Four secondary proposition) का प्रतिपादन किया। यह नियम इस प्रकार हैं -

2.3.12.1 नियमों की एकता का नियम (Law of uniformity of law) स्पेंसर के अनुसार संसार में सभी स्थानों पर एक ही नियम कार्य करते हैं। किन्ही दो नियमों में कभी भी विरोध संभव नहीं है। हमें जो भिन्न भिन्न नियम दिखाई देते हैं। वास्तव में-वे विभिन्न नहीं होते ऐसा संभव नहीं है कि एक जगह एक नियम काम करें तो दूसरी जगह उसका विरोधी। अगर कहीं हमें विरोधी नियम दिखाई देते हैं तो अध्ययन के बाद स्पष्ट हो जाता है कि वह नियम विरोधी न होकर उसका रूपांतर होता है। नियम रूपांतरित हो सकता है। पर उसकी आत्मा वही रहती है। इसलिए स्पेंसर ने इसे एकता का नियम नाम दिया है।

2.3.12.2 रूपांतरण तथा समानता का नियम (Law of Transformation and Equivalence)

यह दूसरा गौण नियम है। इस नियम के अनुसार वस्तु का नाश नहीं होता केवल रूपांतरण होता है। रूपांतरण में उसकी मात्रा उतनी की उतनी ही बनी रहती है। इसलिए स्पेंसर ने इसे रूपांतरण एवं समानता का नियम नाम दिया है।

2.3.12.3 अधिकतम आकर्षण तथा न्यूनतम प्रतिरोध का नियम (Law of least Resistance and Greatest Attraction)

विकास की प्रक्रिया का यह तीसरा गौण नियम है। इस नियम के अनुसार विकास की प्रक्रिया में प्रत्येक वस्तु या पदार्थ की गति सदैव अधिकतम आकर्षण की ओर होती है तथा न्यूनतम प्रतिरोध उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिए पानी का बहाव उसी दिशा में होता है। जहां वह पहले से बह रहा हो उसका जमाव भी वही होगा जहां पहले से पानी है। उसी तरह हवा का बहाव भी उसी तरह होता है। जहां कम से कम रुकावट हो।

2.3.12.4 लय तथा क्रमिक गति का नियम (Freedom or alternation of motion)

यह अंतिम गौण नियम है। स्पेंसर के अनुसार विकास के लिए गति आवश्यक है और गति एक समान नहीं चलती। इसलिए लय का नियम काम करता है। विकास के लिए आवश्यक गति में आरोह के बाद अवरोह आता है। गति में क्रमिक परिवर्तन होता है। गति कभी तीव्र होने के बाद धीमी पड़ जाती है और धीमी के बाद तीव्र हो जाती है। गति के इसी परिवर्तन के द्वारा विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती है। **स्पेंसर** का कहना है कि उपरोक्त तीन बुनियादी नियमों एवं चार गुण नियमों को आधार बनाकर भौतिक विज्ञान के विकास की प्रक्रिया आरंभ होती है। विकास की प्रत्येक प्रक्रिया में सातों नियम किसी न किसी रूप में आवश्यक रूप से लागू होते हैं। **स्पेंसर** के अनुसार जब यह सातों नियम क्रियाशील होते हैं तो विकास का एक नया नियम क्रियाशील हो जाता है, और वह नियम है कि जैसे-जैसे पदार्थ (Matter) में एकीकरण (Integration) की प्रक्रिया बढ़ती जाती है। वैसे वैसे-गति (Motion) मे विकीर्णता (Dissertation) की प्रक्रिया होने लगती है। जैसे-जैसे पदार्थ में विभेदीकरण (Differentiation) की प्रक्रिया होने लगती है। वैसे वैसे गति में-विलीनीकरण (Absorption) की प्रक्रिया होने लगती है। कहने का अभिप्राय यह है कि पदार्थ तथा गति दोनों नष्ट नहीं होते, एक घटता है तो उसी अनुपात में दूसरा बढ़ जाता है। अर्थात विकास की प्रक्रिया में गति और पदार्थ का अनुपात सामान बना रहता है।

स्पेंसर के इस सिद्धांत का सारांश यह है कि भौतिक विकास की जो प्रक्रिया है। उसमें विकास की गति अव्यक्त से व्यक्त की तरफ अनिश्चित से निश्चित की तरफ एक तत्व से बहुतत्व की तरफ तथा सामान्य से विशिष्ट की ओर होती है। स्पेंसर के भौतिक विकास का यह क्रम सांख्य दर्शन में ठीक इसी तरह पाया जाता है। वहां भी यही कहा गया है कि भौतिक विषय भौतिक विकास की दिशा में अव्यक्त से व्यक्त की तरफ प्रकृति से विकृति की तरफ जा रही है। स्पेंसर का भौतिक विकास के संबंध में एक ही सा सोचना यह सिद्ध करता है कि संसार के भिन्नअलग देश तथा काल में रहते हुए भी एक ही दिशा में -विचारक अलग भिन्न-सोच सकते हैं।

2.3.13 जीवशास्त्रीय उद्वविकास का सिद्धांत (Biological theory of Evolution)

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि स्पेंसर का सामाजिक उद्विकास का सिद्धांत भौतिक विज्ञान के सिद्धांत एवं जीवशास्त्री उद्विकास के सिद्धांत पर आधारित है। स्पेंसर ने जीवशास्त्र में उद्विकास के लिए जिस नियम का प्रतिपादन किया उसके दो मौलिक विशेषताएं हैं-

1. अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for Exisence)
2. प्राकृतिक प्रवरण (Natural Selection)

स्पेंसर का जीवशास्त्र का सिद्धांत डार्विन से प्रभावित था। डार्विन को उद्विकास वाद का पिता **(Father of Evolution)** कहा जाता है। डार्विन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरिजन ऑफ स्पीजिस' (Origin of Species) में प्राणीशास्त्रीय उद्विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। डार्विन ने अपने सिद्धांत में स्पष्ट किया कि प्रारंभ में कम विभिन्नता वाले जीवों से विविध प्रकार की भिन्नता रखने वाले जीवों का विकास हुआ। यह विभिन्नकरण की प्रक्रिया ही प्राणीशास्त्रीय उद्विकास की जड़ है। जिस प्रक्रिया के द्वारा किसी जनसंख्या में कोई जैविक गुण कम या अधिक हो जाते हैं उसे ही प्राकृतिक पर्यावरण कहते हैं। यह एक धीमी गति से होने वाली **नॉन रैंडम** प्रक्रिया है। यह उद्विकास की प्रमुख कार्य विधि है। डार्विन ने इसकी नींव रखी और इसका प्रचार-प्रसार किया। यह तंत्र विशेष रूप से इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक प्रजाति को पर्यावरण के अनुकूल बनाने में सहायता करता है। ताकि वह सबसे उपयुक्त लक्षणों का चयन कर सके। यही विकास के सिद्धांत का मूलभूत पहलू है। प्राकृतिक चयन का अर्थ उन गुणो से है, जो किसी प्रजाति को बचे रहने एवं प्रजनन में सहायता करते हैं। इसकी आवृत्ति पीढ़ीपीढ़ी बढ़ती रहती है।-दर-

सर के अनुसार आज का मानव उद्विकास की पहली अवस्था मेंस्पें**वानर** था। उनका विचार है कि वह व्यक्ति जो वातावरण से अधिक अनुकूलन करता है। वह अधिक दिनों तक जीवित रहता है और तुलनात्मक दृष्टि से अधिक प्रगति करता है। जो व्यक्ति कम अनुकूलन कम कर पाते हैं वे प्रगति नहीं कर पाते। इसका दूसरा प्रमाण उन्होंने दिया जिन प्राणियों में फेफड़ों का विकास नहीं हुआ वह जल में रहते हैं। जिन प्राणियों में फेफड़े का विकास हो गया वे पृथ्वी पर निवास करते हैं। अतः स्पेंसर का मत है कि प्राणियों में अंगों का विकास भी उनकी आवश्यकताओं के कारण होता है। इसलिए उद्विकास एक निश्चित और उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।

स्पेंसर के अनुसार प्राणीशास्त्र उद्विकास की मौलिक विशेषता यह है कि प्राणियों में जीवित रहने के लिए निर ंतर संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष में वही व्यक्ति जीवित रहते हैं जो अपने को परिस्थितियों के अनुकूल प्रमाणित कर देते हैं। जो प्राणी अपने को परिस्थिति के अनुकूल प्रमाणित नहीं कर पाते वे समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार प्राणीशास्त्रीय जीवन में उद्विकास चलता रहता है। सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत को समझने में डार्विन के उद्विकास का सिद्धांत सहायक है। डार्विन के उद्विकास के सिद्धांत की मौलिक बात यह है कि प्राणियों को अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है और यह संघर्ष प्रत्येक

क्षेत्र में चलता रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार संघर्ष में सदैव सबल की ही जीत होती है, सबल का विकास होता है और सबल ही प्रगति करता हैं। इस संघर्ष में सबल निर्बल को खा जाता है। निर्बल नष्ट हो जाता है और सबल जीवन संग्राम में जीत जाता है। सबल कौन है? इसके लिए भी डार्विन ने कुछ नियमों का प्रतिपादन किया है। जो प्राणी अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेते हैं अर्थात परिवर्तित परिस्थितियों से निरंतर अनुकूलन करने में समर्थ हो जाते हैं वह सबल हैं। परिवर्तित परिस्थितियों से अनुकूलन नहीं करने वाला व्यक्ति या प्राणी निर्बल है। निर्बल परिस्थितियों से हार जाते हैं। वह विकास नहीं कर पाते प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव से उनका पतन हो जाता है। निर्बल प्राणियों को प्रतिकूल परिस्थितियां नष्टभ्रष्ट कर देती - हैं और वे समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार प्राणी जीवन में उद्‌्विकास चलता रहता है। हरबर्ट स्पेंसर ने यह सिद्धांत डार्विन से ग्रहण किया था। आगे चलकर इसी के आधार पर उन्होंने सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए इसे आधार के रूप में स्वीकार किया।

2.3.14 सामाजिक उद्विकास के नियम (Theory of Social Evolution)

हरबर्ट स्पेंसर ने सामाजिक उद्विकास का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया वह मुख्य रूप से भौतिक विकास के सिद्धांत एवं जीवशास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित था। भौतिक विज्ञान के सिद्धांत के विवेचन एवं विश्लेषण से उसने जो निष्कर्ष निकाले उसके अनुसार भौतिक विकास की गति सरल से जटिल और सम से विषम की ओर हो रही है। यह विकास क्रम सजातीय स्थिति से विजातीय स्थिति की ओर है। भौतिक विकास के परिणाम स्वरूप भौतिक स्थिति अनिश्चितता से निश्चितता की ओर चल रही है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन हरबर्ट स्पेंसर ने स्वतंत्र रूप से किया था। भौतिक विकास के सिद्धांत के अतिरिक्त हरबर्ट स्पेंसर ने डार्विन के अस्तित्व के लिए संघर्ष एवं अनुकूलन के सिद्धांत को स्वीकार किया। इन दोनों सिद्धांतों के आधार पर स्पेंसर ने सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। स्पेंसर का कहना है कि समाज में विकास की गति भी सरल से विषम की ओर हो रही है। समाज की स्थिति क्रमशः अनिश्चितता से निश्चितता की ओर हो रही है। तथा समाज सजातीय से विजातीय रूप धारण कर रहा है।

इस प्रकार स्पेंसर के अनुसार सामाजिक विकास की प्रक्रिया में केवल वही सभ्यता एवं संस्कृति अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। जो सबल है, जो बलवान हैं और सबल संस्कृति वही है, जो समयसमय पर - परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अनुकूलन कर लेती है क्योंकि जो संस्कृति बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलन नहीं करती या समायोजन नहीं कर पाती वह नष्ट हो जाती है।

स्पेंसर के अनुसार सामाजिक उद्विकास के दो आधार स्तंभ है –

1. **सरलता से जटिलता का सिद्धांत (Theory from simple to Complex)**

हरबर्ट स्पेंसर ने समाज के ऐतिहासिक विकास का विवरण प्रस्तुत कर इस सिद्धांत को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। स्पेंसर का कथन है कि प्रारंभ का समाज अत्यंत सरल था। समाज में सजातीय तत्व क्रियाशील थे और समाज अनिश्चित दशा में था। जैसेज-ैसे समाज का विकास होता गया वैसे-वैसे व्यक्ति

के कार्य निश्चित होने लगे। इसका परिणाम था श्रम विभाजन पहले व्यक्ति केवल अपना ही कार्य करता था। लेकिन श्रम विभाजन के फलस्वरुप सामाजिक स्थिति पहले से अधिक निश्चित हो गई।

स्पेंसर के अनुसार विकास की प्रारंभिक अवस्था में व्यक्ति समान थे। उनमें रक्त एवं परिवार की भी समानता थी। किंतु विकास के साथसाथ यह समानता समाप्त होने लगी और व्यक्तियों का विभाजन अनेक - परिवारों समूहों रक्त संबंधियों और संगठन में हो गया।अर्थात विकास की प्रक्रिया के साथ परिवार जटिल होते गए और इसमें विभिन्न रक्त समूह वाले सदस्य सम्मिलित होते गए यह अवस्था सजातीय से विजातीय थी। समाज के विकास के प्रारंभिक स्तर पर जाति और वर्ग का कोई अस्तित्व नहीं था किंतु आज समाज अनेक जातियों प्रजातियों एवं वर्गों में विभाजित हो गया है। समाज में राजनीतिक विकास एवं संपत्ति का विचार भी इसी क्रम में विकसित हुआ। पहले समाज सरल था तो लोग समानता का जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस समय शासक एवं शासित जैसा कोई भेद नहीं था पर बाद में क्रमशः मुखिया बना, सरदार बना और राजा तथा शासक आए इस तरह राजनीतिक जीवन भी पहले जो सरल था वह जटिल एवं विजातीय बन गया। पहले संपत्ति का विचार नहीं था मेरे-तेरे की भावना पैदा हुई और संपत्ति के प्रति लगाव भी विकसित हुआ।

सामाजिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में विवाह जैसी कोई संस्था नहीं थी। यौन साम्यवाद था पर धीरेसाथ -धीरे विवाह संस्था का विकास हुआ। प्रारंभ में इसके सिद्धांत सरल एवं स्पष्ट थे पर विकास के साथ- टिलता आती गई।इसमें भी जप्रारंभिक अवस्था में सामाजिक संबंध भी अत्यंत ही सरल एवं सीमित थे पर आज के समय में यह अत्यंत जटिल एवं विस्तृत हो गए हैं। इसी तरह प्रारंभिक समय में सांस्कृतिक एवं धार्मिक विभिन्नताएं भी नहीं थी। **स्पेंसर** ने अनेक उदाहरणों के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि सामाजिक विकास सरलता से जटिलता की ओर सजातीय से विजातीय की ओर एवं अनिश्चित से निश्चित की ओर हो रहा है।

19वीं सदी में सामाजिक उद्विकास का यह विचार इतना प्रबल हो गया था कि यह मानवशास्त्र का आधार बन गया और इसी आधार पर सामाजिक विचारक एवं मानवशास्त्री आदि मानव के धर्म, उनकी संस्कृति उनकी विचारधारा एवं विकास के विभिन्न चरणों पर चिंतन करने लगे।

स्पेंसर के सामाजिक उद्विकास के नियम का दूसरा प्रमुख आधार है –

2. जीवन संघर्ष का सिद्धांत (Theory of struggle for Existence)

अस्तित्व के लिए संघर्ष एवं योग्यतम के जीवित रहने का विचार स्पेंसर ने डार्विन से लिया। स्पेंसर का कहना है। कि प्राणियों में जीवित रहने के लिए निरंतर संघर्ष चलता रहता है। और इस जीवन संघर्ष में बलवान बच जाता है। और निर्बल मर जाता है। भारतीय ऋषियो ने प्राणियों में चलने वाले इस संघर्ष को मत्स्य नीति (Logic of Fish) की संज्ञा दी हैं। इसका तात्पर्य यह है कि बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। और इससे भी बड़ी मछली अपने से छोटी मछली को निगल जाती है। इस तरह बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को निगलने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। मानव जीवन के संघर्ष का यह नियम सामाजिक

जीवन पर भी लागू होता है। संघर्ष के इस नियम का स्पेंसर ने दार्शनिक आधार भी खोज लिया था। स्पेंसर ने इसकी व्याख्या अपनी पुस्तक 'फर्स्ट प्रिंसिपल' (First Prienciples) में की थी स्पेंसर ने लिखा है कि जिस प्रकार जीवधारियों में संघर्ष के कारण जीवन का विकास होता है। ठीक उसी प्रकार समाज का विकास भी संघर्ष के कारण होता है। समाज का उद्विकास भौतिक उद्विकास के समान ही होता है। स्पेंसर के अनुसार पदार्थ एवं गति कभी नष्ट नहीं होते हैं। केवल परिवर्तित होते हैं। यदि पदार्थ में न्यूनता आती है। तो गति में अधिकता आना आवश्यक है। इसका अर्थ है कि पदार्थ एवं गति में सदा समता (Equilibrium) बनी रहती है।

यही प्रक्रिया समाज पर भी लागू होती है। जब एक समाज दूसरे समाज के सामने आता है। तो वह अपने को उसके सामान लाने का प्रयत्न करता है। यदि वह अपने को दूसरे की समानता में नहीं ला पाता तो दूसरा समाज उसे निगल जाता है। समानता की यही प्रक्रिया (Porcess of Equilibrium) एक समाज का दूसरे समाज के साथ संघर्ष है। संघर्ष का अर्थ है युद्ध और संघर्ष से ही एक समाज दूसरे समाज से बराबरी का प्रयास करता है। स्पेंसर सामाजिक उद्विकास में युद्ध को अनिवार्य मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि युद्ध के अभाव में समाज के उद्विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। स्पेंसर के अनुसार संघर्ष एवं युद्ध के कारण ही समाज में सभ्यताओं का विकास हुआ स्पेंसर ने लिखा है कि समाज में जो संघर्ष होता है उसके कारण दो प्रकार के भय उत्पन्न होते हैं-

1. जीवितों का भय
2. मृतकों का भय

जीवित एवं मृतकों के प्रति जो भय उत्पन्न होता है। इससे समाज में नियंत्रण का जन्म एवं विकास होता है। जीवितों का जो भय है। वह शासकों व बलवानो से संबंधित है। समाज के व्यक्ति सोचते हैं कि जो हमारे प्रतिद्वंदी जीवित मुखिया सरदार राजा महाराजा है। वह हमें मार न दे इस भय से वे उनकी सत्ता को स्वीकार करते है। इसी भय से राजनीतिक संस्थाओं एवं राजनीतिक नियंत्रण की शुरुआत होती है।

मृतकों काभय आत्माओं एवं भूत प्रेत से संबंधित होता है। मृतकों से यह भय होता है कि जो हमारे सगे संबंधी एवं शत्रु मर गए हैं। उनकी आत्माएं हमें न सताए। मृतकों के प्रति इस भय से धर्मकर्म परलोक की - संस्थाओं द्वारा धार्मि‍िक नियंत्रण की शुरुआत होती है। इस तरह स्पेंसर की दृष्टि से राजनीतिक एवं धार्मिक दोनों संगठनों का आधार जीवन संघर्ष हैं।

उपरोक्त आधार पर हम देखते हैं कि स्पेंसर ने सामाजिक उद्विकास का आधार भौतिक विकास एवं जीवशास्त्र को बनाकर समाजशास्त्रीय विचारधारा का प्रतिपादन किया है।

2.3.15 स्पेंसर के सामाजिक विकास के सिद्धांत के महत्वपूर्ण तत्व

स्पेंसर के अनुसार सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत के कुछ महत्वपूर्ण तत्व इस प्रकार हैं

1. **सजातीयता की अस्थिरता (Instability of Homegeneity) -**सामाजिक उद्विकास का यह महत्वपूर्ण तत्व है। समाज में जो सजातीय तत्व होते हैं। वह कभी स्थिर नहीं होते। हमेशा परिवर्तनशील रहते हैं। इनकी परिवर्तनशीलता के कारण ही सजातीयता विजातीयता में बदलती है।
2. **ज्यामितिक अनुपात (Geometrical Ration -**(जहां समाज में सजातीयता समाप्त होती है। वहां पर विभेदीकरण उत्पन्न हो जाता है। समाज में एकीकरण समान गति से होता है। विभेदीकरण ज्यामितिक अनुपात से होता है। इसके परिणाम स्वरुप समाज की विरोधी शक्तियों में संतुलन बना रहता है।
3. **एकीकरण (Segregation)-** समाज में सजातीयता के तत्व समाप्त होने से विभेदीकरण आता है। और विभेदीकृत समूहों के समान लक्षणों के आधार पर उनमें एकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरुप समान लक्षणों के आधार पर समाज अनेक समूह एवं संस्थाओं में विभक्त हो जाता है।
4. **विभेदीकृत समूहों में असंतुलन (Equilibrium in umits)-** जब समाज में विभिन्न विशेषताओं वाले समूहों का निर्माण हो जाता है। तब समाज अनेक संगठनों एवं संस्थाओं में विभक्त हो जाता है। और इन सब की विशेषताओं में विभिन्नता पाई जाती है। स्पेंसर के अनुसार उद्विकास में समाज जितने समूह एवं संस्थाओं में विभक्त होता है। उसमें संतुलन बना रहता है।

2.3.16 स्पेंसर के सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत की आलोचना (Criticism)

हरबर्ट स्पेंसर अपनी उद्विकास के सिद्धांत के कारण काफी प्रसिद्ध है। उनका यह सिद्धांत काफी प्रचलित है। फिर भी इस सिद्धांत में कुछ कमियां पाई गई हैं -

1. उद्विकासवादियों का कथन है कि सभी समाजों का उद्विकास एक ही प्रक्रिया द्वारा हुआ है। यह कथन सही नहीं है। क्योंकि सभी समाजों पर एक सा नियम लागू करना ठीक नहीं है। प्रत्येक समाज अलग-अलग परिस्थितियों की देन होता है। अतः सभी समाजों का उद्विकास एक ही प्रक्रिया से मानना तर्कसंगत नहीं है।
2. स्पेंसर का सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत का तीन स्तरों में वर्णन वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित नहीं है। क्योंकि अगस्त कॉम्ट ने 3 स्तरों एवं उपस्तरों मार्गन ने सात एवं कन्डोरसेट दस स्तरों एवं उप स्तरों में सामाजिक उद्विकास का वर्णन किया है।
3. स्पेंसर के अनुसार समाज का विकास कुछ स्तरों पर होता है तथा हर समाज में इन स्तरों का आगमन का क्रम भी एक जैसा ही होता है, यह सही नहीं है। जैसा कि जिसबर्ट ने कहा है- स्तरो का तथाकथित क्रम यह आशा प्रकट नहीं करता कि आवश्यक रूप से यह काल क्रम था। कुछ जनजातियां शिकारी अवस्था में है। तो हम यह नहीं जानते कि वह कृषि स्तर में जाएंगी अथवा वे

हमेशा शिकारी अवस्था में ही बनी रहेंगी। जैसा कि श्रीलंका की बेड्डा जनजाति जो कि इन स्तरों पर नहीं आ पाई है और प्रायः समाप्त होती जा रही है।

4. स्पेंसर का कथन है कि उद्विकास के कारण समाज में हमेशा ही प्रगति होती है। सर्वमान्य नहीं है। सोरोकिन ने इस संबंध में बताया है कि समाज में हमेशा प्रगति नहीं होती। ऐतिहासिक घटनाएं इस बात की साक्षी हैं कि समाज में प्रगति और अवनति दोनों होती है।
5. उद्विकास समाज की कुछ इकाइयों पर लागू तो होता है। किंतु संपूर्ण समाज पर नहीं, क्योंकि संपूर्ण समाज में अनेक विभिन्नताएं होती है। **जिसबर्ड** के अनुसार संपूर्ण समाज का कोई वास्तविक अस्तित्व भी नहीं है। वह कहते हैं इस सामाजिक विकास से संबंधित कठिनाई जिसका समाधान खोजना है। वह विकसित होने वाले विषय के संदर्भ में है। क्या विषय संपूर्ण समाज सामान्य रूप में है। या हर समाज विशिष्ट रूप में 'सामान्य समाज' वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं रखता है।
6. **गोल्डन वीजर** का मत है कि उद्विकासवादियों ने प्रसार के महत्व को भुला दिया है। जब दो समाज व संस्कृति संपर्क में आती हैं तो वह सांस्कृतिक तत्वों का आदान प्रदान करती है। जिससे संस्कृति समृद्ध होती है।
7. **मेकाइवर** और **पेज** का मत है कि समाज का उद्विकास जीवोंकी भांति नहीं होता है। सामाजिक उद्विकास में मानव का प्रयत्न महत्वपूर्ण होता है। जबकि जीवों के उद्विकास में प्राकृतिक शक्तियां ही सब कुछ होती है।
8. उद्विकासवादियों ने अविष्कार के महत्व को भुला दिया है। सामाजिक उद्विकास स्वतः कम ही होता है, अविष्कार उसे गति प्रदान करते हैं।
9. **गिंसबर्ग** का कथन है कि यह धारणा कि उद्विकास सरल स्थिति से जटिल स्थिति की ओर होने वाला परिवर्तन है। एक गंभीर विवाद का विषय है। क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक परिवर्तन के साथ सामाजिक जीवन जटिल ही होगा। मानव अपने ज्ञान और विज्ञान के सहारे जटिलता को सरल बनाने का भी प्रयास करता है। जटिलता की संभावना हो सकती है पर यह अनिवार्यता नहीं है।
10. उद्विकासवादियों की अध्ययन पद्धति भी दोषपूर्ण है। क्योंकि उन्होंने प्रत्यक्ष अवलोकन के स्थान पर अनुमान एवं यात्रियों के वर्णन व अनुभव को ही सही माना है।
11. स्पेंसर का कहना है कि उद्विकास आंतरिक शक्तियों के कारण होता है। किंतु वे आंतरिक शक्तियां कौन सी है? उनमें से कौन सी शक्ति उद्विकास के लिए उत्तरदाई है? उन शक्तियों का उल्लेख उद्विकासवादियों ने कहीं नहीं किया है।
12. उद्विकास के कोई स्पष्ट नियम नहीं है। उद्विकास विकास अवधारणाओं में से है। जिनको प्रयोग द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता उद्विकास की अवधारणा की आवश्यकता सिर्फ इसलिए है। क्योंकि यह हमारी दार्शनिक अंतरात्मा की संतुष्टि करती है।

13. **आगबर्न** ने उद्विकास की अवधारणा को अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते उनके अनुसार ''विकास में वंशानुक्रम के नियम की उपलब्धि के प्रयास सामाजिक संस्थाओं के विकास एवं परिवर्तन तथा चयन में थोड़े से ही सार्थक और महत्वपूर्ण परिणाम प्रस्तुत किए हैं।''

उपर्युक्तकमियों के बाद भी उद्विकास की अवधारणा ने समाज एवं संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मैकाइवर कहते हैं कि ''विभिन्न अवस्थाओं को एक दूसरे से पृथक करने में इस सिद्धांत नें महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह सिद्धांत यह भी स्पष्ट करता है कि समाज कोई आकस्मिक घटना नहीं है। वरन् यह लंबे एवं क्रमिक विकास का परिणाम है। किंतु समकालीन समाज वैज्ञानिकों ने समाज परिवर्तनों का अध्ययन उद्विकासीय ढंग से करना लगभग त्याग दिया है। क्योंकि इसमें एक महत्वपूर्ण कठिनाई ऐतिहासिक प्रमाण को जुटाने की भी हमेशा से ही रही है। **स्पेंसर** के सामाजिक उद्विकास के नियम में अनेक कमियां हैं। इस कारण उनकी उपरोक्त आलोचनाएं भी की गई है। इसके बावजूद स्पेंसर के विचार अतुलनीय है।

2.3.17 सारांश

स्पेंसरअपने प्रौढ़ जीवन में बीमारियों से जूझ रहे थे। अफीम के व्यसन के कारण मानसिक संतुलन खो रहे थे। उसके बावजूद भी उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन एवं संशोधन किया। आरंभिक दौर में स्पेंसर ने कहा था कि प्रगति एक आवश्यकता है दुर्घटना नहीं। अपने उत्तर काल में उन्होंने कहा था कि वह विकास की प्रक्रिया में समस्याएं विषयनिष्ठ शब्द है और वस्तुनिष्ठ नियमों के आधार पर उद्विकास असंगठित समानता से संगठित समानता की ओर जाने वाली प्रक्रिया है। स्पेंसर ने बाद के दिनों में सार्वभौमिक प्रगति की अवधारणा को छोड़ दिया था और उन्होंने स्वीकार किया था कि उद्विकास की प्रक्रिया कभीकभी पीछे- भी जा सकती है। प्रगति हमेशा समरेखीय नहीं होती यह भिन्नता पूर्ण है। सामाजिक उद्विकास एक भूमंडलीय प्रक्रिया नहीं है। अमेरिकन समाजशास्त्री **रॉबर्ट सी पेरींन** (Robert C Perrin) ने लिखा है कि स्पेंसर के लिए उद्विकास के चार अर्थ थे -

1. उद्विकास एक आदर्श समाज की ओर प्रगति है।
2. उद्विकास सामाजिक संग्रहों कि प्रकार्यात्मक उप व्यवस्थाओं में लगातार होते जाने वाला विभेदीकरण है।
3. उद्विकास लगातार बढ़ते जाने वाला श्रम विभाजन है।
4. उद्विकास की प्रक्रिया समाजों की उत्पत्ति और विकास की प्रक्रिया है।

पेरीन ने कहा है कठिनाई यह है कि हरबर्ट स्पेंसर इन चारों विचारों में जीवनपर्यंत तमाम प्रयासों के बावजूद समन्वय करने में सफल नहीं हो सके। स्पेंसर ने विकास की धारणा को अपनाया और योग्यतम की जीविता की धारणा को प्रस्तुत किया। स्पेंसर दूसरे उद्विकासवादियों जैसे कि मार्गन, टायलर, हेनरीमैन,

मैकलेनन लोगों के विचारों से परिचित जरूर थे। लेकिन प्रभावित नहीं थे। स्पेंसर ने लामार्क से उद्विकास की धारणा को अपनाया और बहुत दिनों तक लामार्क के सिद्धांत को मानते रहे। अपने समकालीन समूह में वे अपने मित्रों से ज्यादा जार्ज लिबिस से प्रभावित थे। दर्शन संबंधी जानकारियां अधिकतर स्पेंसर ने इन्हीं से प्राप्त की स्पेंसर ने जो विचार अपने बौद्धिक विकास के आरंभिक दौर में विकसित किए थे। उनमें कोई गुणात्मक परिवर्तन उन्होंने अंत तक नहीं किया यही कारण है कि वे अपने जीवन के अंतिम दिनों में उपेक्षित हो गए थे। पर संयुक्त राज्य अमेरिका में उनकी लोकप्रियता अंत तक बनी रही। विलियम ग्राहम समनर उनसे इतने अधिक प्रभावित थे कि वार्न्स एवं बेकर ने अपनी पुस्तक में समनर को अमेरिकी पोशाक में हरबर्ट स्पेंसर के विश्लेषण से विभूषित किया।

2.3.18 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प का चयन कीजिए

1. हरबर्ट स्पेंसर ने किस पुस्तक में अपने उद्विकास के नियम का प्रतिपादन किया था?

(अ) फर्स्ट प्रिंसिपल (ब) प्रिंसिपल ऑफ एथिक्स

(स) सोसायटी (द) दास कैपिटल

2. हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार उद्विकास की दिशा है?

(अ) विभिन्नता से एकता की ओर

(ब) सरलता से जटिलता की ओर

(स) जटिलता से सरलता की ओर

(द) उपर से नीचे की ओर

3. उद्विकास के रूप में सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या सर्वप्रथम किसके द्वारा की गई?

(अ) हरबर्ट स्पेंसर (ब) अगस्त कॉम्ट

(स) सोरोकिन (द) मैकाइवर पेज

4. “उद्विकास केवल एक निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन है। “यह कथन किसका है?

(अ) हरबर्ट स्पेंसर (ब) मैकाइवर एवं पेज

(स) आगबर्न निमकॉफ (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

5. भौतिक विकास के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए स्पेंसर ने विश्व को कितने भागों में बांटा है?

(अ) चार (ब) पॉच

(स) दो (द) तीन

6. प्राणीशास्त्र में उद्विकास के प्रतिपादक कौन है?

(अ) डार्विन (ब) अगस्त कॉम्ट

(स) हरबर्ट स्पेंसर(द) सोरोकिन

7. स्पेंसर ने जीवशास्त्र में उद्विकास के लिए जिस नियम का प्रतिपादन किया उसकी कितनी मौलिक विशेषताएं हैं?

(अ) 4 (ब) 5

(स) 3 (द) 2

8. हरबर्ट स्पेंसर ने उद्विकास के कितने गौण नियमों का प्रतिपादन किया है?

(अ) 9 (ब) 7

(स) 8 (द) 4

9. इवोल्यूशन शब्द की उत्पत्ति किस भाषा से हुई है?

(अ) लैटिन (ब) जर्मन

(स) ग्रीक (द) अंग्रेजी

10. बहुरेखीय उद्विकास का सिद्धांत किसके द्वारा प्रस्तुत किया गया है?

(अ) अगस्त कॉम्ट (ब) मार्क्स एवं एंजिल्स

(स) लेस्ली व्हाइट (द) जूलियन स्टीवर्ट

उत्तर 1 अ 2 ब 3 ब 4 स 5 स

6 अ 7 द 8 द 9 अ 10 द

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक उद्विकास का अर्थ समझाइए।
2. सामाजिक उद्विकास का अर्थ एवं परिभाषाएं दीजिए।
3. जीवशास्त्रीय और विकास के सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।
4. डार्विन के उद्विकास के सिद्धांत को समझाइए।
5. स्पेंसर के सामाजिक विकास के सिद्धांत के महत्वपूर्ण तत्वों को समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक उद्विकास का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. हरबर्ट स्पेंसर के उद्विकास के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
3. स्पेंसर के सामाजिक उद्विकास के बारे में विचारों की समीक्षा कीजिए।
4. सामाजिक उद्विकास की व्याख्या कीजिए उद्विकास की अवस्थाओं को समझाइए।
5. स्पेंसर के उद्विकास के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

2.3.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, गोपाल. कृष्ण. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी, रविंद्र. नाथ. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली : ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
6. मिश्रा, कुमार, महेंद्र. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
7. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
8. मुखर्जी, रवींद्रनाथ. (2016) *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
9. मुखर्जी, रविंद्रनाथ. (2008). *उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
10. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
11. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, कुमार. राजेंद्र. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.
12. शर्मा, प्रकाश. वीरेंद्र. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुरः पंचशील प्रकाशन.

इकाई 4 - सैनिक एवं औद्योगिक समाज (Milltary and Industrial Society)

इकाई की रूपरेखा

2.4.0 उद्देश्य

2.4.1 प्रस्तावना

2.4.2 सैनिक समाज

2.4.3 सैनिक समाज की विशेषताएं

2.4.4 औद्योगिक समाज

2.4.5 औद्योगिक समाज की विशेषताएं

2.4.6 सैनिक एवं औद्योगिक समाज में अंतर

2.4.7 नैतिक समाज

2.4.8 सारांश

2.4.9 बोध प्रश्न

2.4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी---

- स्पेंसर के समाज के वर्गीकरण को समझ पाएंगे।
- स्पेंसर की सैनिक समाज की अवस्था को समझ पाएंगे।
- औद्योगिक समाज की अवधारणा को समझेंगे।
- सैनिक समाज एवं औद्योगिक समाज के बीच के अंतर को समझ पाएंगे।
- नैतिक समाज की अवधारणा को समझेंगे।

2.4.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। इसमें समाज का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक विषय अपनी विषय-वस्तु का वर्गीकरण करने का प्रयास करता है। समाजशास्त्र क्योंकि समाज का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। अतः इसमें भी समाजों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया है। अधिकांश प्रारंभिक समाजशास्त्रियों ने समाज को दो भागों में बांटा है। समाजशास्त्र में सामाजिक तथ्यों के व्यवस्थित अध्ययन के साथ ही राज्य सत्ता के बारे में विभिन्न विचार होते रहते हैं और अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक विचारकों ने

राज्य की उपयोगिता एवं उनके कार्य के संबंध में अनेक विचार प्रकट किए हैं। **हरबर्ट स्पेंसर** ने समाज का वर्गीकरण करके इस संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं। अधिकांश प्रारंभिक समा शास्त्रियों ने समाज का द्वैत वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। अर्थात समाज को दो भागों में बांटा है। जैसे की **टॉनिज** के अनुसार समाज के दो प्रकार हैं-

1. गेमाइनशाफ्ट (Gemeinschaft)
2. गेसेलशाफ्ट (Gesellschaft)

दुर्खीम ने भी समाज के दो प्रकार बताए हैं-

1. यांत्रिकी एकता
2. सावयवी एकता

हेनरी मेन ने दो प्रकार के समाज बताएं हैं-

1. प्रस्थिति
2. अनुबंध

स्पेंसर ने समाज को दो भागों में बांटा है-

1. संघर्षशील समाज
2. औद्योगिक समाज

हरबर्ट स्पेंसर का कहना है कि किसी भी सभ्य मानव समाज में राज्य का उदय जीवित व्यक्तियों के भय के कारण होता है। जैसे मृत व्यक्तियों के भय के कारण धर्म का उदय होता है। उसी तरह जीवित व्यक्तियों के भय से राज्य का उदय होता है। मृत व्यक्ति हमारा अनिष्ट न करें इस भय से मनुष्य मृत आत्माओं की पूजा आराधना तर्पण आदि करने लगता है। इस तरह जीवित शक्तिशाली व्यक्ति हमारा अहित न करें। इस भय से मनुष्य शक्तिशाली व्यक्तियों को अपना शासक मानने लगता है। समाज में जब शक्तिशाली व्यक्तियों का आतंक छा जाता है। तो निर्बल व्यक्ति भयभीत होने लगते हैं और शक्तिशाली व्यक्ति उन पर अपना नियंत्रण रखने लगते हैं और निर्बल व्यक्ति उनके नियंत्रण में अनुशासन में रहने लगते हैं। इस प्रकार से राज्य एवं शासन की उत्पत्ति होती है। यह राज सत्ता के विकास का पहला स्तर है। इस तरह राज्य व शासन के उत्पन्न होने के संबंध में स्पेंसर का कहना है कि पहले सैनिक राज्य पैदा होता है। फिर औद्योगिक राज्य और अंत में नैतिक शासन उत्पन्न होता है। इस तरह स्पेंसर ने सत्ता के विकास के तीन स्तर बताएं हैं-

1. सैनिक समाज (Milltary Society)
2. औद्योगिक समाज (Industrial Society)
3. नैतिक समाज (Ethical Society)

2.4.2 सैनिक समाज (Milltary Society)

स्पेंसर के अनुसार राज्य सत्ता का प्रधान स्वरूप सैनिक समाज था। इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए स्पेंसर ने सामाजिक विकास के सिद्धांत का सहारा लिया। उनके अनुसार सामाजिक विकास सरल से जटिल अनिश्चित से निश्चित और सजातीयता से विजातीयता की ओर होता है। शुरुशुरु में समाज असंगठित - एवं अविकसित रहता है। इस समय कोई भी राजसत्ता विकसित नहीं थी अर्थात न कोई राजा था और न ही कोई प्रजा। उस समय समाज में आपस में ही विभिन्न समूहों एवं समुदायों में युद्ध हो जाया करते थे। युद्ध के समय सामाजिक तौर पर जो शूरवीर युद्ध के लिए आगे आता था। उसे मुखिया मान लिया जाता था और लोग उसकी आज्ञा का पालन करते थे और उसके नियंत्रण को स्वीकार करते थे। हालांकि उस समय युद्ध के अवसर कम ही आते थे। इसलिए समाज का कोई स्थाई मुखिया नहीं था। इस तरह समाज की जटिलता के बढ़ने के साथसाथ- कालांतर में लंबे समय तक युद्ध चलने के कारण और सैनिक क्रियाओं के बेहतर संगठन के लिए स्थाई रूप से एक नेता या मुखिया की आवश्यकता थी। इसलिए युद्ध नेता को एक मुखिया और राजा के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया। जो अपने जीवन काल में शक्ति को संचालित करता था। इसके कारण ही सैनिक संगठन में स्थाईपन आया। किंतु यह व्यवस्था होने के बाद भी समस्या का पूर्ण समाधान नहीं हो पाया। लेकिन जैसेजैसे समाज विकसित होने लगा समाज का सरल स्वरूप जटिल होने - युद्ध के अवसर बढ़ने लगे। ऐसी स्थिति में एक स्थाई मुखिया लगा। इससे समाज मेंया नेतृत्व की आवश्यकता महसूस हुई। ऐसे समय में वे लोग जिन्होंने युद्ध में कुशलता एवं वीरता दिखाई थी और वह समाज में अपनी धाक बनाए रखने में सफल हुए थे। उन्हें आजीवन मुखिया माना जाने लगा। मुखिया की मृत्यु के बाद मुखिया के पुत्र को यह पद प्राप्त होने लगा। इस प्रकार मुखिया का पद पैतृकता द्वारा निर्धारित होने लगा। नेतृत्व में खानदान की परंपरा चलने लगी। मुखिया की सहायता एवं सलाहमशविरे के लिए व्यक्तियों की सलाह-समिति बनाई जाने लगी। इस सलाहकार समिति के सदस्यों का चयन मुखिया के द्वारा ही किया जाता था। वह जिसे चाहता था। उसे अपनी समिति में रखता और जिसे हटाना चाहता था। उसे हटा दिया जाता था। सलाहकारों के अतिरिक्त कुछ व्यक्ति ऐसे होते थे जो जन सामान्य का प्रतिनिधित्व करते थे। यह प्रतिनिधि नेता एवं सलाहकार समिति के फैसलों पर अपना मत दे सकते थे पर फैसलों को क्रियान्वित करना इनका काम नहीं था। इस तरह समाज में नेता, सलाहकार समिति, प्रतिनिधि समिति ये तीन प्रकार के शासक, संगठक पैदा हो गए थे।

मुखिया या राजा को शासन प्रबंध के मामले में सलाह देने के लिए परामर्श दात्री और प्रतिनिधि समितियों का समानांतर उद्विकास भी हुआ। जिन्होंने बाद में औपचारिक रूप से परामर्श दात्री परिषदों और विधानसभाओं का रूप धारण किया। इस संपूर्ण शासन व्यवस्था में सैन्य शासन या सैनिक राज्य पर आधारित थी। क्योंकि उस समय सैनिक समाज का प्रमुख कार्य आत्मरक्षा के लिए युद्ध करना एवं दूसरों पर आक्रमण करने के लिए युद्ध करना ही था। सैनिक समाज में समाज की सारी व्यवस्था इस तरह से की जाती थी। जिससे

सेना का पालन पोषण हो सके। सेना के हितों की रक्षा की जा सके। सैनिक समाज में राजा और सेनापति दोनों का एक ही अर्थ था। सैनिक समाज में व्यक्तिगत संपत्ति का कोई अस्तित्व नहीं था और सार्वजनिक संपत्ति पर राज्य का ही अधिकार होता था। सैनिक समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी कोई अर्थ नहीं था। हर वस्तु पर राज्य का अधिकार था। उद्योगों का संचालन राज्य के द्वारा होता था सभी उद्योगों पर राज्य का ही नियंत्रण था। व्यक्ति अपने लिए नहीं राज्य के लिए होता था आवश्यकता पड़ने पर राज्य के लिए उसे अपने को बलिदान करना होता था। **स्पेंसर** के अनुसार सैनिक क्रियाओं के विकास के कारण विभिन्न समुदायों में विभक्त व्यक्तियों ने भी संगठित होना प्रारंभ किया। इससे व्यक्तियों का एकीकरण हुआ। छोटेछोटे खानाबदोश झुंडो ने - एक साथ मिलकर बड़े समूह का निर्माण किया। इससे समाज संगठित हुआ और एक व्यवस्थित राज्य शक्ति का विस्तार हुआ।

इस प्रकार सामाजिक विकास के साथ साथ समाज में विभेदीकरण-की प्रक्रिया भी क्रियाशील हुई। इस विभेदीकरण के फलस्वरूप समाज में धनी शासकों, सामान्य स्वाधीन लोगों, भूमि दासो और दासों के वर्गों का निर्माण हुआ। जब राज्य शक्ति किसी शासक वर्ग के हाथ में केंद्रित हो जाती है और उसका क्षेत्र बढ़ जाता है। तब वह अधिक बड़े भूभाग पर लागू होती है। तो उसे कुशलता पूर्वक प्रसारित करने के लिए राजकीय मशीनरी का विकास होता है। जैसे मंत्रिमंडल स्थानीय शासन संस्थाएं और सैनिक संगठन आदि।

संघर्षशील या सैनिक समाज अपनी सारी शक्ति सैनिक संगठन पर ही खर्च करता है। परंतु जैसेजैसे - समाज में परिवर्तन ह ोता गया समाज का ध्यान उद्योगों के विकास की ओर भी जाने लगा तथा इस प्रकार उद्विकास की प्रक्रिया द्वारा समाज संघर्षशील समाज से औद्योगिक समाज की ओर अग्रसर हुआ। इस औद्योगिक विकास के कारण देश में समृद्धि होने लगी। सेना की भूमिका केवल आंतरिक शांति बनाए रखना तथा बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने तक ही सीमित हो जाती है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल दिया जाने लगता है। शासन भी जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में चला जाता है। यहां से ही औद्योगिक समाजों में प्रजातंत्र व्यवस्था का सूत्रपात होता है।

2.4.3 सैन्य समाज की विशेषताएं

सैन्य समाज एक ऐसा समाज होता है। जिसमें आक्रामक तथा सुरक्षात्मक सैन्य कार्यवाही के लिए संगठन किया जाता है। इस समाज में निम्नलिखित विषेषताएं पाई जाती हैं -

1. इस समाज के सदस्यों के बीच संबंध अनिवार्य सहयोग के आधार पर होते हैं।
2. सत्ता और सामाजिक नियंत्रण अत्यधिक केन्द्रीयकृत होता है।
3. समाज की सत्तात्मक तथा संस्तरणात्मक प्रकृति उनके विचारो तथा विश्वासों से प्रदर्षित होती है।
4. मिथकों तथा विश्वासों की अधिकता समाज के संस्तरण एवं स्वरूप को दृढ़ता प्रदान करती है।

5. कठोर अनुशासन वाला कठिन जीवन और सार्वजनिक तथा निजी जीवन के बीच घनिष्ठ एकरूपता होती है।

2.4.4 औद्योगिक समाज (Industrial Society)

सैन्य समाज के विकास के बाद औद्योगिक समाज का प्रारंभ होता है। सैन्य समाज में शासक वर्ग अपनी संपूर्ण शक्ति एवं धन सैनिक संगठन पर व्यय करता है। उसका प्रमुख उद्देश्य सैन्य बल को प्राप्त करना एवं उसे बढ़ावा देना होता है। सैन्य शक्ति को बढ़ाने एवं युद्ध करने से संतोष प्राप्त नहीं होता क्योंकि मानव समृद्धि भी चाहता है। हालांकि युद्ध से देश व समाज की समृद्धि भी हो सकती और विनाश भी हो सकता है। इसलिए मानव ऐसा मार्ग ढूंढने का प्रयास करता है जिससे देश में समृद्धि रहे और नुकसान न हो। इस समृद्धि के लिए राज्य एवं जनता दोनों उद्योगों के विकास की ओर ध्यान देने लगते हैं। जैसे ही लोगों का रुख औद्योगिक विकास की तरफ होने लगता है। राजनीतिक विकास की दिशा सैनिकता से हटकर उद्योग की तरफ चली जाती है। ऐसे में सत्ता औद्योगिक समाज में परिवर्तित होने लगती है। राज्य के लिए उद्योगों का विकास साध्य हो जाता है। इन समाजों में सेना प्रमुख नही रहती। देश की समृद्धि प्रमुख हो जाती है। सेना द्वारा अन्य राज्यों पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति भी कम होती जाती है। देश की आंतरिक शांति एवं बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने के लिए ही सेना का प्रयोग किया जाता है। सैनिक समाज की तुलना में औद्योगिक समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं अधिकार का विचार प्रबल हो जाता है। व्यक्ति के जीवन में राज्य का हस्तक्षेप कम हो जाता है। व्यक्ति राज्य के लिए नहीं राज्य व्यक्ति के लिए है की विचारधारा जोर पकड़ने लगती है। जनता के प्रतिनिधियों का समाज में विशेष स्थान होता है। इस समाज में भी नेता, सलाहकार समिति तथा प्रतिनिधि समिति होती है। सैनिक समाज में **नेता (मुखिया)** प्रमुख होता है। औद्योगिक समाज में **प्रतिनिधि प्रमुख** होता है। उद्योगिक समाज में सार्वजनिक हितों की बात होती है। और यही से जनतंत्र की शुरुआत होती है। **स्पेंसर** के अनुसार सैनिक समाज की अपेक्षा औद्योगिक समाज अधिक अच्छा है। इसके अंतर्गत मनुष्य को नैतिक विकास का अवसर प्राप्त होता है। आदर्श स्थिति तो वह होगी जब उद्योग के साधनों को मानव चरित्र के नैतिक आचार को पूर्ण विकसित करने की दिशा में लागू किया जा सकेगा और मानव चरित्र में सामाजिकता के गुण विकसित हो जाएंगे तथा उसके ऊपर बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होगी। यही उसके समाज के आदर्श व्यवस्था होगी जिसे स्पेंसर ने औद्योगिक समाज कहा है।

2.4.5 औद्योगिक समाज की विषेषताएं

औद्योगिक समाज में सैनिक कार्यकलाप तथा संगठन समाज के लिए बाहरी होते है। समाज मानव उत्पादन तथा कल्याण विषेष रूप से आर्थिक तथा सभ्य प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करता है। इस समाज में निम्नलिखित विषेषताएं पाई जाती है -

1. इसमें स्वैच्छिक सहयोग की प्रधानता होती है।
2. इन समाजों में व्यक्तियों के वैयक्तिक अधिकारों को दृढ़ता से माना जाता है।
3. सरकार के राजनैतिक नियत्रण से आर्थिक क्षेत्र को अलग रखा जाता है।
4. मुक्त समितियों एवं संस्थाओं का विकास होता है।

स्पेंसर का मानना था कि प्राचीन काल के समाज सैनिक समाज थे, पर आधुनिक समय में औद्योगिक होते है। सैन्य समाज का सामूहिक रूप संरक्षणवादी रूप में रहता हैं और औद्योगिक समाजों में व्यक्तिगत कार्य तथा सेवाओं के अनुसार समाज का निर्माण होता है। इसमे व्यक्तिवादीता प्रधान होती है तथा निजी सगठनों को प्रोत्साहित किया जाता है।

2.4.6 सैनिक और औद्योगिक समाज में अंतर

हरबर्ट स्पेंसर ने समाज के विभाजन में सैनिक समाज और औद्योगिक समाज के दो रूपों की कल्पना की है। इन दोनों प्रकार के समाजों में कोई अंतिम भेद नहीं है। पर कई समाजों में अंतर दिखाई देता है। सैनिक समाज में क्रियात्मक शक्तियों को सैनिकों के लिए सुख-सुविधा को जुटाने के उद्देश्य नियोजित किया जाता है। कुछ समाज में सैनिक क्रियाकलापों का बोलबाला रहता है। जबकि औद्योगिक समाज में सैनिक शक्ति का प्रयोग केवल आंतरिक शांति व व्यवस्था को बनाए रखने के लिए तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा सैनिक समाज में सेना अध्यक्ष राज का शासक होता है। इसलिए अनुशासन की व्यवस्था उसी के द्वारा लागू की जाती है।

व्यक्तिगत संपत्ति उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत आधार को मान्यता नहीं दी जाती। जनता को पूर्णता स्वतंत्रता भी प्राप्त नहीं होती। इनके शासन काल में धर्म की भी एक सैनिक प्रवृत्ति होती है। इस आधार पर व्यक्ति को स्वयं के लिए नहीं बल्कि समाज के लिए जीवित रहना पड़ता है। जबकि औद्योगिक समाज में व्यवस्था तथा न्याय के अंतर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता को पूर्णता मान्यता दी जाती है। राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण होता है और जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा सरकार का गठन किया जाता है। धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है तथा व्यापार एवं उद्योग के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा पाई जाती है। राज्य का नियंत्रण केवल निषेधात्मक रूप में होता है और इसका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता में अनावश्यक हस्तक्षेप को दूर करना होता है। ऐसा समाज परिवर्तन के लिए अधिक अनुकूल होता है और इसी के माध्यम से विकास का पूरा अवसर प्राप्त होता है।

2.4.7 नैतिक समाज

हरबर्ट स्पेंसर ने समाज के उद्विकास की एक तीसरी व्यवस्था का भी उल्लेख किया है। जिसे नैतिक राज्य कहा जाता है। इसमें नैतिकता की चरम सीमा तक वृद्धि होती है तथा भौतिक वृद्धि के साथ ही मानवीय

नैतिकता में वृद्धि होती है। इस अवस्था में स्वतंत्रता को बनाए रखने में राज्य की आवश्यकता नहीं रहेगी तथा यह अपने आप समाप्त हो जाएगा। स्पेंसर के अनुसार राज्य एक आवश्यक बुराई है। क्योंकि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है। वह सब कुछ बटोर लेना चाहता है। दूसरे को खा जाना चाहता है। इसलिए सामान स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए राज्य की आवश्यकता है। जब सब को भरपूर अधिकार मिलेंगे उद्योगिक विकास के कारण किसी तरह की कमी नहीं होगी तब सामान स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए बाहरी शक्ति की आवश्यकता नहीं होगी और राजा राज्य और शासन सब अपने आप समाप्त हो जाएंगे।

स्पेंसर ने श्रम विभाजन की मात्रा राजनीतिक संगठन में जटिलता, धार्मिक परंपराओं के विकास तथा सामाजिक स्तरीकरण के आधार पर अन्य समाजों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है-

1. सरल समाज
2. मिश्रित समाज
3. दोहरे मिश्रित समाज
4. तिहरे मिश्रित समाज

स्पेंसर ने प्रथम तीन श्रेणियों में आदिम समाजों का समावेश किया है। यद्यपि इन तीनों में आकार श्रम विभाजन के विकास धर्म तथा परंपराओं का स्थान राजनीतिक संगठन की जटिलता तथा सामाजिक स्तरीकरण के आधार की दृष्टि से अंतर करने का प्रयास करते हैं, फिर भी स्पेंसर इसमें पूर्ण सफल नहीं हो पाए हैं। इस वर्गीकरण पर उद्विकासीय दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस श्रेणी में स्पेंसर ने मैक्सिको, सीरियाई साम्राज्य, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली और रूस जैसे समाजों को सम्मिलित किया है।

2.4.8 सारांश

हरबर्ट स्पेंसर ने अपने उद्विकासीय योजना के समकक्ष समाज के कई प्रकारों का वर्णन करना चाहा। स्पेंसर के अनुसार प्रत्येक समाज का अपना एक वातावरण होता है। जब समाज पर बाहरी शत्रुओं का भय होता है। तो समाज की आंतरिक संरचना सैन्यवादी हो जाती है और शांति की अवस्था में वही समाज औद्योगिक समाज होता है। स्पेंसर के अनुसार प्राचीन काल के समाज सैनिक समाज होते थे पर आधुनिक समय में परिस्थितियों के कारण सैन्यवादी प्रवृति उभरती है। सैनिक समाज एवं औद्योगिक समाज, उद्विकासवादी योजना में प्रथम एवं द्वितीय नहीं है। बल्कि परिस्थितियों के आधार पर बाहरी शत्रु अथवा आनुपातिक शांति के समय उभरने वाले समाज है। स्पेंसर ने यह वर्गीकरण मुख्य रूप से समाजों के आंतरिक नियंत्रण एवं आंतरिक संगठन के आधार पर किया है। स्पेंसर मानते है कि किसी भी समाज को इन दोनो में से किसी भी प्रारूप में पूरी तरह से ठीक उतरने की आवश्यकता नहीं है। समाजों का यह वर्गीकरण केवल प्रतिरूपों का प्रोयोजन सिद्ध करते है।

स्पेंसर ने समाज को संघर्षशील एवं औद्योगिक समाजों में विभाजित किया है। प्रथम प्रकार के समाज में युद्ध एवं संघर्ष तथा द्वितीय प्रकार के समाज में औद्योगिक विकास पर बल दिया है। अपने उद्विकास की तीसरी अवस्था में नैतिक राज्य का भी उल्लेख किया है। स्पेंसर ने समाजों की जो कल्पना की है। वह वास्तविकता से दूर है। क्योंकि राज्य विहीन औद्योगिक समाज की कल्पना और सभी व्यक्तियों के पूर्ण नैतिक हो जाने की कल्पना वास्तविकता से दूर है। **वार्कर** का कहना है कि ''आज की अंतिम अवस्था में नैतिकता का पूर्ण विकास हो जाएगा गलत है। विकास की अंतिम अवस्था में प्राकृतिक अधिकार नैतिक नहीं रह जाएंगे।''

2.4.9 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प का चयन कीजिए

1. स्पेंसर ने सत्ता के विकास के कितने स्तर बताए हैं?
   (अ) 2 (ब) 4
   (स) 3 (द) 8
2. टॉनीज ने समाज के कितने प्रकार बताए?
   (अ) 2 (ब) 4
   (स) 5 (द) 6
3. यांत्रिकी एकता एवं सावयवी एकता के रूप में समाज का वर्गीकरण किसके द्वारा किया गया है?
   (अ) दुर्खीम (ब) स्पेंसर
   (स) अगस्त कॉम्ट (द) हेनरी मेन
4. सामाजिक स्तरीकरण के आधार पर स्पेंसर ने समाज को कितनी श्रेणियों में विभाजित किया है?
   (अ) 7 (ब) 4
   (स) 3 (द) 8
5. फ्रांस, जर्मनी, इटली और रूस राज्यों को समाज के वर्गीकरण में स्पेंसर ने किस श्रेणी में रखा है?
   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय
   (स) तृतीय (द) चतुर्थ

उत्तर- 1स 2अ 3अ 4ब 5द

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सैनिक समाज क्या है? स्पष्ट कीजिए।

2. सैनिक समाज की विशेषताएं बताइए।
3. औद्योगिक समाज की अवधारणा को समझाइए।
4. औद्योगिक समाज की विशेषताओं को समझाइए।
5. नैतिक समाज की क्यों आवश्यकता है? समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. औद्योगिक समाज एवं सैनिक समाज की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
2. सैनिक समाज से आप क्या समझते हैं? स्पेंसर के अनुसार इस समाज की अवधारणा एवं विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
3. सैनिक समाज एवं औद्योगिक समाज के बीच अंतर को स्पष्ट कीजिए।
4. स्पेंसर द्वारा प्रस्तुत समाजों के वर्गीकरण के साथ स्तरीकरण के आधार पर समाजों के विभाजन को स्पष्ट कीजिए।
5. स्पेंसर की सैनिक एवं औद्योगिक समाज की अवधारणा को वर्तमान संदर्भ में समझाइए।

2.4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

3. अग्रवाल, गोपाल. कृष्ण. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
4. गुप्ता, एम. एल. शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
5. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी, रविंद्र. नाथ. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
6. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली : ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
7. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
8. मिश्रा, कुमार, महेंद्र. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
9. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
10. मुखर्जी, रवींद्रनाथ. (2016) *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
11. मुखर्जी, रविंद्रनाथ. (2008). *उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
12. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
13. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, कुमार. राजेंद्र. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.
14. शर्मा, प्रकाश. वीरेंद्र. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.

खंड 3 एमाइल दुर्खीम

इकाई 1 जीवन परिचय एवं कृतियां

इकाई की रूपरेखा

3.1.0 उद्देश्य

3.1.1 प्रस्तावना

3.1.2 जीवन परिचय

3.1.3 शैक्षणिक जीवन

3.1.4 पारिवारिक जीवन

3.1.5 व्यवसायिक जीवन

3.1.6 तात्कालिक परिस्थितियां

3.1.7 बौद्धिक परिस्थितियां

3.1.8 सार्वजनिक जीवन में भागीदारी

3.1.9 समाजशास्त्र को योगदान

3.1.10 कृतियां

3.1.11 सारांश

3.1.12 बोध प्रश्न

3.1.13 संदर्भ ग्रंथ सूची सूची

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे -

- दुर्खीम के जीवन परिचय के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- दुर्खीम के शैक्षणिक जीवन के बारे में समझ पाएंगे।
- दुर्खीम के पारिवारिक जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।
- दुर्खीम के व्यवसायिक जीवन से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- दुर्खीम के समय की तात्कालिक परिस्थितियां क्या थी? इसे समझ पाएंगे।
- दुर्खीम की सार्वजनिक जीवन में क्या भागीदारी थी? इसे समझ पाएंगे।
- दुर्खीम की प्रमुख कृतियां कौन-कौन सी है इसके बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.1.1 प्रस्तावना

फ्रांस के प्रसिद्ध समाजशास्त्री एवं समाजशास्त्र के पिता **अगस्त कॉम्ट** के उत्तराधिकारी के रुप में **दुर्खीम** का नाम काफी लोकप्रिय है। **दुर्खीम** को कॉम्ट का उत्तराधिकारी इसलिए माना जाता है क्योंकि कॉम्ट ने जिस विषय की नींव रखी थी, उसे वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर ठोस रूप देने का श्रेय दुर्खीम को ही है। दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय अध्ययनों में केवल वैज्ञानिक विधि के प्रयोग पर ही बल नहीं दिया बल्कि उसे वास्तविकता में प्रयोग करके भी दिखाया है। इसलिए वे समाजशास्त्र को एक विज्ञान का रूप देने में सफल भी रहे हैं। उन्होंने जीवशास्त्र एवं मनोविज्ञान से समाजशास्त्र को अलग करके समाजशास्त्र के क्षेत्र को सीमित रखने में योगदान दिया है। दुर्खीम सामाजिक घटनाओं का मूल कारण समाज को ही मानते हैं।

आपने सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन किया है। बिना तथ्यों को समझें और परखे आपने किसी भी विषय पर अपना मत तब तक प्रकट नहीं किया, जब तक उस विषय से संबंधित समस्त वैषयिक तथ्यों की कसौटी में उसे कस न लिया हो। दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत सामाजिक श्रम विभाजन का सिद्धांत, धर्म का सामाजिक सिद्धांत, आत्महत्या का सिद्धांत आदि के विश्लेषण से इस सत्य के बारे में पता चलता है। दुर्खीम का स्थान उस समय के एवं उस समय से पहले के प्रमुख विचारको जैसे आगस्त कॉम्ट, हरबर्ट स्पेंसर, हेनरीमेन, गैबरील टार्ड आदि से कहीं उच्च स्तर पर है। समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में विकसित करने में उनका योगदान अनूठा है।

3.1.2 जीवन परिचय (Biographical Sketch)

महान विचारक, दार्शनिक, शिक्षाशास्त्री एवं समाजशास्त्री एमाइल दुर्खीम का जन्म **15 अप्रैल 1858** को उत्तर पूर्वी **फ्रांस** के **लॉरेन** क्षेत्र में स्थित **एपीनल** नामक स्थान पर हुआ था। एपीनल फ्रांस के बोसजेस पहाड़ी की तलहटी पर है, जो लॉरेन के मैदानी भाग का एक अंग है। फ्रांस का यह मैदानी भाग राजनीतिक दृष्टि से बराबर विवादास्पद रहा है। फ्रांस के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास में संपूर्ण पहाड़ी क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान समझा जाता है। दुर्खीम में जो समाजवादी विचारधारा थी, उसका जन्म भी इसी पहाड़ी इलाके की राजनीतिक सरगर्मी का परिणाम माना जाता है। फ्रांस की यह तलहटी इसीलिए भी प्रसिद्ध है क्योंकि यहां पर कई महापुरुषों का जन्म हुआ है। दुर्खीम भी उन महान व्यक्तियों में से एक हैं। दुर्खीम धर्म से यहूदी थे। उनके जन्म के समय यहूदी समुदाय एक असंगठित और पीड़ित समुदाय था। धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और सामाजिक विचारधाराओं में नैतिकता का अभाव था। शैक्षणिक संस्थाओं में विशुद्ध पांडित्य भरे संकीर्ण वातावरण ने विद्यार्थियों को बाहरी जगत से बिल्कुल अलग रखा था और ऐसे ही वातावरण में एक दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री दुर्खीम का जन्म हुआ था।

3.1.3 शैक्षणिक जीवन

दुर्खीम की प्रारंभिक शिक्षा एपीनल की ही एक स्थानीय शिक्षा संस्थान में संपन्न हुई। यहूदी परिवार में जन्मे दुर्खीम बचपन से ही अत्यंत होनहार एवं प्रतिभा संपन्न थे। प्रारंभिक वर्षों में ही दुर्खीम अपने एक अध्यापक जो कि कैथोलिक धर्म के समर्थक थे से बहुत अधिक प्रभावित हुए। बचपन से ही दुर्खीम पर यहूदी और कैथोलिक धर्म का व्यापक प्रभाव पड़ा। उनके द्वारा लिखित नैतिक महत्व के लेखों में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। दुर्खीम के पूर्वज रैबी शास्त्रकार के रूप में विख्यात थे। अतः प्रतिभा तो मानो दुर्खीम को विरासत में ही प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि जिसके भाग्य में महान एवं उच्च पद पर पहुंचना लिखा होता है, वह अपनी अद्वितीय योग्यता का परिचय प्रारंभिक शिक्षा में ही देने लगते है। इसलिए दुर्खीम भी इस बात के अपवाद नहीं थे। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा तथा सेकेंडरी शिक्षा में अपनी योग्यता का परिचय दिया और अनेक पुरस्कार प्राप्त किए है।

एपीनल स्थिति कॉलेज से उन्होंने स्नातक की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात वे अध्ययन के लिए फ्रांस की राजधानी **पेरिस** चले आए। पेरिस में उनके उच्च शिक्षा की यात्रा का शुभारंभ हुआ और यहां पर उन्होंने विश्व प्रसिद्ध संस्था **इकॉल नार्मेल अकेडमी** में प्रवेश पाने का प्रयास किया। उस समय इकॉल नार्मेल संस्था पेरिस की ही नहीं बल्कि विश्व की एक ऐसी शिक्षा संस्था थी जहां पर अत्यंत उच्च श्रेणी के प्रतिभाशाली छात्रों को ही प्रवेश मिल पाता था। दुर्खीम ने भी इस संस्था में प्रवेश लेने का प्रयास किया। दो बार के असफल प्रयासों के बाद अंततः 1879 में दुर्खीम को इस संस्था में प्रवेश प्राप्त हुआ और उन्हें इस संस्था के छात्र होने का गौरव प्राप्त हुआ। उन दिनों पेरिस के इस विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करना अपने आप में एक बहुत बड़ी गौरवमई उपलब्धि मानी जाती थी। दुर्खीम इस विश्वविद्यालय में किसी तरह पहुंच तो गए थे पर उन्हें वहां का वातावरण रास नहीं आया। इस विश्वविद्यालय में कला और साहित्य पर अधिक दबाव था और वह दुर्खीम को पसंद नहीं था। इसलिए दुर्खीम ने विरोध स्वरूप अपनी आवाज प्रखर कर दी थी, पर दुर्खीम अपने विश्वविद्यालय के प्रति इस प्रकार का असंतोष जनक रवैया अपनाकर अधिक दिनों तक खुश नहीं रह सके थे। क्योंकि उनके इस व्यवहार के कारण उनके प्रोफेसर धीरे-धीरे उनसे नाराज होने लगे थे और इसका परिणाम यह हुआ की परीक्षा में दुर्खीम का स्थान निम्नतम स्तर पर पहुंच गया। इसके बावजूद इस विश्वविद्यालय में दुर्खीम 3 वर्ष तक रहे। इस अवधि में हालांकि कोई ऐसा समय नहीं था कि विश्वविद्यालय का कोई प्रभाव उन पर न पडा हो और उन्होंने जब इस विश्वविद्यालय को छोड़ा तो उन्हें उस समय की परिस्थितियां लगातार स्मरण रही। यही कारण है कि जिन प्रोफेसरों ने दुर्खीम के साथ कड़ा रुख अपनाया था, दुर्खीम अपने आपको उनका ऋणी मानते हैं। क्योंकि दुर्खीम का यह कहना है कि इन प्रोफेसरों के कारण ही वह अपने युग की बौद्धिक ऊंचाइयों तक पहुंच सके थे।

स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात दुर्खीम ने अपने जीवन की दिशा को निश्चित कर लिया था। उनका निश्चय था कि वे किसी रूढिगत दार्शनिक की तरह अपना जीवन नहीं बिताएंगे। जिस समय दुर्खीम ने स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी, उस समय पेरिस तथा यूरोप के अन्य देशों में जिस तरह का दर्शनशास्त्र पढ़ाया जाता था वह प्रतिदिन की समस्याओं से अलग था। उस समय केवल बेमतलब बातों पर ही तर्क किया जाता था। लेकिन दुर्खीम एक ऐसी शाखा को विकसित करना चाहते थे जो उस समय के युग और समाज के नैतिक प्रश्नों को समझ सके और उसका व्यावहारिक निदान निकाले। वह समाज को एक नैतिक एवं राजनीतिक सुदृढ़ता की दिशा दे सके। इस तरह दुर्खीम ने निश्चित किया कि वह एक ऐसी समाजशास्त्रीय व्याख्या स्थापित करेंगे जिसका उद्देश्य समाज को एक निश्चित दिशा और निर्देशन देना होगा अपने दृढ़ निश्चय को दुर्खीम ने अपने जीवन पर्यंत निभाया और वे अपने निर्धारित उद्देश्य से कभी भी विमुख नहीं हुए। दुर्खीम के काल में समाजशास्त्र न तो स्कूल स्तर पर पढ़ाया जाता था और न ही विश्वविद्यालय स्तर पर एक विषय की तरह पढ़ाया जाता था। इसलिए दुर्खीम यहां पर समाजशास्त्र के लिए कुछ नहीं कर पा रहे थे। इसी कारण उन्होंने अपनी जीविका दर्शनशास्त्र के एक अध्यापक की तरह प्रारंभ की थी। 1882 में अध्ययन समाप्त करने के बाद वह एक ईमानदार कर्तव्यनिष्ठ और मेहनती अध्यापक के रूप में अपनी जीविका प्रारंभ की ।

1882 से 1887 तक दुर्खीम ने दर्शनशास्त्र में ही अध्यापन का कार्य किया। इन 5 वर्ष की अवधि में वह कई बार अध्ययन हेतु पेरिस और जर्मनी भी गए। जर्मनी में दुर्खीम ने एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम में भाग लिया और यह समझने का प्रयास किया कि नैतिक दर्शनशास्त्र और सामाजिक विज्ञान के अध्ययन में कौन सी विधियां प्रभावी होती है।

3.1.4 पारिवारीक जीवन

रॉबर्ट बीरस्टीड ने लिखा है कि "दुर्खीम के पारिवारिक जीवन के बारे में दुर्भाग्यवश लोगों को बहुत ही कम जानकारी है।" दुर्खीम के परिवार के विषय में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। बोर्डियक्स विश्वविद्यालय में अध्यापन के काल में ही लुइस ड्रेफस नाम की लड़की से आपका विवाह हुआ था। आपके दो बच्चे थे एक लड़का आंद्रे और लड़की मैरी। दुर्खीम की पत्नी ने यहूदी परंपरा का निर्वाह करते हुए अपना संपूर्ण समय परिवार को व्यवस्थित करने में दुर्खीम के विभिन्न कार्यों में सहायता करने में व्यतीत किया था। दुर्खीम को अपने दांपत्य जीवन में बहुत प्यार मिला। पारिवारिक परिस्थितियां सदैव उनके अनुकूल रही। दुर्खीम इस रुप में भाग्यशाली व्यक्ति कहे जा सकते हैं क्योंकि उनकी पत्नी ने उनके अध्ययन और लेखन में उनका बहुत सहयोग किया। पारिवारीक दायित्व को संभालने के साथ-साथ उसने दुर्खीम की लिखित सामग्री को व्यवस्थित करने, उसका संपादन और संशोधन करने पांडुलिपि पढ़ने, पत्र व्यवहार करने आदि के कार्य में भी पूर्ण सहयोग दिया। उनके इस सहयोग से ही दुर्खीम का पारिवारिक जीवन संतोष एवं सहयोग से परिपूर्ण था। जिसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पड़ा।

3.1.5 व्यवसायिक जीवन

1887 में दुर्खीम जर्मनी से पेरिस लौट आए। आप बोर्डियक्स विश्वविद्यालय में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। दुर्खीम के लिए ही विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान का पृथक विषय एवं विभाग खोला गया। 1896 में दुर्खीम को समाजशास्त्र विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। इस प्रकार आपने **फ्रांस** में **समाजशास्त्र का प्रथम प्रोफेसर** होने का श्रेय भी प्राप्त किया। इसी विश्वविद्यालय में नियुक्त मनोविज्ञान के प्रोफेसर अल्फ्रेड एस्पिनास ने दुर्खीम को काफी प्रभावित किया तथा इनके प्रभाव का यह परिणाम है कि दुर्खीम समाजशास्त्र को मनोविज्ञान से पृथक करने के प्रयास में सफल हुए। पर दूसरी तरफ समूह चेतना के सिद्धांत को मनोविज्ञान के प्रभाव से अलग नहीं कर सके।

प्रसिद्ध प्रत्यक्षवादी एवं महान इतिहासकार प्रोफेसर कुलॉज 1880 में इकॉल नार्मल नामक संस्था में निदेशक के पद पर थे। कुलॉज उन शिक्षकों में से थे, जिनका दुर्खीम पर विशेष स्नेह और प्रभाव था। कुलॉज के द्वारा वहां के पाठ्यक्रमों में जो परिवर्तन किया गया था, दुर्खीम उससे काफी प्रभावित थे। दुर्खीम उनका बहुत आदर करते थे, इसलिए उन्होंने लैटिन भाषा में माउंटएसक्यू के ऊपर लिखी अपनी थीसिस प्रोफेसर को कुलॉज को समर्पित की थी।

पेरिस विश्वविद्यालय में 1893 में दुर्खीम ने प्रसिद्ध दार्शनिक इमाइल बूटरोक्स (Emile Boutroux) के निर्देशन में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। उनके शोध ग्रंथ का विषय था 'De La Division du Travail Social' जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' (The Division of Labour in Society) था। दुर्खीम के इस ग्रंथ ने प्रकाशित होकर एक असाधारण प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इमाइल बूटरोक्स दुर्खीम से उस समय से ही प्रभावित थे। जब दुर्खीम इकॉल अकैडमी में अध्ययनरत थे, उस समय वे दुर्खीम के आत्मा अथवा अहम (The 'I' or The 'Self') के लेख से काफी प्रभावित थे। दुर्खीम स्वयं अपने निर्देशक इमाइल बोटोक्स के विचारों तथा सिद्धांतों से काफी प्रभावित थे और इसका प्रभाव दुर्खीम के लेखों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी संस्था में दुर्खीम का संपर्क अनेक विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से हुआ। जिसमें डेलाक्लोंचे, जीन लेओन जोरेसा, सालोंमान, रीनाच, हेनरी वर्गस, लेबी ब्रुहल जैसे विद्वानों से हुआ। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पियरे जेनेट तथा महान तर्कशास्त्री गोवलो आपके सहपाठी थे। उसी समय इस शिक्षा संस्थान में अल्फ्रेड एसपीनास, जीन आइजोले, हेनरी हरबर्ट, जार्जेस डेवी, प्लेसटिन बोगले, फ्रैंकोइस सायमंड मार्शल ग्रेनेट जैसे विद्वान जिनकी पहचान बाद में प्रमुख समाजशास्त्रियों के रूप में हुई। इन विद्वानों के संपर्क में आने के कारण दुर्खीम की भी बौद्धिक परिपक्वता बढ़ती गई और उनका मानसिक चिंतन का स्तर उच्च से उच्च होता चला गया।

जर्मनी में दुर्खीम ने अर्थशास्त्र, लोक मनोविज्ञान, सांस्कृतिक मानवशास्त्र आदि का व्यापक गहन अध्ययन कर एक नई प्रतिभा युक्त जीवन की शुरुआत की। यही दुर्खीम ने अगस्त कॉम्टे के लेखों का बारीकी से अध्ययन किया और संभवत: उनसे प्रभावित होकर ही समाजशास्त्रीय प्रत्यक्षवाद को जन्म दिया। जर्मनी में अध्ययन के दौरान आप वरलिन लेपजिंग नगर में भी रहे। यहां पर आप प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुंट (vunt) के संपर्क में आए आप वुंट की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला से बहुत अधिक प्रभावित हुए। अपने विभिन्न लेखों में दुर्खीम ने जर्मनी प्रवास के अनुभव में इस बात को स्वीकारा की वुंट की प्रयोगशाला वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठा के अनुसंधान में एक अनोखी प्रयोगशाला है। उन्होंने यह भी कहा था कि फ्रांस को जर्मनी के इस प्रयोग का अनुकरण करके दर्शनशास्त्र एवं शिक्षा को एक ऐसा रूप देना चाहिए की वह राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सके।

समाजशास्त्रीय धरातल पर धर्म की व्याख्या दुर्खीम का एक नवीन अविष्कार कहा जा सकता है। 1898 में दुर्खीम ने **‘L Annee Sociologique’** नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। आप लगभग 12 वर्षों तक इस पत्रिका के संपादक रहें। इस पत्रिका के माध्यम से दुर्खीम ने फ्रांस में समाजवाद को प्रतिष्ठित किया और समाजशास्त्रीय तथा भौतिक संसार को प्रभावित किया। दुर्खीम ने इस पत्रिका में नवीन प्रतिभाओं को भी स्थान दिया। इस पत्रिका के कुशल संपादक एवं निर्देशन के कारण ही यह एक उच्च कोटि की पत्रिका मानी जाने लगी थी।1902 में दुर्खीम को पेरिस विश्वविद्यालय में शिक्षा विभाग के प्रोफेसर पद के लिए आमंत्रित किया गया। 1906 में उन्हें इस पद पर स्थाई नियुक्ति दी गई। हालांकि इस समय तक समाजशास्त्र को एक पृथक विषय का दर्जा प्राप्त नहीं हुआ था। 1913 में दुर्खीम ने ही इस विभाग का नाम बदलकर शिक्षा एवं समाजशास्त्र विभाग कर दिया। पेरिस विश्वविद्यालय में दुर्खीम ने नैतिक शिक्षा, नीतिशास्त्र, धर्म की उत्पत्ति, विवाह, परिवार, नागरिक, नैतिकता, समाजशास्त्र, कॉम्प्ट तथा सेंट साइमन का समाज दर्शन आदि विषयों में अध्यापन कार्य किया। समाजशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में बहुत ही परिश्रम और लगन के साथ आप अध्यापन कार्य करते थे तथा उन्होंने बहुत ही निष्ठा पूर्वक अनेक निबंध और लेख लिखे। इस कारण वे छात्रों में बहुत अधिक लोकप्रिय थे। उनके एक विद्यार्थी ने उनकी तुलना अरस्तु, डे कार्डस, स्पिनॉज और कांट से की थी। जोकि दुर्खीम को एक आदर्श शिक्षक के रूप में प्रस्तुत करती है।

दुर्खीम केवल साहित्य जगत तक ही सीमित नहीं थे बल्कि उन्होंने अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय गतिविधियों में भाग लिया। उन्होंने फ्रांस और यूरोप के जनजीवन और सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया देश और समाज की सेवा के लिए हमेशा समर्पित रहे सामाजिक जीवन में नैतिकता की और उन्होंने जोरदार वकालत की और सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन पर जोर दिया।

3.1.6 तात्कालिक परिस्थितियां

यदि हम समाजशास्त्रीय विचारकों के विचार धाराओं का अध्ययन करते समय गौर से देखें तो हमें पाते हैं कि इन विद्वानों के विचारधाराओं पर उस समय की तात्कालिक परिस्थितियों सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि का प्रभाव बहुत अधिक पडा है। इस प्रभाव से दुर्खीम भी अछूते नहीं रहे हैं। प्रत्येक विचार और विचारक अपने समाज और परिस्थितियों की उपज होते हैं। **रेमंड एरन** ने लिखा है कि "प्रत्येक लेखक की शैली की व्याख्या, मनुष्य के स्वभाव तथा उसके राष्ट्र की परिस्थितियों दोनों के द्वारा की जाती है।" दुर्खीम के समय फ्रांस में कल-कारखाने बड़ी तेजी से बन रहे थे। पूंजीपति वर्ग का विकास हो रहा था। यह वर्ग अधिक चतुर और समझदार हो गया था। पर इसके विपरीत फ्रांस का मजदूर वर्ग भी संगठित हो रहा था और वह अपनी स्थिति को मजबूत करना चाहता था। यहा तक देखा गया कि 1876 में पेरिस के मजदूरों ने पेरिस पर ही कब्जा कर लिया था। परंतु यह बहुत अधिक दिनों तक नहीं चला था। फ्रांस में सामान्य जमीदार एवं पुरोहित पराजित तो हो गए थे परंतु उन्होंने मन से हार नहीं मानी थी। वह इस मौके की तलाश में थे की वे अपनी विपरीत परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर पाएंगे। यदि हम दुर्खीम के जीवन काल को देखें तो राजनैतिक दृष्टि से दुर्खीम के जीवन काल में तीसरा गणतंत्र लड़खड़ाते हुए आगे बढ़ रहा था। उस समय फ्रांस जर्मनी से पराजित हो गया था और पेरिस कम्यून के घाव अभी नहीं भरे थे। फ्रांस चारों तरफ से झंझावतों से घिरा हुआ नजर आ रहा था।

यह वह समय है जब फ्रांस में मजदूर वर्ग, पूंजीपति वर्ग और मध्यम वर्ग तीनों अलग-अलग विचारों को आगे बढ़ा रहे थे। हालांकि फ्रांसीसी मध्यवर्ग की कोशिश थी कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हो, व्यक्तिवाद बढे, लोकतांत्रिक राजनीति का वर्चस्व हो, पूंजीवाद आए जिससे की मध्यम वर्ग एवं पूंजीपति वर्ग का विकास हो। परंतु मजदूर वर्ग चाहता था कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी तो विकसित हो, परंतु राज्य पर कब्जा करके राज्य के माध्यम से समाज के मजदूरों एवं कमजोर वर्ग के हितों को सुरक्षित करने का कार्य वे करें। सामंत, जमीदार एवं उनके समर्थक पुरोहित वर्ग धर्म एवं परंपरा की गरिमा को वापस लाना चाहते थे। पुराने राजसी वैभव एवं पुरोहित वर्ग के समाज निर्देशक की भूमिका को भी वापस लाना चाहते थे। निम्न वर्ग एवं मध्यमवर्ग नेताओं की बहस में फॅसता रहा और कुछ भी फैसला नहीं हो पा रहा था और ना ही यह लोग कुछ कर पा रहे थे। इसीलिए पूंजीपति एवं सामंत वर्ग एक दूसरे से टकराते रहते थे। इसी समय गणतंत्र जाता रहा और फिर राजतंत्र को पराजित कर वापस आता रहा।

यह वह समय था जब यूरोप के पूंजीवादी देश कई देशों में बट चुके थे। जर्मनी ने इस बंटवारे को चुनौती दी थी और इसी समय प्रथम विश्व युद्ध भी छिड़ गया था। उस समय के प्रमुख समाजशास्त्री मैक्स वेबर इसे महान युद्ध कह रहे थे।जर्मनी के ही जॉर्ज सिमेल ने भी इस युद्ध को एक उचित युद्ध कहा था। फ्रांस के बुद्धिजीवियों ने इसका तिरस्कार किया और जर्मनी से पराजित होने पर प्रतिरोध किया। हालांकि दुर्खीम ने युद्ध पर कोई बड़ी रचना प्रकाशित नहीं की थी। लेकिन उन्होंने युद्ध के विरोध में एवं फ्रांस के लोगों को प्रतिरोध

को प्रेरित करने हेतु अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाएं लिखी थी। दुर्खीम ने पूंजीपति वर्ग एवं श्रेष्ठ मध्यम वर्ग के विचारों का समर्थन किया। उन्होंने कहा था कि व्यक्ति को स्वतंत्र होना चाहिए राज्य की भूमिका हो परंतु सर्वव्यापी न हो दुर्खीम ने मजदूरों की सुरक्षा एवं कल्याण की भी वकालत की थी। वे एक मानवतावादी पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थन करते थे। इसलिए उन्होंने बहुलवादी लोकतंत्र को भी उचित कहा था।

3.1.7 बौद्धिक पृष्ठभूमि

दुर्खीम अत्यंत ही बुद्धिमान एवं गंभीर प्रकृति के अध्ययन शील विद्वान थे। उन्होंने अपने जीवन में बहुत अधिक अध्ययन किया एवं अनेक बौद्धिक स्रोतों से प्रभावित हुए। वे कॉम्ट से सबसे ज्यादा प्रभावित थे और उन्होंने कॉम्ट से ही प्रत्यक्षवादी पद्धति एवं दृष्टिकोण को अपना लिया था। इसीलिए वह अपने **आपको कॉम्ट का बौद्धिक उत्तराधिकारी भी कहते थे।** वे सेंट साइमन से भी बहुत प्रभावित थे और वे इस बात को भी स्वीकार करते थे कि सेंट साइमन ने ही समाज विज्ञान की आवश्यकता का अनुभव किया था।

टालकट पारसंस के अनुसार दुर्खीम ज्ञानोदय के विचारों से प्रेरित थे। दुर्खीम ने ज्ञानोदय के घोर व्यक्तिवाद का विरोध किया था। वे फ्रांस के धर्मवादी एवं ज्ञानोदय विरोधी विद्वान जैसे- ईबोनाइट और डीमात्र से सबसे अधिक प्रभावित थे। दुर्खीम रूसो के समूह कल्याण एवं सामूहिक चेतना के विचार से प्रभावित थे। इसीलिए उन्होंने मोंटेस्क्यू और रूसो की रचनाओं पर शोध पत्र भी लिखे थे। दुर्खीम का मानना था कि सभी चीजें एक साथ जुड़ी हुई है और समग्र की चर्चा किए बिना किसी भी अंश का अध्ययन नहीं हो सकता। यह दुर्खीम का समस्तीवाद था जो कि मोंटेस्क्यूर से प्रेरित था। दुर्खीम के समय इस अवधि में विश्व के अन्य सभी देशों के समान फ्रांस की बौद्धिक जमीन एकरंगी नहीं थी। इसलिए उस समय दुर्खीम पर अनेक विद्वानों के विचारों का प्रभाव पड़ा। विद्वानों की रचनाओं का उन्होंने अध्ययन किया। कोजर ने लिखा है कि "दुर्खीम ब्रिटिश एवं जर्मनी बौद्धिक परंपरा से प्रभावित थे, परंतु सबसे ज्यादा प्रभाव उनपर फ्रांसीसी बौद्धिक परंपरा का था।

फ्रांसीसी विद्वानों में से अगस्त कॉम्टे का प्रभाव उनपर सबसे अधिक था। यही कारण है कि उन्होंने सबसे पहले प्रत्यक्षवादी पद्धति का उल्लेख किया। दुर्खीम की सामूहिक चेतना की अवधारणा भी कॉम्टे से ही प्रेरित है। कॉम्टे का कहना था, सामाजिक संगठन एवं सामाजिक संरचना एक सामान्य सहमति का परिणाम है। यह विचारधारा दुर्खीम के विचारों में बार-बार देखने को मिलती है। रॉबर्ट निसबेट ने दुर्खीम पर एक किताब लिखी थी उसमें उन्होंने लिखा कि "दुर्खीम वैचारिक दृष्टि से विरोधी स्रोतों से प्रेरित थे, वे अपने ब्रिटिश मित्र रॉबर्टसन स्मिथ से भी प्रभावित थे एवं स्मिथ के द्वारा संकलित सामग्री से ही उन्होंने धर्म के आरंभिक स्वरूपों का विश्लेषण किया था।"

दुर्खीम के ऊपर जर्मन समाज वैज्ञानिकों एवं मनोवैज्ञानिकों का भी प्रभाव था। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के जनक विलहेल्म वूंट की वैज्ञानिक एवं प्रयोगात्मक पद्धति उनके लिए एक मार्गदर्शक थी। दुर्खीम जॉर्ज सिमेल, गमप्लोविच, टानीज आदि विद्वानों से भी प्रभावित थे। उनके बारे में यह कहा जाता है कि टानीज की गेमीनसॉफ्ट एवं गैसलसॉफ्ट की धारणाएं ही दुर्खीम की मशीनी एवं सावयवी धारणाओं की स्रोत है। हालांकि अनेक विद्वान ऐसे भी हैं, जो फ्रांसीसी समाजशास्त्री गुस्ताव की रचनाओं में भी इसे तलाशने का प्रयास करते रहे हैं। हालांकि अनेक विद्वान ऐसे भी हैं जो फ्रांसीसी समाजशास्त्री गुस्ताव की रचनाओं में भी इसे तलाशने का प्रयास करते रहे हैं।

दुर्खीम अपने शिक्षकों से बड़े प्रभावित थे। वे जर्मन दार्शनिक इमानुएल कांट की रचनाओं को अपने शिक्षकों के माध्यम से समझ सके थे। वे इमानुएल कांट के विचारों को पूरी तरह से कभी भी ग्रहण करते हुए नजर नहीं आए। वे फ्रांस के नव कांटवादी विद्वान चार्ल्स रेनोवर से भी प्रभावित थे। नैतिकता के संबंध में दुर्खीम ने जो चर्चा की वह कांट से अधिक रेनोवर से प्रभावित होकर की है। आलपोर्ट ने लिखा है कि रेनोवर की प्रेरणा से ही दुर्खीम नीतिशास्त्र की इतनी विस्तृत चर्चा करते रहे हैं।

इस तरह दुर्खीम ने अपने समकालीन विचारकों के विचारों से बहुत कुछ ग्रहण किया और उसका उपयोग अपनी विचारधारा एवं रचनाओं में किया।

3.1.8 सार्वजनिक जीवन में भागीदारी

दुर्खीम जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अध्ययन में ही व्यतीत किया। दुर्खीम को अपने विषय का ही नहीं वरन दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि सभी विषयों का ज्ञान था। वह हमेशा अपने तर्क और विचारों का सटीक ढंग से समर्थन करते थे। जिससे उनके विरोधी उनके विचारों एवं तर्कों का विरोध न कर सके। अपने शिक्षण काल में दुर्खीम सदैव गंभीर रहे उनके मित्रों की संख्या बहुत कम थी लेकिन जो उनके मित्र थे वह सभी बहुत अधिक प्रतिभाशाली थे। बौद्धिक जगत में भी दुर्खीम ने अपने लेखों, पुस्तकों और निबंधों के द्वारा समाज को एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके अतिरिक्त दुर्खीम ने बौद्धिक दुनिया से बाहर निकलकर फ्रांस के सार्वजनिक जीवन में भी सक्रिय भूमिका निभाई थी। दुर्खीम ने विश्वविद्यालय व्यवस्था को आम जीवन में मान्यता दिलाने के लिए कठिन परिश्रम किया था। विश्वविद्यालय की कई समितियों के सदस्य थे और शिक्षा मंत्रालय में भी सहायक रहे। दुर्खीम पेरिस में रहते हुए इस बात का भरसक प्रयत्न किया था कि समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र सामाजिक विज्ञान की तरह पेरिस के स्कूलों के पाठ्यक्रम में स्थान मिले। उनकी दृष्टि में नागरिक शिक्षा के लिए समाजशास्त्र से अधिक महत्वपूर्ण और कोई विषय नहीं हो सकता था।

दुर्खीम अपने यहूदी समुदाय तथा फ्रांस के राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक वातावरण और इकॉल अकादमी के विशुद्ध साहित्यिक, संकीर्ण एवं पांडित्यपूर्ण, वातावरण से संतुष्ट नहीं थे। वे उसमें परिवर्तन लाना चाहते थे परंतु उन्होंने परिवर्तन लाने के लिए कभी भी अपना संतुलन नहीं खोया। वे सदैव धैर्य, शांति और गंभीरता के साथ स्थिति का अध्ययन करते थे। प्रत्येक प्रतिकूल वातावरण में भी वे सदैव आशावादी रहे क्योंकि परिस्थितिओं को बदलने के प्रयत्नों में उनका पूर्ण विश्वास था। यहां तक कि जब 1914 में फ्रांस युद्ध की ज्वालाओं से पूरी तरह से घिर गया था तब दुर्खीम अपने आपको इससे अलग नहीं रख सके और अपने पुत्र आंद्रे के साथ समाज सेवा में जुट गए। उनमें समाज सुधार की भावना कूट-कूट कर भरी भरी हुई थी, वे विद्या प्रेमी थे। उन्होंने ज्ञान अर्जन हेतु देश-विदेश का भ्रमण किया था। उन्होंने बहुत से विद्वानों की विचारधारा का अध्ययन किया था और उनकी समीक्षाएं एवं आलोचनाएं भी लिखी थी। दुर्खीम ने पहले विश्व युद्ध में जनजीवन के मनोबल को बनाए रखने के लिए कई मोनोग्राफ और पंपलेट भी लिखें। जब प्रथम विश्वयुद्ध फ्रांस के दरवाजे पर खड़ा था तब दुर्खीम ने नैतिक मनोबल को बनाने के लिए जो कुछ किया जा सकता था, पूरी शक्ति से किया।

युद्ध के दौरान सैनिक आक्रमण और ध्वस्त फ्रांस के लोगों के मन में दुर्खीम ने आशा की ज्योति जलाने का काफी प्रयास किया इसलिए उनकी तुलना इंग्लैंड के प्रधानमंत्री चर्चिल से की जाती है उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में इंग्लैंड के लोगों का मनोबल बनाए रखा था। दुर्खीम केवल साहित्य जगत तक ही सीमित नहीं थें। उन्होंने राष्ट्रीय और सामाजिक गतिविधियों में भी भाग लिया।आपका सारा जीवन सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के तरीके खोजने, नागरिक अधिकारों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने, समाज सेवा एवं समाज सुधार में ही बीता। जीवन के अंतिम वर्ष में दुर्खीम ने दुखद अनुभव किए। उसके बाद भी उन्होंने अपना अंतिम समय एक देशभक्त समाजशास्त्री के रूप में बिताया। सन 1914 में प्रथम विश्व युद्ध में देश की रक्षा के लिए कुछ बुद्धिजीवी विश्वविद्यालयों को छोड़कर युद्ध मैदान में आ गए। प्रथम विश्व युद्ध के समय इकॉल अकादमी के आधे से अधिक छात्र एवं समाजशास्त्री राबर्ट हर्ट्ज, एम डेविड तथा जीन रेनियर की मृत्यु से दुर्खीम का मन काफी दुखी हो गया। दुर्खीम ने अपना अंतिम समय युद्ध संबंधी प्रचार सामग्री के संपादन और प्रकाशन में व्यतीत किया। उन्होंने फ्रांस की जनता को "धैर्य, प्रयत्न और विश्वास" का नारा दिया। दुर्खीम ने अपने पुत्र **आंद्रे** को जो इकॉल अकैडमी से शिक्षा प्राप्त करके समाजशास्त्र और भाषाशास्त्र के विकास में संलग्न थे, देश भक्ति की भावना से प्रेरित होकर युद्ध में भाग लेने के लिए भेज दिया था। विश्व युद्ध में बुरी तरह घायल होने पर बुलगारिआ के एक अस्पताल में **आंद्रे की मृत्यु हो गई** । दुर्खीम को अपने पुत्र की मृत्यु की खबर बड़े दिन से पहले 1915 में मिली थी। पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर दुर्खीम भीतर ही भीतर टूट गए थे। क्योंकि आंद्रे न केवल उनका इकलौता पुत्र था बल्कि एक होनहार छात्र और उभरता हुआ नक्षत्र भी था। आंद्रे को भाषा विज्ञान के होनहार छात्रों के रूप में गिना जाता था। दुर्खीम को आंद्रे से बड़ी आशाएं थी। उन्हें कुछ ऐसा भरोसा हो गया था कि उनकी मृत्यु के बाद आंद्रे समाजशास्त्र में उनके ही स्तर का

समाजशास्त्री बन जाएगा पर शायद विधाता को यह स्वीकार नहीं था। पुत्र की मृत्यु के बाद दुर्खीम के पैर लड़खड़ा गए थे और उनकी बौद्धिक स्वास टूट भी गई थी। उसके बाद भी उन्होंने लिखने की कोशिश की पर यह संभव नहीं हो पाया। दुर्खीम नैतिकशास्त्र पर एक पूरा ग्रंथ लिखना चाहते थे और इसकी उन्होंने एक प्रारंभिक रूपरेखा भी बना ली थी। लेकिन यह ग्रंथ उनके जीवनकाल में पूरा नहीं हो पाया पुत्र की मृत्यु से दुर्खीम शांत और गंभीर हो गए थे। दुर्खीम ने अपनी वेदना को बाहर प्रगट नहीं होने दिया। किंतु वेदनाएं छिपती नहीं है और कसक भी मिटती नहीं है। 1916 में दुर्खीम गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। पुत्र की मृत्यु के सदमे के कारण 15 नवंबर 1917 को 59 वर्ष की आयु में दुर्खीम की मृत्यू हो गई।

3.1.9 दुर्खीम का समाजशास्त्र को योगदान (Sociological Contributions of Emile Durkheim)

सामाजिक विचारकों की श्रेणी में दुर्खीम का नाम काफी लोकप्रिय है। कॉम्ट समाजशास्त्र के जन्मदाता माने जाते हैं जिन्होंने समाजशास्त्र का नामकरण किया, किंतु दुर्खीम समाजशास्त्र को एक पृथक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया है। दुर्खीम को समाजशास्त्र में कॉम्ट का उत्तराधिकारी माना जाता है। दुर्खीम ने अनेक नवीन अवधारणा एवं सिद्धांत प्रस्तुत करके समाजशास्त्री जगत में अपने आपको ही प्रतिष्ठित नहीं किया है, बल्कि समाजशास्त्र को भी अन्य विज्ञानों की तुलना में उच्च स्थान प्रदान किया है। दुर्खीम ने महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की इन ग्रंथों ने समाजशास्त्री साहित्य के भंडार को बहुत अधिक समृद्ध किया है हम यहां पर समाजशास्त्र को दुर्खीम के द्वारा दिए गए योगदान को समझने का प्रयास करेंगे-

- पद्धतिशास्त्र (Methodology)
- समाज में श्रम विभाजन का सिद्धांत (Theory of The Devision of Labour in Society)
- सामाजिक विकास का सिद्धांत (Theory of The Development of Society)
- सामाजिक तथ्य का सिद्धांत (Theory of Social Fact)
- आत्महत्या का सिद्धांत (Theory of Suicide)
- धर्म का सिद्धांत (Theory of Religion)
- ज्ञान का समाजशास्त्र (Sociology of Knowledge)
- मूल्यों का सिद्धांत (Theory of Values)
- नैतिकता का सिद्धांत (Theory of Morality)
- सामूहिक चेतना की अवधारणा (Concept of Collective Consciousness)
- सामूहिक प्रतिनिधित्व की अवधारणा (Concept of Social Collective Representation)

- सामाजिक एकता की अवधारणा (Concept of Social Solidarity)
- आदर्श हीनता की अवधारणा (Concept of Anomie)
- अपराध दंड एवं कानून की अवधारणा
- प्रकार्यवाद की अवधारणा (Concept of Function)

3.1.10 कृतियां

दुर्खीम ने अपने अल्प जीवनकाल में काफी लिखा। दुर्खीम ने समाजशास्त्र को एक पृथक विज्ञान के रूप में स्थापित करने के साथ ही समाजशास्त्रीय अध्ययनों को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। उनकी पुस्तकें समाजशास्त्र की धरोहर बन गई। इन पुस्तकों की गणना समाजशास्त्र की गौरव ग्रंथों में की जाती है। फ्रांसीसीयों में एक रूढी है कि वह अपने ग्रंथों की रचना फ्रेंच भाषा में ही करते हैं, ठीक इसी तरह दुर्खीम ने भी अपनी रचनाओं को फ्रेंच भाषा में ही लिखा ,बाद में उनकी सभी रचनाएं अंग्रेजी भाषा में अनुवादित हुई हैं। उनके कुछ ग्रंथों का प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद हुआ और इनमें से अधिकांश पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी उनकी मृत्यु के बाद हुआ है। आज भी उनकी अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकों का प्रकाशन जारी है। दुर्खीम के कुछ प्रसिद्ध पुस्तकें इस प्रकार हैं—

1. De Le Division Dei Travail Social
   (The Division of Labour in Society, 1893) समाज में श्रम विभाजन
2. Lee Relges de la Methode Sociologique
   (The Roules of Sociological Method, 1895) समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम
3. Le suicide (Suicide 1897) आत्महत्या
4. Les Forms Elementaries de Lavie religieuse
   (The Elementary Forms of Religious Life, 1902) धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप

दुर्खीम की कुछ रचनाएं ऐसी है जो कि उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो सकी थी। जिनका प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी के द्वारा किया गया ए महत्वपूर्ण रचनाएं निम्न हैं-

1. Education and Sociologyie
   (Education and Sociology, 1922) शिक्षा एवं समाजशास्त्र
2. Sociologie and Philosophy
   (Sociology and Philosophy, 1924) समाजशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र

3. L education Morale
   (Moral Education, 1925) नैतिक शिक्षा

दुर्खीम की मृत्यु के पश्चात उनकी पत्नी ने उनकी कुछ रचनाओं का प्रकाशन किया लेकिन कुछ रचनाएं ऐसी थी जो दुर्खीम की पत्नी की मृत्यु के पश्चात अन्य स्रोतों के द्वारा प्रकाशित की गई इनमें से कुछ निम्न हैं-

1. **Le Socialisme**
   (Sociology and Saint Simon, 1925) समाजशास्त्र और संत साइमन
2. The Evolution of Peddagogy in France, 1938
3. Le Cons de Sociologie, 1950

दुर्खीम की उपरोक्त सभी कृतियां फ्रांसीसी भाषा में लिखी गई थी। आज लगभग सभी कृतियों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। उनकी उपरोक्त सभी कृतियां समाजशास्त्री जगत में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

3.1.11 सारांश

दुर्खीम ने समाज का मौलिक चिंतन करते हुए समाजशास्त्र को एक वस्तुनिष्ठ विज्ञान बनाने का प्रयास किया। आपने रहस्यवाद, अधि-प्राकृतिकवाद और परंपरावाद का विरोध करते हुए सामूहिकता एवं सामाजिक मूल्यों को सामाजिक जीवन का वास्तविक आधार बताया। दुर्खीम ने सदैव वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग पर जोर देते हुए तुलनात्मक विधि के प्रयोग को सर्वाधिक महत्व दिया। समाजशास्त्र की अध्ययन वस्तु का निर्धारण करते हुए सामाजिक तथ्य की व्याख्या की। सामाजिक तथ्य के अतिरिक्त आपने श्रम विभाजन, धर्म, मूल्य और प्रकार्यवाद की समाजशास्त्रीय विवेचना करते हुए अगस्त काम्ट के उत्तराधिकारी की भूमिका निभाई। दुर्खीम का जीवन काल 59 वर्ष का था इस अवधि में उन्होंने समाजशास्त्र को बहुत कुछ दिया। वे एक दार्शनिक थे लेकिन साथ में एक समाजशास्त्री भी थे। विज्ञान की दृष्टि से वे प्रत्यक्षवादी थे। यद्यपि उन्होंने कोई सामाजिक सर्वेक्षण नहीं किया फिर भी वह आनुभविक वैज्ञानिक थे। मूल रूप से वे मानवतावादी थे। शायद इसी कारण जीवन पर्यंत उनकी सोच में निरंतरता बनी रही। उन्होंने अपनी सैद्धांतिक मान्यताओं को कभी नहीं छोड़ा। दुर्खीम ने समाज की मूलभूत समस्याओं के विश्लेषण से भी अपना मुंह नहीं मोड़ा उनके लेखन का बहुत बड़ा आधार उनकी अनुभूति थी। उन्होंने आधुनिक मानवशास्त्री की तरह झोला लटकाकर कोई क्षेत्रीय कार्य नहीं किया। उन्होंने जो कुछ लिखा वह उनके व्यक्तिगत अनुभव का परिणाम था। टालकट पारसंस ने दुर्खीम के जीवन चरित्र की विश्लेषणात्मक व्याख्या की है। वह कहते हैं कि "आज समाजशास्त्र के क्षेत्र में ज्ञान का अपार भंडार है। कई अवधारणा और सिद्धांत है। कई अध्ययन पद्धतियां और प्रकार्य हैं। फिर भी सावयवी

समाज में संविदा की जो प्रकृति है, आत्महत्या की दर है और आदिम समाज में धार्मिक व्यवस्था है, इसमें दुर्खीम का कोई सानी नहीं है। वे एक सफल अध्यापक, चोटी के संपादक, एक सशक्त और सृजनात्मक समूह के नेता तथा शोधकर्ता थे।"

3.1.12 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प का चयन करिए

1. दुर्खीम का जन्म किस नगर में हुआ था?
   (अ) एपीनल (ब) लंदन
   (स) मास्को (द) न्यूयॉर्क
2. दुर्खीम किस देश के समाजशास्त्री थे?
   (अ) जर्मनी (ब) फ्रांस
   (स) इंग्लैंड (द) रूस
3. दुर्खीम का जन्म कब हुआ था?
   (अ) 1879 (ब) 1872
   (स) 1895 (द) 1858
4. 'आत्महत्या' नामक ग्रंथ का प्रकाशन किस वर्ष हुआ?
   (अ) 1920 (ब) 1867
   (स) 1897 (द) 1893
5. दुर्खीम को किस ग्रंथ पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई थी?
   (अ) समाजशास्त्री पद्धति के नियम (ब) समाज में श्रम विभाजन
   (स) आत्महत्या (द) समाजशास्त्र एवं दर्शन
6. फ्रांस में दुर्खीम को किसका उत्तराधिकारी माना जाता है?
   (अ) मैक्स वेवर (ब) अगस्त कॉम्ट
   (स) स्पेंसर (द) कार्ल मार्क्स
7. किस विद्वान को पहला अकादमिक समाजशास्त्री माना जाता है?
   (अ) एमाइल दुर्खीम (ब) अगस्त कॉम्ट
   (स) हरबर्ट स्पेंसर (द) मैक्स वेवर
8. "समाज ही वास्तविक देवता है।" यह कथन किसका है?
   (अ) हरबर्ट स्पेंसर (ब) मैक्स वेबर

(स) विल्फ्रेडो परेटो (द) एमाइल दुर्खीम

9. समाजशास्त्र में प्रकार्य वादी परिपेक्ष को शुरू करने का श्रेय किसे दिया जाता है?

(अ) रॉबर्ट के. मर्टन (ब) एमाइल दुर्खीम

(स) टालकट पारसंस (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

10. "समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र व्यक्ति नहीं अपितु समाज है।" इस तथ्य का उल्लेख दुर्खीम के किस ग्रंथ में किया गया है?

(अ) समाजशास्त्री पद्धति के नियम (ब) आत्महत्या

(स) समाज में श्रम विभाजन (द) शिक्षा एवं समाजशास्त्र

उत्तर

(1) अ (2) ब (3) द (4) ब (5) स

(6) ब (7) अ (8) अ (9) ब (10) अ

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. दुर्खीम के जीवन का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
2. दुर्खीम की कृतियों का विवरण दीजिए।
3. दुर्खीम का समाजशास्त्र को क्या योगदान है? संक्षेप में समझाइए।
4. दुर्खीम के समय की बौद्धिक परिस्थितियों को बताइए।
5. दुर्खीम के शैक्षणिक जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. दुर्खीम के जीवन चित्रण एवं उनकी प्रमुख कृतियों पर टिप्पणी लिखिए।
2. एमाइल दुर्खीम के विचारधारा पर पड़े विभिन्न प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
3. दुर्खीम के समाजशास्त्री योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
4. दुर्खीम के जीवन काल में प्रकाशित चारों ग्रंथों पर टिप्पणी कीजिए।
5. 'समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र व्यक्ति नहीं अपितु समाज है'। इस कथन की विवेचना कीजिए।

3.1.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

13. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.

14. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.

15. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

16. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.

17. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.

18. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

19. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

20. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

21. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.

22. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.

23. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.

24. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 2 समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम, सामाजिक तथ्य एवं प्रत्यक्षवाद
(The Rules of Sociological Method, Social Fact & Positivism)

समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम का सिद्धांत

3.2.0 उद्देश्य
3.2.1 प्रस्तावना
3.2.2 समाजशास्त्री पद्धति के नियम
3.2.3 सामाजिक तथ्यों का अर्थ
3.2.4 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम
3.2.5 सामाजिक एवं व्याधिकीय तथ्यों में भेद करने के नियम
3.2.6 सामाजिक प्रकारों व समाज के वर्गीकरण के नियम
3.2.7 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम
3.2.8 समाजशास्त्रीय प्रमाणो की स्थापना से संबंधित नियम

सामाजिक तथ्य का सिद्धांत (Theory of Social Fact)

3.2.9 प्रस्तावना
3.2.10 सामाजिक तथ्य का अर्थ
3.2.11 सामाजिक तथ्य की परिभाषा
3.2.12 सामाजिक तथ्य की विशेषताएं
3.2.13 सामाजिक तथ्यों के प्रकार
3.2.14 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम
3.2.15 सामान्य और व्याधि की तथ्यों में भेद करने के नियम
3.2.16 समाज के विकास का स्तर
3.2.17 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम
3.2.18 समाजशास्त्री प्रमाणों की स्थापना से संबंधित नियम
3.2.19 आलोचना

प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत (Theory of Positivism)

3.2.20 प्रस्तावना
3.2.21 प्रत्यक्षवाद का अर्थ (Meaning of Positivism)
3.2.22 परिभाषाएं (Definition)
3.2.23 दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद (Durkheim s Positivism)
3.2.24 सारांश
3.2.25 बोध प्रश्न
3.2.26 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्न में सक्षम होंगे -

- दुर्खीम के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व को समझ सकेंगे।
- सामाजिक एवं व्याधिकीय तथ्यों में भेद करने के नियमों से अवगत होंगे।
- सामाजिक तथ्य के अर्थ को समझेंगे।
- सामाजिक तथ्यों की विशेषताओं को समझने में सहायता मिलेगी ।
- सामाजिक तथ्यों के प्रकारों को समझ पाएंगे।
- सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों को समझ सकेंगे।
- सामाजिक प्रमाणों की स्थापना से संबंधित एक समझ विकसित होगी।
- दुर्खीम के सामाजिक तथ्य की किन-किन आधारों पर आलोचना की गई है। यह समझ पाएंगे ।
- दुर्खीम के प्रत्यक्षवाद की अवधारणा को समझने में सहायता मिलेगी।

3.2.1 प्रस्तावना

दुर्खीम के समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान है। दुर्खीम की एक प्रसिद्ध पुस्तक 'समाजशास्त्री पद्धति के नियम' (The Rules of Sociological Method) का प्रकाशन 1895 में हुआ। इमाइल दुर्खीम के समय में दर्शनशास्त्र की पद्धति प्रचलन में थी। हालांकि प्रत्यक्षवादी विधि का प्रयोग भी होता था, जो कि अर्थशास्त्र में प्रयोग की जाती थी। दुर्खीम समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापित करना चाहते थे। एक बौद्धिक विधा के रूप में स्थापित करना चाहते थे। दुर्खीम के अनुसार किसी भी विज्ञान की व्याख्या में चाहे वह प्राकृतिक हो या सामाजिक तीन कसौटियों पर कसा जाना चाहिए-

1. **सिद्धांत** (Theory)
2. **तथ्य** (Data)
3. **विधि** (Method)

दुर्खीम चाहते थे कि समाजशास्त्र के लिए एक ऐसी विधि विकसित की जाए जो तथ्य परक वस्तुगत एवं आनुभविक हो। उन्होने सामाजिक जीवन के यथार्थ एवं वैश्विक अध्ययन के लिए एक अलग समाजशास्त्री पद्धति के प्रयोग पर जोर दिया। दुर्खीम समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग पर बल दिया। दुर्खीम का मानना था कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी उन्हीं विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। जो प्राकृतिक विज्ञानों के द्वारा

प्रयोग की जाती हैं। इसे संभव करने के लिए यह आवश्यक है कि हम अध्ययन के विषय का निर्धारण करके प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा तथ्यों का संकलन करें। उसके बाद तथ्यों का व्यवस्थित कार्य प्रणाली के द्वारा वर्गीकरण, विश्लेषण एवं विवेचन करके नियमों की स्थापना करें। बार-बार किसी निष्कर्ष को वास्तविक तथ्यों की कसौटी पर कस लिया जाए तो उसे समाजशास्त्री नियम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इसी से नियम बनते हैं और सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है।

दुर्खीम के अनुसार वैज्ञानिक अध्ययन के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट पक्षपात की धारणा, अविवेकपूर्ण निर्णय एवं आदर्शात्मक व्याख्या है। जब व्यक्ति किसी घटना को उचित या आदर्श मान लेता है, तो वह अपने आपको वैज्ञानिक स्तर से नीचे गिरा देता हैं। इसलिए घटनाओं के अध्ययन में उन पद्धतियों का प्रयोग किया जाए जो पूर्णतः वैश्विक तथ्यों पर आधारित हो। इस तरह दुर्खीम प्रत्यक्षवादी पद्धतिशास्त्र के आधार पर घटनाओं का अध्ययन करने पर बल देते हैं। **बार्न्स** ने दुर्खीम की पद्धतिशास्त्र की विवेचना करते हुए लिखा है कि "प्रत्यक्षवादी परंपरा के समाज वैज्ञानिक के रूप में वह इस स्थिति का समर्थन करने में सफल हुआ है कि विज्ञान सामाजिक संगठन का नवीन और पर्याप्त आधार बन सकता है।" दुर्खीम ने विषय-वस्तु और अध्ययन पद्धति दोनों ही दृष्टियों से समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है, वह इस प्रयास में पूर्ण रुप से सफल भी रहे।

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम' जो कि 1895 में प्रकाशित हुई थी में अगस्त कॉम्ट के विचारों को दृढ़ करने का प्रयास किया है। आपके अनुसार, समाजशास्त्र एक विज्ञान है। जिसमें प्राकृतिक विज्ञानों की तरह प्रामाणिकता के नियम है। इस पुस्तक में दुर्खीम ने समाजशास्त्र के क्षेत्र को सीमित रखने एवं वैज्ञानिक पद्धति के नियम निर्धारण में भी सफल रहे हैं। दुर्खीम ने समाजशास्त्र को जीव विज्ञान एवं मनोविज्ञान की व्याख्या से अलग करके समझाने का प्रयास किया है दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्रीय पद्धति दर्शन से स्वतंत्र है। यह वस्तुनिष्ठ है एवं पूर्ण रूप से समाजशास्त्रीय है।

3.2.2 समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम

समाजशास्त्र को सामाजिक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए दुर्खीम ने 1895 में समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम (The Rules of Sociological Method) नामक एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र व्यक्ति नहीं अपितु समाज है। दुर्खीम की जब यह पुस्तक छप कर आई उस समय समाज विज्ञानों पर काफी बहस हुई। क्योंकि पुस्तक के द्वारा दुर्खीम ने उस समय विधि संबंधित प्रचलित विचारधारा को झकझोर दिया था। इस पुस्तक पर उस समय काफी विवाद भी हुआ था। इसका प्रमुख कारण यह था कि यह पुस्तक उपयोगितावाद का विरोध करती थी और इसका विरोध व्यक्तिवाद से भी था। यह पुस्तक अत्यंत संक्षिप्त रूप में थी। टालकट पारसंस ने एक सिद्धांतवेक्ता होने

के तौर पर दुर्खीम की इस रचना का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया था। उस समय की परिस्थितियों से स्पष्ट है कि 19वीं शताब्दी के अंत में समाज विज्ञानों पर उपयोगितावाद का प्रभाव बहुत अधिक दिखाई दे रहा था। अधिकांश अर्थशास्त्री इसका उपयोग कर रहे थे। समाजशास्त्रियों में हरबर्ट स्पेंसर ने भी इसका उपयोग सामाजिक प्रगघटनाओं और सामाजिक वास्तविकताओं के अध्ययन के लिए किया था। दुर्खीम इस उपयोगितावादी अवधारणा के विरोधी थे। इसलिए उन्होंने एक प्रत्यक्षवादी सिद्धांत बनाया जो की उपयोगितावादी प्रत्यक्षवाद के विपरीत था।

पारसंस ने लिखा है कि दुर्खीम की इस पद्धति के दो बड़े आधार हैं पहला उपयोगितावादी व्यक्तिवाद का विरोध और दूसरा दुर्खीम का प्रत्यक्षवादी सिद्धांत। दुर्खीम ने अपनी इस संक्षिप्त रचना में इस तथ्य पर जोर दिया था कि जब हम समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान की तरह स्थापित करते हैं तो हमें निश्चित रूप से यह भी तय करना पड़ेगा कि इसकी विधियां कौन सी होंगी? कौन सी आधार सामग्री होगी और कौन से सिद्धांत होंगे? समाजशास्त्री पद्धति के नियम की पहली विशेषता जो दुर्खीम ने बताई है, वह है उपयोगितावाद और व्यक्तिवाद का विरोध। दुर्खीम कहते हैं, उपयोगितावादी-व्यक्तिवादी अध्ययन विधि प्रत्यक्षवादी है और इसका आधार व्यक्तिवाद है। दुर्खीम का आग्रह है कि व्यक्ति की आवश्यकताएं स्वयं व्यक्ति नहीं पूरा कर सकता है। यह समाज सामाजिक तत्व के द्वारा पूरी की जाती है। इसलिए वे सामाजिक तथ्यों पर केंद्रित विधि को प्रत्यक्षवाद की तरह परिभाषित करते हैं। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि जहां उपयोगितावाद का केंद्र व्यक्ति है वहां प्रत्यक्षवाद का केंद्र सामाजिक तथ्य है।

3.2.3 सामाजिक तथ्य

सामाजिक तथ्य कार्य करने सोचने तथा अनुभव करने के वे तरीके हैं जो व्यक्ति के लिए बाहरी होते हैं तथा जो दबाव की शक्ति के माध्यम से व्यक्ति को नियंत्रित करते हैं। इसमें दुर्खीम सामाजिक तथ्यों के अध्ययन पर बल देते हैं। इसमें वे सामाजिक तथ्यों का स्पष्टीकरण करते हैं तथा इनको मनोवैज्ञानिक एवं जैविकीय तथ्यों से अलग करते हैं। इससे स्पष्ट है की समाजशास्त्र अन्य विज्ञानों की तरह केवल तथ्यों का अध्ययन करता है। विचारों का नहीं यहां पर दुर्खीम समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र को सीमित करने में सफल रहे हैं।

3.2.4 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन का नियम

दुर्खीम का प्रमुख उद्देश्य समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करना था। इसके द्वारा वह समाजशास्त्रीय पद्धति के नियमों का निर्धारण करना चाह रहे थे। जिससे समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जा सके। इसके लिए उन्होंने सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम बनाए। पहला नियम है सामाजिक तथ्यों पर वस्तुओं के रूप में विचार किया जाए। दुर्खीम का मानना है कि अगर सामाजिक तथ्य को वस्तु के रूप में

माना जाएगा तो इसका वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव हो सकता है। दुर्खीम का कहना है कि यथार्थता से संबंधित विज्ञान के स्थान पर हम केवल विचारकीय विश्लेषण उत्पन्न करते हैं। ऐसा करने से विज्ञान विचारों से वस्तुओं की ओर बढ़ता है न की वस्तुओं से विचारों की तरफ। इसलिए दुर्खीम का कहना है कि इस विधि द्वारा अध्ययन का हम समर्थन नहीं करते क्योंकि इससे वस्तुनिष्ठ या वस्तुपरक परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। यह विचार या धारणाएं वस्तुओं का स्थान ग्रहण करने के लिए तार्किक नहीं है।

दुर्खीम मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ने, अर्थात वस्तुओं से उनके बारे में धारणाओं के अध्ययन के पक्ष में थे। ताकि वस्तुनिष्ठ रूप से इनका विश्लेषण किया जा सके। इस प्रकार दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को वस्तु के रूप में अध्ययन किए जाने के रूप में बल देकर समाजशास्त्र को ठोस आधार प्रदान किया है ताकि वस्तुनिष्ठ अध्ययन किए जा सके और इसे विज्ञान बनाया जा सके। अवलोकन का दूसरा नियम है, प्रत्येक समाजशास्त्रीय अध्ययन की विषय-वस्तु कुछ सामान्य बाह्य विशेषताओं के आधार पर पहले परिभाषित कुछ घटनाओं के समूह को ग्रहण करें तथा परिभाषा के दायरे में आने वाली सभी घटनाओं को इस समूह में सम्मिलित किया जाए। दुर्खीम इस बात पर भी बल देते हैं कि जब समाजशास्त्री कुछ तथ्यों के सामाजिक क्रम के अन्वेषण का प्रयास करते हैं तो उन्हें स्वतंत्र दृष्टिकोण से भी उनका अध्ययन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को वस्तु के रूप में स्वीकार किए जाने पर बल देने का प्रयास किया है। सामाजिक घटनाओं का अध्ययन भी वैज्ञानिक विधियों द्वारा वस्तुनिष्ठ रूप से किया जा सकता है।

3.2.5 सामाजिक एवं व्याधिकीय तथ्यों में भेद करने के नियम (Rules for Distinguishing between the Normal and the Pathological Fact)

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक समाजशास्त्री पद्धति के नियम सामान्य और व्याधिकीय तथ्यों में अंतर करने के महत्व पर अधिक जोर दिया है तथा इसमें अंतर करने के नियम भी बताएं हैं। सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों के निर्धारण के बाद दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को दो श्रेणियों में बांटा है -

1. सामान्य तथ्य
2. व्याधिकीय तथ्य

सामान्य सामाजिक तथ्यों के अंतर्गत वे तथ्य थे आते हैं जो अधिकांश समाजों अथवा किसी समाज में रहने वाले अधिकांश व्यक्तियों में पाए जाते हैं। यह समाज में संगठन बनाए रखने तथा अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद करते हैं। सामाजिक अवस्थाओं के वे तथ्य जो सर्वाधिक सामान्य रूप से वितरित हैं, सामान्य अवस्थाएं कहे जाते हैं। जबकी वे अवस्थाएं जो सर्वाधिक उपयोगी नहीं है और न ही सामान्य रूप से वितरित हैं। असामान्य व्याधिकीय अवस्थाएं मानी जाती हैं। सामान्य तथा व्याधिकीय शब्द सापेक्षिक है।

दुर्खीम इन दोनों सामान्य एवं व्याधिकीय अवस्थाओं के बीच के अंतर के महत्व पर बल देते हुए कहते हैं कि व्याधकीय अवस्थाओं को समझे बिना हम सामान्य अवस्थाओं को अच्छी तरह से नहीं समझ सकते। इसलिए तथ्यों के सामान्य तथा असामान्य रूप में भेद करना अनिवार्य ही नहीं महत्वपूर्ण भी है। दुर्खीम ने इन दोनों के बीच भेद करने के लिए तीन नियमों का उल्लेख भी किया है-

1. सामाजिक तथ्य किसी भी सामाजिक प्रकार के विकास की एक निश्चित अवस्था के संबंध में तब सामान्य होता है, जब वह उस जाति के औसत समाज के समान पक्षों में विद्यमान हो।
2. इसके लिए पूर्व गामी पद्धतियों से प्राप्त परिणामों का सत्यापन यह दर्शाने के लिए होता है कि घटना साधारणतया विचाराधीन सामाजिक प्रकार के सामूहिक जीवन की साधारण अवस्थाओं से संबंधित होती है।
3. यह सत्यापन उस समय भी आवश्यक हो जाता है जब विचाराधीन तथ्य ऐसे सामाजिक जाति में पाए जाते हैं जहां पर उसने अपना पूर्ण उद्विकास को प्राप्त नहीं किया हो।

3.2.6 सामाजिक प्रकारों या समाज के वर्गीकरण के नियम (Rules for the clarification of Social Type)

दुर्खीम के अनुसार दुनिया भर के समाज विभिन्नताओं से परिपूर्ण हैं। सामाजिक तथ्य चाहे सामान्य हो या असामान्य समाज के संदर्भ में सापेक्षिक हैं। क्योंकि एक तथ्य एक समाज के लिए सामान्य हो सकता है जबकि वही तथ्य दूसरे समाज के लिए असामान्य हो सकता है क्योंकि दुर्खीम के अनुसार दुनियाभर के समाज सभी विभिन्नता से परिपूर्ण हैं। दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय पद्धति के नियमों के माध्यम से समाज के वर्गीकरण को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। दुर्खीम ने चार प्रकार के समाजों का उल्लेख किया है-

1. सरल समाज (Simple Societies)
2. सरल बहु व्रत खंडीय समाज (Simple Polysegmental Societies)
3. सरल रूप से मिश्रित बहु व्रत खंडीय समाज (Polysegmental Societies Simple Compound)
4. दोहरी रूप से मिश्रित बहुखंडीय समाज (Polysegmental Societies Doubly Compound)

समाजशास्त्र में समाज के वर्गीकरण के अनेक प्रयास किए गए हैं। इसलिए दुर्खीम के इस वर्गीकरण को समाजशास्त्र के विकास के संदर्भ में देखना चाहिए। दुर्खीम के वर्गीकरण का आधार अगस्त कॉम्ट, हरबर्ट स्पेंसर तथा कार्ल मार्क्स के वर्गीकरण से मिलता जुलता है। क्योंकि इनसब ने सामाजिक उद्विकास के चरणों को ही सामाजिक वर्गीकरण का आधार माना है। वर्गीकरणों की श्रेणियों में सरलता से जटिलता की तरफ बढ़ने की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

3.2.7 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम (Rules for the Explanation of Social Facts)

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्यों की व्याख्या उनके प्रकार एवं कारणों के आधार पर ही की जा सकती है। जिससे उनकी उत्पत्ति हुई है। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए कुछ नियम बनाए हैं-

1. दुर्खीम के अनुसार जब किसी सामाजिक घटना की व्याख्या की जाती है तो उसके उत्पन्न होने के कारण एवं उसके प्रकारों को अलग-अलग ढूंढना चाहिए।
2. सामाजिक तथ्य को निर्धारित करने वाले कारणों को पहले वाले सामाजिक तथ्यों में ढूंढना चाहिए न की व्यक्तिगत चेतना की अवस्था में।
3. सामाजिक तथ्य का कार्य सामाजिक उद्देश्य के संबंध में ही होना चाहिए।
4. सामाजिक क्रियाओं की प्रथम उत्पत्ति समूह के आंतरिक रचना में खोजी जानी चाहिए।

इस प्रकार दुर्खीम सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियमों को निर्धारित करते हैं तथा समाजशास्त्रियों को इन नियमों के द्वारा सचेत करते हैं कि सामाजिक तथ्यों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या से बचना चाहिए।

3.2.8 समाजशास्त्रीय प्रमाणों की स्थापना से संबंधित नियम (Rules Related to Establishing Sociological Proof)

इसे दुर्खीम अप्रत्यक्ष प्रयोग अथवा तुलनात्मक विधि भी कहते हैं। दुर्खीम इसे अप्रत्यक्ष प्रयोगात्मक विधि इसलिए कहते हैं क्योंकि समाजशास्त्री हमेशा सामाजिक घटनाओं पर नियंत्रण नहीं रख सकता। इसी तरह प्रत्येक तुलना तुलनात्मक विधि नहीं है। इसकी घटनाओं एवं परिस्थितियों में थोड़ी बहुत समानता होनी चाहिए। दुर्खीम ने ऐसी तीन परिस्थितियां बताइ है जिनकी तुलना की जा सकती है-

1. किसी एक एकांकी समाज की विभिन्न इकाइयों से तुलना।
2. एक समान स्तर वाले समाजों की तुलना।
3. एक ही घटना की विभिन्न समाजों में तुलना।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम की तीन विशेषताएं बताई हैं।

1. यह दर्शनशास्त्र से पूर्णतया स्वतंत्र है।
2. यह वस्तुनिष्ठ है।
3. यह पूर्णतया समाजशास्त्रीय है।

सामाजिक तथ्य का सिद्धांत (Theory of Social Fact)

3.2.9 प्रस्तावना

समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र एवं विशिष्ट विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले विद्वानों में दुर्खीम प्रमुख हैं। उन्होंने समाजशास्त्र को एक विशिष्ट विज्ञान के रूप में प्रतिस्थापित करने के लिए काफी संघर्ष किया। स्पेंसर के विपरीत दुर्खीम का विचार था कि यदि समाजशास्त्र का योग नहीं है अपितु **विषय सामग्री (Subject Matter)** और **अध्ययन पद्धति (Study Method)** दोनों की दृष्टि से यह एक स्वतंत्र विज्ञान है। दुर्खीम समाजशास्त्र की विषय-वस्तु सामाजिक तथ्यों को मानते थे। दुर्खीम ने स्पष्ट रूप से कहा कि समाजशास्त्र मानवीय क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता। वह अपने आप को सामाजिक तथ्यों के अध्ययन तक सीमित रखता है अर्थात सामाजिक तथ्य समाजशास्त्र की अध्ययन वस्तु हैं।

3.2.10 सामाजिक तथ्य का अर्थ (Meaning of Social Ffact)

दुर्खीम का कथन है कि सामाजिक तथ्य के बारे में प्राचीन काल से ही अनेक संदेहास्पद विचारधारा प्रचलित रही है। इसलिए अक्सर प्राणीशास्त्र, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के बारे में अनेक भ्रांतियां हैं। दुर्खीम के अनुसार, सामाजिक तथ्यों के बारे में जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि किन तथ्यों को सामान्यतः सामाजिक कहा जाता है। यह सोचना और भी अधिक आवश्यक है क्योंकि 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग अत्यधिक अनिश्चित रूप में होता है। वर्तमान समय में इस शब्द का प्रयोग समाज में होने वाली किसी भी घटना के लिए किया जाता है, चाहे उसकी सामाजिक रूचि कितनी ही सीमित क्यों न हो किंतु ऐसी कोई भी मानवीय घटनाएं नहीं है। जिन्हें की सामाजिक न कहा जा सके। प्रत्येक व्यक्ति सोता है, खाता है, पीता है, विचार करता है, और यह समाज के हित में होता है। ए सभी कार्य एक व्यवस्थित ढंग से किए जाए। यदि इन सभी को सामाजिक तथ्य मान लिया जाए तो फिर समाजशास्त्र की पृथक रूप से अपनी कोई विषय-वस्तु नहीं होगी। दुर्खीम सामाजिक विचारधारा को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना चाहते थे उनके अनुसार सामाजिक विज्ञान की अध्ययन सामग्री सामाजिक तथ्य है। दुर्खीम के अनुसार "सामाजिक तथ्य व्यवहार का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषियक रूप से संभव है और जो एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है।" इसलिए समस्त मानव व्यवहार को सामाजिक तथ्य कहा जा सकता है। दुर्खीम की सामाजिक तथ्य की अवधारणा को और अधिक स्पष्ट करते हुए **ए. के. सिन्हा एवं क्लोस्टर मायर (A.K.Shina and klostermair)** ने लिखा है कि "सामाजिक तथ्य सामाजिक वास्तविकता के तत्व हैं।"

सामाजिक तथ्यों के अर्थ की विवेचना करते हुए दुर्खीम ने सर्वप्रथम यह निर्णय दिया था कि "सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के समान समझना जाना चाहिए।" हालांकि दुर्खीम के लेखों में वस्तु शब्द का

वास्तविक अर्थ कहीं स्पष्ट नहीं हो पाया है और यह भ्रामक बन गया है। दुर्खीम ने स्वयं वस्तु शब्द का प्रयोग चार स्थानों पर अलग-अलग तरह से किया है यह चार अर्थ इस प्रकार हैं-

1. सामाजिक तथ्य वह वस्तु है, जिसमें कुछ विशेष गुण होते हैं और इन विशेष गुणों को बाहरी तौर पर देखा जा सकता हैं।
2. सामाजिक तथ्य वह वस्तु है जिन्हें केवल अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है।
3. सामाजिक तथ्य वह वस्तु है जिसका अस्तित्व मनुष्य पर बिल्कुल निर्भर नहीं है अर्थात वह मानव से परे अस्तित्व रखता है।
4. सामाजिक तथ्य वह वस्तु है जो केवल बाहरी तौर पर ही जानी जा सकती है

दुर्खीम द्वारा सामाजिक तत्व को वस्तु मानने के बारे में उपरोक्त जो चार अवधारणाएं प्रस्तुत की गई हैं। उनसे पता चलता है कि सामाजिक तथ्य का अर्थ बार-बार बदलता रहता है, क्योंकि सामाजिक तथ्य वस्तु के समान है। अतः यह कोई निश्चित धारणा नहीं है। अपितु एक गतिशील अवधारणा है। सामाजिक तथ्य सामाजिक परिस्थितियों से संबंधित रहते हैं और सामाजिक परिस्थितियां परिवर्तनशील होती हैं। व्यक्तियों में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। समाज में पाई जाने वाली विशेष प्रकार के तथ्यों की व्याख्या मनोविज्ञान, प्राणीशास्त्र अथवा भौतिकशास्त्र के सिद्धांतों के द्वारा संभव नहीं हैं। दुर्खीम ने इसी प्रकार के तथ्यों को सामाजिक तथ्य माना है।

3.2.11 सामाजिक तथ्य की परिभाषाएं (Definition)

दुर्खीम के अनुसार "सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने एवं अनुभव करने के वे तरीके हैं, जिनमें व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व को बनाए रखने की उल्लेखनीय विशेषताएं होती है।"

दुर्खीम के अनुसार "सामाजिक तथ्यों में कार्य करने, सोचने, अनुभव करने के तरीके सम्मिलित हैं जो व्यक्ति के लिए बाहरी होते हैं तथा जो अपनी दबाव शक्ति के माध्यम से व्यक्ति को नियंत्रित करते हैं।"

एक सामाजिक तथ्य क्रिया करने का प्रत्येक स्थाई या अस्थाई तरीका है, जो व्यक्ति पर बाहरी दबाव डालने में समर्थ होता है ,अथवा पुनः क्रिया करने का प्रत्येक तरीका जो किसी समाज में सामान्य रूप से पाया जाता है किंतु साथ ही साथ व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र पृथक अस्तित्व रखता है। वही सामाजिक तथ्य है।

दुर्खीम द्वारा प्रस्तुत की गई उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि क्रिया करने के तरीके सामाजिक तथ्य हैं। इसमें मानव व्यवहार की सभी पक्ष सम्मिलित हो जाते हैं। जिसमें मनुष्य की प्रत्येक क्रिया, उसके विचार एवं अनुभव आदि संबंधित होते हैं। यह सामाजिक वास्तविकता का भाग है। समाज में घटित होने वाली ऐसी

घटनाएं स्थाई भी हो सकती हैं और स्थाई भी। उदाहरण के लिए यदि हम यह देखें कि किसी क्षेत्र में जन्म या मृत्यु की दर में वार्षिक गणना की जाए तो थोड़ा बहुत अंतर आता है अर्थात इनकी वार्षिक दर प्रायः स्थिर रहती है। इसलिए इन्हें सामाजिक तथ्य माना जाता है, पर हम ईश्वर को सामाजिक तथ्य नहीं मान सकते क्योंकि वह वास्तविक निरीक्षण से परे है। व्यक्ति के विचार भी सामाजिक तथ्य नहीं हो सकते क्योंकि उनका बाहरी स्वरूप् स्पष्ट नहीं है। लेकिन समाज में व्यक्तियों के द्वारा निर्मित कोई भी सिद्धांत एवं नियम ईश्वर से संबंधित पूजा प्रार्थना जिसमें टोटमवाद को भी सम्मिलित किया जाता है को सामाजिक तथ्य माना जाएगा। क्योंकि इनका निरीक्षण एवं परीक्षण संभव है। यह व्यक्ति से बाहर होते हैं तथा व्यक्ति पर दबाव डालने की क्षमता रखते हैं। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्योंकी विवेचना अत्यंत सरल एवं स्पष्ट रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत की है।

दुर्खीम ने अपनी एक और व्याख्या में सामाजिक तथ्य को विस्तृत रूप से वर्णित किया है। उनके अनुसार सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने एवं अनुभव करने के वे तरीके हैं, जिनमें व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व बनाए रखने की उल्लेखनीय विशेषता होती है।

इससे यह बात स्पष्ट हो गई है कि सामाजिक तथ्य देखा जा सकता है। वह अवलोकनीय है। दूसरी बात यह है कि सामाजिक तथ्य सोचने, विचारने और अनुभव करने का एक तरीका है। दुर्खीम के इस विचारधारा से स्पष्ट है कि सामाजिक तथ्य स्थाई और अस्थाई भी है। दुर्खीम के अनुसार दुनिया भर की सभी वस्तुएं कपड़ा, मकान, इंधन, पुस्तक सभी सामाजिक तथ्य है दूसरी तरफ न देखी जाने वाली वस्तुएं भी सामाजिक तथ्य हैं। सामाजिक तथ्य का एक बहुत बड़ा मापदंड यह है कि यह तथ्य व्यक्ति विशेष का न होकर संपूर्ण समाज की धरोहर, विरासत और संपत्ति होते हैं।

3.2.12 सामाजिक तथ्यों की विशेषताएं (Characteristics of Social Fact)

सामाजिक तथ्य व्यक्ति के कार्य करने सोचने तथा अनुभव करने के तरीके हैं। जिनमें व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व को बनाए रखने की उल्लेखनीय विशेषता होती है। समाज विज्ञान सामाजिक तथ्यों का एक विधिवत अध्ययन है। सामाजिक तथ्यों के निर्धारण से इसकी विषय-वस्तु निर्धारित होती है, क्योंकि किसी भी सामाजिक घटना पर विचार करते समय हम उस घटना के साथ विचारों का मिश्रण करके उस पर विचार व्यक्त करते हैं। हम सामाजिक घटना में से मनोवैज्ञानिक तथ्यों को बाहर निकाल देते हैं और जो शेष बचता है वहीं सामाजिक तथ्य कहलाते हैं।

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों की स्पष्ट व्याख्या करने के लिए सामाजिक तथ्यों की विशेषताओं को स्पष्ट किया है -

1. बाह्यता (Exteriority)

सामाजिक तथ्यों में बाह्यता होती है। सामाजिक तथ्यों की एक प्रमुख विशेषता बाह्यता है। दुर्खीम के सामाजिक तथ्यों का निर्माण समाज के सदस्यों के द्वारा ही होता हैं। सामाजिक तथ्यों के विकसित होने के बाद यह तथ्य व्यक्ति विशेष के नहीं रहते और समाज के द्वारा स्वतंत्र वास्तविकता के रूप में इनका अनुभव किया जाता है। यह सामाजिक तथ्य व्यक्ति की चेतना से बाहर हो जाते हैं। इन सामाजिक तथ्यों पर व्यक्ति विशेष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और इनके बारे में व्यक्तिगत चेतना को कुछ सोचना भी नहीं पड़ता है। किसी भी दृष्टि से देखें तो सामाजिक तथ्य व्यक्ति के स्वयं की सोच के बाहर है। इसके अंतर्गत हमें हमारे सामाजिक मूल्य, प्रथा, परंपराएं, रीति रिवाज, तिथि, त्यौहार, राष्ट्रीय पर्व आदि को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक तथ्यों के बाह्यता को स्पष्ट करने के लिए दो भागों में बांटा गया है-

1. व्यक्तिगत चेतना (Individuals Consciousness)
2. सामूहिक चेतना (Individuals Consciousness)

1. व्यक्तिगत चेतना (Individuals Consciousness)

दुर्खीम के अनुसार व्यक्तिगत चेतना का मूल आधार सामाजिक संवेदनाएं होती हैं। ए संवेदनाएं विभिन्न स्नायु कोशो की अंतरक्रिया का ही प्रतिफल है और इन्हीं के द्वारा संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं। दुर्खीम का मानना है कि जिस प्रकार व्यक्ति के विचारों का मूलाधार स्नायुमंडल के विभिन्न कोश है। उसी प्रकार सामाजिक विचारों का मूल आधार समाज के सदस्य होते हैं।

2. सामूहिक चेतना (Collective Consciousness)

सामूहिक चेतना का विकास व्यक्तिगत चेतना के संगठन से होता है। दुर्खीम के अनुसार व्यक्तिगत चेतना व सामूहिक चेतना दोनों में सामूहिक चेतना व्यक्ति को प्रभावित करती है। इसके परिणामस्वरुप सामूहिक चेतना व्यक्तिगत चेतना बन जाती है और यह प्रत्येक व्यक्ति से बाहर होती है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने चार तर्क प्रस्तुत किए हैं जो इस प्रकार है-

A. व्यक्तिगत मस्तिष्क एवं सामूहिक मस्तिष्क की अवस्थाओं में भिन्नता।

B. व्यक्तिगत एवं सामूहिक परिस्थिति में व्यक्ति के मनोभाव व व्यवहारों में भिन्नता।

C. सामाजिक घटनाओं के आंकड़ों की समानता।

D. प्राणीशास्त्रीय समानता।

यदि हम संपूर्ण दुनिया के सामाजिक तथ्यों को देखें तो पता चलता है कि सामाजिक तथ्य अपने निर्णय अनुसार व्यक्तित्व का निर्माण करते रहते हैं। वास्तव में व्यक्ति जो कुछ है, वह सामाजिक तथ्यों अर्थात वह सामाजिक व्यवहार, अभिवृत्तियों एवं सामूहिक विश्वासों का परिणाम है।

2. बाध्यता (Constraint)

सामाजिक तथ्यों की दूसरी विशेषता उसकी बाध्यता है। सामाजिक तथ्यों का निर्माण अनेक व्यक्तियों के द्वारा होता है। यह व्यक्तिनिष्ठ नहीं होते बल्कि वस्तुनिष्ठ होते हैं और हर तरह से व्यक्ति के लिए बाहरी होते हैं, अत्यंत शक्तिशाली होते हैं इनका व्यक्ति के व्यवहार पर बाध्यता मूलक दबाव पड़ता है। यह बाध्यता व्यक्ति के व्यवहार को समाज के मानक और मूल्यों के अनुरूप बनाने के लिए प्रेरित करती है। त सामाजिक तथ्य व्यक्ति के व्यवहार को ही नहीं बल्कि उसके सोचने, विचारने आदि तरीकों को भी प्रभावित करती है। समाज में प्रचलित अनेक सामाजिक तथ्य जैसे नैतिक नियम, धार्मिक विश्वास, अर्थव्यवस्थाएं सभी मनुष्य के व्यवहार व तरीकों को अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

इस तरह इनका पालन व्यक्ति के लिए बाध्यता मूलक होता है। इनकी उत्पत्ति व्यक्तिगत चेतना से नहीं होती है बल्कि यह सामूहिक चेतना का परिणाम होते हैं। इसलिए यह व्यक्ति पर दबावकारी होते हैं। यह व्यक्ति से बाहर की वस्तु होने के कारण व्यक्ति के उपर एक विशिष्ट प्रकार के व्यवहार के लिए दबाव डालते हैं। सामाजिक तथ्यों के पीछे हमेशा समूह एवं समाज की शक्ति होती है, इसलिए इस शक्ति के दबाव एवं प्रभाव के कारण व्यक्ति हमेशा उसी प्रकार का आचरण करता है जैसा कि उसे समाज या समूह निर्देश देता है। सामाजिक दबाव एवं शक्ति के कारण बाहर की वस्तु व्यक्ति से श्रेष्ठ होती है। इसलिए हमेशा व्यक्ति उसके सामने झुकता है। समाज के नियमों और आदेशों को स्वीकार करता है। समाज में पाई जाने वाली इस शक्ति का पता हमें अपने प्रतिदिन के सामान्य जीवन एवं सामान्य स्थिति में नहीं चल पाता है। इसका आभास हमें तब होता है जब हम विरोध करते हैं, उसे स्वीकार नहीं करते या उसका उल्लंघन करते हैं, ऐसी स्थिति में समाज रोष प्रकट करता है, दंड की व्यवस्था करता है और दंड ही सामाजिक तथ्यों के विरोध का फल है।

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य सामूहिक चेतना की श्रेणी में आते हैं। सामूहिक चेतना व्यक्तिगत चेतना का सर्वोत्कृष्ट रूप है। क्योंकि सामूहिक चेतना व्यक्तिगत चेतनाओं के अस्तित्व और विशेषताओं की समष्टि चेतना है। यह चेतनाओं की चेतना है।

3. सामाजिक तथ्य वस्तुतः कार्य करने, सोचने और अनुभव करने के तरीके हैं (Social Fact are Waye of Acting, Thinking and Feeling)

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के पहले अध्याय में ही सामाजिक तथ्यों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि सामाजिक तथ्य काम करने, सोचने और अनुभव करने की विधि है। उन्हीं के अनुसार सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने और अनुभव करने के तरीके हैं। सामाजिक तथ्य व्यक्ति को संपूर्ण रुप से अपनी पकड़ में ले लेता है। यह पकड़ इतनी प्रबल होती है कि यदि कोई व्यक्ति अपने मस्तिष्क में कुछ सोचता है तो उसकी सोच पर भी सामाजिक तथ्य का दबाव होता है। जब व्यक्ति किसी क्रियाओं को नहीं करता है तो उसमें भी सामाजिक तथ्य की अभिव्यक्ति होती है। सामाजिक तथ्य का प्रभाव व्यक्ति पर इतना अधिक होता है कि उसकी संपूर्ण अनुभूति भी सामाजिक तथ्यों के परिवेश में आ जाती है।

4. सामाजिक तथ्य अधि वैयक्तिक हैं (Social Fact are Super Individual)

दुर्खीम समाज को व्यक्ति के ऊपर मानते हैं। इस बात को उन्होंने श्रम विभाजन के सिद्धांत में भी स्पष्ट किया है। समाजशास्त्री पद्धति की चर्चा करते समय भी समाज के प्रभुत्व के पक्ष में तर्क देते हुए दुर्खीम कहते हैं कि व्यक्ति की चेतना होती है, उसके ऊपर सामाजिक तथ्यों का दबाव इतना अधिक रहता है कि व्यक्तिगत की चेतना ईश्वर हो जाती है। क्योंकि समाज के जितने भी सामाजिक संगठन होते हैं, उन सबके काम करने के एक निश्चित नियम, उपनियम एवं पद्धतियां होती हैं। यह सभी व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5. **सामाजिकता (Ociability)**

सामाजिक तथ्य की उत्पत्ति समाज से होती है। यह व्यक्तिगत नहीं होते बल्कि पूरे समाज के होते हैं। इनकी एक ऐतिहासिकता होती है और यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। यह समाज की किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। इसलिए इसमें सामाजिकता पाई जाती है।

6. सामाजिक धारा (Social Current)

सामाजिक तथ्यों की उत्पत्ति आस्था विश्वास और परंपराओं के अनेक औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठनों के द्वारा होती है। लेकिन दुर्खीम का कहना है कि सभी सामाजिक तथ्यों की उत्पत्ति सामाजिक संगठनों से ही हो, हमेशा ऐसा नहीं होता। क्योंकि बहुत से सामाजिक तथ्य व्यक्ति से ऊपर एवं वस्तुनिष्ठ होते हैं। ऐसे तथ्यों को दुर्खीम सामाजिक धाराएं कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी समूह या क्षेत्र में कोई प्राकृतिक विपदा आती है, तो पूरे समाज की उसके प्रति हमदर्दी हो जाती है। ऐसा किसी एक व्यक्ति की चेतना के कारण नहीं होता। इस तरह के रुझान की उत्पत्ति व्यक्तिगत चेतना से न होकर सामाजिक विश्वास एवं संवेगों

से होती है और यही सामाजिक धारा है। दुर्खीम के अनुसार जहां सामाजिक संबंधों का सारोकार औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों से होता हैं। वही इसका उद्गम सामाजिक धारा में भी हो सकता हैं। सामाजिक धारा से जनित सामाजिक तथ्य अपनी विशेष पहचान रखते हैं।

7. सामाजिक तथ्य विश्वासों, अभिवृत्तियों और समूह के व्यवहारों का सामूहिक पहलू है

सामाजिक तथ्यों का विवेचन दुर्खीम ने बहुत ही सावधानी पूर्वक किया है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भाषा का अध्ययन क्षेत्र भी स्पष्ट होना चाहिए। दुर्खीम का कहना है कि यदि हमें समाज का अध्ययन करना है तो हमें सामाजिक तथ्यों का अध्ययन करना ही होगा। वास्तव में सामाजिक जीवन के विश्वासों, अभिवृद्धि और व्यवहारों का सामूहिक रुप ही सामाजिक तथ्य है।

8. सामाजिक तथ्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं

तथ्यों की ऐतिहासिकता, निरंतरता एवं उसमें उत्पन्न होने वाले सामाजिक समाजीकरण के द्वारा होता है। यह सामाजिकरण औपचारिक भी होता है और अनौपचारिक भी। जैसे शिक्षा एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से सामाजिक तथ्यों का संचरण पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता है। उसी तरह समाज के कुछ परंपरागत, कानून एवं रीति-रिवाज अनौपचारिक शिक्षा के कारण व्यक्ति के जीवन में अपने आप उतर जाते हैं, समाहित हो जाते हैं, सिखाया जाता है, फिर व्यक्ति की आदत में सम्मिलित होते हैं, बाद में भी व्यक्ति के जीवन का अंग बन जाते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं।

9. सार्वभौमिकता

सामाजिक तथ्य सार्वभौमिक होते हैं। आदिम समाज से लेकर आधुनिक समाज में पाए जाते हैं। हालांकि कुछ समाजों में सामाजिक तथ्यों की बाध्यता लचीली हो सकती है, यह अस्थाई हो सकती है, पर हर नवीन पीढ़ी सामाजिक तथ्यों का सृजन करती है। देश में हर आने वाली पीढ़ी के लिए इन सामाजिक तथ्यों की बाध्यता एवं बाह्यता दोनों ही बढ़ जाती है।

3.2.13 सामाजिक तथ्यों के प्रकार (Type of Social Fact)

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के दो प्रकार की चर्चा की है -

1. स्वाभाविक या सामान्य (Normal)
2. अस्वाभाकि या असामान्य (Pathological)

1. स्वाभाविक या सामान्य तथ्य (Normal Fact)

सामान्य या स्वाभाविक तथ्य समाज के वे अंग हैं, जो सामाजिक व्यवस्था एवं संगठन को एकता एवं सहयोग प्रदान करते हैं। यह वह मानव व्यवहार है, जिसे प्रायः सभी समाजों के द्वारा स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार स्वाभाविक एवं सामान्य सामाजिक तथ्य से समाज को मजबूती मिलती है। यह समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरूप होते हैं तथा सामाजिक जीवन स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं। यह मानव का व्यवहार है, जिसे प्रायः सभी समाजों के द्वारा स्वीकार किया जाता है। इसे हम शरीर के उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं। जब एक व्यक्ति का शरीर सामान्य स्थिति में होता है तो वह हर मौसम से अपने को अनुकूल कर लेता है। जिससे उसका स्वास्थ्य स्थिर रहता है, एक स्वस्थ अवस्था में व्यक्ति में रोग पनपने की संभावना न्यूनतम होती है। इसी तरह जब समाज स्वस्थ रहता है तो उसमें व्यवस्था बनी रहती है और इस व्यवस्था को बनाए रखने वाले सामाजिक तथ्य सामान्य हैं। क्योंकि इस अवस्था में व्याधिकीय तथ्यों की मात्रा न्यूनतम होती है। सामान्य सामाजिक तथ्य वे होते हैं, जो समाज में यथास्थिति को बनाए रखते हैं। जिससे की समाज में व्यवस्था बनी रहे और गड़बड़ी न हो। इस प्रकार स्वाभाविक एवं सामान्य सामाजिक तथ्य से समाज को मजबूती मिलती है।

2. अस्वाभाविक या और सामान्य तथ्य (Pathological Fact)

सामाजिक तथ्यों का दूसरा स्वरूप और असामान्य होता है। यह वह शक्ति है जो समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के विरुद्ध होते हैं। यह समाज में गतिरोध पैदा करते हैं। समाज के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, जैसे अपराध, बाल अपराध, वेश्यावृत्ति, डकैती आत्महत्या आदि असामान्य सामाजिक तथ्य हैं। जब किसी भी समाज में असामान्य सामाजिक तथ्य अधिक बढ़ जाते है तो समाज का सामान्य जीवन ठप हो जाता है और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस समय व्यक्ति का व्यवहार समाज द्वारा स्वीकृत औसत व्यवहार के विपरीत हो जाता है।

3.2.14 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम (Rules for the Observation of Social Fact)

दुर्खीम ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड' (The Rules of Sociological Method) के अध्याय दो में सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों की व्याख्या की है। सामाजिक तथ्यों का वैज्ञानिक अवलोकन तभी संभव है। जब हम निष्पक्ष एवं तटस्थ रहकर सामाजिक तथ्यों का अवलोकन करें। सामाजिक तथ्यो के अवलोकन से संबंधित जो भ्रांतियां पहले से ही समाज में प्रचलित रही हैं। दुर्खीम ने हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित किया है। दुर्खीम का कहना है कि सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के रूप में प्रायः विद्वान विचारों से वस्तुओं की ओर बढ़ने का प्रयास करते हैं। जबकि इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता और ऐसे अध्ययन वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकते। दुर्खीम ने यह भी बताया है कि

सामाजिक तथ्यों के अवलोकन में एक गलत पद्धति का प्रयोग विभिन्न विज्ञानों में किया जा रहा है। इनमें समाजशास्त्र भी शामिल है। दुर्खीम सामाजिक तथ्यों का यहां तक की संवेगों और मनोभावों को वैज्ञानिक पद्धति से देखना चाहते थे। उनके अनुसार सामाजिक तथ्य मनोवैज्ञानिक होते हैं और इनकी उत्पत्ति सामाजिक यथार्थता से होती है। इसी कारण ए तथ्य सामाजिक तथ्य हैं। दुर्खीम ने समाजशास्त्री पद्धति के कुछ नियम निर्धारित किए हैं और यह सामाजिक तथ्यों के अवलोकन से संबंधित हैं। यह नियम इस प्रकार हैं-

1. सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की तरह देखना चाहिए (Consider Social Facts as Things)
2. सभी पूर्वाग्रहों का उन्मूलन करना चाहिए (All Pre&Conception Must be Eradicated)
3. अध्ययन की विषय सामग्री को परिभाषित करना चाहिए (Define the Subject matter of Study)
4. सामाजिक तथ्यों को व्यक्तिगत प्रगटीकरणों से पृथक करके अध्ययन करना चाहिए (Social Facts Should be Studied Independent of their Individual Manifestations)

1. सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की तरह देखना चाहिए

सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के विषय में दुर्खीम ने लिखा है, यह पहला और सबसे अधिक मौलिक नियम हैं। सामाजिक तथ्यों पर वस्तुओं के रूप में विचार किया जाए। सामाजिक तथ्यों को वस्तु माना जाए, दुर्भाग्य से जैसा कि रॉबर्ट बियरसटिड कहते हैं “अभी तक अर्थात दुर्खीम के समय तक समाजशास्त्र वस्तु की अपेक्षा अवधारणाओं से ही संबंधित रहा है।” सामाजिक तथ्यों के बारे में दुर्खीम का स्पष्ट मत है कि सामाजिक तथ्यों को एक विचार या अवधारणा न मानकर एक ऐसी चीज या वस्तु के रूप में देखा जाए जिसे बाहरी तौर पर देखा जा सके और जिसका अस्तित्व मनुष्य पर निर्भर न हो। दुर्खीम ने लिखा है कि ज्ञान के वे सभी विषय-वस्तु जो केवल मानसिक क्रियाओं द्वारा नहीं जाने जा सकते बल्कि उनके जानने के लिए हमें अवलोकन और प्रयोग के द्वारा मस्तिष्क के बाहर से आंकड़ों को प्राप्त करने होंगे। इस प्रकार दुर्खीम कहते हैं कि “सामाजिक प्रघटना वस्तुएं हैं तथा उन्हें वस्तुओं के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए।”

दुर्खीम ने तथ्यों के अवलोकन के विवेचन में इस बात पर अधिक बल दिया है कि हम किन आधारों पर पहचाने की अमुक घटनाएं सामाजिक तथ्य हैं सामाजिक तथ्यों की घटना की तरह पहचान करने के लिए उन्होंने 6 लक्षण बताएं हैं-

1. सामान्य विज्ञान तथ्य की पहचान करते हैं।
2. तथ्य का एक निश्चित अर्थ होता है।
3. जिस किसी वस्तु का हम अध्ययन करते हैं, उसे वस्तु मानकर चलना चाहिए।
4. सामाजिक तथ्य आधार सामग्री है।

5. सामाजिक तथ्यों का अध्ययन वस्तुनिष्ठ विधियों द्वारा करना चाहिए।
6. सामाजिक तथ्य किसी सामान्य इच्छा से बदले नहीं जा सकते।

A. सामान्य विज्ञान तथ्य की पहचान करते हैं

विज्ञान में चाहे वह प्राकृतिक हो या सामाजिक हमारा उद्देश्य सर्वप्रथम अपने अध्ययन की घटनाओं की पहचान करना होता है। उदाहरण के तौर पर रसायनशास्त्र पहचान करके पेट्रोलियम को अपने अध्ययन का तथ्य मानता है। ठीक इसी तरह समाज विज्ञान और समाजशास्त्र को भी सामाजिक तथ्यों की पहले पहचान निश्चित करनी चाहिए हर विज्ञान की परंपरा है। समाजशास्त्र भी इसका अपवाद नहीं है।

B. तथ्य का एक निश्चित अर्थ होता है

जब तक तथ्य के बारे में या उसके अर्थ के बारे में एक सामान्य सहमति नहीं बनती है। तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते जो कुछ भी तथ्य का अर्थ लिया जाता है वह स्पष्ट होना चाहिए। आवश्यक है कि तथ्य का सही तरह से अवलोकन किया जाए तथ्य का अर्थ कभी भी बाहर से थोपा हुआ नहीं होना चाहिए। तथ्य का अर्थ वही होना चाहिए जो उस घटना में अंतर्निहित है।

C. जिस किसी वस्तु का हम अध्ययन करते हैं उसे वस्तु मानकर चलना चाहिए

किसी भी सामाजिक प्रघटना का अध्ययन करते समय हमें यह निश्चित करना चाहिए कि क्या हम उसका अध्ययन एक वस्तु की तरह कर सकते हैं या नहीं। इस तरह दुर्खीम सामाजिक घटना के पहचान का एक आधार देते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य में संवेदनाएं होती हैं, मनोभाव होते हैं और हम उन्हें सामाजिक तथ्य मानते हैं। हम इसका अध्ययन करते हैं, तो हमें इसको एक वस्तु के रूप में देखना चाहिए। जब हम इनको एक वस्तु के रूप में देखेंगे तभी उसे सामाजिक तथ्य का दर्जा प्राप्त हो सकता है।

D. सामाजिक तथ्य आधार सामग्री है

दुर्खीम सामाजिक तथ्यों की एक और पहचान बताते हुए कहा है कि समाज की छवि उसकी मनोवृति और उसका स्वभाव सामाजिक तथ्यों में निहित होता है। इसलिए यदि समाज की कोई विश्वसनीय आधार सामग्री है तो वह सामाजिक तथ्य है।

E. सामाजिक तथ्यों का अध्ययन वस्तुनिष्ठ विधि द्वारा करना चाहिए

दुर्खीम का कहना है कि अनुसंधानकर्ता को सामाजिक तथ्यों की पहचान करने के लिए अपने बुद्धिमानी का प्रयोग करना चाहिए। बुद्धिमानी यह है कि जिन्हें हम सामाजिक तथ्य कहते हैं, क्या उन तथ्यों

का वस्तुओं की तरह वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जा सकता है? क्योंकि दुर्खीम का कहना है कि यदि जब तक हम सामाजिक तथ्यों को वस्तु मानकर नहीं चलते तब तक उनका वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव नहीं है।

F. सामाजिक तथ्य किसी सामान्य इच्छा से बदले नहीं जा सकते

सामाजिक तथ्यों में दृढ़ता होती है, वह जमीन से जुड़े होते हैं ।इसलिए उनमें एकाएक परिवर्तन मुश्किल होता है। जैसे हमारे समाज में अनेकों तीज, त्यौहार, प्रथाएं और परंपराएं हैं और उनकी अनेक मान्यताएं हैं। उन्हें हम चाहने पर भी नहीं छोड़ सकते हैं। सामाजिक तथ्य इनके समान ही जन-जीवन में अपनी पहचान रखते हैं। छोटे-मोटे आंदोलन भी सामाजिक तथ्यों को नहीं बदल पाते हैं। जब तक की इसे बदलने के लिए या इसे स्वीकार करने के लिए जनमानस तैयार न हो। दुर्खीम कहते हैं कि सामाजिक तथ्य जमीन से जुड़ा होता है इसलिए इसकी जड़े हिलाना सामान्य बात नहीं है। दूसरे शब्दों में सामाजिक तथ्य लगभग निरंतर और स्थाई होता है।

G. सभी पूर्वाग्रहों का उन्मूलन करना चाहिए

दुर्खीम का कथन है कि यदि हम सामाजिक तथ्यों को वस्तु मानते हैं। वस्तुओं के समान ही उनका अवलोकन करना चाहते हैं तो हमें सारे पूर्वाग्रहों को समाप्त कर देना चाहिए। क्योंकि वस्तुनिष्ठता की यही पहली शर्त है। हमें उन सभी पूर्व अवधारणाओं की उपेक्षा करना चाहिए जिनका उद्गम विज्ञान से बाहर हुआ है। दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्री को या तो अनुसंधान के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय अथवा वर्णन करते समय उन अवधारणाओं का जो विज्ञान से अलग पूर्णतः अवैज्ञानिक आवश्यकता के लिए उत्पन्न हुई है का परित्याग करना चाहिए। दुर्खीम का कथन है कि तथ्यों के अध्ययन का दूसरा नियम यह है कि जिन सामाजिक तथ्यों का हम अध्ययन करते हैं उन्हें पहले परिभाषित करना चाहिए और यदि वह पूर्वाग्रह या केवल मिथक हैं तो हमें उन्हें छोड़ देना चाहिए। हमारे लिए तो सामाजिक तथ्य केवल वे ही हैं जिनका वैज्ञानिक कसौटी पर अध्ययन किया जा सकता है।

H. अध्ययन की विषय सामग्री को परिभाषित करना

एक समाजशास्त्री के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस विषय सामग्री का अध्ययन करता हैं। उसे उस सामग्री को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए। अनुसंधानकर्ता जिन घटनाओ व सामग्री का अध्ययन कर रहा है, उसकी अवधारणाओं का सामाजिक तथ्य के संदर्भ में अर्थ स्पष्ट कर देना चाहिए। दुर्खीम के अनुसार "समाजशास्त्रीय अध्ययन की विषय-सामग्री में कतिपय सामान्य बाह्य विशेषताओं द्वारा पूर्व परिभाषित घटनाओं का समूह होना चाहिए और इस प्रकार सभी परिभाषित घटनाएं इस समूह में शामिल की जानी चाहिए।"

I. सामाजिक तथ्यों को व्यक्तिगत प्रगटीकरण से पृथक करके देखना चाहिए

व्यक्तिगत अभिरुचियों को सामाजिक तथ्य नहीं समझा जा सकता क्योंकि यह व्यक्तिगत होते हैं। दुर्खीम का कथन है कि जो वस्तु है, वह हर तरह से निजी होती है, उन्हें छोड़ देना चाहिए क्योंकि बाहरी विशेषताएं केवल व्यक्तिगत अभिव्यक्ति होती है और दुर्खीम व्यक्तिवाद के घोर विरोधी थे। दुर्खीम के शब्दों में यह नियम जब समाजशास्त्री सामाजिक तथ्यों के किसी व्यवस्था को अनुसंधान के लिए स्वीकार करें तो उसका यह प्रयास होना चाहिए कि वह उन पर एक ऐसे पहलू से भी विचार करें जो कि उनकी वैयक्तिक अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र हो।" इस नियम के अनुसार समाजशास्त्री को सामाजिक तथ्यों को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति से अलग करके अध्ययन करना चाहिए क्योंकि इसके बिना अध्ययन में वस्तुनिष्ठता नहीं आएगी।

3.2.15 सामान्य और व्याधिकीय तथ्यों में भेद करने के नियम (Rules for Distinguishing between the Normal and the Pathological)

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के तीसरे अध्याय में सामान्य एवं व्याधकीय तथ्यों में अंतर करने के नियमों की व्याख्या की है। इनका कहना है कि समाजशास्त्र की विषय-वस्तु में सामाजिक तथ्य मुख्यतः दो प्रकार से हमारे सामने आते हैं-

1. वह जो समाज के मान्य स्तरों के अनुरूप होते हैं।
2. दूसरा वह जो इनसे भिन्न होते हैं।

दुर्खीम ने इन्हीं को दो भागों में बांटा है-

1. सामान्य प्रघटनाएं
2. व्याधिकीय घटनाएं

दुर्खीम का कहना है कि एक विज्ञान में वह पूरी क्षमता होनी चाहिए कि ऐसे नियमों का प्रतिपादन करें जिसके आधार पर सामान्य एवं व्याधकीय तथ्यों के बीच के अंतर को स्पष्ट किया जा सके। दुर्खीम का यह भी कहना है कि सामान्य एवं व्याधकीय तथ्यों में भेद करने के नियमों को निर्धारण करने में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होती है। मूल रूप में कुछ व्यवहारिक कठिनाइयां ऐसी हैं, जिनके आधार पर हम सामान्य एवं व्याधकीय के तथ्यों में अंतर नहीं कर पा रहे हैं।

दुर्खीम ने सामान्य और व्याधिकीय तथ्यों में भेद करने के लिए प्रमुख रूप से 3 नियम प्रस्तुत किए हैं-

1. व्यापकता

दुर्खीम के अनुसार दोनों नियमों में अंतर करने का सबसे पहला नियम साधारणता या व्यापकता है। साधारणता उसे कहा जाता है जब कोई विशेषता या तथ्य समूह के अधिकांश व्यक्तियों में पाया जाता है। दुर्खीम व्यापकता को एक वैज्ञानिक मापदंड के रूप में प्रस्तुत करते हैं । सामाजिक तथ्य समाज में अधिकता से पाए जाते हैं और उनमें अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होते हैं। दुर्खीम के अनुसार जो तथ्य समाज में अधिकता से पाए जाते हैं, वही सामान्य तथ्य कहे जा सकते हैं। दुर्खीम के ही शब्दों में "हम उन सामाजिक दशाओं को सामान्य कहेंगे जो सर्वाधिक व्यापक हैं ।" व्यापकता का गुण सामाजिक तथ्य को उपयोगी एवं लाभदायक बना देता है। किसी भी तथ्य की अधिक आवृत्ति उसके महत्व को भी प्रकट करती है। दुर्खीम का मत है कि स्वस्थ एवं व्याधिकीय का कोई भी मापदंड निरपेक्ष तथा सार्वजनिक रूप से सभी समाजों पर लागू नहीं होता। क्योंकि जो चीज जंगली मनुष्य के लिए सामान्य है वह सब मनुष्य के लिए सामान्य नहीं हो सकती। इसलिए दुर्खीम सामाजिक तथ्य को निरपेक्ष न मानकर उसे विशिष्ट समाजों के साथ समाज के विकास के विशिष्ट स्तर एवं युग के साथ सापेक्ष मानते हैं। इस तरह व्यापकता समय व स्थान सापेक्ष तथ्य भी है। एक विशेष व्यवहार एक समय और स्थान में उचित माना जाता है। जबकि वही व्यवहार दूसरे समय और स्थान पर अनुचित माना जा सकता है। इस तरह सामाजिक तथ्य अधिक व्यापक होते हैं और समय स्थान और समाज की दृष्टि से सापेक्ष होते हैं।

2. उपयोगिता (Utility)

सामान्य एवं व्याधिकीय तथ्यों में दूसरा अंतर उपयोगिता का है। कोई भी समाज उन तथ्यों को स्वीकार नहीं करता जो समाज के लिए हानिकारक हो। सामान्य तथ्य हमेशा समाज के लिए उपयोगी और लाभदायक होते हैं। जो सामान्य तथ्य जितना अधिक व्यापक होता है उतना ही अधिक उपयोगी होता है। व्यापकता और उपयोगिता दोनों ही सामान्य तथ्य के लक्षण हैं। जो सामान्यतः साथ-साथ मिलते हैं ऐसा होना कोई वैज्ञानिक नियम नहीं है। दुर्खीम कहते हैं कि तथ्यों की व्यापकता उसकी उपयोगिता को स्पष्ट करती है। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि सामान्य तथ्य अनिवार्य रूप से उपयोगी ही हो।

3. घटनाक्रम का नियम (Law of Course of Events)

सामान्य एवं व्याधिकीय तथ्यों के बीच में भेद करने का तीसरा नियम है कि हम पूर्व में घटी हुई घटनाओं के निष्कर्षों के आधार पर सामान्य तथ्यों की पुष्टि करें। हमें यह ज्ञात करना चाहिए कि क्या अतीत में उस तथ्य को सामान्य माना गया था। यदि माना गया था तो उसके पीछे क्या कारण थे। हमें भूतकाल में घटी किसी भी घटना के लिए उत्तरदाई दशाओं की खोज करनी चाहिए। यह समझना चाहिए कि क्या वे दशाएं

वर्तमान में भी विद्यमान हैं। यदि हैं तो उस तथ्य को सामान्य समझना चाहिए और यदि बदल गई है तो वह तथ्य व्याधिकीय हो सकता है।

3.2.16 समाज के विकास का स्तर (Tage of the Development of the Society)

दुर्खीम के अनुसार सामान्य एवं व्याधिकीय तथ्यों के बीच में अंतर करने का चौथा नियम यह है कि हम जिस समाज का अध्ययन कर रहे हैं उसके विकास के स्तर के बारे में भी जान लें। वह समाज अर्ध विकसित है, आदिम है या पूर्ण विकसित। सभी समाज के विकास के अपने स्तर होते हैं। सामाजिक तथ्य सभी समाजों में एक समान उपयोगी नहीं होते हैं। सामाजिक तथ्य हमेशा समाज के विकास के स्तर से संबंधित होते हैं। कोई भी तथ्य समाज के विकास के अनुरूप होता है तो वह सामान्य है अन्यथा व्याधिकीय है। सामान्य तथ्य की पहचान के लिए आवश्यक है कि हम संबंधित समाज के विकास के स्तर को समझें।

3.2.17 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम (Rules for the Explanation social Facts)

दुर्खीम कहते हैं कि जब हम सामाजिक तथ्यों का विश्लेषण करते हैं तब हमें इस विश्लेषण को उन समाजों के साथ जोड़ना चाहिए जिनमें यह सामाजिक तथ्य पाए जाते हैं। समाजशास्त्री तथ्यों का विश्लेषण करते समय घटनाओं जैसे- परिवार, जाति, वर्ग आदि का अध्ययन करते हैं। उस समय उनका ध्यान इस बात पर रहता है कि यह समाज के लिए कितने उपयोगी हैं, समाज में इनकी भूमिका क्या है? और इनके साथ समाज के कितने संवेग जुड़े हुए हैं। इस तरह से यह दृष्टिकोण केवल उपयोगितावादी है पर दुर्खीम का कहना है कि जब हम सामाजिक प्रघटनाओं की व्याख्या करते हैं तो हमें इन्हें उत्पन्न करने वाले कारणों और इनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की भी खोज की जानी चाहिए। जब हमारे पास कारण और कार्य दोनों होंगे तब हमारे लिए सामाजिक तथ्यों का विश्लेषण करना निश्चित हो जाएगा

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों की व्याख्या कैसे की जाए इसके लिए कुछ नियम बताए हैं। दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के अध्याय पॉच में सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के तीन नियमों को स्पष्ट किया है-

1. जब हमें किसी सामाजिक घटना की व्याख्या करनी हो तो हमें उसे उत्पन्न करने वाले कारणों को तथा उस घटना के द्वारा पूरे किए जाने वाले प्रकार्यो को अलग-अलग खोजना चाहिए।
2. एक सामाजिक तथ्य के निर्धारक कारक को हमें सामाजिक तथ्यों में ही ढूंढना चाहिए न कि व्यक्तिगत चेतना की अवस्थाओं में। साथ ही एक सामाजिक तथ्य का प्रकार्य सर्वदा किसी सामाजिक उद्देश्य के संबंध में ही खोजना चाहिए।
3. किसी भी महत्व की सभी सामाजिक प्रक्रियाओं की प्रथम उत्पत्ति को सामाजिक समूह की आंतरिक संरचना में ही खोजा जाना चाहिए।

3.2.17 समाजशास्त्रीय प्रमाणों की स्थापना से संबंधित नियम (Rules Relative to Establishing Sociological Proofs)

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के अध्याय छः में समाजशास्त्रीय प्रमाणों की स्थापना से संबंधित नियमों को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार इस कार्य के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है और यह विधियां इस प्रकार हैं-

1. ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method)
2. प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental Method)
3. तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

दुर्खीम ऐतिहासिक पद्धति एवं प्रयोगात्मक पद्धति को समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए अनुपयुक्त मानते हैं एवं उनके अनुसार तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करके ही समाजशास्त्रीय प्रमाणों की स्थापना उचित रूप से की जा सकती है। दुर्खीम का कहना है कि यदि हम कार्य के पीछे के कारणों को प्रमाणित करना चाहते हैं तो इसकी बहुत बड़ी पद्धति तुलनात्मक पद्धति है। इस विधि के द्वारा समानता और विभिन्नताओं को स्पष्ट कर सकते हैं। समाजशास्त्रीय पद्धति का बहुत बड़ा उद्देश्य सामाजिक घटनाओं के पीछे छिपे कारणों की खोज करना है। कोई भी समाजशास्त्री प्रयोगशाला में कार्य नहीं करता है, क्योंकि प्रघटनाएं उसके नियंत्रण से बाहर होती हैं। ऐसी अवस्था में तुलनात्मक पद्धति ही एक ऐसा नियम है जिसके द्वारा हम तथ्यों का विश्लेषण कर सकते हैं दुर्खीम का कहना है कि तुलनात्मक विधि एक विश्वसनीय विधि है, जिससे समाजशास्त्री प्रयोग में ला सकते हैं। दुर्खीम तुलनात्मक विधि को अप्रत्यक्ष रूप से विज्ञान की प्रयोगात्मक विधि मानते हैं। दुर्खीम ने स्वयं लिखा है कि "तुलनात्मक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक विशेष शाखा नहीं है बल्कि वह स्वयं समाजशास्त्र है। यह मात्र वर्णनात्मक न होकर तथ्यों की व्याख्या करने की आकांक्षा करता है।"

3.2.19 आलोचना

दुर्खीम ने समाजशास्त्र की अवधारणा की विस्तृत व्याख्या करके समाजशास्त्रीय अध्ययन एवं विश्लेषण को वैज्ञानिक मार्ग दिखाया है। फिर भी अनेक समाजशास्त्रियों ने दुर्खीम के सामाजिक तथ्य की आलोचना की है-

1. दुर्खीम सामाजिक तथ्यों में समाज व समूह को अधिक महत्व देकर व्यक्तियों की उपेक्षा की है। जबकि वास्तविकता यह है कि व्यक्ति के बिना समूह व समाज का अस्तित्व ही संभव नहीं है। इस सम्बंध में **गेवरल टार्डे** ने लिखा है "मैं यह मानता हूं कि मेरे लिए यह समझना कठिन है कि व्यक्तियों को निकाल देने के बाद समाज जैसी कोई वस्तु शेष रह जाएगी। यदि किसी विश्वविद्यालय के छात्रों

तथा अध्यापकों को अलग कर दिया जाए तो मैं नहीं समझता की वहा नाम के अतिरिक्त कुछ भी और शेष रह जाएगा।”

2. **हेनरी बॉर्न्स** सामाजिक तत्व को वस्तु माने जाने पर अपनी आपत्ति प्रकट करते हुए लिखा है कि दुर्खीम के इस सूत्र का अभीष्ट अर्थ कभी स्पष्ट नहीं हुआ है। क्योंकि दुर्खीम ने वस्तु शब्द का प्रयोग चार विभिन्न और घनिष्ठ संबंध रहित अर्थों में किया है।
3. सामाजिक तथ्यों की बाध्यता की विशेषता सभी प्रकार की घटनाओं पर खरी नहीं उतरती। कानून तथा नैतिक नियम व्यक्तियों को बाध्य कर सकते हैं लेकिन अन्य स्थितियों में सामाजिक तथ्य की यह विशेषता लागू नहीं होती।
4. **गेबरल टार्डे** एवं **रेमण्ड ऐरन** ने भी बाध्यता की आलोचना की हैं। रेमण्ड ऐरन ने भी दुर्खीम की बाध्यता का विरोध किया है। “दुर्खीम ने बाध्यता शब्द का प्रयोग अत्यंत दोषपूर्ण रूप में किया है। कभी-कभी तो यह समझने में कठिनाई उत्पन्न होने लगती है कि क्या केवल बाध्यता ही सामाजिक घटनाओं या तथ्यों का सार तत्व है या केवल यह उनकी बाध्य विशेषता हैं, जो कि उन्हें समझने में सहायता करती है।”
5. दुर्खीम ने असमान्य एवं व्याधकीय तथ्यों के बीच कोई भेद नहीं किया है। यह दुर्खीम के सिद्धांत की एक प्रमुख कमजोरी है क्योंकि अनेक असामान्य घटनाएं गैरव्याधिकीय भी हो सकती है।
6. दुर्खीम सामाजिक तथ्य में यह स्पष्ट करने में असफल रहे हैं कि कौन सा सामाजिक तथ्य अधिक प्रभावशाली एवं नियंत्रणकारी है तथा कौन सा कम।

अनेक आलोचनाओं का केंद्र रहने के बाद भी दुर्खीम के सामाजिक तथ्य की अवधारणा काफी महत्वपूर्ण है। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के आधार पर ही श्रम विभाजन सामाजिक एकता धर्म आत्महत्या जैसे सिद्धांतों का विश्लेषण एवं विवेचन किया है।

प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत (Theory of Positivisim)

3.2.20 प्रस्तावना

समाजशास्त्र एक विज्ञान है। इसके संस्थापकों को यह दृढ़ विश्वास था कि मानव और समाज का अध्ययन उन्हीं सिद्धांतों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर किया जा सकता है, जैसा कि प्राकृतिक विज्ञान रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवशास्त्र आदि में किया जाता है। इसलिए उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति को विकसित किया और यह वैज्ञानिक पद्धति या उपागम प्रत्यक्षवाद के नाम से जाना जाता है।

समाजशास्त्र के जन्मदाता अगस्त कॉम्ट का विश्वास था कि यदि प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों को काम में लाया जाएगा तो समाज में एक सकारात्मक विज्ञान की उत्पत्ति होगी। जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान में

पदार्थ के व्यवहार को कारण एवं प्रभाव के आधार पर समझा जाता है उसी प्रकार मानव के व्यवहार को भी कारण एवं प्रभाव अर्थात कार्य-कारण संबंधों के आधार पर समझा जा सकता है। फ्रांसीसी समाजिक विचारक **दुर्खीम का नाम अगस्त कॉम्ट** के **उत्तराधिकारी** के रूप में जाना जाता है। कॉम्ट के समान ही दुर्खीम ने समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने पर विशेष जोर दिया। दुर्खीम ने अगस्त कॉम्ट का अनुसरण करते हुए प्रत्यक्षवाद को स्वीकार किया। विज्ञान की विधि सभी विषयों के लिए एक है, को स्वीकार करते हुए कॉम्ट से दो कदम आगे जाकर प्रत्यक्षवाद को अपने तरीके से विकसित करने का प्रयास किया। बोगार्डस ने लिखा है कि दुर्खीम एक प्रत्यक्षवादी विचारक थे और उस रूप में उनका यह विश्वास था कि सामाजिक क्रियाओं के अध्ययन में प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिए। यहीं से दुर्खीम के समाजशास्त्री प्रत्यक्षवाद का आरंभ हुआ। समाजशास्त्र में प्रत्यक्षवाद प्रत्यक्ष वादी कुछ मान्यताओं को लेकर चलता है जैसे-

1. मनुष्य का व्यवहार पदार्थ के व्यवहार के समान वैषयिकता के साथ मापा जा सकता है। जैसे पदार्थ के व्यवहार को हम वजन, तापमान और मीटर, सेंटीमीटर आदि के आधार पर मापते हैं। उसी प्रकार मानव व्यवहार को नापने के लिए वैषयिक पद्धतियों का विकास किया जा सकता है।
2. वैषयिक माप के आधार पर व्यवहार के अवलोकनों से कार्य-कारण संबंधों पर आधारित कथनों को उत्पन्न करना संभव हो जाएगा इसके पश्चात अवलोकित व्यवहार की व्याख्या करने के लिए सिद्धांतों को विकसित किया जा सकता है।

3.2.21 प्रत्यक्षवाद का अर्थ (Meaning of Positivism)

प्रत्यक्षवादियों की मान्यता है कि मानव व्यवहार का एक विज्ञान संभव है। भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा जीवशास्त्र के समान ही समाजशास्त्र को वैज्ञानिक स्थिति प्राप्त करने का पूरा अधिकार है। अगस्त कॉम्ट ने कहा था कि सामाजिक जगत का व्यवहार उन्हीं नियमों के आधार पर निर्देशित होता है जिनके आधार पर प्राकृतिक जगत का व्यवहार निर्देशित होता है। इसलिए समाजशास्त्री सामाजिक शोध के लिए प्रकृतिक विज्ञानों की शोध पद्धति का ही प्रयोग करते हैं। मानव के अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली इस पद्धति या उपागम को प्रत्यक्षवाद के नाम से पुकारा जाता है

विभिन्न विद्वानों ने प्रत्यक्षवाद की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं-

रेमंड एरन के अनुसार- "प्रत्यक्षवाद का संबंध घटनाओं के निरीक्षण उनके विश्लेषण तथा उनके पारस्परिक संबंधों को नियमित करने वाले नियमों की खोज करने से है।"

डॉन मार्टिंडल के अनुसार- " प्रत्यक्षवाद चिंतन जगत का वह आंदोलन है, जो जगत की व्याख्या पूर्ण रूपेण अनुभव के आधार पर करता है।"

रोलिंन चौंबलिस के अनुसार- "प्रत्यक्षवाद का संबंध कृत्रिम की अपेक्षा वास्तविक जगत से है, समस्त ज्ञान की अपेक्षा उपयोगी ज्ञान से है, तथ्यों से है, जिनका किसी निश्चित अंश तक अवलोकन संभव है। यह विस्तृत अस्पष्ट भावों की अपेक्षा सदा परिवर्तित चेतना, सत्य, निरपेक्ष की अपेक्षा सापेक्ष से संबंधित है। प्रत्यक्षवाद सहानुभूति पूर्ण है। जिसमें यह उन सभी को सह संबंध में संकलित कर लेता है जो इसकी भावना एवं पद्धति का प्रयोग करते हैं। प्रत्यक्षवाद विचार की एक प्रणाली है, जो सार्वभौमिक रूप से स्वीकार की जाती है।

3.2.23 दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद

दुर्खीम ने समाजशास्त्र को एक पृथक एवं स्वतंत्र विषय के रुप में स्थापित करने के लिए वैज्ञानिक एवं अनुभववादी पद्धति से दुर्खीम ने दर्शनशास्त्र के दरवाजे बंद कर दिए। दुर्खीम ने समाजशास्त्र की प्रकृति और उसके क्षेत्र को निर्धारित करने पर विशेष जोर दिया। 1898 तक दुर्खीम ने प्रत्यक्षवादी पद्धति को पूरी तरह स्वीकार कर लिया था। दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्र स्वयं को एक विज्ञान के रूप में अपने आपको तब तक प्रतिष्ठित नहीं कर सकता जब तक की वह वैज्ञानिक पद्धतियों का अनुसरण न करें। समाजशास्त्र में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक पद्धति ही प्रत्यक्षवाद है। अनुभवाश्रित अवलोकन वर्गीकरण व्याख्या एवं सामान्यीकरण इसके अनिवार्य अंग है। इन्ही वैज्ञानिक कार्यप्रणाली को प्रत्यक्षवाद में दृढ़ता से अपनाया जाता है।

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक समाजशास्त्री पद्धति के नियम में समाजशास्त्र में प्रत्यक्षवादी उपागम का प्रयोग करने की बात कही है। इस संबंध में दुर्खीम का कहना था कि प्रथम और सर्वाधिक मौलिक नियम यह है कि सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में देखा जाए। जिस प्रकार प्राकृतिक जगत में घटनाओं और वस्तुओं को तथ्यों के रूप में माना जाता है उसी रूप में विश्वासों की व्यवस्थाओं, प्रथाओं तथा समाज की संस्थाओं को सामाजिक जगत के तथ्यों या वस्तुओं के रूप में समझा जाना चाहिए। जिससे इनका प्रत्यक्ष अवलोकन किया जा सकेगा और इन्हें वैषयिकता के साथ मापा भी जा सकेगा। हालांकि यह स्पष्ट है कि सामाजिक तथ्य की जागरूकता से ही समाज में प्रवेश करते हैं फिर भी सामाजिक तथ्य व्यक्तियों से बाहर है। यह तथ्य बाहरी वस्तु है अतः इनका वैषयिकता के साथ अध्ययन किया जा सकता है। उनका कहना है कि समाज व्यक्तियों का एकत्रीकरण मात्र नहीं है। व्यक्ति अपने विशेष मनोविज्ञान मानसिक स्तर के आधार पर स्वतंत्रता पूर्वक क्रिया करता है। समाज के सदस्य सामूहिक विश्वासों, मूल्य तथा नियमों का अर्थ सामाजिक तथ्यों द्वारा निर्देशित होते हैं। जिनका अपना स्वयं का अस्तित्व है। ए सामाजिक तथ्य ही व्यक्तियों को विशेष तरीके से व्यवहार करने से रोकते हैं। इसलिए यह परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है की सामाजिक तथ्य

मानव व्यवहार की किस प्रकार व्याख्या करते हैं। जिस प्रकार का तथ्य हमारी प्रेरणा की प्रतिक्रिया के रूप में होता है ठीक उसी प्रकार से मानव व्यवहार को सामाजिक तथ्यों की बाहरी उत्तेजना की प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। मनुष्य और समाज की प्रकृति का विश्लेषण सामाजिक तथ्यों के आधार पर प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों के अनुसार किया जा सकता है।

एमाइल दुर्खीम ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'आत्महत्या समाजशास्त्र में एक अध्ययन' में प्रत्यक्षवाद के उपागम की उपयोगिता की प्रमाणिकता को सिद्ध करने का प्रयास किया। इस अध्ययन में दुर्खीम ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि "वास्तविक नियम पता लगाए जाने योग है। सामाजिक घटना पर नियम उसी रूप में लागू होते हैं, जिस रूप में प्राकृतिक घटना पर लागू होते हैं।" प्रत्यक्षवादी उपागम की ओर अधिक स्पष्टता से जांच करने की दृष्टि से दुर्खीम ने आत्महत्या के कुछ पहलुओं को लिया। उन्होंने इसके विभिन्न प्रकारों की विवेचना की जांच की और उसके कारणों को ढूंढने का प्रयास किया। इसलिए दुर्खीम का आत्महत्या संबंधी अध्ययन समाजशास्त्र में अनुसंधान पद्धति के एक आदर्श के रूप में माना जाता है। बाद में इसी प्रकार की मान्यताओं के आधार पर समाजशास्त्र में अनेक अनुसंधान किए गए हैं। यह अनुसंधान उन तथ्यों पर आधारित है जिनका अवलोकन किया जा सकता है और उन्हें मापा जा सकता है। इन अनुसंधानों के निष्कर्ष में यह बताया गया है कि मनुष्य का व्यवहार उसके स्वयं के बाहर की शक्तियों के द्वारा निर्धारित होता है। दुर्खीम के अनुसार "मानव व्यवहार सामाजिक तथ्यों द्वारा निर्धारित होता है और वे सामाजिक तथ्य मनुष्य के बाहर के होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष अवलोकन किया जा सकता है, और मापा जा सकता है, यही दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद है। धर्म का अध्ययन करते समय दुर्खीम ने यह अनुभव किया कि समाजशास्त्रीय यथार्थ के रूप में प्रत्यक्षवाद को पूरी तरह लागू करना कठिन है। प्रत्यक्षवाद के तीनों आधार 'विज्ञान का दर्शन', 'प्रत्यक्षवादी पद्धति' एवं 'विज्ञान की शक्ति' को स्वीकार करना सरल था पर अध्ययनों में इसका प्रयोग कठिन था। इसलिए दुर्खीम ने इसमें संशोधन किया इसके दो प्रमुख कारण बताए-

1. प्रत्यक्षवादी अध्ययन पद्धति के उपयोग से सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक संरचना का अध्ययन करने से ऐसे निष्कर्ष सामने आ रहे थे जो सामान्य वृद्धि के विपरीत थे। प्रत्यक्षवाद सामान्य बुद्धिवाद के विपरीत प्रतीत हो रहा था।
2. सामाजिक घटनाओं की जटिलता के कारण प्रत्यक्षवादी तकनीकों को लागू करना मुश्किल था।

बोगार्डस ने दुर्खीम के प्रत्यक्षवाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है "दुर्खीम अपने पद्धतिशास्त्र में इस बात पर जोर देते हैं, कि भावना से जुड़े सभी विचारों से दूर रहा जाए, व्यक्तिगत गलतियों को पनपने न दिया जाए, अध्ययन के उद्देश्यों को पहले से ही सावधानी पूर्वक परिभाषित कर लिया जाए, तथा स्वाभाविक तथ्य 'जैसा है' और तथ्य 'जैसा की होने चाहिए' में स्पष्ट भेद कर लेना चाहिए।"

दुर्खीम ने कॉम्ट के प्रत्यक्षवाद का अनुकरण करते हुए समाजशास्त्र का लक्ष्य अनुभव सिद्ध ज्ञान की प्राप्ति को बताया। अर्थात वह ज्ञान जो सामाजिक तथ्यों के अवलोकन, वर्गीकरण, विश्लेषण और परीक्षण आदि वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के आधार पर प्राप्त किया गया हो। **गस्त कॉम्ट** ने समाजशास्त्र की पद्धति का प्रत्यक्षवादी विचार देकर मानवता के धर्म का आदर्शात्मक प्रारूप प्रस्तुत किया था। वही **दुर्खीम** सामाजिक तथ्यों को वस्तु के रूप में अध्ययन करने की सलाह देकर समाजशास्त्र को एक **विशुद्ध विज्ञान** के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थें। दुर्खीम के समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रत्यक्षवादी पद्धति के सफल प्रयोग को प्रमाणित करते हैं। दुर्खीम ने समाजशास्त्र के जिस व्यवहारिक पक्ष पर बल दिया है। वह प्रत्येक विज्ञान पर लागू होता है। इस तरह वैज्ञानिक प्रक्रिया के आधार पर इंद्रियों के द्वारा अनुभव की जाने वाली घटनाओं का अध्ययन करना दुर्खीम का मुख्य उद्देश्य था यही दुर्खीम की पद्धतिशास्त्र का आधार स्तंभ है यही दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद है।

3.2.24 सारांश

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य वस्तुएं हैं तथा उनका इसी रूप में अध्ययन करना चाहिए। दुर्खीम पूरे संसार में समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने का प्रयास करने वाले पहले विद्वान थे। आपकी समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम लोगों के लिए एक सबूत था, जो यह समझते थे कि समाजशास्त्र न कोई विज्ञान है और न ही यह अनिवार्य विषय है। अनिवार्य रूप से यह एक विज्ञान है, यह तथ्यों की एक ऐसी भिन्न श्रेणी है, जिसे सामाजिक तथ्य कहा जाता है। जिसका अध्ययन किसी भी विज्ञान में नहीं किया जा सकता किंतु समाजशास्त्र में किया जाता है। इस तरह समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने में दुर्खीम ने अद्वितीय भूमिका निभाई है।

दुर्खीम समाजशास्त्र को एक ऐसे विज्ञान के रूप में निर्मित करने का प्रयास किया जिसकी स्वयं की अपनी विषय-वस्तु हो। अपना पद्धति विज्ञान हो तथा अपने व्याख्यात्मक मॉडल हो। उन्होंने समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने के प्रयासों के साथ-साथ सामाजिक अभियांत्रिकी के विचारों को भी महत्व दिया था। इसके लिए उन्होंने अनेक अनुभव परक सामाजिक समस्याओं के अन्वेषण और विश्लेषण की योजना भी प्रस्तुत की। विज्ञान वादी पद्धतिशास्त्री अंतर्दृष्टि का अनुगमन करके समाजशास्त्र को एक सशक्त और उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

दुर्खीम के सामाजिक तथ्य की अवधारणा बहुत महत्वपूर्ण है। समाजशास्त्र में काफी लोकप्रिय है। दुर्खीम एक ऐसे समाज वैज्ञानिक थे, जिनकी महत्ता अपने समय में ही नहीं वरन आज भी उतनी ही है। दुर्खीम समाजशास्त्र को सैद्धांतिक एवं पद्धतिशास्त्री दोनों दृष्टिकोण से सुदृढ़ करने में अपना योगदान दिया है। सरल, स्पष्ट व सशक्त भाषा के कारण सिद्धांत अत्यंत लोकप्रिय हुआ। कैटलिन दुर्खीम को पद्धति शास्त्र का आचार्य कहते हैं। ऐसी पद्धति का आचार्य जिसके सफल परिणाम हुए हैं। हम बीयर स्टेट के इस कथन से सहमत हो

सकते हैं कि "दुर्खीम वास्तविक अर्थ में समाजशास्त्र के विज्ञान की स्थापना के दिशा में विश्वव्यापी आंदोलन का प्रणेता था और पद्धति पर उसकी पुस्तक एक घोषणापत्र थी। जिसमें समस्त पाठकों के समक्ष यह घोषित किया कि समाजशास्त्र का विज्ञान केवल संभव ही नहीं था वरन यह अनिवार्य भी था।"

3.2.25 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम का प्रकाशन किस सन में हुआ?
   (अ) 1895 (ब) 1876
   (स) 1890 (द) 1870
2. समाजशास्त्री पद्धति के नियम पुस्तक कितने भागों में विभाजित है?
   (अ) पॉच (ब) सात
   (स) छैः (द) चार
3. समाजशास्त्री पद्धति के नियम पुस्तक में किस बात पर अधिक बल दिया गया है?
   (अ) वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग (ब) सांख्यिकी विधि का प्रयोग
   (स) द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
4. समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र व्यक्ति नहीं अपितु समाज है। यह कथन किसका है?

   (अ) एमाइल दुर्खीम (ब) मैक्स वेबर
   (स) टालकट पारसंस (द) रेमंड एरन
5. "सामाजिक तथ्यों को वस्तु के समान समझना चाहिए।" यह कथन किसका है?
   (अ) रेमंड एरन (ब) दुर्खीम
   (स) अगस्त कॉम्ट (द) हरबर्ट स्पेंसर
6. सामाजिक तथ्यों के तीन नियमों का उल्लेख दुर्खीम की पुस्तक के किस अध्याय में किया गया है?
   (अ) सात (ब) तीन
   (स) पांच (द) चार
7. किस समाजशास्त्री ने समाजशास्त्र की विषय-वस्तु को सामाजिक तथ्य माना है?
   (अ) दुर्खीम (ब) मैक्स वेबर
   (स) स्पेंसर (द) आर.के. मर्टन
8. सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों के निर्धारण के बाद दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को कितनी श्रेणियों में बांटा है?

(अ) पांच (ब) दो

(स) तीन (द) चार

9. सामाजिक तथ्य में होता है?

(अ) विज्ञान (ब) परिवर्तन

(स) सार्वभौमिकता (द) उपरोक्त में से कुछ नहीं

10. दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्रीय पद्धतियों के नियम' के किस अध्याय में पद्धतिशास्त्र की विशेषताओं एवं उपयोगिता को तीन भागों में रखा है?

(अ) चार (ब) तीन

(स) पांच (द) सात

उत्तर

(1) अ (2) स (3) अ (4) अ (5) ब

(6) स (7) अ (8) ब (9) स (10) द

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. दुर्खीम का सामाजिक पद्धतिशास्त्र के नियम को स्पष्ट कीजिए।
2. सामाजिक एवं व्याधिकीय तथ्यों में भेद करने के नियम बताइए।
3. दुर्खीम ने कितने प्रकार के समाजों का उल्लेख किया है? संक्षेप में समझाइए
4. सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम क्या है?
5. समाजशास्त्रीय प्रमाणों की स्थापना से संबंधित कौन-कौन से नियम हैं?
6. दुर्खीम द्वारा प्रस्तुत सामाजिक तथ्य की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
7. सामाजिक तथ्य के अर्थ एवं परिभाषा को लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय

1. सामाजिक तथ्य से आप क्या समझते है? दुर्खीम के सामान्य और व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
2. दुर्खीम के सामाजिक तथ्य के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. दुर्खीम ने सामान्य और व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों में अंतर स्थापित करने के लिए किन नियमों की स्थापना की है?
4. दुर्खीम के सामाजिक तथ्य की अवधारणा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

5. प्रत्यक्षवाद से आप क्या समझते है? दुर्खीम के प्रत्यक्षवाद की विवेचना कीजिए।
6. दुर्खीम के सामान्य और व्याधिकीय तथ्यों का महत्व समझाइए।
7. सामाजिक तथ्य की विशेषताओं को समझाइए।
8. प्रत्यक्षवाद का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।

3.2.26 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 3 आत्महत्या एवं श्रम विभाजन का सिद्धांत

अत्महत्या का सिद्धांत

3.3.0 उद्देश्य

3.3.1 प्रस्तावना

3.3.2 आत्महत्या का अर्थ

3.3.3 आत्महत्या की परिभाषा

3.3.4 आत्महत्या की विशेषताएं

3.3.5 अध्ययन वस्तु

3.3.6 आत्महत्या के कारण

3.3.7 इलियट और मैरिल के अनुसार आत्महत्या के कारण

3.3.8 दुर्खीम के आत्महत्या का सिद्धांत

3.3.9 आत्महत्या के सिद्धांत के निष्कर्ष

3.3.10 आत्महत्या के प्रकार

3.3.11 निराकरण के उपाय

3.3.12 आलोचना

श्रम विभाजन का सिद्धांत (Theory of Division of Labour)

3.3.13 प्रस्तावना

3.3.14 श्रम विभाजन का अर्थ

3.3.15 श्रम विभाजन पुस्तक का उद्देश्य

3.3.16 श्रम विभाजन के कार्य

3.3.17 श्रम विभाजन सिद्धांत का परिणाम

3.3.18 श्रम विभाजन सिद्धांत की आलोचना

3.3.19 सारांश

3.3.20 बोध प्रश्न

3.3.21 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी-

- आत्महत्या के अर्थ को समझ पाएंगे।

- आत्महत्या की परिभाषा एवं विशेषताओं को समझने में सहायता मिलेगी।
- आत्महत्या के कारणों को जान पाएंगे।
- दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत की व्याख्या को समझ सकेंगे।
- आत्महत्या कितने प्रकार की होती है? इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आत्महत्या की समस्या के निराकरण के उपायों को समझेंगे।
- दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत की आलोचनाओं को भी समझ सकेंगे।
- श्रम विभाजन के स्वरूप से विद्यार्थी परिचित होंगे।
- श्रम विभाजन के प्राथमिक एवं द्वितीयक कारणों को समझ सकेंगे।
- दुर्खीम के श्रम विभाजन के सिद्धांत के परिणामों को समझ सकते हैं।
- श्रम विभाजन के सिद्धांत की आलोचना को भी समझ सकते हैं।

3.3.1 प्रस्तावना

1897 में दुर्खीम ने **'सुसाइड'** नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। यह दुर्खीम की तीसरी महत्वपूर्ण कृति है किंतु समाजशास्त्रीय मान्यताओं और पद्धतिशात्रीय प्रयोगों की व्यवस्थित स्थापना और प्रमाणिकता की दृष्टि से यह उनका प्रथम ग्रंथ है। दुर्खीम ने आत्महत्या विषय को अपनी शोध समस्या के रूप में चुना। दुर्खीम के अनुसार यह एक समसमायिक स्पष्ट और निश्चित समस्या है। **रेमण्ड ऐरन** कहते हैं कि दुर्खीम का आत्महत्या का अध्ययन आधुनिक समाजों के व्याधिकीय पक्ष तथा व्यक्ति और सामुहिकता के संबंध को अत्यंत आकर्षक ढंग से प्रकाशित करने वाली घटना की व्याख्या करता है। दुर्खीम ने अपनी इस पुस्तक में भी पूर्व के ग्रंथों की तरह समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है। आपके अनुसार आत्महत्या जैसे अत्यंत व्यक्तिगत कार्य का प्रेरणा स्रोत भी समाज ही है। इस ग्रंथ की रचना के पीछे इस तथ्य का उद्घाटन करना ही दुर्खीम का उद्देश्य था। इसलिए आत्महत्या को सामान्यतः व्यक्तिगत घटना माना जाता है। **रेमण्ड ऐरन** के अनुसार "जब कोई व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए पर्याप्त एंकाकी और हताश होता है तो भी दुर्खीम के अनुसार समाज ही इस दुखी मनुष्य की चेतना में उपस्थित रहता है। यह समाज है जो व्यक्तिगत इतिहास से अधिक इस एकांकी क्रिया को संचालित करता है।" इस प्रकार दुर्खीम के अनुसार समाज में कुछ ऐसी शक्तिया कार्य करती हैं जो व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रेरित करती है।

दुर्खीम ने अपनी इस पुस्तक को तीन खंडो में विभाजित किया है। इसके प्रथम खंड में दुर्खीम ने प्रस्तावना, आत्महत्या को वैषयिक आधार पर परिभाषित किया है और इसकी व्यक्तिगत तथा सामाजिक

प्रकृति में अंतर बताया है। इसी के प्रथम खंड में ही दुर्खीम ने अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित आत्महत्या के सिद्धांतो की व्याख्या करते हुए उसकी अनुपयुक्तता सिद्ध की है। इस खंड के प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायों में दुर्खीम ने क्रमशः मनोविकृतियों, प्रजाति, वंशानुक्रमण, प्राकृतिक कारणो एवं अनुकरण के आधार पर आत्महत्या की व्याख्या करने वाले सिद्धांतों की आलोचना की है।

पुस्तक के दूसरे खंड में आत्महत्या के सामाजिक कारकों की विवेचना की गई है। सामाजिक कारकों की व्याख्या के रूप में दुर्खीम ने आत्महत्या के तीन प्रकारों **अहमवादी आत्महत्या, परार्थवादी आत्महत्या एवं आदर्शहीन आत्महत्या** की विवेचना प्रस्तुत की है। इस खंड के 6 अध्याय विभिन्न सामाजिक कारकों द्वारा प्रेरित आत्महत्या कें तीनों स्वरूपों की विस्तृत व्याख्या करते हैं। इस खंड के आखिरी अध्याय में आत्महत्या के तीनों प्रकारों के व्यक्तिगत स्वरूपों की विवेचना की गई है।

इस पुस्तक का तीसरा व अंतिम खंड अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस खंड के तीन अध्यायों में आत्महत्या की सामाजिक प्रकृति का स्पष्टीकरण एवं समूहवादी सिद्धांत की स्थापना का प्रयास किया गया है। दुर्खीम की यह पुस्तक उनके सैद्धांतिक या पद्धतिशास्त्रीय के योगदान की महत्वपूर्ण कृति है।

3.3.2 आत्महत्या का अर्थ (Meaning of Suicide)

आत्महत्या पलायनवाद की अति है। जीवन की समस्याओं का डटकर सामना करने के स्थान पर भागना अथवा उनसे हार मान लेना निश्चय ही कायरता है और कायरता भी निम्न कोटि की। आत्महत्या व्यक्तिगत विघटन का अति घृणित और भयंकर रूप है, जिसमें व्यक्ति नियति के साथ अपनी इच्छा से अपनी आत्मा का हनन करता है। जब व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान करने में असफल हो जाता है तो वह आत्महत्या के द्वारा अपनी समस्याओं पर सफलता प्राप्त करने का प्रयास करता है। हम अक्सर सुनते हैं कि व्यक्ति मौत से डरता है किंतु समाज में बढ़ती हुई आत्महत्या यह सिद्ध कर रही है कि व्यक्ति जीवन से डरता है। जब व्यक्ति जीवन की वास्तविकता और समस्याओं से डरकर अपने जीवन को समाप्त कर लेता है तो उसे आत्महत्या कहते हैं। दुर्खीम अपनी विश्लेषण पद्धति का अनुसरण करते हुए सबसे पहले आत्महत्या को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। सामान्य अर्थों में जीवन को समाप्त करना आत्महत्या कहलाता है। आत्महत्या भी साधारण बोलचाल की भाषा में एक शब्द। **दुर्खीम** के अनुसार "सामान्यतः यह समझा जाता है कि आत्महत्या एक हिंसात्मक कार्य है, जिसमें कुछ शारीरिक शक्ति का प्रयोग करके प्राणांत किया जाता है पर यह भी हो सकता है कि एक विशुद्ध नकारात्मक मनोवृति या केवल कार्य निवृत्ति से भी वही परिणाम हो सकते है, उदाहरण के लिए खाना खाने से इनकार करना भी उतना ही आत्मघाती हो सकता है जितना कि एक चाकू या पिस्तौल से स्वयं का आत्म विनाश करना।" **दुर्खीम** इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "आत्महत्या शब्द का प्रयोग ऐसी किसी भी मृत्यु के लिए किया जाता है जो स्वयं मृतक के द्वारा किए गए

किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम है।" दुर्खीम के अनुसार मृत्यु के कारण हमारे बाहर है न कि हमारे अंदर। यह तभी तक प्रभावशाली होते हैं जब तक कि हम उनके कार्य में हस्तक्षेप करते है। आत्महत्या में व्यक्ति अपने जीवन को त्यागने का निर्णय कर लेता है। दुर्खीम के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आत्महत्या हम उसे कहेंगे जिसमें व्यक्ति आत्महत्या करना निश्चित कर लेता है। जिसमें व्यक्ति के द्वारा जीवन के त्याग करने की इच्छा निहित हो।

3.3.3 आत्महत्या की परिभाषाएं (Definition)

दुर्खीम कहते हैं कि सामान्यता ऐसा माना जाता है की आत्महत्या एक व्यक्तिगत क्रिया है यही कारण है कि आत्महत्या की व्याख्या सामान्यतः व्यक्ति अपने मिजाज चरित्र और विगत इतिहास आदि के आधार पर प्रस्तुत करता है। विभिन्न विद्वानों ने आत्महत्या की परिभाषा इस प्रकार दी है-

रूथ केवन के अनुसार- "आत्महत्या अपने आप स्वेच्छा से जीवन लीला समाप्त करने अथवा मृत्यु द्वारा आतंकित होने पर अपने जीवन को बचाने में असमर्थता की क्रिया है।"

दुर्खीम के अनुसार- "आत्महत्या शब्द का प्रयोग उन सभी मृत्युओं के लिए किया जाता है जो कि स्वयं मृत व्यक्ति के किसी सकारात्मक या नकारात्मक ऐसे कार्य के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होते हैं जिनके संबंध में वह जानता है की वह कार्य इसी परिणाम अर्थात मृत्यु को उत्पन्न करेगा।"

इलियट और **मैरिल** के अनुसार- "आत्महत्या व्यक्तिगत विघटन का दुखद तथा अपरिवर्तनीय अंतिम परिणाम है। यह व्यक्ति के दृष्टिकोण में होने वाले उन क्रमिक परिवर्तनों का अंतिम स्तर है जिसमें व्यक्ति के मन में जीवन के प्रति अभावनीय प्रेम के स्थान पर घृणा की भावना उत्पन्न हो जाती है।"

दुर्खीम के अनुसार "यदि विभिन्न आत्महत्याओं को एक पृथक घटना के रूप में न मानकर एक समय विशेष में सभी आत्महत्याओं की विवेचना समग्र रूप से की जाए तो यह स्पष्ट होगा कि यह समग्रता स्वतंत्र इकाइयों का एक योग मात्र नहीं है, बल्कि एक ऐसा नवीन तथ्य है जिसकी अपनी कुछ एकता, विलक्षणता एवं प्रकृति है और यह प्रकृति वास्तव में आधारभूत रूप से सामाजिक है।"

यदि व्यक्ति आत्महत्या के प्रयास में बच जाता है तो उसे आत्महत्या न कहकर आत्महत्या का प्रयास कहा जाता है। दुर्खीम के अनुसार वास्तव में आत्महत्या उस अवस्था में विद्यमान रहती है। जबकि व्यक्ति उस घातक कार्य को करते समय उसके स्वाभाविक परिणाम को निश्चित रूप से जानता है। हालांकि निश्चितता व्यक्ति की स्थिति के आधार पर कम या अधिक हो सकती है। दुर्खीम आत्महत्या को एक व्यक्तिगत क्रिया मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने आत्महत्या की व्याख्या व्यक्ति के स्वभाव, उसके चरित्र एवं उसके भूतकाल के जीवन के आधार पर की है।

3.3.4 आत्महत्या की विशेषताएं (Characteristics)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर आत्महत्या की निम्न विशेषताएं देखने को मिलती है-

1. आत्महत्या में व्यक्ति स्वयं ही अपने जीवन को समाप्त करता है। ऐसी ही मृत्यु को आत्महत्या कहा जाएगा जो स्वयं मरने वाले की क्रिया का परिणाम होता है। आत्महत्या की क्रिया और परिणाम में कार्य कारण संबंध है और यह संबंध प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी।
2. इसमें व्यक्ति इच्छापूर्वक सोच-विचार कर आत्महत्या करता है, क्योंकि वह उसके परिणाम को अच्छे से जानता है। इसमें व्यक्ति यह जानता है कि वह जो कुछ कर रहा है, उसका परिणाम मृत्यु ही है। परिणाम को जानने के बावजूद भी व्यक्ति इस प्राणघातक क्रिया में लीन हो जाता है।
3. आत्महत्या एक व्यक्तिगत मामला है क्योंकि यह पूर्व निश्चय के साथ जानबूझकर की जाने वाली आत्मघाती क्रिया का परिणाम है।
4. आत्महत्या कोई व्यक्तिगत या अनायास होने वाली घटना नहीं है बल्कि यह समाज की दशाओं से संबंधित है।
5. आत्महत्या की घटनाओं की संख्या में प्रतिवर्ष फेरबदल होता रहता है।
6. समाज की दशाओं में होने वाला परिवर्तन आत्महत्या की स्थिति को प्रभावित करता है।

3.3.5 आत्महत्या से संबंधित विषय-वस्तु (Subject matter)

दुर्खीम ने आत्महत्या से संबंधित विषय-वस्तु को तीन भागों में विभाजित किया है-

1. दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या की घटना पूर्णता सामाजिक कारणों पर निर्भर है। उनके अनुसार प्रथम प्रकार के कारणों का महत्व बिल्कुल नहीं अथवा बहुत कम है।
2. दुर्खीम का कहना है कि कारणों को समझने के बाद उसकी विवेचना करनी होगी और यह देखने का प्रयास करना होगा कि यह कारक अपना प्रभाव किस रूप में डालते हैं? व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली आत्महत्या का इनसे क्या संबंध है?
3. आत्महत्या के सामाजिक तत्व कौन से हैं और उनका सामाजिक तथ्यों के साथ क्या संबंध है?

आत्महत्या की अवधारणा के साथ इसकी विषय वस्तु की विवेचना दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के प्रथम खंड में की है।

3.3.6 आत्महत्या के कारण (Causes of Suicide)

आत्महत्या विघटन की चरम व अंतिम अभिव्यक्ति है। इसलिए व्यक्तिगत विघटन की भांति इसे भी किसी एक कारण के आधार पर पूर्णता नहीं समझा जा सकता। दुर्खीम ने आत्महत्या के अनेक मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक एवं सामाजिक कारणों का उल्लेख किया है। उन्होंने इस बात को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि आत्महत्या का प्रमुख कारण सामाजिक दशाओं में ही निहित होता हैं।

दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

1. **मनोव्याधिकीय (Psychopat hic)** - दुर्खीम ने मनोव्याधिकीय कारकों के अंतर्गत अनेक कारक बताएं हैं । उनका कहना है कि इनमें से कई कारण आत्महत्या की लिए व्यक्ति को बाध्य कर सकते हैं।
2. **पागलपन और आत्महत्या (Insanity and Suicide)** - दुर्खीम का कहना है कि पागलपन एक मानसिक अलगाव की स्थिति है। दुर्खीम ने पागलपन को एक ऐसी बीमारी बताया है जो लगभग सभी समाजों में पाई जाती है। हालांकि अलग-अलग समाजों में इसकी मात्रा भी अलग-अलग होती है। एसक्वीरौल तथा बॉर्डिन आत्महत्या को एक विशेष प्रकार का पागलपन ही मानते हैं। अपने सिद्धांत के परीक्षण के आधार पर दुर्खीम ने बताया कि वो आत्महत्या को पागलपन से जनित नहीं मानते। कुछ लोग आत्महत्या को आनंद, मतिभ्रम, अत्यधिक निराशा, दुखी या शोक से भी जनित मानते हैं।

दुर्खीम के अनुसार पागलपन के अनेक रूप हैं-

1. **आत्महत्या एक उन्माद (Suicide as Insanity) -** आत्महत्या पागलपन या उन्माद का एक विशेष रूप है। आत्महत्या भी एक ऐसा विशिष्ट अनुमान है जिसमें व्यक्ति अपने आपको समाप्त करने की सोचता है। जबकि अन्य क्रियाओं में आत्महत्या करने वाला व्यक्ति सामान्य दिखाई देता है। यह अत्यंत प्रबल तीव्र और गंभीर संवेग है। इसमें व्यक्ति किसी भी क्षण इसके अधीन होकर आत्महत्या कर लेता है।
2. **उन्माद के परिणाम के रूप में आत्महत्या (Suicide as a result of Insanity) -** इस विचारधारा के अनुसार आत्महत्या उन्माद का परिणाम है। इसके अनुसार आत्महत्या करने वाले व्यक्ति प्रायः पागल होते हैं। आत्महत्या मानसिक अलगाव के कारण की जाती है। स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति कभी आत्महत्या नहीं करता।
3. **उन्मत्त आत्महत्या (Maniac Suicide) -** इस प्रकार की आत्महत्या मति भ्रम या दीवानगी के कारण होती है जैसे इसमें व्यक्ति काल्पनिक भय संकट और कभी-कभी अपमान से बचने के लिए आत्महत्या

कर लेता है। कई बार ऐसे उदाहरण भी देखने को मिले हैं जिसमें उन्माद की स्थिति में व्यक्ति में तीव्र गति से एक के बाद एक विचार आते रहते हैं और व्यक्ति यह महसूस करने लगता है कि कोई दैवी शक्ति उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित कर रही है और व्यक्ति के द्वारा आत्महत्या कर ली जाती है।

4. **विषादपूर्ण आत्महत्या (Melancholy Suicide)** - इस प्रकार की आत्महत्या का कारण दुख निराशा, शोक या खिन्नता होता है। इसमें कई बार व्यक्ति को मानसिक आघात लगता है और वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है, वह तनाव में आ जाता है और उसे ऐसा लगता है कि आत्महत्या ही उसके सुरक्षा का एक मात्र उपाय है।
5. **सम्मोहित आत्महत्या (Obsessive Suicide)** - इस प्रकार की आत्महत्या में व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर हमेशा मृत्यु का विचार छाया रहता है और वह इससे सम्मोहित रहता है। जब उसकी यह विचारधारा उसके मन की केंद्रीय आकांक्षा बन जाती है तो वह आत्महत्या कर लेता है।
6. **आवेगात्मक आत्महत्या (Impulsive or Automatic Suicide)** - यह ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति के मन में अचानक मृत्यु की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। व्यक्ति अपनी इच्छा पूर्ति के लिए आत्महत्या कर बैठता है। सब कुछ क्षणिक होता है, इस प्रकार की आत्महत्या में व्यक्ति के मन में इच्छा जागृत हो जाना और आत्महत्या कर लेना आवेगा आवेगात्मक आत्महत्या कहलाती है।
7. **स्नायु दोष और आत्महत्या (Neurastheuia and Suicide)** - मानसिक विकृतियों की अवस्थाओं को स्नायु दोष कहा जाता है और यह अवस्था आत्महत्या में विशेष सहायक होती है। जब स्नायु तंत्र पर गहरी चोट लगती है या व्यक्ति को कोई कठोर मानसिक पीड़ा जिससे वह बहुत अधिक कष्ट महसूस करता है तो वह स्नायु दोष के कारण छोटी-छोटी घटनाओं से उत्तेजित हो जाता है अथवा आनंदित हो जाता है। ऐसा व्यक्ति आत्महत्या कर सकता है। हालांकि दुर्खीम ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पागलपन या स्नायु दोष आत्महत्या के मौलिक कारण नहीं हैं बल्कि इन रोगों से प्रभावित व्यक्ति तभी आत्महत्या करता है जब उसके साथ कुछ सामाजिक दशा अभिक्रियाशील हो।
8. **मद्यपान और आत्महत्या (Alcoholism and Suicide)** - मादक पदार्थों के प्रयोग को भी आत्महत्या का कारण माना जाता है। कई बार विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न होने पर मादक पदार्थ का प्रयोग करने वाले व्यक्ति का मानसिक संतुलन ठीक नहीं रहता है और वह आत्महत्या कर लेता है। अध्ययनों में पाया गया है कि फ्रांस में जिन प्रदेशों में शराब का अधिक सेवन किया जाता है वहां पर अन्य प्रदेशों की तुलना में आत्महत्या अधिक होती है। दुर्खीम ने फ्रांस में आत्महत्याओं की संख्या तथा मद्यपान के अपराधियों की संख्या के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया और यह स्पष्ट करने का भी प्रयास किया कि इन दोनों के बीच में संबंध नहीं होता। क्योंकि ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिसमें शराब का उपयोग कम किया जाता है पर वहां पर आत्महत्याओं की संख्या अधिक पाई जाती है।

9. **मनोजैविकीय कारक और आत्महत्या (Psycho & Biological Factors and Suicide) -** आत्महत्या के असामाजिक कारकों में मानसिक व्याधियों के अतिरिक्त कुछ सामान्य मानसिक अवस्था भी होती है। मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक रचनाओं में कुछ ऐसे गुण पाए जाते हैं जो आत्महत्या को प्रोत्साहन देते हैं। यह अवस्थाएं विशुद्ध मनोवैज्ञानिक हो सकती हैं और पैतृकता से प्राप्त गुण भी हो सकते हैं। जो व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रेरित करते हैं। कुछ अनुसंधानकर्ता प्रजातीय विशेषताओं को भी आत्महत्या में सम्मिलित करते हैं और द्वारा उन्होंने अनेक उदाहरणों के द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि विशिष्ट प्रजातियों में आत्महत्या के प्रति एक निश्चित झुकाव पाया जाता है।
10. **प्रजाति और आत्महत्या (Race and Suicide) -** अनेक विद्वान प्रजाति लक्षणों से आत्महत्या का कारणात्मक संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। परंतु दुर्खीम प्रजाति और आत्महत्या के संबंध को अस्वीकार करते हैं। दुर्खीम इस सिद्धांत के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत करते हैं कि आत्महत्या की जटिल और विशेष प्रकृति को प्रजाति के सामान्य लक्षण के द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अनेक उदाहरणों से यह स्पष्ट था कि कैल्ट प्रजाति के लोग पहले अधिक आत्महत्या करते थे किंतु वर्तमान समय में यह प्रवृत्ति कम हो गई है। अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि विभिन्न प्रांतों में कैल्ट प्रजाति के लोगों में आत्महत्या की दर भी भिन्न-भिन्न है। इसलिए दुर्खीम प्रजाति के स्थान पर भौगोलिक पर्यावरण में अंतर को आत्महत्या का कारण मानते हैं।
11. **पैतृकता और आत्महत्या (Heredity and Suicide)** पैतृकता और आत्महत्या से मतलब है कि जो माता-पिता आत्महत्या करते हैं उनके बच्चों में भी आत्महत्या के गुण आ जाते हैं। आत्महत्या की प्रवृत्ति के लक्षण संतानों को वंशानुक्रम के आधार पर प्राप्त होते हैं जो सामान्य परिस्थितियों में भी उन्हें आत्महत्या के लिए प्रेरित करते हैं। अनेक अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं। परंतु दुर्खीम का कहना है कि आत्महत्या का गुण पैतृकता से प्राप्त नहीं होता बल्कि मानसिक या स्नायु दुर्बलता का हस्तांतरण होता है जो व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है। दुर्खीम कहते हैं कि आत्महत्या एक संक्रामक घटना है। उन्होंने अपनी पुस्तक में ऐसे अनेक उदाहरण से स्पष्ट किया है। जिसमें आत्महत्या एक संक्रामक रोग की तरह नजर आती है। उन्होंने लिखा है कि एक अस्पताल में 15 रोगियों ने एक अंधेरे कमरे में एक के बाद एक फांसी लगा ली लेकिन जब वहां से वह फंदा हटा दिया गया तो वहां आत्महत्या का क्रम भी बंद हो गया।
12. **भौगोलिक दशा एवं आत्महत्या (Geographical Conditions and Suicide) -** अनेक समाजशास्त्री और भूगोलशास्त्री भौगोलिक दशाओं को आत्महत्या का कारण मानते हैं। जैसे **मौरसेली** ने भौगोलिक कारकों में जलवायु तथा तापमान से आत्महत्या का संबंध जोड़ा है। दुर्खीम इस विचार से सहमत नहीं है फिर भी यह देखा गया है कि भौगोलिक दशा एवं आत्महत्या के के बीच संबंध पाया जाता है। भौगोलिक दशाओं में दो कारक आत्महत्या को प्रभावित करते हैं जो इस प्रकार हैं-

A. **जलवायु एवं आत्महत्या (Climate and Suicide)** – अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि जलवायु भी आत्महत्या को प्रभावित करती है। हालांकि दुर्खीम इस बात से सहमत नहीं है। जहां तक भारत की बात है भारत में जहां गर्मी अधिक पड़ती है वहां आत्महत्या की दर ऊंची होती है। **मौरसेली** ने भी लिखा है कि समशीतोष्ण जलवायु में आत्महत्या की दर अधिक होती है। जलवायु में होने वाले परिवर्तनों से सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा में परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन कहीं न कहीं आत्महत्या को प्रभावित करता है। इसलिए दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या की दर का कम या अधिक होना वास्तव में सामाजिक कारको का ही परिणाम है।

B. **मौसमी तापमान और आत्महत्या (Seasonal Temperature and Suicide)** - अनेक अध्ययनों में पाया गया है कि मौसम भी आत्महत्या का एक कारण हो सकता है। ऐसा मौसम जिसमें आकाश अंधकारपूर्ण हो, तापमान बहुत कम हो और नमी अधिक हो ऐसे निराश वातावरण में मनुष्य की प्रकृति दुखी एवं निराश दिखाई देती है। निराशा से भरा वातावरण व्यक्ति के मन में विषाद उत्पन्न करता है और वह जीवन के प्रति उदासीन होता है तथा कई बार ऐसे समय में व्यक्ति आत्महत्या भी कर लेता है। **मोंटेस्क्यू** ने भी आत्महत्या का ऋतु के साथ संबंध जोड़ा है। **फेरी** तथा **मौरसेली** ने भी तापमान और आत्महत्या के बीच में संबंध बताया है। हालांकि दुर्खीम तापमान और मौसम को आत्महत्या के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदाई नहीं मानते पर उनका कहना है कि मौसम सामाजिक क्रिया को प्रभावित करती है और सामाजिक क्रिया में होने वाला परिवर्तन आत्महत्या की दर में अंतर के लिए उत्तरदाई हो सकता है। यही कारण है कि विभिन्न मौसमों में आत्महत्या की दरों में भी विभिन्नता पाई जाती है।

13. **व्यवसाय और आत्महत्या (Occupational Aspects and Suicide)** - व्यापार में होने वाले लाभ और हानि आत्महत्या की दर को प्रभावित करते हैं। कुछ व्यवसाय व्यक्तियों की आत्महत्या के कारण बनते हैं। ऐसा व्यवसाय जिनमें गतिशीलता अधिक होती है, उन व्यवसाययों को करने वाले व्यक्तियों में आत्महत्या की दर अधिक पाई जाती है। कारण है कि कृषक वर्ग की अपेक्षा वैज्ञानिक वर्ग और साहित्यिक वर्ग में आत्महत्या की दरें अधिक होती है। पर वर्तमान समय में कृषि भी एक व्यवसाय हो जाने के कारण कृषकों में आत्महत्या की दर निरंतर बढ़ती जा रही है।

14. **धर्म और आत्महत्या (Religion and Suicide)** - धर्म के पीछे अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक शक्ति होती है। इसलिए सामान्यतः लोग धर्म की बातों को मानते हैं। हम कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट धर्म के बारे में देखें कैथोलिक और यहूदियों में आत्महत्या करना तो दूर विचार करने मात्र से ही लोग डरते हैं। जबकि प्रोटेस्टेंट धर्म एक व्यक्तिवादी धर्म रहा है। वह एक तरफ व्यक्ति के जीवन में सफलता और गर्व की भावना भरता है तो दूसरी तरफ असफलता, पश्चाताप, लज्जा आदि के कारण उसके जीवन में विघटन भी लाता है। प्रोटेस्टेंट धर्म आत्महत्या की निंदा नहीं करता जिस तरह से कैथोलिक धर्म या

यहूदी धर्म करते हैं। यही कारण है कि कैथोलिक धर्म की तुलना में प्रोटेस्टेंट धर्म के लोगों के द्वारा आत्महत्या अधिक की जाती है।

15. **नगर और आत्महत्या (Urbanism and Suicide) -** गांव की अपेक्षा शहरों में आत्महत्या अधिक होती है और इसका प्रमुख कारण प्राथमिक समूहों का अभाव है। नगरों में परिवार और पड़ोस के साथ अधिक घनिष्ठ संबंध नहीं होते हैं। जितने की गांव में होते हैं। शहरों का जीवन अस्थिर होता है। वहां के लोगों के विचारों में एकता का अभाव होता है। व्यक्तिगत स्वार्थों की प्रधानता होती है। यही कारण है कि शहर के व्यक्ति अपने जीवन के प्रति उदासीन होते हैं और शहरों में आत्महत्या की दर अधिक पाई जाती है।

3.3.7 इलियट और मैरिल ने आत्महत्या के तीन प्रमुख कारण बताए हैं -

1. पद की हानि (Loss of Status) - व्यक्ति के लिए समाज में प्रतिष्ठा बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जब किसी व्यक्ति को पद से हटा दिया जाता है तब उसके लिए पद की हानि बहुत ही असहनीय हो जाती है और उस समय व्यक्ति इस यंत्रणा से बचने के लिए आत्महत्या कर लेता है।

2. आराम की हानि (Loss of Comfort) - जब व्यक्ति बहुत अच्छे स्थिति में रहता है, उसकी स्थिति में अचानक परिवर्तन आ जाए तो उसे यह लगने लगता है कि समाज में परिवर्तित स्थिति के कारण व उन सुखों को पाने में असमर्थ है जो वह पहले से प्राप्त कर रहा था, उसे लगने लगता है कि उसका जीवन नर्क बन गया है, अब कुछ नहीं शेष है इस तरह व्यक्ति आराम की हानि के बारे में सोच कर भी आत्महत्या कर लेता है।

3. सुरक्षा की हानि (Loss of Security) - जब व्यक्ति के मन में असुरक्षा की भावनाएं भर जाती है। जीवन में बेकारी, दरिद्रता, गरीबी आदि से परेशान हो जाता है और उसे लगता है कि उसके पास जीवन में किसी भी प्रकार की सुरक्षा नहीं है तो इस असुरक्षा की भावना से ग्रसित होकर व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है। आत: हम यह कह सकते हैं कि असुरक्षा की भावना व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रेरित करती है।

3.3.8 आत्महत्या का सिद्धांत (Theory of Suicide)

दुर्खीम की 'ली सुसाइड' नामक पुस्तक आत्महत्या पर एक महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। पुस्तक में आत्महत्या से संबंधित आंकड़ों को एकत्रित करके यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि आत्महत्या निश्चित रूप से एक सामाजिक घटना है। इसे प्रमाणित करते समय उन्होंने आत्महत्या से संबंधित अधिकांश सिद्धांतों को अस्वीकार किया है। आपका कहना है कि मानसिक कारण, निर्धनता, निराशा प्रेम में असफलता और वंशानुक्रम अधिकरण आत्महत्या के मूल कारण नहीं हो सकते क्योंकि आत्महत्या मूल रूप से एक सामाजिक घटना है।

दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या व्यक्ति पर समाज एवं समूह के अस्वस्थ दबाव का प्रतिफल है। जन समूह द्वारा व्यक्तियों पर दो प्रकार से दबाव बनाया जाता है-

1. स्वस्थ दबाव (Positive Pressure)
2. अस्वस्थ दबाव (Negative Pressure)

1. **स्वस्थ दबाव (Positive Pressure) -** प्रत्येक समाज में व्यक्ति की अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक, नैतिक एवं जैवकीय आवश्यकताएं हैं और व्यक्ति अपने इन आवश्यकताओं को आपसी सहयोग से पूरा करते हैं। यह आवश्यकता ही व्यक्ति को एक दूसरे से जोड़ कर रखती हैं। जब व्यक्ति बिना किसी दबाव के अपने सहयोग से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो समाज में संगठन रहता है और जीवन में व्यवस्था बनी रहती है। इस व्यवस्था का जो व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है उसे स्वस्थ प्रभाव या स्वस्थ दबाव कहा जाता है। यह स्वस्थ प्रभाव व्यक्ति को जीने की प्रेरणा प्रदान करता है।
2. **अस्वस्थ दबाव (Negative Pressure) -** समाज में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियां भी उत्पन्न हो जाती हैं जो व्यक्ति को इतना निराश कर देती कि उसका सामान्य जीवन निराशापूर्ण उपेक्षित एवं अस्त-व्यस्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने आपको बिल्कुल अलग-थलग महसूस करता है। वह निराश हो जाता है। असुरक्षा की भावना महसूस करता है। उसका सामाजिक जीवन नष्ट हो जाता है और उसे ऐसा लगता है कि उसके जीवन का कोई अर्थ नहीं है। व्यक्ति पर समाज व समूह हावी होने लगता है और ऐसे में व्यक्ति यह सोचने लगता है कि जीवन से मुक्ति ही उसकी सारी परेशानियों का समाधान है। इस तरह की निराशा पूर्ण एवं दुखी स्थिति जो सामाजिक परिस्थितियों के द्वारा उत्पन्न होती है व्यक्ति पर अस्वस्थ दबाव डालती है और यही दबाव व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए विवश करती है।

आत्महत्या की व्याख्या करते हुए **दुर्खीम** ने लिखा है कि प्रत्येक समाज में आत्महत्या की प्रवृत्ति होती है फर्क सिर्फ इतना ही है कि किसी में कम और किसी में अधिक होती है। हर समाज में आत्महत्या के लिए एक सामूहिक प्रवृत्ति काम करती है और यह सामूहिक प्रवृत्ति कभी-कभी व्यक्तियों को इतना अधिक नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है कि वह आत्महत्या के लिए प्रेरित हो जाता है। दुर्खीम के अनुसार वास्तव में आत्महत्या करने वाले व्यक्ति का नैतिक संतुलन कमजोर हो जाता है लेकिन यह कमजोरी सामूहिक नैतिक संतुलन की प्रतिछाया मात्र है। व्यक्ति हमेशा अपनी बाहरी परिस्थितियों के कारण दुखी एवं निराश होता है। यह निराशा ही उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित करती है।

दुर्खीम एक ऐसे पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने अपनी रचना **'आत्महत्या' (Suicide)** में **सांख्यिकी पद्धति** को अपनाया, आत्महत्या को एक सामाजिक तथ्य माना। उनके अनुसार इसमें बाह्यता एवं बाध्यता दोनों है। दुर्खीम का यह अध्ययन वैज्ञानिक है। उन्होंने यह अध्ययन प्रत्यक्षवादी सिद्धांत की पृष्ठभूमि में किया है। दुर्खीम के अनुसार जिस समाज में पारिवारिक एवं नातेदारी संबंध संगठित होते हैं उनमें एकीकरण होता है वहां पर आत्महत्या कम होती हैं। पर जहां संगठन एवं एकता की कमी होती है वहां पर आत्महत्या ज्यादा होती हैं। नगरीय क्षेत्रों में परिवार में एकता एवं संगठन में कमी होने के कारण आत्महत्या की दर ज्यादा देखने को मिलती है। समाज में जितना अधिक स्थानीय या घरेलू एकीकरण होगा आत्महत्या की दर उतनी ही कम होगी। ऐसे समाज जो धर्म प्रधान हैं तथा उनमें धार्मिक एकता एवं सुदृढ़ीकरण ज्यादा पाया जाता है। जिनमें धर्म का समाज पर प्रभाव व नियंत्रण ज्यादा होता है वहां पर आत्महत्या की दर कम होती है। इसके विपरीत धार्मिक एकता एवं नियंत्रण की कमी वाले समाज में आत्महत्या ज्यादा होती हैं। **कैथोलिक धर्म** में व्यक्ति पर धर्म का नियंत्रण ज्यादा होता है। इसलिए वहां पर आत्महत्याएं कम होती हैं। जबकि प्रोटेस्टेंट धर्म में व्यक्ति पर धर्म का नियंत्रण कम होता है। इसलिए इस धर्म के समर्थकों में आत्महत्या की प्रवृत्ति ज्यादा पाई जाती है। ऐसे समाज जहां पर राजनीतिक स्थिरता एवं एकीकरण होता है। वहां पर आत्महत्याएं कम होती हैं। लेकिन जहां पर राजनीतिक अस्थिरता एवं हिंसा ज्यादा होती है। वहां पर आत्महत्या की दर ज्यादा देखी गई है। जहाँ पर एकीकरण एकता एवं संगठन अधिक सुदृढ़ होगा। वहां पर आत्महत्या कम होगी। चाहे वह पारिवारिक क्षेत्र हो, धार्मिक क्षेत्र हो या राजनीतिक। विपरीत परिस्थितियों में आत्महत्या की दर बढ़ जाती हैं। सामाजिक संरचना की यह संस्थाएं आत्महत्या की दर को निश्चित करती हैं। आत्महत्या तथा एकीकरण और सुदृढ़ता में विपरित संबंध है। इस संबंध को हम इस सूत्र के द्वारा समझ सकते हैं।

1) न्यूनतम आत्महत्या की दर = अधिकतम एकीकरण + अधिकतम सामाजिक सुदृढ़ता।

2) अधिकतम आत्महत्या की दर = न्यूनतम एकीकरण + न्यूनतम सामाजिक सुदृढ़ता।

3.3.9 आत्महत्या के सिद्धांत का निष्कर्ष

दुर्खीम ने आत्महत्या का अध्ययन करने के लिए सांख्यिकी विधि का प्रयोग करते हुए फ्रांस में आत्महत्या के आंकड़े एकत्रित किए और पाया कि आत्महत्या का एक प्रमुख कारण व्यक्तिगत, शारीरिक एवं मानसिक न होकर सामाजिक है। दुर्खीम ने इन आंकड़ों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए -

1. आत्महत्या की दर प्रति वर्ष लगभग एक समान होती है।
2. सर्दियों की तुलना में ग्रीष्म में आत्महत्या की दर अधिक होती है।
3. स्त्रियों की तुलना में पुरुषों में आत्महत्या की दर अधिक होती है।
4. ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों में आत्महत्या की दर अधिक होती है।
5. कम आयु वालों की तुलना में अधिक आयु वालों में आत्महत्या की दर अधिक होती है।
6. सामान्य नागरिकों की तुलना में सैनिकों के द्वारा अधिक आत्महत्या की जाती हैं।
7. अशिक्षित व्यक्तियों की तुलना में शिक्षित व्यक्तियों में आत्महत्या की दर अधिक होती है।
8. अविवाहित व्यक्तियों की तुलना में विवाहित, विधुर, विधवा, परित्यक्ता एवं तलाकशुदा व्यक्तियों में आत्महत्या की दर अधिक पाई जाती है।
9. विवाहित व्यक्तियों में ऐसे व्यक्ति जो निसंतान होते हैं या जिनकी संतान पैदा होने के बाद जीवित नहीं रहती उनमें आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है ।
10. कैथोलिक धर्म को मानने वालों की तुलना में प्रोटेस्टेंट धर्म को मानने वालों में आत्महत्या की दर अधिक पाई जाती है।

उपर्युक्त तथ्यों से पता चलता है कि उम्र लिंग आदि आत्महत्या को प्रभावित नहीं करते बल्कि सामाजिक परिस्थितियां व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं। अर्थात आत्महत्या के पीछे सामाजिक कारण ही क्रियाशील रहते हैं। दुर्खीम के अनुसार पुरुषों एवं स्त्रियों में आत्महत्या की दर में भिन्नता का कारण लिंगीय भिन्नता नहीं है बल्कि स्त्रियों की तुलना में पुरुषों का सामाजिक जीवन में अधिक भाग लेना है। स्त्रियां सामूहिक क्रियाकलापों में कम भाग लेती हैं, इसलिए सामूहिक अस्तित्व का प्रभाव उन पर अच्छा या बुरा कम पड़ता। जबकि पुरुष सामूहिक जीवन के उतार-चढ़ाव से अधिक प्रभावित होते हैं। अतः आत्महत्या में भिन्नता का कारण सामाजिक कार्यों में सहभागिता भी है।

इसी तरह विभिन्न आयु के लोगों में आत्महत्या की दर में विभिन्नता का कारण आयु की विभिन्नता नहीं है, बल्कि सामाजिक गतिविधियों में अधिक भाग लेना है, चूँकि अधिक उम्र के लोग सामाजिक जीवन में अधिक भाग लेते हैं। इसलिए उनमें आत्महत्या की दर अधिक पाई जाती है।

दुर्खीम के अनुसार विभिन्न मौसम में आत्महत्या की दर में विभिन्नता का कारण मौसमी परिवर्तन नहीं है। बल्कि मौसमी परिवर्तन के कारण जो सामाजिक जीवन में उतार-चढ़ाव की स्थिति बनती है वह आत्महत्या का कारण है। गर्मियों में सर्दियों की तुलना में अधिक आत्महत्या होने का कारण यह है कि गर्मियों में दिन बड़े होते हैं और उनमें सामूहिक क्रियाएं एवं गतिविधियां बढ़ जाती है। जबकि सर्दियों में दिन छोटे एवं रात बड़ी होती है। यूरोप में ठंड के कारण सर्दियों में लोग ज्यादातर घरों में बंद रहते हैं और सामाजिक गतिविधियों में कम भाग लेते हैं। इसलिए सामाजिक जीवन की घटनाएं उन्हें प्रभावित नहीं करती इसलिए इस

मौसम में आत्महत्याओं की संभावनाएं कम हो जाती है। आत्महत्या से संबंधित निष्कर्षों को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने बताया कि धर्म भी आत्महत्या की दर को प्रभावित करता है। दुर्खीम ने बताया कि दो धर्मों के बीच आत्महत्या की दर में विभिन्नता का कारण उन धर्मों के नियंत्रणात्मक प्रभावों की विभिन्नता है।

धर्म के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए दुर्खीम ने कहा है कि प्रोटेस्टेंट धर्म एक व्यक्तिगत धर्म है। इसलिए वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अधिक बल देता है। यह व्यक्ति को स्वतंत्रता पूर्वक विचार करने की छूट प्रदान करता है। इस धर्म का उसपर विश्वास करने वालों में विशेष नियंत्रणात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। इस कारण इस धर्म के समर्थकों में आत्महत्या की दर अधिक है। इसके विपरीत कैथोलिक धर्म व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अधिक नियंत्रण रखता है। कैथोलिक धर्म में सुदृढ़ धार्मिक एकता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता न होना एवं बाध्यता मूलक तथा नियंत्रणात्मक प्रभाव के कारण आत्महत्या की दर कम होती है।

3.3.10 आत्महत्या के प्रकार (Types of Suicide)

दुर्खीम ने आत्महत्या के आंकड़ों के सांख्यिकी विश्लेषण के द्वारा देखा है। दुर्खीम आत्महत्या को एक सामाजिक प्रघटना मानते हैं, और सामाजिक घटना के रूप में आत्महत्या के सामाजिक कारणों पर जोर देते हैं। इसी आधार पर दुर्खीम ने आत्महत्या के तीन प्रकार बताए हैं। **पारसंस** ने अपनी पुस्तक 'स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन' (Structura of Social Action) में कहा है। ये प्रकार वस्तुतः आदर्श प्रारूप हैं। आत्महत्या के निम्नलिखित प्रकार हैं-

1. **अहमवादी आत्महत्या (Egoistic Suicide)**

दुर्खीम का है कि विभिन्न सामाजिक परिस्थितियां विशिष्ट भावात्मक स्थितियों को जन्म देती हैं। जिसके फलस्वरुप व्यक्ति आत्महत्या करता है। अहमवादी आत्महत्या का मूल कारण भी सामाजिक समूहों का विघटन होना है। दुर्खीम के अनुसार जब व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवन में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है तो वह स्वयं को समाज के साथ समायोजित नहीं कर पाता और अपने को अत्यंत अकेलापन महसूस करता है। अहंवादी आत्महत्या प्रायः वे लोग करते हैं जिनका अहम बहुत अधिक होता है। इस तरह के व्यक्ति अपने आपको समाज से बहुत ऊंचा समझते हैं। इस कारण इनकी व्यक्तिगत चेतना एवं सामाजिक चेतना के बीच संतुलन नहीं हो पाता है। जब व्यक्ति में बहुत अधिक अहम होता है तो वह समाज के साथ मिलकर नहीं चल पाता है। समाज से समायोजन न होने के कारण वह अपने आपको उपेक्षित एकांकी एवं तिरस्कृत महसूस करता है। उसके मन में यह भावना आ जाती है कि इस संसार में उसका अपना कोई नहीं है। ऐसा व्यक्तिगत विघटन के कारण होता है। व्यक्ति को यह लगने लगता है कि समाज के बीच वह अकेला रह गया है और आत्महत्या के अतिरिक्त उसके पास कोई विकल्प नहीं है। इसलिए अहमवादी आत्महत्या को स्वार्थपरक आत्महत्या भी कहा जाता है। वास्तव में अहमवादी आत्महत्या सामाजिक पृथक्करण का परिणाम

है। समाज में जितना व्यक्तिवाद बढ़ता है उतनी ही समूहों में एकीकरण की भावना भी कम होती जाती है। इस प्रकार की आत्महत्या को व्यक्तिपरक आत्महत्या भी कहा जाता है। इसमें व्यक्ति स्वयं को समाज एवं समूह से महत्वपूर्ण समझने लगता है। दुर्खीम के अनुसार अहम वादी आत्महत्याएं पूरे यूरोप में देखने को मिलती है। अहम वादी आत्महत्या के चार प्रमुख कारण है-

A. धर्म (Religion) - धर्म सामूहिक जीवन को प्रेरित करता है। यदि हम दुर्खीम के समय की धार्मिक परिस्थितियों पर नजर डालें तो हमें उस समय यूरोप में तीन प्रमुख धर्म देखने को मिलते हैं-

1. कैथोलिक धर्म
2. प्रोटेस्टेंट धर्म
3. यहूदी धर्म

दुर्खीम ने इन तीनों धर्मों पर अध्ययन किया और पाया कि प्रोटेस्टेंट धर्म की अपेक्षा कैथोलिक एवं यहूदी धर्म में आत्महत्या की दर कम है। दुर्खीम ने अपने अध्ययन में यह भी पता लगाने का प्रयास किया कि ऐसे कौन से कारण हैं, जिससे इन विभिन्न धर्मों में आत्महत्या की दर में विभिन्नता पाई जाती है। दुर्खीम के अनुसार यहूदी धर्म में चर्च की धार्मिक क्रियाएं यंत्रवत की जाती है एवं कैथोलिक धर्म के समर्थक यह स्वीकार करते हैं कि उनका धर्म बना बनाया है। उसमें परिवर्तन का कोई स्थान नहीं है। इन दोनों धर्मों की संरचना संगठित है दोनों धर्मों में आत्मा पर संयम रखने पर अधिक बल दिया जाता है। आत्मा यदि किसी कार्य को करने के लिए कहे तो उसे स्वीकार करना इन धर्मावलंबियों का कर्तव्य है, इसमें किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

प्रोटेस्टेंट धर्म की संरचना लचीली है। यह धर्म व्यक्तिवाद का समर्थन करता है। इसमें व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता है। इसमें धर्म के समर्थकों को बाइबल तो दी जाती है पर उसका कोई भी अंश व्यक्ति पर जबरदस्ती थोपा नहीं जाता। तीनों धर्मों के अध्ययन के आधार पर दुर्खीम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जिस धार्मिक संगठन में सुदृढ़ता है उसमें आत्महत्या की दर कम होगी जैसा की कैथोलिक एवं यहूदी धर्म के समर्थकों में देखने को मिलता है पर प्रोटेस्टेंट धर्म में लचीलापन होने के कारण इसमें आत्महत्या की दर अधिक पाई जाती है।

B. शिक्षा (Education) - दुर्खीम ने शिक्षा एवं आत्महत्या के बीच भी सह संबंध की व्याख्या की है। अधिक शिक्षा अथवा ज्ञान से आत्महत्या की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। दुर्खीम के अनुसार जब एक यहूदी व्यक्ति पढ़ लिख जाता है तो समाज के सामान्य विश्वासों, संवेगों और विशेषकर धार्मिक मान्यताओं में उसकी आस्था कमजोर हो जाती है। इसी कारण पढ़े-लिखे लोगों में अनपढ़ लोगों की तुलना में आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। दुर्खीम ने अपने अध्ययन में व्यवसायों को भी

शिक्षा के साथ जोड़ा है। उनके अनुसार प्रायः उच्च शिक्षित व्यक्ति अच्छे व्यवसायों से जुड़े रहते हैं और वर्ग व्यवस्था में उनका स्थान उच्च रहता है। ऐसे उच्च शिक्षित व्यवसाइयों में आत्महत्या की दर अधिक पाई जाती है.

C. **परिवार एवं विवाह (Marriage and Family) -** दुर्खीम ने अपने अध्ययन में बताया है कि विवाहित व्यक्तियों की तुलना में अविवाहित व्यक्तियों में आत्महत्या की दर कम पाई जाती है। इस तरह विधुर व्यक्तियों में आत्महत्या की दर अधिक होती है। इसका प्रमुख कारण है, विधुर व्यक्ति का जीवन एकांकी होता है, वह परिवार से एकदम कटा हुआ होता है, उसका सामाजिक पर्यावरण उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित कर सकता है, विवाहित व्यक्तियों में आत्महत्या की दर अधिक होने का कारण पारिवारिक विघटन एवं तनाव है। जब पति-पत्नी में समायोजन नहीं होता तो अहमवादी आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। दुर्खीम के अनुसार स्त्रियों की तुलना में पुरुषों में भी आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक होती है। इसका प्रमुख कारण है कि महिलाएं अपेक्षाकृत रुढ़िवादी होती हैं और धार्मिक ग्रंथ उनके लिए जिस मार्ग को संचालित करते हैं, उसी पर चलती हैं और वे समाज से भी सुदृढ़ रुप से जुड़ी रहती हैं।

D. **राजनैतिक अवस्था (Political Status) -** दुर्खीम के अनुसार किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था भी आत्महत्या के लिए प्रेरक हो सकती है। दुर्खीम के अनुसार जब किसी देश में राजनीतिक सुदृढ़ता में कमी आने लगती है, तब उस देश में आत्महत्या की दर में वृद्धि होने लगती है। सुव्यवस्थित एवं संगठित राष्ट्र में आत्महत्या की प्रवृत्ति कम पाई जाती हे लेकिन जैसे ही किसी भी राष्ट्र में विघटन की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है, वहां पर आत्महत्या की प्रवृत्ति में भी वृद्धि देखी जाती है। **रोम** एवं **ग्रीस** में जब भी परंपरागत राजनीतिक व्यवस्था में उतार-चढ़ाव आया है वहां पर आत्महत्या की प्रवृत्ति में वृद्धि देखी गई। दुर्खीम का यह भी कहना है कि जब किसी देश में संकटकालीन स्थिति रहती है वहां पर आत्महत्या की दर में कमी आ जाती है क्योंकि उस समय लोगों में देशभक्ति की भावना बढ़ जाती है। जो सामाजिक एकीकरण को प्रोत्साहन देती है। दुर्खीम ने बताया कि 19वीं सदी में जब-जब क्रांतियां हुई फ्रांस में आत्महत्या की दर में कमी देखी गई। इस तरह यूरोपीय देशों में भी दुर्खीम के आंकड़े यह प्रमाणित करते हैं कि राजनीतिक व्यवस्था एवं आत्महत्या के बीच में सहसंबंध हैं।

2. परार्थवादी आत्महत्या (Altruistic Suicide)

परार्थवादी आत्महत्या, अहमवादी आत्महत्या के बिल्कुल विपरीत है। परार्थवादी आत्महत्या को कभी-कभी सुख परख आत्महत्या भी कहा जाता है। शाब्दिक अर्थ में परार्थवादी आत्महत्या वह आत्महत्या है जो स्वयं व्यक्ति के लिए नहीं अपितु समाज के लिए की जाती है। दुर्खीम के अनुसार परार्थवादी आत्महत्या व्यक्ति के द्वारा तब की जाती है जब व्यक्ति और समाज में बहुत अधिक घनिष्ठ संबंध होता है। व्यक्ति का

व्यक्तित्व पूर्ण रुप से समाज में समाहित हो जाता है। उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता, उसकी सोचने-विचारने की क्षमता समूह की दृष्टि से संचालित होती है, वह अपने आपको नगण्य समझने लगता है एवं समुदाय के हित के लिए अपने आपको निछावर करने के लिए तैयार हो जाता है। दुर्खीम के अनुसार समाज में अपर्याप्त सामूहिकता सामाजिक एकता एवं संगठन का अभाव आत्महत्या को बढ़ावा देता है। वही पर अत्यधिक सामूहिकता एवं सामाजिक एकता भी आत्महत्या को बढ़ावा देती

सामान्यतः यह माना जाता है कि सामान्य एवं आदिम समाजों में अहमवादी आत्महत्या नहीं होती है क्योंकि इन समाजों में व्यक्ति की पहचान समाज से होती है पर इन समाजों में जो आत्महत्या होती है वह परार्थवादी होती है। यह आत्महत्या व्यक्ति को सामाजिक मांग और धार्मिक आवशयकताओं के कारण करनी पड़ती है। इस तरह वह इसे कर्तव्य के रूप में स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए प्राचीन समाज में स्त्रियों के विधवा होने के बाद समाज विधवा महिलाओं से अपेक्षा करता था कि वह अपने पति के साथ सती हो जाए। इसमें सती होने का निर्णय महिला का नहीं होता था अपितु यह निर्णय समाज का होता था ऐसी स्थिति में विधवा महिला भी जानती थी कि यदि वह सती नहीं होगी तो उसका शेष जीवन समाज के कारण दुखी हो जाएगा। महिला का सती होने का निर्णय समाज का होता है। समाज ऐसा समझता है कि सती होने से महिला की पवित्रता बनी रहेगी इस तरह सती होना वस्तुतः आत्महत्या है। इस तरह मध्यकालीन समाज में स्त्रियां जौहर करती ,यह भी एक प्रकार से परार्थवादी आत्महत्या है।

दुर्खीम के अनुसार इस प्रकार की आत्महत्याओं के पीछे एक बहुत बड़ा कारण धर्म का पालन है, क्योंकि व्यक्ति यदि समाज में रहते हुए धर्म का पालन नहीं करता है तो वह समाज उसे किसी न किसी रूप में सजा देता है। इसलिए यह आत्महत्या समाज द्वारा थोपी हुई आत्महत्या है। परार्थवादी आत्महत्या की प्रवृत्ति सामान्यतः विकसित देशों में नहीं दिखाई देती क्योंकि विकसित देशों में व्यक्तिवाद पराकाष्ठा पर होता है। अविकसित एवं आदिम समाजों में परार्थवादी आत्महत्या का स्वरूप देखने को मिलता है।

3. मानक शून्यता या प्रतिमान हीनता मूलक आत्महत्या (Anomic Suicide)

आत्महत्या का तीसरा स्वरूप प्रतिमान हीनता मूलक आत्महत्या है। सामाजिक जीवन में अत्यधिक विशिष्टीकरण एवं विभेदीकरण के कारण सामाजिक चेतना एवं प्रकार्यात्मक निर्भरता में कमी आ जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने आपको समाज से अलग-थलग महसूस करने लगता है। यह स्थिति दुर्खीम के अनुसार प्रतिमान हीनता या मानक शून्यता है। दुर्खीम ने विसंगति व आदर्श हीनता को परिभाषित करते हुए लिखा है "विसंगति आदर्श हीनता की एक स्थिति है, जिसमें स्वाभाविकता का अभाव है, नियमों का निलंबन है, यह एक ऐसी स्थिति है जिसे हम अक्सर नियम विहीनता कहते हैं, यह आत्महत्या मनुष्य के क्रियाकलापों के नियमन के आभाव एवं उसमें होने वाले कष्टों के कारण घटित होती है, इस प्रकार की

आत्महत्या की विशेष सामाजिक पृष्ठभूमि है, दुर्खीम के अनुसार आदर्श विहीन एवं मूल्य विहीन स्थिति में कुछ लोग अपना अनुकूलन करने में समर्थ रहते हैं, असफल हो जाते हैं, निराश हो जाते हैं और इस निराशापूर्ण स्थिति से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या करते हैं।

दुर्खीम ने मानक शून्यता संबंधी आत्महत्या को समझाने के लिए तीन आधारों को चुना है -

A. आर्थिक विसंगति एवं आत्महत्या (Economic Anomy & Suicide) - आर्थिक संकट एवं आर्थिक विसंगति आत्महत्या की प्रवृत्ति को बढ़ाने वाला एक सर्वमान्य तथ्य है। उनके अनुसार न केवल आर्थिक संकट बल्कि आर्थिक समृद्धि भी आत्महत्या की दर को बढ़ाती है। दुर्खीम के अनुसार वास्तव में सौभाग्य पूर्ण संकटों जिससे देश की आर्थिक समृद्धि बढ़ती है का प्रभाव भी आत्महत्या की प्रवृत्ति पर प्रभाव डालता है। जैसे- अचानक लॉटरी में बहुत अधिक धन की प्राप्ति या अचानक दिवालिया हो जाना दोनों ही आत्महत्या को प्रोत्साहित करते हैं। क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों में व्यक्ति के समायोजन का संतुलन बिगड़ जाता है और व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है

B. पारिवारिक विसंगति एवं आत्महत्या (Domestic Anomy & Suicide) - पारिवारिक विघटन व विसंगति भी आत्महत्या के कारणों को बढ़ावा देती है। पति-पत्नी में से किसी एक की मृत्यु होने पर अथवा विवाह विच्छेद द्वारा अलग होने पर परिवार में जो संकट आता है वह आत्महत्या का कारण बनता है। दुर्खीम के अनुसार विधुर व्यक्ति में विधवा या परित्यक्ता महिला की तुलना में आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।

C. यौन विसंगति एवं आत्महत्या (Sex Anomy & Suicide) - आत्महत्या का एक कारण यौन विसंगति भी हो सकती है। दुर्खीम के अनुसार वैवाहिक जीवन में असंतुलन एवं विघटन होता है तो उससे मानव की मूल प्रवृतियॉ व भावनाएं प्रभावित होती हैं इससे व्यक्ति आत्महत्या करता हैं।

दुर्खीम ने आत्महत्या के तीन प्रमुख कारणों का वर्णन किया है। उनके अनुसार इन तीनों प्रकार की आत्महत्याओं के अनेक मिश्रित व व्यक्तिगत रुप भी संभव है। इसलिए आत्महत्या का कारण व्यक्ति विशेष के स्वभाव पर निर्भर रहता है। इसी स्वभाव के आधार पर व्यक्ति विशेष परिस्थिति में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या एक निजी घटना है पर इसके कारण सामाजिक होते हैं। कुछ सामाजिक शक्तियां पूरे समाज में कार्य करती हैं। इन सामाजिक शक्तियों का उद्गम व्यक्ति से नहीं होता बल्कि समाज से होता है। यह सामाजिक शक्तियां ही वास्तविक व यथार्थ है। यही शक्तियां ही आत्महत्या का कारण हैं, आत्महत्या का निर्धारण करती हैं, यही शक्तियां व्यक्ति को स्वयं की हत्या करने के लिए बाध्य करती हैं, यद्यपि व्यक्ति तो यह मानकर चलता है कि उसने जो कुछ किया है वह अपनी इच्छा से किया हैं।

3.3.11 आत्महत्या के निराकरण के उपाय

दुर्खीम का कहना है कि प्रत्येक समाज में आत्महत्या के तीनों प्रकारों में से कोई ना कोई हमेशा विद्यमान रहती है। यह सामूहिक विषाद को जन्म देती है, दुर्खीम का कहना है कि आत्महत्या सार्वभौमिक सर्वकालिक घटना होते हुए भी निरपेक्ष रूप से सामाजिक तथ्य नहीं कही जा सकती। वर्तमान समय में आत्महत्याओं की दर काफी बढ़ गई है और यह बढ़ती हुई दर हमारी चमक को नहीं संकट और अशांति की अवस्था को व्यक्त करती है। जिसके विकास के प्रति उदासीन नहीं रहा जा सकता। इस आधार पर दुर्खीम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं किंतु वास्तव में यह एक व्याधकीय घटना है जो दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। दुर्खीम ने इस घटना की विभीषिका से बचने के लिए कुछ उपाय भी बताए हैं, जैसे- शिक्षा, राजनीतिक समाज, धार्मिक समाज, संगठित परिवार, व्यवसाय, सामाजिक समूह, मधुर वैवाहिक संबंध, आदि के द्वारा आत्महत्या को कम किया जा सकता है।

3.3.12 आलोचना (Criticism)

आत्महत्या पर प्रस्तुत दुर्खीम की रचना सैद्धांतिक एवं पद्धतिशास्त्रीय मान्यताओं की अनुपम कृति है। **एम. हैरलमबोस** ने लिखा है कि "आत्महत्या का अध्ययन करके दुर्खीम ने आत्महत्या की समस्या के प्रति समाजशास्त्रियों का आकर्षण बढ़ा दिया।" **मारिश हालबैकस** ने 1930 में आत्महत्या का अध्ययन किया और दुर्खीम के इस सिद्धांत की प्रशंसा की इस सब के बावजूद दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत की अनेक समाजशास्त्रियों द्वारा आलोचना की गई है। समाजशास्त्री **बोगार्ड्स** लिखते हैं की "आत्महत्याओं के पूर्व की व्याख्याओं को संशोधित करने के प्रयास में दुर्खीम सामाजिक कारकों को ही सबकुछ मान लेने की भूल कर बैठे दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य के अतिरिक्त अन्य कारकों के लिए कोई स्थान ही नहीं छोड़ा है।"

1. **जे.पी. गिब्बस एवं डब्ल्यू. टी. मार्टिन** ने यह तो स्वीकार किया है कि आत्महत्या का वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए पर उन्होंने दुर्खीम की आलोचना इस बात पर की कि उन्होंने एकीकरण एवं सुदृढ़ता की ठोस परिभाषा नहीं दी है।
2. **डगलस** के अनुसार अलग-अलग संस्कृतियों में आत्महत्या के अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं।
3. फ्रांसीसी समाजशास्त्रीय **ज्यॉ बैचलर** के अनुसार अनेक व्यक्ति केवल नकारात्मक स्थिति से बचने के लिए आत्महत्या करते हैं। जैसे यदि भारत में देखा जाए तो किसान कर्ज न चुकाने पर भी आत्महत्या कर रहे हैं।
4. **हेजेडार्न** और **लोबोविज** के अनुसार अलग-अलग व्यवसाइयों में एक ही तरह की परिस्थितियां में आत्महत्या की दरें अलग-अलग हो सकती हैं।
5. **जे. एम. एटकिंसन** के अनुसार आत्महत्या का वस्तुनिष्ठ आकलन कठिन हैं।

6. **स्टेनमेट्ज** ने भी लिखा है "मैं जो आंकड़े एकत्रित करने में सफल हो पाया हूँ उनसे यह प्रतीत होता है कि सभ्य लोगों की अपेक्षा वन्य मनुष्यों में आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक है।
7. **जिल बोर्ग** ने लिखा है कि "आत्महत्या के सांख्यिकी आंकड़े जिस प्रकार आज उन्हें संकलित किया जाता है, बहुत कम विश्वसनीय है अतः आत्महत्या जैसी प्रघटना की व्याख्या महज आंकड़ों के आधार पर करना उतना सरल नहीं प्रतीत होता जितना की दुर्खीम ने अनुभव किया था।
8. **हैरी बार्न्स** ने लिखा है कि "आत्महत्या के सिद्धांत में दुर्खीम ने व्यक्तिगत प्रेरणा तथा सांस्कृतिक कारकों को कोई महत्व नहीं दिया है जो व्यक्ति को आत्महत्या करने को प्रेरित करते हैं।"
9. दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत के प्रति यह कहा गया है कि दुर्खीम ने मानव की जैविकीय या व्यक्तिगत प्रेरणाओं की इतनी उपेक्षा की है कि उनकी विवेचना संदेहास्पद हो गई है।
10. **जॉर्ज सिंपसन** ने लिखा है कि "दुर्खीम प्रेरणा विश्लेषण और संवेगात्मक जीवन की मौलिक विशेषताओं की व्याख्या से संबंधित आधुनिक विकास से अनभिज्ञ थे।"
11. कोजर के अनुसार दुर्खीम ने आत्महत्या के लिए नियमहीनता या व्याधिकीय परिस्थितियों को महत्वपूर्ण माना है। अतः यहां पर प्रश्न उठता है कि यदि व्याधिकीय दशा ही आत्महत्या का कारण है तो इन दशाओं से प्रभावित सभी व्यक्ति आत्महत्या क्यों नहीं करते।

आत्महत्या के लिए मनोवैज्ञानिक एवं जैविकी कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं पर दुर्खीम ने इन कारकों को कोई महत्व नहीं दिया। दुर्खीम ने अपने अध्ययन में समाज के नैतिक संरचना, समूहों के एकीकरण की मात्रा आदि ऐसी अवधारणाओं का प्रयोग किया है। जिनको क्षेत्रीय अध्ययन में मापना कठिन है।

श्रम विभाजन का सिद्धांत (Theory of Division of Labour)

3.3.13 प्रस्तावना

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में श्रम विभाजन का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। दुर्खीम ने 1893 में फ्रेंच भाषा में अपनी पहली कृति 'De La Division Du Travail Social' (Social Division of Labour) नाम से प्रकाशित की। यह दुर्खीम की प्रथम रचना थी और यही उनकी प्रसिद्धि की दृढ़ आधारशिला थी। यह पुस्तक उनका शोध ग्रंथ है जो उन्होंने प्रमुख रूप से डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने के लिए लिखा था। इसी ग्रंथ पर 1893 में पेरिस विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टरेट की डिग्री प्रदान की थी। इस पुस्तक में उनके द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं एवं सिद्धांतों के अंकुर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। यह ग्रंथ उनके महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय सिद्धांतों और उनकी पद्धतिशास्त्र की आधारशिला के रूप में स्वीकार की जा सकती है। इस महान ग्रंथ में दुर्खीम ने श्रम विभाजन के सिद्धांत को प्रस्तुत किया हैं। 1933 में उनकी इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। दुर्खीम की यह पुस्तक सामान्य जीवन के तथ्यों का वैज्ञानिक विधि द्वारा

विश्लेषण करने का प्रथम प्रयास था। इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा आपको अर्थशास्त्री **एडम स्मिथ** के विचारों से मिली। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने जब श्रम विभाजन के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए तो दुर्खीम का ध्यान इस तरफ गया। **एडम स्मिथ** ने श्रम विभाजन का कारण आर्थिक घटना बताया था और उसके दो परिणाम बताएं, क्रमश: उत्पादन में वृद्धि एवं वस्तुओं की श्रेणी में श्रेष्ठता। दुर्खीम ने श्रम विभाजन को एक सामाजिक तत्व के रूप में देखते हुए उसके प्रमुख सामाजिक परिणाम 'समाज में एकता बनाए रखने' पर बल दिया।

3.3.14 श्रम विभाजन का अर्थ

श्रम विभाजन के सिद्धांत को सामाजिक दृष्टिकोण से देखने की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी से मानी जाती है। इसलिए हम श्रम विभाजन की उत्पत्ति को आधुनिक नहीं मानते। **एडम स्मिथ** ऐसे प्रथम विद्वान थे जिन्होंने श्रम विभाजन के सिद्धांत को प्रस्तुत किया। उनका सिद्धांत केवल आर्थिक जगत तक ही सीमित था। आज हम श्रम विभाजन को आर्थिक जगत तक ही सीमित नहीं रखते हैं अपितु आज समाज के सभी क्षेत्रों में इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा रहा है। यही कारण है कि आज राजनीतिक, प्रशासनिक तथा न्यायिक कार्य अधिकाधिक विशेषीकृत होते जा रहे हैं। श्रम विभाजन का अर्थ व्यक्तियों की भूमिकाओं या कार्यों के वितरण से है। किसी भी क्षेत्र में जैसे-जैसे श्रम विभाजन बढ़ता जाता है, कार्यों में विशेषीकरण आता-जाता है। दुर्खीम का कहना है कि श्रम विभाजन का अर्थ केवल भूमिकाओं में विशेषीकरण से नहीं है अपितु भूमिकाओं के समन्वय से भी है। समाज जैसे-जैसे प्रगति करता जाता है उसमें कार्यों का विशेषीकरण बढ़ता जाता है क्योंकि प्रगति के कारण व्यक्ति एक दूसरे पर आश्रित होते जाते हैं आधुनिक समाज में सामाजिक एकता का प्रमुख आधार श्रम विभाजन है। अर्थात समाज के व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर हैं एक दूसरे पर आश्रित है।

3.3.14 श्रम विभाजन पुस्तक में दुर्खीम के उद्देश्य (Durkheim`s Objecives of Division of Labour)

अपनी इस पुस्तक को दुर्खीम तीन प्रमुख उद्देश्य तक ही सीमित रखना चाहते थे-

1. श्रम विभाजन के कार्यों को निर्धारित करना अर्थात यह पता लगाना की श्रम विभाजन द्वारा कौन सी आवश्यकताएं पूरी होती हैं।
2. उन कारणों तथा दशाओं का पता लगाना जिस पर श्रम विभाजन आश्रित है।
3. श्रम विभाजन के प्रमुख असामान्य प्रकारों का पता लगाना।

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'The Division of Labour in society' को उपरोक्त उद्देश्यों के आधार पर 3 भागों में विभाजित किया है-

1. श्रम विभाजन के कार्य (Function of Division of Labour) - प्रथम खंड में श्रम विभाजन के कार्य के बारे में वर्णन किया गया है। जिसमें दुर्खीम कार्य निर्धारण विधि समानता के आधार पर यांत्रिक एकता, श्रम विभाजन के आधार पर सावयवी एकता तथा इन एकता के परिणामों का विस्तार पूर्वक उल्लेख करते हैं।

2. दशा कारण एवं दशाएं (Causes and Condition of Division of Labour) - इस पुस्तक के द्वितीय खंड में श्रम विभाजन के कारणों तथा दशाओं के बारे में चर्चा की गई है। जिसमें दुर्खीम विस्तारपूर्वक श्रम विभाजन की प्रकृति का कारण प्रसन्नता न बताकर नैतिक घनत्व बताते हैं तथा इन सबके परिणामों की विवेचना करते हैं।

3. श्रम विभाजन के असामान्य स्वरूप (Abnormal forms of Division of Labour) - पुस्तक के तृतीय खंड में दुर्खीम श्रम विभाजन के असामान्य प्रारूपों का उल्लेख करते हैं। इस खंड में विश्रंखल श्रम विभाजन, (Anomic Division of Labour) आरोपित श्रम विभाजन (Forced Division of Labour) तथा अन्य असामान्य प्रारूप (Another Abnormal Form) का विस्तृत उल्लेख किया गया है। पुस्तक के अंत में निष्कर्ष दिया गया है। स्वयं दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के प्रारंभ में ही इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मुख्य रूप से यह पुस्तक नैतिक जीवन के तत्वों को प्रत्यक्ष विज्ञानों की पद्धति के अनुसार समझने का प्रयास है।

दुर्खीम इस पुस्तक के प्रकाशन से पहले भी 'Utilitarian' Thinker ने 'Happiness Theory' को प्रस्तुत किया था। जिसके अनुसार अधिक सुख की प्राप्ति की इच्छा श्रम विभाजन का कारण है। दुर्खीम ने यह विचार दिया कि श्रम विभाजन एक सामाजिक तथ्य है और एक सामाजिक तथ्य किसी दूसरे सामाजिक तथ्य से ही उत्पन्न हो सकता है। उनके अनुसार 'Happiness Theory' श्रम विभाजन के असली कारणों पर प्रकाश नहीं डालता। क्योंकि यह सामाजिक तथ्य के कारणों को परिवेश में नहीं ढूंढता है। उन्होने विचार दिया था कि यदि सुख की प्राप्ती की इच्छा श्रम विभाजन का कारण होता तो जिन समाजों में जितना अधिक श्रम विभाजन पाया जाता है, वहां के लोगों का जीवन उतना सुखी रहता पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। वास्तविक तथ्या इसके विपरित पाए जाते हैं। दुर्खीम के श्रम विभाजन के सिद्धांत को हम निम्न भागों में विभाजित करके आसानी से समझ सकते हैं -

4. आदिकाल में श्रम विभाजन (Division of Labour in Early Period) - दुर्खीम के अनुसार प्राचीन समाज में श्रम विभाजन स्त्री और पुरूष के भेद पर आधारित था। आदि काल में मानव समाज शिकारी अवस्था में था। पुरूष शिकार करने या फल एकत्रित करने जाते थे और स्त्रियां घर का कामकाज और बच्चों का पालन पोषण करती थी।

इस समय जनसंख्या कम थी और व्यक्तियों की आवश्यकताएं भी सीमित होती थी। इसलिए आर्थिक कार्य भी सीमित था और उत्पादन नाम मात्र का था। इसी कारण आर्थिक जीवन में कोई विशेष श्रम विभाजन की आवश्यकता अनुभव नहीं की गई। भोजन लाना और प्राप्त करना उस समय की मूल समस्या और आवश्यकता थी। शेष कार्यों को मिलजुल कर पूरा किया जाता था। क्योंकि श्रम विभाजन नहीं था, इसलिए विशेषीकरण का भी कोई प्रश्न नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति सभी प्रकार के सामाजिक व आर्थिक कार्यों को कर सकता था। संपूर्ण समाज एक सूत्र में बंधा हुआ था। व्यक्तियों के विचार प्रणाली एवं व्यवहारों में एकरूपता थी। दुर्खीम के अनुसार इस प्रकार के समाजों में यांत्रिक एकता थी। इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि सभी लोग सामूहिक इच्छा से बने होते थे। समाज में लोग परंपरा और राजा के दबाव में आंख मूंदकर यंत्रवत कार्य करते रहते थे और समाज यांत्रिक एकता में बंधा था।

5. सभ्य समाज में श्रम विभाजन (Division of Labour in Civilized Society)- दुर्खीम का कहना है जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ। वैसे-वैसे आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलू विकसित होते गए। मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ी और आवश्यकताओं में विविधता का विस्तार हुआ। इसके फलस्वरुप सामाजिक उत्पादन कार्यों में श्रम विभाजन की आवश्यकता महसूस की गई और श्रम विभाजन की प्राचीन समाज में पाई जाने वाली यांत्रिकी एकता सावयवी एकता में बदल गई। सावयवी एकता उस अवस्था को कहते हैं जब समाज की विभिन्न इकाइयों में कार्यों का विभाजन होते हुए भी उनमें अंतःसंबंध और अंतःनिर्भरता बनी रहती है। वे एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं होते हैं। इसी ने श्रम विभाजन को उत्पन्न किया। समाज में विभिन्न तरह के व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कार्यों का संपादन करने लगे अधिक श्रम विभाजन और विशेषीकरण के कारण प्रत्येक व्यक्ति को एक ही प्रकार का कार्य करना पड़ रहा था । विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ रहा था। समाज में जनसंख्या वृद्धि हुई और जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरुप समाज में श्रम विभाजन और विशेषीकरण का महत्व बढ़ने लगा। एक निश्चित कार्य को बार-बार करने से योग्यता प्राप्त व्यक्तियों के महत्त्व में वृद्धि होने लगी और व्यक्ति के कार्य में भी मूल्यों का समावेश हुआ। विकास की परंपरा में समाज जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया समाज कई भागों में विभक्त होता गया। समूह के हितों और स्वास्थ्य में वृद्धि होती गई। इसके परिणामस्वरुप विभिन्न उद्योगों का जन्म हुआ और समाज में यांत्रिकी एकता समाप्त हो गई तथा विविधता का विकास हुआ। दुर्खीम के अनुसार इस तरह श्रम विभाजन एक सामाजिक घटना है और इस घटना ने सामाजिक एकता को समाप्त करके सामाजिक संघर्ष को जन्म दे दिया।

6. श्रम विभाजन के कारण (Causes of Division of Labour) - अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रम विभाजन का कारण हमारी बढ़ती हुई प्रसन्नता है। दुर्खीम इस प्रकार के तर्क से सहमत नहीं थे, दुर्खीम ने श्रम विभाजन की व्याख्या समाजशास्त्रीय आधार पर की है। इसलिए उन्होंने श्रम विभाजन के कारणों की खोज

सामाजिक जीवन की दशाओं तथा उनसे उत्पन्न सामाजिक आवश्यकताओं में की है। इस दृष्टि से दुर्खीम ने श्रम विभाजन के कारणों को दो भागों में बांटा है।

1. प्राथमिक कारण
2. द्वितीयक कारण

1. प्राथमिक कारण (Pramiary Causes)

प्राथमिक कारण के रूप में दुर्खीम ने जनसंख्या की वृद्धि और उससे उत्पन्न परिणामों को मान्यता दी है। जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में वृद्धि श्रम विभाजन का प्राथमिक एवं केंद्रीय कारण है। दुर्खीम ने स्वयं लिखा है कि श्रम विभाजन समाजों की जटिलता और घनत्व के साथ सीधे अनुपात में विचरण करता है। यदि सामाजिक विकास के दौरान यह निरंतर वृद्धि करता है तो इसका कारण यह है कि समाज नियमित रूप से अधिक घने और सामान्यतः अधिक जटिल हो जाते हैं। दुर्खीम के अनुसार जनसंख्या वृद्धि के दो पक्ष हैं- जनसंख्या के आकार में वृद्धि और जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि। ये दोनों ही पक्ष श्रम विभाजन को जन्म देते हैं। जनसंख्या में वृद्धि होने से सरल खंडात्मक समाज समाप्त होने लगते हैं और मिश्रित समाजों की उत्पत्ति होने लगती है, जनसंख्या कुछ निश्चित केंद्रों पर इकट्ठे होने लगती है। दुर्खीम नें जनसंख्या के घनत्व को भी दो भागों में बांटा है -

1. **भौतिक घनत्व (Material Density) -** भौतिक घनत्व से तात्पर्य जनसंख्या के घनत्व से है। अर्थात शारीरिक दृष्टि से लोगों का एक स्थान पर एकत्रित होना भौतिक घनत्व कहलाता है।
2. **नैतिक (Moral Density) -** इसका तात्पर्य अंतःक्रिया के घनत्व से है। भौतिक घनत्व के परिणामस्वरुप जब लोगों के पारस्परिक संबंध बढ़ते हैं तो उनकी क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं में वृद्धि होती है। इन अंतःसंबंधों एवं अंतःक्रियाओं की वृद्धि से उत्पन्न जटिलताओं को दुर्खीम ने गतिशील अथवा नैतिक घनत्व कहा है।

दुर्खीम का कथन है कि जैसे-जैसे जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में वृद्धि होती है। वैसे-वैसे श्रम विभाजन में भी वृद्धि होती जाती हैं। दुर्खीम के अनुसार "समाज के आकार एवं अंतःक्रिया में वृद्धि के कारण श्रम विभाजन इसलिए होता है, क्योंकि ऐसे समाजों में अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रक्रिया अधिक तीव्र हो जाती है। इसके परिणामस्वरुप विशेषीकरण की प्रक्रिया भी अधिक तीव्र और पूर्ण होने लगती हैं।" इससे यह स्पष्ट है कि विशेषीकरण का कारण अस्तित्व के लिए संघर्ष है। अस्तित्व के लिए संघर्ष जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में वृद्धि तथा अंतःक्रिया के घनत्व का परिणाम है। अतः यह स्पष्ट होता है कि दुर्खीम के अनुसार जनसंख्या के आकार में वृद्धि तथा अंतःक्रिया में वृद्धि श्रम विभाजन का मुख्य कारण है।

2. द्वितीयक कारक (Secondary Causes) - दुर्खीम ने श्रम विभाजन के द्वितीयक कारण में समाज की सामान्य चेतना की बढ़ती हुई अस्पष्टता और पैतृकता का घटता हुआ प्रभाव बतलाया है।

1. सामूहिक चेतना का उत्तरोत्तर ह्रास

दुर्खीम के श्रम विभाजन के द्वितीयक कारको की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की हैं। भौतिक कारकों में उन्होंने सामूहिक चेतना के क्रमिक पतन को पहला स्थान दिया है। दुर्खीम का कहना है कि "समानताओं पर आधारित समाजों में सामूहिक चेतना प्रबल होती है. जिसके कारण समूह के सदस्य व्यक्तिगत दृष्टिकोण से ज्यादा प्रभावित नहीं होते हैं बल्कि सामूहिक भावना ही उनका मार्गदर्शन करती है।"

दुर्खीम के अनुसार "श्रम विभाजन में व्यक्तिगत विशेषीकरण तभी संभव है, जब सामूहिक दृष्टिकोण के स्थान पर व्यक्तिगत दृष्टिकोण का विकास हो जाए। श्रम विभाजन की प्रकृति उतनी ही अधिक कठिन और धीमी होगी जितनी सामूहिक चेतना सशक्त और निश्चित होती है। इसके विपरीत यह उतनी ही अधिक तीव्र होगी जितना व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पर्यावरण के साथ समायोजन करने में समर्थ हो।

2. पैतृकता और श्रम विभाजन

श्रम विभाजन के द्वितीयक कारक के रूप में दुर्खीम ने पैतृकता के घटते प्रभाव को उत्तरदायी माना है। दुर्खीम का कहना है कि पैतृकता का प्रभाव जितना अधिक होता है। परिवर्तन के अवसर उतने ही कम होते हैं। श्रम विभाजन के विकास के लिए आवश्यक है कि पैतृकता को महत्व न दिया जाए। श्रम विभाजन की प्रगति तभी संभव होगी जब लोगों की प्रकृति एवं स्वभाव में विभिन्नता हो। दुर्खीम के अनुसार पैतृकता के आधार पर कार्यों का वितरण भी श्रम विभाजन में बाधक है। दुर्खीम ने लिखा है कि "श्रम विभाजन के विकास के लिए मनुष्यों के लिए पैतृकता का जुआ उतारकर फेंकना आवश्यक था।" दुर्खीम का मानना है कि समय की गति और सामाजिक विकास के कारण निरंतर होने वाले परिवर्तन पैतृकता में लचक उत्पन्न कर देते हैं। इसलिए पैतृक गुणों का प्रभाव शिथिल पड़ने लगता है और व्यक्तियों की विभिन्नताएं उत्पन्न होती हैं। जिससे श्रम विभाजन में वृद्धि होती है। दुर्खीम के अनुसार "व्यक्ति अपने अतीत से कम कठोरता से बंधा होता है। उसके लिए यह सरल हो जाता है कि वह नवीन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन कर सके। जो उत्पन्न हो गई है और इस प्रकार श्रम विभाजन की प्रगति अधिक सुविधापूर्ण और अधिक तीव्र हो जाती है।"

3.3.17 श्रम विभाजन सिद्धांत का परिणाम

दुर्खीम के अनुसार सर्वप्रथम श्रम विभाजन लिंग पर आधारित था। उसके बाद उम्र पर आधारित हुआ इस तरह विभिन्न लिंग एवं विभिन्न उम्र के लोगों को अलग-अलग तरह के कार्य सौंपे गए। दुर्खीम ने बताया की श्रम विभाजन ही मुख्य रूप से सामाजिक परिवर्तन का निर्धारण कारक है। दुर्खीम के अनुसार श्रम

विभाजन का सिद्धांत सावयव की भांति समाजों पर भी लागू होता है। इसके बारे में यहां तक कहा जा सकता है कि सावयव कार्यों की विशेषता के साथ इसका विकास भी अधिक होता है। श्रम विभाजन का प्रमुख आधार समझौते का संबंध है। कोई भी समझौता या संधि उचित नियंत्रण के अभाव में समाप्त भी की जा सकती हैं। श्रम विभाजन की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तियों पर किसी न किसी प्रकार का नियंत्रण हो। श्रम विभाजन से संबंधित समझौते के लिए दो प्रकार का नियंत्रण काम में लाया जाता है-

1. कानूनी नियंत्रण
2. परंपरागत नियंत्रण

कानूनी नियंत्रण समाज या सरकार के द्वारा बनाए गए कानूनों से संबंधित व्यक्तियों के हितों की रक्षा करता है। आधुनिक समाज में श्रम विभाजन से संबंधित समझौतों की रक्षा कानूनी नियम से होती है। परंपरागत नियंत्रण समाज के नैतिक आदर्शों एवं प्राचीन मान्यताओं के द्वारा संधि से संबंधित व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित रखता है। पारिवारिक एवं प्राथमिक श्रम विभाजन परंपरागत नियंत्रण पर आधारित रहता है।

दुर्खीम नें अपने सिद्धांत के अंतर्गत श्रम विभाजन के प्रभावों की भी चर्चा की हैं। उन्होंने बताया कि समाज में जो भी प्रगति होती है वह श्रम विभाजन का सकारात्मक कार्य है। और जो समस्या उत्पन्न होती है वह श्रम विभाजन का नकारात्मक कार्य है।

दुर्खीम का कहना है कि श्रम विभाजन के कारण समाज में व्यक्ति अलग-अलग तरह के कार्य करने लगे हैं। इसीलिए अलग-अलग समूह उत्पन्न हुए। श्रम विभाजन के कारण विशेषीकरण में वृद्धि हुई जिससे नए आविष्कारों को प्रोत्साहन मिला, इसके साथ ही समाज में प्रतियोगिता की भावना भी विकसित हुई। इससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई। यही कारण है कि आज का समाज यांत्रिकी समाज से सावयवी समाज में बदल गया तथा समाज के विभिन्न अंगों के बीच संबंध स्थापित हो गए। श्रम विभाजन के कारण व्यक्तिगत स्वतंत्रता में निरंतर वृद्धि हो रही है इससे समाज की आत्मनिर्भरता में भी बदलाव आया है। श्रम विभाजन के कारण समाज में धर्म एवं प्रथाओं का महत्व भी कम होने लगा है तथा सामाजिक नियंत्रण के अनेक औपचारिक साधन उत्पन्न होने लगे हैं। श्रम विभाजन के कारण लोगों के रहन-सहन मनोवृत्तियों आदि में परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन के कारण ग्रामीण समाज एवं जनजाति समाज, शहरी समाज और औद्योगिक समाज में बदल रहे हैं। दुर्खीम ने इस सिद्धांत में यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जब श्रम विभाजन नहीं पाया जाता था, उस समय भी कानून होते थे और इन कानूनो का संबंध कठोर शारीरिक दंड देने से था। उसका उद्देश्य अपराधी का दमन करना था। लेकिन श्रम विभाजन के कारणों का विस्तार हुआ जिससे कि व्यक्ति के व्यवहारों का नियंत्रण सार्वजनिक कानून द्वारा होने लगा। इस तरह दुर्खीम के अनुसार समाज में

जो भी अच्छे या बुरे परिवर्तन हो रहे हैं, उसका मुख्य कारण श्रम विभाजन ही है। इस तरह दुर्खीम कहते हैं श्रम विभाजन एक गतिशील तथ्य है और यह तथ्य जनसंख्या के घनत्व से उत्पन्न सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों का फल है। दुर्खीम श्रम विभाजन को निरंतर विकास की ओर बढ़ने वाली प्रक्रिया मानते हैं।

दुर्खीम ने श्रम विभाजन के निम्नलिखित सामाजिक परिणामों की चर्चा की है-

1. श्रम विभाजन के फलस्वरुप समाज में सावयवी एकता या संगठन पनपा। जिससे समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर अंतर संबंध और अंतर निर्भरता बनीं।
2. श्रम विभाजन के फलस्वरुप विशेषीकरण हुआ क्योंकि एक व्यक्ति के द्वारा लगातार एक ही प्रकार के कार्य को करते रहने से उस कार्य के संबंध में उत्तरोत्तर ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह व्यक्ति उस कार्य का विशेषज्ञ बन जाता है।
3. श्रम विभाजन ने समाज में व्यक्तिवादी भावनाओं को पनपाया। श्रम विभाजन और विशेषीकरण के फलस्वरुप व्यक्तिगत विभिन्नताएं बढ़ी। इसका प्रमुख कारण व्यक्तियों के अलग-अलग कार्य एवं अनुभव रहे।
4. श्रम विभाजन के कारण व्यक्तियों का सामाजिक कल्याण कार्यों में योगदान बढ़ गया।
5. श्रम विभाजन और विशेषीकरण के कारण व्यक्तिगत गुण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का महत्व भी बढ़ गया।
6. श्रम विभाजन ने समाज को अनेक स्वार्थ समूह तथा व्यवसायिक समूह में भी बांटा।
7. दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन एक गतिशील धारणा है और इसमें प्रगति के तत्व छिपे हैं। श्रम विभाजन के फलस्वरुप जो विशेषीकरण होता है उससे अविष्कारों की संभावनाएं बढ़ती है और प्रगति के मार्ग खुलते हैं।
8. श्रम विभाजन समाज के विभिन्न सदस्यों और समूहों को एक दूसरे पर निर्भर बना देता है। इस पारस्परिक निर्भरता के कारण व्यक्तिवाद की भावना अपने कटु रूप में नहीं बना पाती है।
9. श्रम विभाजन के कारण प्रत्येक व्यक्ति पर एक नैतिक दबाव होता है कि वह विशेषीकरण के द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास तो करे पर वह इसके साथ ही अपने समाज के प्रति नैतिक कर्तव्यों का भी ध्यान रखें।
10. उपयोगितावादी विद्वानों के अनुसार श्रम विभाजन की प्रमुख उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा धन तथा उच्च जीवन स्तर प्राप्त करने की अभिलाषा की पूर्ति के साधन के रूप में इसका प्रयोग किया जाए पर दुर्खीम इस विचार से सहमत नहीं है। उनके अनुसार श्रम विभाजन का एकमात्र उद्देश्य और परिणाम आर्थिक उत्पादन की वृद्धि, अधिक सुख की प्राप्ति या धन की वृद्धि नहीं है।

बार्न्स (Barnes) ने लिखा है कि "ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि भौतिक प्रगति और सभ्यता ने मानव को अधिक सुखी बनाया हो।" बल्कि वर्तमान समय में हमें इसका उल्टा ही दिखाई दे रहा है।

सोरोकिन के अनुसार "यदि हम आदिम समाज और आधुनिक समाज की तुलना करते हैं तो स्पष्ट होता है कि आधुनिक समाज की तुलना में आदिम समाज के लोगों में आत्मिक संतोष अधिक था तथा आत्महत्या व मानसिक रोग आदि की संख्या कम थी। जबकि आज की तुलना में प्रगति या सभ्यता का विकास उस समय कहीं कम था। इससे यह सिद्ध होता है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानव सुख घटता ही गया है।"

श्रम विभाजन का प्रमुख उद्देश्य पारस्परिक सहयोग और आत्मनिर्भरता उत्पन्न करने तथा उससे सामाजिक एकता को अधिक संगठित करने का प्रयत्न होना चाहिए। जिससे समाज को उसका लाभ मिले और सामाजिक श्रम विभाजन की सार्थकता पूर्ण हो।

3.318 श्रम विभाजन के सिद्धांत की आलोचना (Criticism of the T heory of Division of Labour)

'डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' श्रम विभाजन पर दुर्खीम का प्रथम ग्रंथ था। इसलिए इस ग्रंथ में कुछ कमियों का पाया जाना स्वाभाविक है। हालांकि दुर्खीम ने इस पुस्तक में अपने पूर्ववर्ती कुछ विचारकों के विचारों का खंडन करके एक ऐसे सिद्धांत को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जो श्रम विभाजन के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डाल सके। फिर भी दुर्खीम के इस सिद्धांत में कुछ कमियां हैं इसलिए उनके श्रम विभाजन के सिद्धांत की आलोचना की गई। जो इस प्रकार है -

1. दुर्खीम के श्रमविभाजन के सिद्धांत की पहली आलोचना यह है कि इन्होंने जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में वृद्धि को श्रम विभाजन की वृद्धि का निर्णायक कारक बताया है। जो उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि श्रम विभाजन की स्थिति विभिन्न कारणों से उत्पन्न होती है।
2. **जिन्सबर्ग (Ginsberg), सोरोकिन (Sorokin) एवं बोगार्डस (Bogardus)** आदि विद्वानों ने कहा है कि दुर्खीम ने श्रम विभाजन का एकमात्र कारण जनसंख्या को बताने की भूल की है।
3. दुर्खीम का यह विचार की श्रम विभाजन ही सामाजिक परिवर्तन का निर्णायक कारण है उचित प्रतीत नहीं होता। **जिन्सबर्ग** के अनुसार "सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है तथा सामाजिक परिवर्तन किसी एक कारक का परिणाम नहीं है बल्कि विभिन्न कारक सामाजिक परिवर्तन की स्थिति को उत्पन्न करने में योगदान देते हैं।"
4. दुर्खीम ने लक्ष्य या उद्देश्य के स्थान पर 'प्रकार्य' शब्द का प्रयोग क्यों किया? यह स्पष्ट नहीं है।

5. **मर्टन (Merton)** ने दुर्खीम के उद्विकास के सिद्धांत की भी आलोचना की है। आपके अनुसार दुर्खीम ने प्राचीन आदिम समाज को एक छोर पर रखा है और आधुनिक समाजों को दूसरी छोर पर। इस प्रकार सामाजिक जीवन के उद्विकास की रेखीय विवेचना कर दी है जो कि असंगत है।
6. **मर्टन (Merton)** के अनुसार दुर्खीम ने श्रम विभाजन तथा सामाजिक संरचना के अध्ययन में भौतिक विज्ञान की पद्धति का मनमाना प्रयोग किया है।
7. **मर्टन (Merton)** ने दुर्खीम के समूहवादी दृष्टिकोण की भी आलोचना की है। मर्टन कहते हैं कि दुर्खीम ने नैतिकता की विवेचना भी गलत ढंग से की है। उन्होंने कहीं भी व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक नैतिकता के अंतर को स्पष्ट नहीं किया। मर्टन के अनुसार नैतिकता, नैतिकता होती है व्यक्तिगत और सामाजिक नहीं।
8. **बार्न्स (H-E-Barnes)** ने लिखा है कि दुर्खीम व्यक्तिगत नैतिकता एवं सामाजिक नैतिकता के अंतर को स्पष्ट करने में असफल रहे हैं।
9. मर्टन के समान बार्न्स ने भी कहा है कि दुर्खीम ने भौतिक विज्ञान की पद्धति का मनमाना उपयोग किया है।
10. **बार्न्स,** दुर्खीम के इस कथन पर भी आपत्ति करते हैं कि सुख की अभिलाषा ने सभ्यताओं को जन्म नहीं दिया। बार्न्स के अनुसार ऐसी कल्पना कर लेना वास्तविक एवं सत्य के विपरीत है और मानव प्रकृति का एक तरफा अनुमान है।
11. **रेमण्ड ऐरन** दुर्खीम के श्रम विभाजन की जीवशास्त्री व्याख्या की आलोचना करते हैं। उनके अनुसार यह दुर्खीम की पद्धति के प्रतिकूल है।

उपरोक्त आलोचनाओं को देखने के बाद भी श्रम विभाजन के सिद्धांतो से पर यह स्पष्ट है कि दुर्खीम का यह सिद्धांत श्रम विभाजन की अत्यंत विशद व्याख्या करता है। व्यक्ति और समाज का संबंध सामूहिक अस्तित्व की प्रमुखता व्यक्तिवादी मनोवृति के साथ-साथ आधुनिक समाजों में उभरती हुई अनेकानेक औद्योगिक एवं सामाजिक समस्याओं की व्याख्या समाज के वैज्ञानिक अध्ययन की व्यवहारिक उपयोगिता है। जॉर्ज पंचम ने उचित ही लिखा है "उस व्यक्ति की प्रथम महान कृति जिसमें लगभग चौथाई शताब्दी तक की फ्रांस की विचारधारा पर नियंत्रण किया और जिसका प्रभाव अब भी घटने की अपेक्षा बढ़ रहा है। ऐतिहासिक तथा प्रसंग की दृष्टि से आज भी एक ऐसी पुस्तक है, जो उन सभी के द्वारा पढ़ी जाना चाहिए, जो सामाजिक विचारधारा के ज्ञान और सामाजिक समस्याओं में रुचि रखते हैं।"

3.3.19 सारांश

दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत के विश्लेषण एवं विवेचन के बाद उनकी अनेक आलोचना की गई है और उसमें अनेक कमियां भी हो सकती हैं। फिर भी दुर्खीम का यह सिद्धांत अद्वितीय है। अभी तक इस विषय पर कोई और ऐसा अध्ययन नहीं हुआ है जो इस सिद्धांत को अप्रासंगिक बनाए। समाजशास्त्रीय साहित्य में दुर्खीम के आत्महत्या का सिद्धांत एक पहला सांख्यिकी अध्ययन है। दुर्खीम के इस कथन में बहुत बड़ा सत्य छिपा है कि अपने समूह के साथ एकीकरण व्यक्तित्व को बल और सुरक्षा प्रदान करता है। जबकि ऐसे समूह की एकता का भंग होना व्यक्ति को एकांकी निर्बल और अर्थहीन बताता है। दुर्खीम का यह दोष बहुत बड़ा है कि उन्होंने सामाजिक कारकों को अत्यधिक महत्व दे दिया।

दुर्खीम ने समाजशास्त्र में जो श्रम विभाजन का सिद्धांत विकसित किया उसमें श्रम विभाजन की अवधारणा एक गतिशील धारणा है। यह समाज की प्रगति के साथ चलता है। इससे समाज में संघर्ष की स्थिति कम होती है। दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन एक सामाजिक घटना है। यह समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करता है करता है लेकिन उन्नति में भी सहायक होता है दुर्खीम का कहना है कि श्रम विभाजन का अभिप्राय केवल भूमिकाओं में विभिन्नीकरण और विशेषीकरण से नहीं है अपितु भूमिकाओं में समन्वय भी है। प्राचीन समाज में श्रम विभाजन न के बराबर था तब एकता का आधार समानता होता था। जबकि आधुनिक समाज में व्यक्ति दूसरे के ऊपर आश्रित है इसका आधार श्रम विभाजन है। इस तरह श्रम विभाजन लोगों का जीवन सुखी और शांतिमय में बनाता है तथा एक सुदृढ़ समाज की स्थापना में सहायता प्रदान करता है।

मार्गरेट विल्सन वाइन ने दुर्खीम की प्रसिद्ध पुस्तक 'सुसाइड' इसके संबंध में बहुत ही उपयुक्त विचार व्यक्त किए हैं कि आत्महत्या एक विशेष प्रकार के आचरण के सैद्धांतिक स्पष्टीकरण और आनुभविक साक्ष्य के संयोजन की दृष्टि से समाजशास्त्र में एक पथ सूचक चिन्ह हैं। दुर्खीम ने अपनी पुस्तक आत्महत्या में जहां एक ओर आधुनिक समाजों के व्याधिकीय पहलुओं को देखा है। वहीं वे दूसरी ओर व्यक्ति और समूह के संबंधों को भी स्पष्ट करते हैं। उन्होंने यह बताने की कोशिश की है कि किस सीमा तक व्यक्तियों के व्यवहार को सामूहिक वास्तविकता निश्चित करती है। वहीं दूसरी और कहां तक आत्महत्या व्यक्ति पर दबाव का परिणाम। जब आत्महत्या होती है तो इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति ने समाज के दबाव को स्वीकार नहीं किया और उसके लिए उसके जीवन से बढ़कर और क्या हो सकता था कि वह आत्महत्या कर ले। आत्महत्या इस तरह व्यक्ति और समाज के बीच के संबंधों के दरार की अभिव्यक्ति है। दुर्खीम अपने इस कथन में निश्चित है कि आत्महत्या कोई व्यक्तिगत घटना नहीं है यह तो समाज के द्वारा की गई व्यक्ति की मौत है हत्यारा समाज है व्यक्ति नहीं।

3.3.20 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. आत्महत्या क्या है?

   (अ) सामाजिक तथ्य (ब) मनोवैज्ञानिक तथ्य

   (स) आर्थिक तथ्य (द) राजनैतिक तथ्य

2. दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या के कितने प्रकार हैं?

   (अ) तीन (ब) पांच

   (स) सात (द) आठ

3. दुर्खीम के अनुसार किस ऋतु में सर्वाधिक आत्महत्या होती हैं?

   (अ) वर्षा ऋतु (ब) ग्रीष्म ऋतु

   (स) शरद ऋतु (द) वसंत ऋतु

4. जब व्यक्ति समाज से अपने को कटा हुआ महसूस कर आत्महत्या करता है। तो ऐसी आत्महत्या को क्या कहते हैं?

   (अ) परार्थवादी आत्महत्या (ब) असामान्य आत्महत्या

   (स) घातक आत्महत्या (द) अहंवादी आत्महत्या

5. एक सैनिक द्वारा देश के हित की रक्षा के लिए की जाने वाली आत्महत्या किस प्रकार की आत्महत्या कही जाएगी?

   (अ) परार्थवादी (ब) अहमवादी

   (स) आदर्शहीन (द) घातक

6. दुर्खीम की प्रथम कृति का प्रकाशन किस सन में हुआ था?

   (अ) 1893 (ब) 1898

   (स) 1922 (द) 1955

7. दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'द डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसायटी' को कितने भागों में बांटा है

   (अ) आठ (ब) चार

   (स) तीन (द) पांच

8. 'डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसायटी' पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किस सन में किया गया?

   (अ) 1888 (ब) 1933

   (स) 1947 (द) 1955

9. दुर्खीम ने श्रम विभाजन के कितने असामान्य प्रारूपों का उल्लेख किया है?
   (अ) सात (ब) चार
   (स) पांच (द) तीन
10. "दुर्खीम ने श्रम विभाजन तथा सामाजिक संरचना के अध्ययन में भौतिक विज्ञान की पद्धति का मनमाना प्रयोग किया है।" यह कथन किसका है?
   (अ) रेमंड एरन (ब) रॉबर्ट के मर्टन
   (स) टालकाट पारसंस (द) मैक्स वेबर

उत्तर-

1 अ 2 अ 3 ब 4 द 5 अ

6 अ 7 स 8 ब 9 द 10 ब

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आत्महत्या की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. आत्महत्या के कारणों को समझाइए।
3. आत्महत्या के प्रकार को स्पष्ट कीजिए।
4. दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत की आलोचनाए लिखिए।
5. दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत के निष्कर्ष लिखिए।
6. दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'द डिवीज़न ऑफ़ लेबर एंड सोसायटी' को कितने भागों में बांटा है?
7. दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन के प्राथमिक कारण को समझाइए।
8. दुर्खीम के समाज में श्रम विभाजन संबंधी अध्ययन के निहितार्थ क्या हैं?
9. श्रम विभाजन के सिद्धांत के परिणाम लिखिए।
10. दुर्खीम के श्रम विभाजन के सिद्धांत की मुख्य कमियों को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आत्महत्या के अर्थ एवं प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।
2. आत्महत्या की परिभाषा दीजिए एवं दुर्खीम द्वारा वर्णित आत्महत्या के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
3. दुर्खीम के अनुसार "आत्महत्या एक सामाजिक प्रघटना है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. आत्महत्या के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

5. आत्महत्या की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धांत की प्रमुख कमियों की विवेचना कीजिए।
6. दुर्खीम की प्रमुख कृति 'द डिवीज़न ऑफ़ लेबर एंड सोसायटी' के संदर्भ में उनके सैद्धांतिक योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
7. दुर्खीम के श्रम विभाजन के विचारों की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
8. क्या श्रम विभाजन की वृद्धि मानव सुख में वृद्धि करता है? इस विषय में दुर्खीम के मतों की चर्चा कीजिए।
9. दुर्खीम के श्रम विभाजन के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
10. श्रम विभाजन का अर्थ, उसके कारण एवं परिणामों की चर्चा कीजिए।

3.3.21 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 4 धर्म का सामाजिक सिद्धांत, यांत्रिकी एवं सावयवी एकता का सिद्धांत

धर्म का सामाजिक सिद्धांत

3.4.0 उद्देश्य

3.4.1 प्रस्तावना

3.4.2 धर्म की अवधारणा

3.4.3 पवित्र की अवधारणा

3.4.4 पवित्र की विशेषताएं

3.4.5 साधारण की अवधारणा

3.4.6 साधारण की विशेषताएं

3.4.7 दुर्खीम का धर्म की उत्पत्ति का सिद्धांत

3.4.8 टोटमवाद धर्म का प्रारंभिक स्वरूप

3.4.9 टोटम वाद क्या है

3.4.10 टोटमवाद की विशेषताएं

3.4.11 अरूणटा जनजाति का अध्ययन

3.4.12 धर्म के कार्य

3.4.13 धर्म के सिद्धांत की आलोचना

यांत्रिकी एवं सावयवी एकता का सिद्धांत

3.4.14 प्रस्तावना

3.4.15 सामाजिक एकता का अर्थ

3.4.16 सामाजिक एकता की विशेषताएं

3.4.17 कानून एवं एकता

3.4.18 सामाजिक एकता के स्वरूप

3.4.19 यांत्रिकी एकता

3.4.20 यांत्रिकी एकता की विशेषताएं

3.4.21 सावयवी एकता

3.4.22 सावयवी एकता की विशेषताएं

3.4.23 प्रतिकारी कानून

3.4.24 यांत्रिकी एवं सावयवी एकता में विभिन्नता

3.4.25 आलोचना

3.4.26 निष्कर्ष

3.4.27 बोध प्रश्न

3.4.28 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे-

- धर्म की अवधारणा और उसकी विशेषताओं के बारे में समझ सकेंगे।
- आत्मावाद और प्रकृतिवाद के सिद्धांत को समझ सकेंगे।
- टोटमवाद क्या है एवं टोटमवाद की क्या विशेषताएं हैं ? इसे समझ पाएंगे।
- दुर्खीम का अरूणटा जनजाति के बारे में किए गए अध्ययन को समझ पाएंगे।
- धर्म के सिद्धांत की आलोचनाओं को जान पाएंगे।
- दुर्खीम के सामाजिक एकता के अर्थ एवं स्वरूपों को समझेंगे।
- दमनकारी कानून एवं प्रतिकारी कानून के अर्थ को समझ सकेंगे।
- समाज की सावयवीं एवं यांत्रिकी एकता के अर्थ को समझ पाएंगे।
- यांत्रिकी एकता एवं सावयवी एकता में पाई जाने वाली विभिन्नताओं को समझ सकेंगे
- दुर्खीम के इस विचारधारा की आलोचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.4.1 प्रस्तावना

दुर्खीम की सभी रचनाओं में 'धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप' (The Elementary Forms of Religious Life) उनकी सर्वोत्तम रचना मानी जाती है। यह पुस्तक 1912 में फ्रेंच भाषा में (Forms Elementaires De La Vie Religious) के नाम से प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक दुर्खीम के जीवन की साहित्यिक सृष्टि की सर्वाधिक विस्तृत रचना होने के साथ ही दुर्खीम की तार्किकता एवं विश्लेषण शक्ति की परिचायक भी है। इसमें धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप का विस्तृत वर्णन है। इस पुस्तक का प्रमुख उद्देश्य धर्म के एक विशुद्ध समाजशास्त्रीय सिद्धांतों प्रस्तुत करना था। इस पुस्तक के माध्यम से दुर्खीम ने धर्म की प्रकृति, उत्पत्ति के कारण, प्रभावों आदि की विस्तृत एवं प्रामाणिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इस आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि सभी धर्मों की उत्पत्ति का प्रमुख स्रोत समाज ही है। इस पुस्तक का सबसे बड़ा निष्कर्ष यह है कि किसी भी धर्म का सार समाज है। इस पुस्तक के माध्यम से दुर्खीम ने धर्म का समाजशास्त्र (Sociology of Religion), नैतिकता का समाजशास्त्र (Sociology of Morals) एवं ज्ञान

के समाजशास्त्र (Sociology of knowledge) की नींव रखी है। **रेमंड ऐरन (Raymond Aron)** के अनुसार "यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सर्वाधिक विस्तृत है, सर्वाधिक मौलिक, मेरे विचार से यह ऐसी कृति है, जिसमें दुर्खीम की प्रेरणा सर्वाधिक स्पष्ट होती है।" दुर्खीम की इस रचना का बहुपक्षीय महत्व है। धर्म के प्रारंभिक स्वरूपों के अध्ययन में दुर्खीम ऐतिहासिक विधि के द्वारा सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस विधि के द्वारा दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति धर्म की रचना और धर्म की प्रकृति को समझाने का प्रयत्न किया है। दुर्खीम की यह रचना धर्म के प्रारंभिक स्वरूपों के अध्ययन के साथ-साथ ज्ञान और विचार के सामाजिक स्रोत की भी व्याख्या करता हैं। दुर्खीम ने धार्मिक जीवन को वैचारिक जीवन के रूप में प्रस्तुत करके ज्ञान की सामाजिकता को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया है।

`दुर्खीम की यह पुस्तक धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप तीन खंडो में विभक्त है। दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के प्रथम खंड में धर्म से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है। यह प्रथम खंड 4 अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में धर्म की परिभाषा दी गई है एवं अवधारणा की व्याख्या की गई है। दूसरे और तीसरे अध्याय में धर्म के प्रचलित सिद्धांतों आत्मवाद और प्रकृतिवाद की आलोचना प्रस्तुत की गई है। चौथे अध्याय में टोटमवाद को प्रारंभिक धर्म के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के दूसरे खंड में टोटमवाद से संबंधित विश्वास और मान्यताओं तथा उनके उत्पत्ति की व्याख्या स्पष्ट की है। दुर्खीम की इस पुस्तक में नौ अध्याय हैं। इन नौ अध्याय में टोटम की अवधारणा, पशु और मनुष्य के रूप में टोटम, गोत्र समूह, टोटमवाद के सिद्धांतों में शक्ति, आत्मा, भूत आत्माओं और देवताओं की भी व्याख्या की गई है। दुर्खीम की इस महत्वपूर्ण रचना का तीसरा खंड धार्मिक संस्कारों और अनुष्ठानों का वर्णन करता हैं। जिसमें निषेध और विरक्ति, बली, कर्तव्यबोध, पूर्वज स्मृति, पवित्रता आदि से संबंधित विभिन्न प्रकारों के संस्कारों और अनुष्ठानों की व्याख्या पांच अध्यायों में प्रस्तुत की गई है। पुस्तक के अंत में दुर्खीम के द्वारा निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। 'धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप' नामक ग्रंथ में दुर्खीम ने आदिम समाजों में प्रचलित धार्मिक विश्वासों एवं कार्यों का विश्लेषण करके गोत्र एवं टोटम व्यवस्था को प्राचीन धार्मिक व्यवस्था का आधार बताया। इसमें उन्होंने ऑस्ट्रेलिया की अरुण्टा जनजाति में पाई जाने वाली टोटम व्यवस्था का उल्लेख किया है। इसके साथ ही दुर्खीम ने अपनी पुस्तक में समूहवाद और समाजशास्त्रवाद का भी प्रयोग किया है।

3.4.2 धर्म की अवधारणा (Concept of Religion)

अपनी पद्धतिशास्त्र (Methodology) के अनुरूप सबसे पहले दुर्खीम ने धर्म को परिभाषित करने का प्रयास किया। दुर्खीम से पहले स्पेंसर और मैक्समूलर आदि ने धर्म को रहस्यात्मक, अव्यक्त और अनंत शक्तियों से संबंधित व्यवस्था माना था। दुर्खीम ने इसकी आलोचना करते हुए बताया कि प्राचीन समाजों में

धर्म रहस्यात्मक तथ्य महत्वपूर्ण रहा होगा परंतु कम विकसित बौद्धिक संस्कृति वाले समूह एवं आधुनिक समाजों में रहस्यात्मक तत्व की उपस्थिति लगभग नहीं पाई जाती। आपके अनुसार धर्म असामान्य, अनियमित, आश्चर्यजनक तथा रहस्यपूर्ण घटनाओं से संबंधित नहीं है। अतः रहस्यात्मक तत्व धर्म की आवश्यक विशेषता नही है। दुर्खीम **देवीतत्व (Divinity)** को भी धर्म की विशेषता नहीं मानते हैं। दुर्खीम, **रेविल (Reville)** को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि "धर्म मानव मस्तिष्क एवं दैवीय मस्तिष्क को जोड़ने वाला तत्व है।"

इस प्रकार रहस्यात्मक एवं देवी तत्वों (Divinity) को अस्वीकार करने के बाद दुर्खीम सामान्य विशेष (Objective) परिभाषा को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। इस तरह दुर्खीम के अनुसार धर्म की संरचना में हमेशा दो मौलिक तत्व रहते हैं-

1. विश्वास (Beliefs)
2. संस्कार (Rites)

दुर्खीम के अनुसार "धार्मिक घटनाएं सामूहिक रूप से दो मूलभूत श्रेणियों में व्यवस्थित रहती है विश्वास एवं संस्कार। प्रथम विचार की अवस्थाएं हैं और प्रतिनिधित्व से निर्मित होती है, दूसरी क्रिया की निर्धारित विधियां है।" धार्मिक विचारों का प्रारंभिक स्वरूप केवल विश्वास होता है। इसके पश्चात सिद्धांतों का व्यवहारिक स्वरुप आता है। जो पवित्र से संबंधित कर्मकांड कहलाता है। धर्म विश्वासों व्यवहारों की एक स्वतंत्र व्यवस्था है।

दुर्खीम का कहना है कि धर्म, विश्वास और धार्मिक क्रियाओं का एकीकृत रूप है। इसका संबंध पवित्र वस्तुओं से होता है। वास्तव में धर्म से जुड़े हुए विश्वास केवल विचार ही नहीं है बल्कि अपनी रचना में दुर्खीम प्रमाणों के आधार पर यह कहते हैं कि विचारों का संबंध हर तरह से समाज के साथ है। दूसरे शब्दों में समाज की जो यथार्थता है वही विश्वासों के साथ जुड़े हुए विचारों में निहित है। दुर्खीम के अनुसार संस्कार (Rites) एवं विश्वास (Beliefs) का क्रियात्मक पक्ष है। संसार में पाए जाने वाले समस्त धार्मिक विश्वासों की सामान्य विशेषता यह है कि वे समस्त वास्तविक और आदर्शात्मक वस्तु जगत को पवित्र (Sacred) एवं साधारण (Profane) दो वर्गों में विभाजित करते हैं। विश्वास प्रतिनिधित्व की वह अवस्था है, जो पवित्र वस्तुओं की प्रकृति को व्यक्त करती है। पवित्र वस्तुओं में देवताओं, आध्यात्मिक शक्तियों एवं आत्माओं के अलावा गिरी, कंदराओं, वृक्ष, पत्थर, नदी आदि शामिल होते हैं। संस्कार स्वयं भी एक पवित्र क्रिया है। साधारण वस्तुओं की तुलना पवित्र में वस्तुएं अधिक शक्ति और शान रखती हैं। इस तरह दुर्खीम के धर्म की विवेचना में दो महत्वपूर्ण तत्व है **पवित्र (Sacred)** और **साधारण (Profane)**। विश्वास, संस्कारों, पवित्र और अपवित्र की विवेचना के साथ दुर्खीम ने धर्म और जादू पर भी अपने विचार प्रकट किए हैं। दुर्खीम के

अनुसार जादू एक व्यक्तिगत तथ्य है जबकि धर्म एक सामूहिक प्रघटना है। इस तरह धर्म और जादू के अंतर को स्पष्ट करने के बाद दुर्खीम ने धर्म की सामान्य परिभाषा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार "धर्म पवित्र वस्तुओं अर्थात पृथक एवं निषिद्ध वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है।"

धर्म की प्रारंभिक रूपरेखा के बाद दुर्खीम इसकी परिभाषा देते हुए कहते हैं "पवित्र वस्तुओं में विश्वास और कर्मकांड ही धर्म है। जब कई प्रकार की वस्तुओं में समन्वय और आधुनिकीकरण के संबंध इस तरह के होते हैं कि उनकी एक जैसी व्यवस्था हो जाती है, तो सामान विश्वास और कर्मकांडों का यह समूह धर्म कहलाता है।" दुर्खीम की परिभाषा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि धर्म सर्वप्रथम पवित्रता को मानता है। उसके बाद पवित्र से जुड़े हुए विश्वासों के समूह में संगठन करता है और अंत में धार्मिक समूह कर्मकांडों को वैज्ञानिक ढंग से व्यवहार में लाता है।

3.4.3 पवित्र (Sacred)

दुर्खीम का कहना है कि समस्त धर्मों का संबंध पवित्र पक्ष से होता है परंतु इसका अर्थ यह नहीं है की सभी पवित्र वस्तुएं ईश्वरीय या ईश्वर है। यद्यपि समस्त ईश्वरी या अध्यात्मिक घटनाएं तथा वस्तुएं पवित्र अवश्य होती है। ये पवित्र वस्तुएं समाज की प्रतीक या सामूहिक चेतना का प्रतिनिधि होती है। इसी कारण व्यक्ति उनके अधीन रहता है और इनसे प्रभावित रहता है। **पारसंस** ने दुर्खीम के द्वारा दी गई पवित्र की अवधारणा का विश्लेषण किया है और वह कहते हैं कि जब व्यक्ति किसी वस्तु को पवित्र समझता है तो उसके पीछे कोई भी उपयोगितावादी धारणा नहीं होती। क्योंकि पवित्र वस्तु कोई साधन नहीं जिसके द्वारा किसी साध्य को प्राप्त किया जा सके। पवित्र तो अपने आपमें एक साध्य है पवित्र वस्तुओं के साथ सम्मान और आदर जुड़े हुए हैं।

3.4.4 पवित्र की विशेषताएं (Characteristics of Secred)

दुर्खीम ने पवित्र वस्तुओं के प्रति जिन अवधारणाओं को रखा है उनकी विशेषताएं इस प्रकार है -

1. धर्म का संबंध पवित्र वस्तुओं के साथ होता है। यह पवित्र वस्तुएं अमूर्त होती है, भौतिक होती है।
2. जब हम किसी वस्तु को पवित्र कहते हैं तो उसकी पवित्रता का कारण उसके अंतर्भूत लक्षण नहीं होते हैं। बल्कि व्यक्तियों की इन वस्तुओं के प्रति आदर की अभिव्यक्ति होती है जो उसे पवित्र बना देती है।
3. सभी लोग पवित्र वस्तुओं के प्रति सामान्य दृष्टिकोण नहीं रखते हैं।
4. पवित्र वस्तु उपयोगी नहीं समझी जाती और इनकी बाजार में सौदेबाजी भी नहीं होती है।
5. कुछ पवित्र वस्तुएं मूर्त होती हैं। इन वस्तुओं को देखा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है और सुना भी जा सकता है।

3.4.5 साधारण (Profane)

पवित्र के अर्थ और परिभाषा को स्पष्ट करने के बाद दुर्खीम ने साधारण वस्तुओं के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। दुर्खीम के अनुसार साधारण वस्तु पवित्र वस्तुओं के विपरीत है। वे वस्तुएं जो पवित्र नहीं है साधारण है।

3.4.6 साधारण की विशेषताएं (Characteristics of Profane)

1. साधारण वस्तुओं में उपयोगितावाद की विशेषताएं रहती है। इस कारण लोग इसे आर्थिक लाभ और हानि की दृष्टि से देखते हैं।
2. इन वस्तुओं को कभी भी धार्मिक शक्ति के साथ नहीं जोड़ा जाता।
3. साधारण वस्तुओं को लोग तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं। इनका बाजार में सौदा किया जाता है। इनकी उपयोगिता तुलनात्मक रूप में देखी जाती है।
4. साधारण वस्तुओं के साथ तर्क और विवेक जुड़ा रहता है।

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'Elementary Forms of Religious Life' में लिखा है "समाज के सदस्य जिन्हें पवित्र समझते हैं उन्हें अपवित्र या साधारण से सदा दूर रखने का प्रयत्न करते हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक विश्वासों, आचरणों, संस्कारों और उत्सवों को जन्म देते हैं।" दुर्खीम के अनुसार "धर्म इन्हीं प्रयत्नो का परिणाम है, इन प्रयत्नों, विश्वासों, आचरण एवं संस्कारों आदि के पीछे संपूर्ण समाज की अभीमति एवं दबाव होता है। इसलिए समाज के सामूहिक सत्ता के सामने मानव को नतमस्तक होना पड़ता है। यहीं से धर्म की नीव पड़ती है।"

3.4.7 दुर्खीम के धर्म की उत्पत्ति का सिद्धांत (Durkheim`S Theory of Origion of Religion)

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत को प्रस्तुत करने से पहले दुर्खीम ने धर्म से संबंधित अब तक के प्राचीन, प्रचलित सिद्धांतों और विचारों का खंडन किया। विशेष रूप से **टायलर (Tylor)** तथा **स्पेंसर (Spencer)** द्वारा प्रतिपादित **आत्मवाद** का सिद्धांत तथा **मैक्समूलर (Max Muller)** के द्वारा प्रतिपादित प्रकृतिवाद का सिद्धांत। इन दोनों सिद्धांतों के खंडन के बाद ही उन्होंने अपने धर्म के सिद्धांत को प्रस्तुत किया।

दुर्खीम ने पहले से प्रचलित दो प्रमुख सिद्धांतों का परीक्षण करने के बाद धर्म से संबंधित अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया। आपने इन दोनों सिद्धांतों की आलोचना की है -

1. आत्मा वाद का सिद्धांत (Theory of Animism)
2. प्रकृतिवाद का सिद्धांत (Theory of Naturism)

1. आत्मावाद का सिद्धांत (Theory of Animism)

इस सिद्धांत के प्रतिपादक **एडवर्ड टायलर (Tylor)** हैं। ये धर्म की उत्पत्ति के लिए आत्मा को ही उत्तरदायी मानते हैं। टायलर के इस सिद्धांत का समर्थक हरबर्ट स्पेंसर ने भी किया है। इस सिद्धांत के अनुसार धार्मिक जीवन के प्रारंभिक प्रकार का पता आत्मवादी विश्वासों एवं क्रियाओं द्वारा लगाया जाता है। इसमें निम्न तीन बातें शामिल होती हैं-

1. आत्मा का विचार
2. आत्मा की पूजा एवं प्रेतात्मा में परिवर्तन
3. पूजा का धर्म में परिवर्तन पर बल दिया जाना

इस सिद्धांत के अनुसार आत्मा का विचार मनुष्य के दोहरे जीवन की कल्पना यानी जागृत और सुप्त दो अवस्थाओं के दृश्यों के विषय में भ्रामक ज्ञान से उत्पन्न हुआ है। एक वह जीवन जब व्यक्ति जाग रहा होता है तथा एक वह जिसमें वह सो रहा होता है। आदिम मनुष्य सपने दिखाई देने वाले दृश्यों को जागृत अवस्था में दिखाई देने वाले तथ्यों के समान ही सत्य और महत्वपूर्ण समझता है। अतः इस समय व्यक्ति को यह अनुभव होने लगा कि व्यक्ति के शरीर में दो आत्मा है। एक तो सोते समय शयन स्थान पर रहती है और एक शरीर को छोड़कर बाहर विचरण करती है। शरीर से पृथक और स्वतंत्र विचरण करने वाली आत्मा ही प्रेतात्मा बन जाती है। आदिम समाज में व्यक्ति प्रत्येक घटना की व्याख्या इन सिद्धांतों के आधार पर करता था। इस विचारधारा ने मृत्यु तथा स्वप्न में भी आत्मा की भावना को विकसित करने में मदद की। इस तरह **शरीर आत्मा (Body Soul)** तथा **स्वतंत्र आत्मा (Free Soul)** की अवधारणा विकसित हुई एवं पितरों की पूजा प्रारंभ हुई। जिसने आगे चलकर धर्म का रूप धारण कर लिया। इससे प्राचीन समय में मनुष्य में स्वतंत्र सूक्ष्म शरीर अर्थात आत्मा का एहसास हुआ इतना ही नहीं बल्कि मृत व्यक्ति भी जिनका अंतिम संस्कार उनके परिवार के सदस्यों ने स्वयं किया है भी उनके स्वप्न में आ जाते हैं। इस तथ्य ने आत्मा संबंधित उपरोक्त एहसास की पुष्टि कर दी थी।

दुर्खीम ने इस सिद्धांत की आलोचना की, आत्मावाद के सिद्धांत में आत्मा को शरीर से पृथक अस्तित्व तंत्र अस्तित्व प्रदान किया गया है। दुर्खीम के अनुसार आत्मा की धारणा आदिम नहीं है। स्वप्न में दिखाई देने वाली दृश्यों को हम दोहरी आत्मा के विचार के लिए उत्तरदायी नहीं मान सकते। हम अधिकतर सपनों में उन्हीं दृश्यों को देखते हैं जो हमारे पिछले जीवन से संबंधित होते हैं। दुर्खीम लिखते हैं कि एक स्वच्छंद द्वितीय गति आत्मा के विचार तथा पूजा के योग्य पूर्व आत्मा के विचार के बीच एक तार्किक तथा मनोवैज्ञानिक खाई है।

2. प्रकृतिवाद का सिद्धांत (Theory of Naturism)

इस सिद्धांत के प्रतिपादक **मैक्समूलर** हैं। उन्होंने धर्म की उत्पत्ति का आधार प्रकृति को माना है। मैक्समूलर ने वेदों के आधार पर इस सिद्धांत को स्पष्ट किया है। मैक्समूलर ने उन अनुभूतियों की व्याख्या की है जिससे धर्म की उत्पत्ति हुई है। मैक्समूलर के अनुसार धर्म को यदि हमारी चेतना वैध तत्व के रूप में स्थान प्राप्त करना है तो इसे अन्य समस्त ज्ञान की भांति इंद्रियात्मक अनुभव से प्रारंभ होना चाहिए। मैक्समूलर की विचारधारा के अनुसार मनुष्य के सामने सबसे पहली वास्तविकता प्रकृति के रूप में प्रकट हुई। इसलिए उनके अनुसार धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक शक्तियों के भय के कारण हुई। आंधी, तूफान, भूकंप, बिजली का चमकना, सूर्य, चंद्रमा, सितारे आदि को देखकर मनुष्य के मन में भय उत्पन्न हुआ। वह आश्चर्यचकित होकर उन्हें देखता रहा और उनसे प्रभावित होता रहा। निरंतर प्रभावित होने के कारण उनसे डरने लगा। इससे उसके मन में श्रद्धा भक्ति के साथ-साथ भय उत्पन्न हुआ और उसने प्रकृति की पूजा प्रारंभ की। जिससे धर्म की उत्पत्ति हुई। प्रकृति के तत्व बार-बार प्रकट होने के कारण प्राकृतिक और स्वाभाविक कहलाए।

मैक्समूलर के शब्दों में "प्रकृति का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जो हमारे मन में एक अनंत की यह अनुभूति जगाने के योग्य नहीं है जो हमारे चारों ओर व्याप्त है और हम पर शासन करता है।" दुर्खीम धर्म की उत्पत्ति के दोनों सिद्धांतों का सरलता से खंडन करते हैं।

इन दोनों सिद्धांतों को धर्म के प्रारंभिक स्वरूप स्वीकार नहीं करते क्योंकि यह सिद्धांत केवल भाषा विज्ञान के नियमों पर आधारित हैं। जिनकी वैधता अभी भी पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं है। इस तरह दुर्खीम इन सिद्धांतो को अत्यंत संकुचित मानते हैं। इस सिद्धांत में धर्म के केवल एक पक्ष, प्राकृतिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। इसके दूसरे पक्ष पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया क्योंकि धर्म की उत्पत्ति का कोई सामाजिक कारण न हो यह असंभव है। दुर्खीम के अनुसार प्रकृतिवाद पवित्र एवं साधारण की भी व्याख्या नहीं करता हैं।

3.4.8 टोटमवाद धर्म का प्रारंभिक स्वरूप (Totemism the Elementary Form of Religion)

दुर्खीम ने टोटम को ही धर्म का प्रारंभिक स्वरूप माना है। दुर्खीम का कहना है कि आत्मावाद, प्रकृतिवाद दोनों ही सिद्धांत धर्म की उत्पत्ति को समझाने में असमर्थ रहे हैं। दोनों ही पवित्र एवं साधारण के बीच भेद नहीं कर पाते हैं। दोनों कल्पनाओं को वास्तविकता का नाम देते हैं। दुर्खीम का कहना है कि आत्मा एवं प्रकृति से पृथक अन्य वास्तविकता भी है जो की धार्मिक भावनाओं को जन्म देती है। इन दोनों से अलग भी अन्य पूजा पद्धति है जो वास्तव में अधिक मौलिक और अधिक प्राचीन है जिससे यह दोनों पद्धतियां विकसित हुई हैं। दुर्खीम के अनुसार यह पद्धति टोटमवाद है। दुर्खीम के द्वारा टोटमवाद का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। टोटम शब्द का सबसे पहले प्रयोग **जे.लोंग** ने अपनी पुस्तक में 1791 में भारतीय समाज के संदर्भ में किया था। इसके बाद प्रारंभिक 50 वर्षों में टोटमवाद को केवल अमेरिका की

विशेषता समझा गया। परंतु 1841 में आस्ट्रेलिया में **ग्रे**. नामक विद्वान ने टोटम का वर्णन किया। **मैक्लेनन** ने प्रथम बार यह स्पष्ट किया कि टोटमवाद से ही विकसित धार्मिक व्यवस्थाओं से ही विश्वासों और क्रियाओं का विकास हुआ है। प्राचीन समाज में पाई जाने वाली पशु-पक्षियों एवं पेड़ों के प्रति सम्मान एवं पूजा का विकास भी टोटमवाद से ही हुआ है। मॉर्गन, फ्रेजर, रोबर्टसन स्मिथ, डॉल क्रोज, बोअस, स्वैन्टन, डोरसे, हिलटाउट, मिंडेलेफ स्टीवेंशन आदि विद्वानों ने विभिन्न समाजों में टोटमवाद का अध्यन किया।

दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की **अरुंटा जनजाति** में टोटमवाद का अध्ययन कर धर्म की उत्पत्ति को स्पष्ट किया। अरुंटा जनजाति को उन्होंने अपने अध्ययन के लिए इसलिए चुना क्योंकि यह जनजाति पूर्णताः आदिम है और इसके अंदर प्रचलित टोटमवादी धर्म के आधार पर धर्म के सार्वभौमिक स्वरूप की उत्पत्ति की व्याख्या की जाती है।

3.4.9 टोटम क्या है? (What is Totem)

दुर्खीम के अनुसार टोटम एक नाम है, एक प्रतीक है, एक चिन्ह है, टोटम एक गोत्र समूह का नाम है। टोटम किसी गोत्र समूह से संबंधित वस्तु है। दुर्खीम ने ऑस्ट्रेलिया की अरुंटा जनजाति का अध्ययन किया। ऑस्ट्रेलिया की प्रत्येक जनजातियों में प्रत्येक गोत्र का एक टोटम होता है। यह उनके सामूहिक जीवन में केंद्रीय स्थान रखता है। टोटम के आधार पर ही गोत्र का नामकरण होता है। किसी जनजाति के दो गोत्रों का एक टोटम नहीं हो सकता। दुर्खीम ने अपने अध्ययन के आधार पर गोत्र समूहों की दो विशेषताओं का उल्लेख किया है-

1. गोत्र के सदस्य परस्पर नातेदारी के संबंधों के आधार पर संगठित होते हैं।
2. गोत्र का नाम किसी भौतिक वस्तु के नाम पर होता है, जिसे टोटम कहा जाता है।

दुर्खीम के अनुसार एक टोटम को मानने वालों में परस्पर नातेदारी एवं रक्त के संबंध होते हैं। वह अपनी उत्पत्ति टोटम से मानते हैं। इसलिए ये भाई बहन समझे जाते हैं और वे परस्पर विवाह नहीं करते। प्रत्येक गोत्र अपने टोटम के साथ घनिष्ठता रखता है। हर टोटम का कोई न कोई प्रतीक व चिन्ह होता है। यह कोई भी पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, वनस्पति या वस्तु हो सकती है। कभी-कभी कुछ विशिष्ट अद्भुत वस्तुएं भी टोटम का काम करती हैं। जैसे सूर्य, चंद्रमा, तारे आदि। कभी-कभी कोई पूर्वज या पूर्वज समूह भी टोटम का कार्य करता है।

दुर्खीम के अनुसार "प्रत्येक गोत्र अपनी उत्पत्ति टोटम से मानता है एवं टोटम के प्रति श्रद्धा का भाव रखता है। उसके प्रति निषेधों का पालन करता है। **फिसन** और **होविट** में टोटम को गोत्र का बिल्ला कहा जाता है। यह एक प्रकार का चिन्ह या पदक है। इसे समूह के सदस्य दीवारों पर लगाते हैं। कई बार युद्ध में जाने

से पहले अपनी ढाल, कवच और शस्त्रों पर भी टोटम का चित्र अंकित करते हैं। मृत व्यक्तियों की समाधि के पास ही वृक्षों पर भी टोटम का चिन्ह लगा दिया जाता हैं। टोटम का चिन्ह केवल बाहरी वस्तु पर ही अंकित नहीं किया जाता बल्कि इसका प्रदर्शन कई बार सदस्य अपने शरीर पर भी करते हैं। मकानों की दीवारों, मकबरों, बर्तनों आदि स्थानों पर भी टोटम का चिन्ह अंकित करते हैं और इस तरह ये चिन्ह उनके शरीर का अंग बन जाता है। किसी उत्सव, पर्व एवं संस्कार के अवसर पर लोग टोटम को सारे शरीर पर अंकित करवाते हैं। यदि टोटम पशु है तो उसकी खाल पहनी जाती है और यदि पक्षी है तो उसके पंख सिर पर लगाए जाते हैं। दुर्खीम ने टोटम को प्रारंभिक ज्ञान का केंद्रीय तत्व माना है, टोटम की प्रकृति धार्मिक होती है। टोटम के आधार पर वस्तुओं को पवित्र और साधारण माना जाता हैं। टोटम स्वयं पवित्रता का केंद्र है स्वयं पवित्र है। दुर्खीम के अनुसार टोटमवाद वह विश्वास एवं धारणा है जो किसी गोत्र के सदस्य अपने टोटम के प्रति रखते हैं।

इस प्रकार दुर्खीम टोटमवाद को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "टोटमवाद नैतिक कर्तव्य और मौलिक विश्वासों का वह समूह है जिसके द्वारा समाज पशु, पौधों तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के बीच एक पवित्र और अलौकिक संबंध स्थापित हो जाता है।" आदिवासी यह मानते हैं कि टोटम में अलौकिक शक्ति का निवास है जो उनके सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती है। टोटम से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं, विश्वास एवं संगठन को ही टोटमवाद कहा जाता हैं।

3.4.10 टोटमवाद की विशेषताएं (Characteristics of Totemism)

1. टोटम के साथ गोत्र के लोग अपना गूंढ़, पवित्र तथा अलौकिक संबंध मानते हैं।
2. टोटम शक्ति का प्रतीक है, यह समूह की रक्षा करती है।
3. टोटम व्यक्ति को अपवित्रता से बचने की चेतावनी देता है तथा भावी घटनाओं के विषय में संकेत देता है।
4. गोत्र के सदस्य टोटम को अपना मूल पिता मानते हैं।
5. टोटम के प्रति हमेशा भय, श्रद्धा और भक्ति की भावना रखी जाती है।
6. टोटम को खाना, मारना और हानि पहुंचाना वर्जित होता हैं। टोटम से संबंधित प्रत्येक वस्तु को पवित्र माना जाता है।
7. टोटम के संबंध में जो निषेध होते हैं उनका कड़ाई से पालन किया जाता है और इसका उल्लंघन करने वाले को दंड की व्यवस्था होती है।
8. टोटम सर्वशक्ति संपन्न रहस्यमय शक्ति समझी जाती है जो समूह के संपूर्ण जीवन को नियंत्रित एवं निर्देशित करती है।
9. गोत्र के सदस्य विश्वास करते हैं कि टोटम संकट के समय उनकी रक्षा करता है।
10. टोटम के प्रति लोगों में आदर की भावना पाई जाती है। उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया जाता है।

11. टोटम संबंधी नियमों का उल्लंघन करने वालों की सामाजिक निंदा की जाती है और नियमों का पालन करने वालों को सम्मान दिया जाता है।
12. टोटम सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है। यह एक गोत्र के सदस्यों को नैतिक बंधन में बांधता है।

टोटमवाद के प्रचलित विश्वासों के बाद दुर्खीम इन विश्वासों की उत्पत्ति पर भी प्रकाश डालते हैं। दुर्खीम टोटमवाद को **धर्म की उत्पत्ति का आधार एवं सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक मानते हैं**। दुर्खीम का कहना है कि धार्मिक विचारों की उत्पत्ति सामूहिक एकीकरण के संवेगात्मक अवसर पर होती है। वे मानते हैं कि समस्त सामाजिक तथ्यों का उद्गम मनुष्यों का पारस्परिक संपर्क है। दुर्खीम ने ऑस्ट्रेलिया की आदिम जनजाति अरुण्टा मे मनाए जाने वाले कारोबारी उत्सव के आधार पर सामूहिक एकत्रीकरण द्वारा धार्मिक विचारों की उत्पत्ति को स्पष्ट किया है।

दुर्खीम का कहना है कि कारोबारी के अवसर पर मनुष्य बहुत आनंदित होता है और वह अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाता। यदि कोई दुखद बात होती है तो वह पागलों की भांति चिल्लाते हैं और चक्कर काटते हैं। दुर्खीम ने आदिवासियों के उत्सव और सामूहिक मिलन के अवसर पर होने वाले इन क्रियाकलापों का बहुत ही सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है। सामूहिक एकत्रीकरण अपने आप में एक शक्तिशाली उत्तेजना होती है, जब व्यक्ति समूह में एक दूसरे के निकट आते हैं तो एक बिजली सी उत्पन्न होती है जो उन्हें आनंद के आकाश में उड़ा ले जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति की सुझाव ग्रहणशीलता बढ़ जाती है। संवेग की तीव्रता में चारों ओर अनियंत्रित हाव-भाव शोर शराबा और चीख-पुकार की दुनिया सक्रिय रहती है। पर इस तरह की सामूहिक भावना सामूहिक क्रियाओं को जन्म देती है। इस अवसर पर व्यक्ति अपने स्वयं के व्यक्तित्व को भूल जाता है और उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई नवीन प्राणी है और एक अजीब संसार में भ्रमण कर रहा है। इस तरह एक अजीब और पृथक संसार के क्रियाकलापों में ही धार्मिक विश्वासों और विचारों का जन्म होता हैं। दुर्खीम के ही शब्दों में "अतः यह प्रतीत होता है की इन उद्वेलित सामाजिक परिस्थितियों के बीच और स्वयं इस उफान में से धार्मिक विचार जन्म लेता हैं।"

3.4.11 अरूण्टा जनजाति का अध्ययन

दुर्खीम ने धर्म के सिद्धांत की पुष्टि के लिए ऑस्ट्रेलिया की अरुण्टा जनजाति का अध्ययन प्रस्तुत किया इनका कहना है कि जनजाति लोगों के जीवन का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि धार्मिक अनुभव एक प्रकार की सामूहिक उत्तेजना के कारण होता है। त्योहारों एवं उत्सव पर जनजाति के लोग एक साथ बैठते हैं, प्रत्येक व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है कि सामूहिक शक्ति व्यक्तिगत शक्ति से कहीं अधिक होती है। इससे एक नवीन चेतना या उत्तेजना का निर्माण होता है। इस सामूहिक शक्ति के सामने प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य रूप से झुकना पड़ता है। व्यक्ति समूह की शक्ति के सामने झुकता है। इस तरह से प्रभावित होकर

उसके मन में समूह के प्रति भय, श्रद्धा एवं भक्ति की भावना पनपती है। वह समूह को साधारण से श्रेष्ठ या महान समझने लगता है, वास्तविकता यह है कि यह समूह या समाज ही धार्मिक पूजा का प्रतीक हो जाता है।

दुर्खीम अरुण्टा का जनजातियों के अध्ययन के आधार पर यह बताया कि यहां विशिष्ट संस्कारों के समय लकड़ी या पत्थर के टुकड़ों के कुछ औजारों का प्रयोग किया जाता हैं। इन पर समूह के टोटम का निशान खुदा रहता हैं। इन औजारों को **चरिन्गा** कहा जाता है। चरिन्गा की प्रकृति पवित्र मानी जाती हैं।

3.4.12 धर्म के कार्य (Function of Religion)

दुर्खीम के अनुसार धर्म का स्रोत स्वयं समाज है। धार्मिक विचार समाज की विशेषताओं के अतिरिक्त और कुछ नही है। पवित्र अथवा ईश्वर केवल समाज का मानवीकरण है और धर्म का सामाजिक कार्य सामाजिक एकता की उत्पत्ति वृद्धि और स्थिरता में है। अतः दुर्खीम के अनुसार समाज ही वास्तविक देवता है। ईश्वर है। वह स्वयं लिखता है "मैं देवी शक्ति में समाज की प्रतिछाया और प्रतीकात्मक धारणा से अधिक कुछ नहीं देखता"।

दुर्खीम ने धर्म के निम्नलिखित कार्यो का उल्लेख किया है-

1. धर्म समाज के लोगों को सार्वजनिक एवं सामूहिक जीवन में भाग लेने तथा अनुशासन में रहने की प्रेरणा देने का काम करता है।
2. जो लोग किसी एक विशेष धर्म को मानते हैं, उससे संबंधित संस्कारों का पालन करते हैं, उसमें विश्वास व्यक्त करते हैं, उन सभी में एकता की भावना पाई जाती है। धर्म सामाजिक एकता को बनाए रखने में मददगार होता है।
3. धर्म समूह को पुनर्जीवन प्रदान करता है क्योंकि समाज में धार्मिक उत्सवों का पालन व्यक्ति सामूहिक रूप से करता है और यह सामूहिकता व्यक्ति में नवीन चेतना को जागृत करती है।
4. धर्म संवेगों और भावनाओं को संतुलन प्रदान करने का कार्य करता है।
5. धर्म व्यक्ति के जीवन में समाज की उपयोगिता को सिद्ध करता है।
6. धर्म समाज पर एक आदर्शात्मक प्रभाव डालता है।
7. धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों की संगठित व्यवस्था है और यह व्यवस्था एक धर्म मानने वालों को एक नैतिक समुदाय में बांधती ह।
8. सामाजिक जीवन के अस्तित्व को बनाए रखना और उसकी रक्षा करना धर्म का प्रमुख कार्य है।

दुर्खीम ने यह विवेचना करने का प्रयास किया है कि धर्म समाज में इन कार्यों को कैसे पूरा करता है? दुर्खीम ने ज्ञान के समाजशास्त्र के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि धर्म केवल नैतिक और धार्मिक नियमों की उत्पत्ति का स्रोत ही नहीं है बल्कि वैज्ञानिक और तार्किक चिंतन की उत्पत्ति भी धर्म से हुई है।

इस तरह दुर्खीम का यह ग्रंथ न केवल धर्म की समाजशास्त्री व्याख्या प्रस्तुत करता है बल्कि ज्ञान नैतिकता एवं मूल्यों को भी स्पष्ट करता है। दुर्खीम ने अपने इस ग्रंथ में आत्मा-परमात्मा एवं देवात्माओ आदि से संबंधित विचारों को भी समूहवादी दृष्टिकोण के द्वारा स्पष्ट किया है। दुर्खीम ने अपने इस पुस्तक के अंतिम भाग में सकारात्मक-नकारात्मक एवं शोकात्मक संस्कारों और धार्मिक क्रियाओं की विवेचना की है। दुर्खीम के अनुसार धर्म संपूर्ण सभ्यता का उद्गम है। दुर्खीम धर्म को एक वास्तविकता के रूप में भी स्वीकार करते हैं क्योंकि समाज भी एक वास्तविकता है। धर्म नैतिक जीवन का जन्मदाता है पर वर्तमान समय में परिवर्तन के कारण धार्मिक विश्वासों और क्रियाओं में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। जिससे नैतिक सत्ता कमजोर पड़ती जा रही है। यही कारण है कि आजकल सामाजिक एकता खतरे में पड़ गई है। इसलिए दुर्खीम आधुनिक समाज के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए किसी ऐसी व्यवस्था को आवश्यक मानते हैं जो नवीन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन कर सकें और व्यक्ति के नैतिक आचरण को नियंत्रित व नियमित कर सके। इसमें धर्म अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

3.4.13 धर्म के सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of Theory of Religion)

दुर्खीम ने अपने धर्म के सिद्धांत के द्वारा धर्म की विस्तृत तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। फिर भी अनेक विद्वान ऐसे हैं जिन्होंने की दुर्खीम के धर्म के सिद्धांत की आलोचना प्रस्तुत की है। इन विद्वानों में **रेमंड ऐरन, सोरोकिन बीरस्टिड, हैरी बार्न्स, बोगाडर्स, वाइन,** एवं **मार्टिन डेल** प्रमुख हैं।

रेमण्ड ऐरन (Raymond Aron) ने दुर्खीम के धर्म के सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहा है कि दुर्खीम ने समाज को एक सार्वभौमिक अमूर्त तत्व के रूप में मान्यता देने की बजाय समाजों के आधार पर धर्म की व्याख्या की है। उनका कहना है कि विभिन्न समाज भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्म को जन्म देते हैं, यह उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि इससे छोटे-छोटे समूहों के प्रति लोगों में अंधभक्ति की भावना उत्पन्न होती है और दूसरे समूह के प्रति कटुता पैदा हो सकती है। ऐरन ने लिखा है कि “इस स्थिति में धर्म का सार मनुष्यों के छोटे-छोटे समूहों के प्रति अंध निष्ठा प्रेरित करना या प्रत्येक व्यक्ति की समूह के प्रति आस्था की और उसके फलस्वरूप अन्य समूहों के प्रति विरोध की शपथ लेना होगा।” ऐरन के अनुसार धर्म का यह कार्य समाजशास्त्र की विषय-वस्तु समाज की वास्तविकता का अपमान करना होगा।

1. **सोरोकिन** का मत है कि दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति में सामाजिक संपर्क को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है और प्राणीशास्त्री कारकों की अवहेलना की है। सामाजिक संपर्क मनुष्य की विशिष्ट शारीरिक संरचना का ही परिणाम है। सोरोकिन कहते हैं कि दुर्खीम ने सामाजिक एकत्रीकरण से उत्पन्न उत्तेजनात्मक कार्यक्रमों से प्रतिनिधि विचारों की उत्पत्ति मानी है और यह सामूहिक कार्यक्रम मौसम के अनुसार होते हैं। इस प्रकार से तो जलवायु एवं भौगोलिक कारक विचारों की उत्पत्ति के लिए उत्तरदाई होते हैं।
2. सोरोकिन के अनुसार सामाजिक संपर्क मनुष्य की विशिष्ट शारीरिक संरचना का ही परिणाम है। उन्होंने लिखा है कि "चूहे और चिड़िया उतनी ही अंतःक्रिया कर सकती हैं जितनी तुम चाहो और फिर भी उनकी अंतःक्रियाएं धार्मिक प्रतिमानों अथवा अवधारणाओं जैसी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकती।"
3. रॉबर्ट बीरस्टेट ने टोटमवाद की व्याख्या के अनावश्यक और उलझे हुए विस्तार की आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि यह अनेक पृष्ठों तक चलता है जिनमें से कुछ यह स्वीकार करना चाहिए, विश्वास और विचार, संस्कार और अनुष्ठान के विस्तृत विवरण के कारण नीरस हो गए हैं।
4. **हैरी एल्मर बार्न्स** के अनुसार दुर्खीम की धर्म के संबंध में अनेक मान्यताएं निराधार है। ईश्वर और समाज एक नहीं है। सामूहिक क्रियाएं केवल संपर्क की घनिष्ठ और घनत्व के बढ़ने से पवित्रता को जन्म नहीं दे सकती। **बार्न्स** के अनुसार अधिकांश धार्मिक अनुभव एकांत चिंतन का परिणाम होते हैं।
5. दुर्खीम ईश्वर को समाज का प्रतिनिधि मानता है किंतु ईश्वर केवल मानव का ही नहीं प्रकृति का भी संचालक और नियंत्रक है। समाज में ईश्वर के तत्व होते हुए भी व्यक्ति ईश्वर के स्थान पर समाज की पूजा और आराधना नहीं करता है।
6. यह सही है कि सामूहिक उत्तेजना सामूहिक एकत्रीकरण के कारण होती है। सामूहिक उत्तेजना ही धार्मिक विचारों को जन्म देती है किंतु एकांत चिंतन और मनन तथा ईश्वर में ध्यान एवं लीन होना भी धर्म का एक अंग है। जिसे दुर्खीम स्वीकार नहीं करते।

उपरोक्त अनेक आलोचनाओं के बाद भी दुर्खीम का यह ग्रंथ उनकी समाजशास्त्री मान्यताओं की विस्तृत विवेचना है। हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि दुर्खीम के धर्म संबंधी विचारों में कुछ कमियां हैं परंतु हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि धर्म के सामाजिक पक्ष को उजागर करके दुर्खीम ने अद्वितीय कार्य किया है। उनका यह ग्रंथ समाजशास्त्रीय साहित्य में एक अनमोल निधि है। उनके द्वाराप्रकार्य वादी दृष्टिकोण की आधारशिला रखी गई है। यह ग्रंथ सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में पथ प्रदर्शक ग्रंथ है।

यांत्रिकी एवं सावयवी एकता का सिद्धांत

3.4.15 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज के बिना नहीं रह सकता। उसके स्वभाव में सामाजिकता होती है। वह अपनी आवश्यकताओं के कारण भी सामाजिक होता है। उसे समाज सुरक्षा प्रदान करता है एवं उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अर्थात समाज में किसी न किसी प्रकार से एकता पाई जाती है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको समाज के अनुरूप बनाता है, समाज के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास करता है, इससे उसमें सामूहिक चेतना उत्पन्न होती है और यह सामूहिक चेतना जितनी दृढ़ होती है, समाज में एकता भी उतनी ही दृढ़ होती है। दुर्खीम ने सामाजिक एकता को एक व्यापक अर्थ में लिया है, हालांकि सामाजिक एकता की अवधारणा केवल दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत नहीं की गई है बल्कि अनेक विचारको जैसे **प्लेटो, अरस्तु, फर्गुसन, सेंट साइमन, एडम स्मिथ, अगस्त कॉम्ट** और **हरबर्ट स्पेंसर** ने भी अपने लेखों और रचनाओं में सामाजिक एकता का उल्लेख किया है। परंतु दुर्खीम ने इसे नए रूप में प्रस्तुत किया। इनके अनुसार सामाजिक एकता का अर्थ समाज की विभिन्न इकाइयों में समायोजन से है। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता पूर्णतः एक नैतिक घटना है क्योंकि इसके द्वारा ही समाज में सहयोग एवं सद्भावना को बढ़ावा मिलता है।

3.4.16 सामाजिक एकता का अर्थ

सामाजिक एकता की अवधारणा दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत की गई हालांकि दुर्खीम से पहले अनेक समाजशास्त्रियों एवं अन्य विचारकों के द्वारा अपने लेखों और रचनाओं में सामाजिक एकता का प्रयोग किया गया था। इनमें प्लेटो, अरस्तु, फर्गुसन, एडम स्मिथ, सेंट साइमन, अगस्त कॉम्ट तथा स्पेंसर प्रमुख हैं। इन विद्वानों के अनुसार सामाजिक एकता का अर्थ समाज की विभिन्न इकाइयों में समायोजन है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें समाज के विभिन्न इकाइयां अपने कार्यों को पूरा करते हुए समाज में संतुलन बनाए रखती हैं। सामाजिक एकता नैतिक घटना है क्योंकि इसके द्वारा समाज के सदस्यों के बीच पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावना को बढ़ावा मिलता है। सामाजिक एकता एक अमूर्त अवधारणा है इसे देखा नहीं जा सकता बल्कि इसके प्रभाव एवं परिणामों का अनुभव किया जाता है। सामाजिक एकता एक सापेक्षिक अवधारणा है क्योंकि न तो किसी समाज में पूर्ण रूप से सामाजिक एकता की स्थिति रहती है और न ही किसी समाज में पूर्णतःविघटन की स्थिति पाई जाती है।

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता का अध्ययन समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक सामाजिक तथ्य है। सामाजिक एकता एक प्रथम श्रेणी का सामाजिक तथ्य है उसके बावजूद यह व्यक्तिगत जीवन पर भी आधारित है। दुर्खीम ने सामाजिक एकता का महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी

पुस्तक 'सोशल डिवीजन ऑफ लेबर' (Social Division of Labour) के प्रथम भाग में एकता का विश्लेषण किया। इस पुस्तक में सामाजिक जीवन के तीन महत्वपूर्ण पक्ष बताए गए हैं और यह तीनों पक्ष एक दूसरे से संबंधित हैं-

1. सामाजिक एकता (Solidarity or Unity of Society)
2. श्रम विभाजन (Division of Labour)
3. सामाजिक विकास (Social Evolution)

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है और यह परिवर्तन सावयवी एकता और यांत्रिक एकता के रूप में देखने को मिलता है।

3.4.17 सामाजिक एकता की विशेषताएं (Chareacteristics of Social Solidarity)

सामाजिक एकता प्रत्येक समाज की एक अनिवार्य आवश्यकता है। कोई भी समाज तब तक कायम नहीं रह सकता जब तक उसमें सामाजिक एकता न हो। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है और यह परिवर्तन सावयवी एकता एवं यांत्रिक एकता के रूप में देखने को मिलता है। सामाजिक एकता की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. सामाजिक एकता एक अमूर्त तत्व (Social Solidarity is Astract Phenomena)

सामाजिक एकता अमूर्त तत्व है। इसे इसके परिणामों एवं प्रभाव के द्वारा ही जाना जाता है। सामाजिक एकता नैतिक आदर्शों एवं परंपराओं में निहित होती है। जिसे न हम देख सकते हैं और न ही छू सकते हैं। इसे केवल सदस्यों की मानसिक स्थिति के आधार पर अनुभव किया जा सकता है। इसलिए सामाजिक एकता की विशेषता अमूर्त तथ्य है।

2. नैतिक तथ्य (Moral Phenomena)

सामाजिक एकता को नैतिक घटना या नैतिक दशा कहा जा सकता है। इसमें व्यक्तियों के नैतिक विकास की अभिव्यक्ति होती है। **ए. के. सिन्हा** एवं **क्लोस्टर मायर** (A.K.Sinha and klostermair) के अनुसार "सामूहिक एकता व्यक्तियों के नैतिक विकास की अभिव्यक्ति होती है। यह व्यक्तियों को आत्म अनुशासित बनाती है, नैतिकता के कारण मनुष्य की संतुष्टि में वृद्धि होती है।" दुर्खीम ने कहा है "सामाजिक एकता पूर्ण रूप से एक नैतिक घटना है। नैतिक एकता पारस्परिक संबंधों को घनिष्ठ बनाती है। संबंधों की विभिन्नताओं को आत्मसात करने के लिए सहिष्णुता एवं उदारता में वृद्धि करती है। दुर्खीम के अनुसार किसी

भी समाज के सदस्य जितने अधिक एक होंगे उतने ही अधिक वे पारस्परिक संबंधों की विभिन्नताओं को बनाए रखेंगे।

3. गतिशील तथ्य (Dynamic Phenomena)

दुर्खीम के अनुसार जनसंख्या के स्वरूप एवं श्रम विभाजन के स्वरूप के अनुसार सामाजिक एकता के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। श्रम विभाजन की प्रकृति के अनुरूप ही सामाजिक एकता की प्रकृति में परिवर्तन होता है।

4. सामाजिक एकता का मापन कठिन है (Measurements Difficult)

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता के अमूर्त नैतिक एवं गतिशील होने के कारण इसका मापन कठिन है क्योंकि सामाजिक एकता अनेक तथ्यों से प्रभावित होती है और कई बार विपरीत परिस्थितियों के कारण अपने आप उत्पन्न होती है। इसलिए इसका पूर्वानुमान लगाना कठिन है।

5. सामाजिक स्वास्थ्य का प्रतीक (Sign of Social Health)

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता सामाजिक स्वास्थ्य का प्रतीक होती है। जिस समाज में एकता होती है। वहां के लोग मानसिक रुप से संतुष्ट होते हैं, व्यक्ति की मानसिक संतुष्टि उसके स्वस्थ होने का प्रमाण होती है।

3.4.18 कानून एवं एकता (Law and Solidarity)

दुर्खीम ने समाज में पाई जाने वाली वैधानिक व्यवस्था को स्वीकार किया है। उनका कहना है कि वैधानिक व्यवस्था ही वह शक्ति है जिसके माध्यम से सामाजिक एकता को स्थापित किया जा सकता है। दुर्खीम के अनुसार वैधानिक कानून समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करते हैं। संबंध जितने घनिष्ट होते हैं वहां उतनी ही अधिक एकता देखने को मिलती है। हर समाज की कानूनी व्यवस्था होती है। दुर्खीम ने कानूनों का वर्गीकरण प्रत्येक प्रकार के कानून से संबंधित सामाजिक एकता के प्रकारों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने प्रमुख रूप से दो प्रकार के कानून का उल्लेख किया है-

1. **दमनकारी कानून (Law of Repressive)** - दुर्खीम के अनुसार दमनकारी कानून आदिम समाजों में पाए जाते थे। दमनकारी कानून सार्वजनिक कानून होते हैं जो व्यक्ति और राज्य के संबंधों का नियमन करते हैं। इसमें व्यक्ति के बजाय सामूहिक हितों को अधिक महत्व दिया जाता है। इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य समाज के नैतिक मूल्यों की रक्षा करना और सामूहिक उड़ेश्यों का आदर

करना होता था। ये कानून समाज को वंश परंपरा के द्वारा प्राप्त होते थे और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। दुर्खीम के अनुसार दमनकारी कानून के भी दो प्रकार होते हैं-

A. **दंडकारी कानून (Penal Law)-** इनका संबंध कष्ट देने, हानि पहुंचाने, हत्या करने एवं स्वतंत्रता का हनन करने से है।
B. **व्याप्त कानून (Diffused Law) -** यह वह कानून है जो संपूर्ण समूह में नैतिकता के आधार पर व्याप्त रहते हैं।

2. **प्रतिकारी कानून (Restitutive Law)**

दुर्खीम के अनुसार प्रतिकारी कानून आधुनिक युग की विशेषता है और इन कानूनों को सुविधा मुलक कानून के नाम से भी जाना जाता है। इनका उद्देश्य व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों में उत्पन्न असंतुलन में सामान्य स्थिति को उत्पन्न करना है। इसके अंतर्गत दीवानी कानून, व्यवसाय कानून, संवैधानिक कानून एवं प्रशासनिक कानून आते हैं।

3.4.19 सामाजिक एकता के स्वरूप (Forms of Social Solidarity)

दुर्खीम का कहना है कि समाज में दो प्रकार के कानून विभिन्न प्रकार की सामाजिक एकता एवं जीवन-शैली के परिणामों का द्योतक है। दमनकारी कानून व्यक्तियों में व्याप्त समानता का प्रतीक है। इससे जो एकता उत्पन्न होती है उसे यांत्रिकी एकता कहा जाता है। प्रतिकारी कानून का संबंध समाज में विभिन्नताओं एवं श्रम विभाजन से है। इसके द्वारा जो एकता होती है उसे सावयवी एकता कहते हैं। इस प्रकार दुर्खीम ने सामाजिक एकता के दो स्वरूपों की चर्चा की है-

A. यांत्रिकी एकता (Machanical Solidarity)
B. सावयवी एकता (Organic Solidarity)

A. यांत्रिकी एकता (Mechanical)

दुर्खीम के अनुसार यांत्रिकी एकता का आधार समानता व एकरूपता है। दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के प्रथम व द्वितीय अध्याय में यांत्रिकी एकता की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। जिन समूह में स्थितियों एवं कार्यों में अधिक समानता पाई जाती है वहां व्यक्ति की प्रधानता न होकर समूह की प्रधानता होती है और विभिन्नता की अपेक्षा समानता का प्रभाव अधिक होता है। सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक समानता यांत्रिकी एकता का लक्षण है। सामाजिक एकता का प्रारूप उस समाज में पाई जाने वाली न्यायिक व्यवस्था पर भी निर्भर है। दुर्खीम के अनुसार जिस प्रकार की आचार संहिता समाज में पाई जाती है उसी के अनुरूप उस समाज में एकता पाई जाती है। दुर्खीम के अनुसार एकता आदिम समाजों में अथवा सभ्यता एवं सांस्कृतिक

विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए समाजों में अधिक पाई जाती है। इन समूहों के सदस्यों में पाई जाने वाली समानताएं इनकी एकता का आधार है। सरल आदिम एवं प्राचीन समाजों का आकार बहुत छोटा होता था। इनकी आवश्यकताएं भी कम होती थी और लगभग समान होती थी। इन समाजों के लोगों में प्रस्थितियों और भूमिकाओं में आचार-विचार, धारणाओं, विश्वासों और जीवन शैलियों आदि में विभिन्नता न के बराबर पाई जाती थी। समाज के सदस्यों में मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक आधारों पर समानता पाई जाती थी। इन समाजों में प्रथा, परंपरा, धर्म एवं जनमत का दबाव अधिक रहता है और नियंत्रण भी इन्हीं का रहता था। अर्थात यह मनुष्य को नियंत्रित एवं निर्देशित करते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यंत्र के समान सामूहिक मान्यताओं के अनुरूप आंख मूंदकर इनका पालन करता रहता है। इस एकता में व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के व्यक्तित्व में इतना घुल मिल जाता है कि व्यक्ति के व्यक्तिगत अस्तित्व का कोई भी महत्व नहीं होता। इसमें व्यक्ति अपनी मौलिकता, इच्छा और प्रेरणा आदि सभी का त्याग कर देता है तथा वह समूह के लिए जीना प्रारंभ कर देता है। वह यंत्रवत सोचता है, कार्य करता है, और आज्ञाओं का पालन करता है। इस आचरण से स्थापित एकता को यांत्रिक एकता कहा जाता है। **दुर्खीम** के अनुसार “सामाजिक एकता वह एकता है जो व्यक्तियों द्वारा एक जैसे कार्यों के कारण आती है। जो समरूपता का परिणाम है। यह एक सरल प्रकार की एकता है और दमनकारी कानून के द्वारा बनाई जाती है।”

दुर्खीम ने **दमनकारी कानून** और **यांत्रिकी एकता** को परस्पर संबंधित माना है। उनके अनुसार यांत्रिक सामाजिक व्यवस्था के लिए दमनकारी कानून का प्रचलन होता हैं। यह कानून आदिम समाजों में पाया जाता है। इच्छा के विरुद्ध कार्य करना अपराध समझा जाता है। इसके अनुसार यदि समाज में व्यक्ति सामूहिक इच्छा का उल्लंघन करते हैं या जिससे सामूहिक चेतना को आघात पहुंचता है अपराध माना जाता है। उसे दंडित किया जाता है। इस प्रकार के दंड का उद्देश्य सामूहिक परंपराओं एवं मान्यताओं की रक्षा करना होता है क्षतिपूर्ति करना नहीं। इन समाजों में नैतिक एवं वैधानिक उत्तरदायित्व भी सामूहिक होते हैं और सामूहिक व वैधानिक पद भी वंश परंपरा के अनुसार मिलता चला जाता है।

इस संबंध में दुर्खीम ने अपनी पुस्तक **‘द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी’ (The Division of Labour in Society)** में लिखा है। समाज में इस प्रकार की सामाजिक एकता पाई जाती है जो कि उस समाज के सभी सदस्यों में समान रूप से पाए जाने वाले विचारों या अनुभूतियों से उत्पन्न होती है। भौतिक रूप से दमनकारी कानून इसी प्रकार की सामाजिक एकता की स्थिति में पाया जाता है कम से कम तो उस सीमा तक अवश्य ही जहां तक वह अनिवार्य होता हैं। समाज के सामान्य संगठन में इसका क्या महत्व या योगदान होगा। संबंधों में जितनी अधिक विभिन्नता पाई जाती है समाज उतने ही अधिक ऐसे सूत्रों को उत्पन्न करता है जो व्यक्ति को समूह से जोड़ देते हैं और इसके परिणामस्वरुप समाज में उतनी ही अधिक सामाजिक

एकता उत्पन्न होती है। लेकिन इस प्रकार के कितने संबंध उत्पन्न होंगे इसका अनुपात दमनकारी कानून पर निर्भर होता है।

दुर्खीम ने अपराध और दंड की जो व्याख्या की है। वह एकता के रूप पर भी प्रकाश डालती है क्योंकि एकता का समाज में स्थापित कानूनों से घनिष्ठ संबंध होता है। दंड समाज की अपराध के प्रति की गई प्रतिक्रिया ही है कि दंडित व्यक्ति को देखकर, उसकी स्थिति को देखकर समाज के अन्य सदस्य सीख ले, सबक लें कि अपराध करने के क्या परिणाम होते हैं। क्योंकि अपराध की प्रकृति सामाजिक है इसलिए दंड की प्रकृति भी सामाजिक है। अपराध सामूहिक भावनाओं पर चोट करके समाज के सदस्यों के भीतर मौजूद आत्मा को सावधान कर देता है। दंड सामूहिक भावनाओं की रक्षा करने उनकी पुनः प्रतिष्ठा करने अपराधी से बदला लेने के लिए समूह को एकता के सूत्र में पिरोता है। यह एकता समान उत्तेजनाओं एवं समान प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। दमनकारी कानून समाज की इस प्रकार की एकता को प्रकट करते हैं जिसे दुर्खीम ने **यांत्रिकी एकता** का नाम दिया है।

1. यांत्रिकी एकता की विशेषताएं

दुर्खीम ने यांत्रिकी एकता की निम्नलिखित विशेषताएं बताई हैं-

1. तीव्र सामूहिक चेतना (Collective Conscience) - मानव एक विवेकशील प्राणी है पर उसका विकास तभी संभव है जब उसके पास अनुकूल परिस्थितियां हो। यदि हम आदिम समाज को देखें तो पाते हैं कि आदिम मानव समाज की प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों के कारण विवेक की अपेक्षा मूल प्रवृतियों से अधिक प्रेरित होते हैं। वे स्वतंत्रता की मांग नहीं करते, तर्क नहीं करते और न ही अपनी बुद्धि और विवेक का प्रयोग करते हैं। इसलिए उनकी प्रकृति में सामूहिक चेतना का स्थाई निवास हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यक्ति का व्यवहार सामूहिक चेतना के विरुद्ध होता है तो पूरा समाज उसके विरुद्ध हो जाता है और उस व्यक्ति को कठोर से कठोर दंड दिया जाता है। ऐसा तीव्र सामूहिक चेतना के कारण होता है। यांत्रिक की एकता में व्यक्तिगत विवेक स्थाई भावों इच्छाओं आदि का कोई महत्व नहीं होता। इनसब पर सामूहिक चेतना का नियंत्रण रहता है।

2. व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंत - यांत्रिक एकता के अंतर्गत समाज व्यक्ति पर अपना नियंत्रण इस प्रकार रखता है कि उसके व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं रह जाता। शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से प्रकृति ने किसी को भी एक समान नहीं बनाया है पर यांत्रिकी एकता में दमनकारी कानून के द्वारा सबको समान होने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। हालांकि दुर्खीम ने तर्क दिया है कि प्रतिभा विवेक तर्क को अधिक समय तक नियंत्रण में नहीं रखा जा सकता। इसलिए यह स्थिति ज्यादा समय तक नहीं चल सकती। आधुनिक समय में हम यह परिवर्तन देख ही रहे हैं। दुर्खीम व्यक्ति से समाज को श्रेष्ठ तो मानते हैं पर यांत्रिकी एकता वाले

समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व का सामूहिक चेतना पर बलि चढ़ जाना उन्हें स्वीकार नहीं था। इसलिए इस एकता को उन्होंने जीवन रहित बताया था। ऐसे समाजों में कोई परिवर्तन नहीं होता, नवीन अविष्कार नहीं होते और व्यक्तिगत चेतना की अभिव्यक्ति सामाजिक चेतना के ही अनुरूप होती है। ऐसे समाजों में व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं होते हैं और अधिकारों की मांग को दमनकारी कानून द्वारा कुचल दिया जाता था। ऐसे में व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंत हो जाता है। उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता और उसे यंत्रवत चलना पड़ता है।

B. दमनकारी कानून (Repressive Law) - दमनकारी कानून द्वारा समाज का नियंत्रण यांत्रिकी एकता वाले समाज में व्यक्ति पर समाज का कठोर नियंत्रण होता है। दुर्खीम यह मानते हैं कि यांत्रिकी समाज की सुदृढ़ता विश्वास एवं संवेगों के कारण है। उनकी दृष्टि में यदि कोई व्यक्ति समाज के विश्वास एवं संवेगों को आघात पहुंचाता है तो वह अपराध है और अपराधी को दंड देने का काम समाज करता है। समाज व्यक्ति का नियंत्रण करने के लिए अनेक कठोर व्यवस्था और साधनों का प्रयोग करता है। इसलिए समाज में दमनकारी कानूनों की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य समाज में दृढ़ता को बनाए रखना होता हैं। इसलिए सर्वत्र दंड संहिता दिखाई देती है। सामूहिक चेतना, विरोधी कार्य अथवा विचार को कठोरता पूर्वक दबा दिया जाता है।

1. धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका (Importance of Religion) - यांत्रिकी एकता वाले समाजों में धर्म की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। धार्मिक रीति-रिवाज, प्रथाएं, परंपराएं, अनुष्ठान, टोटम आदि पवित्र माने जाते हैं। ईश्वरी प्रकोप की कल्पना से जन समूहों में भय उत्पन्न कर दिया जाता है। जिससे कि उसके विरुद्ध कोई कार्य या व्यवहार न करें सामूहिक चेतना को सर्वशक्तिमान माना जाता है और उसके विरुद्ध कार्य करना पाप कहलाता है। व्यक्तियों की सामूहिक चेतना के प्रति विश्वास और निष्ठा बनी रहे। इसलिए टोटम एवं पवित्र शक्ति की कल्पना की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है की वह उसी के अनुसार चलें।

2. खंडात्मक रचना (Segmental Structure) - यांत्रिकी एकता वाले समाज की एक प्रमुख विशेषता खंडात्मक सामाजिक संरचना है। इसके अनुसार यांत्रिकी एकता वाले समाज में इकाई व्यक्ति नहीं बल्कि समूह होते हैं। जो रक्त संबंधों में विश्वास रखते हैं और अपने आपको दूसरों से पवित्र मानते हैं। व्यक्ति अपने समूह से बंधा रहता है प्रत्येक समूह आत्मनिर्भर होता है। उसके अपने कुछ नियम होते हैं और इन्हीं नियमों के कारण वह दृढ़ एकता के सूत्र में बंधा रहता है। इस खंडात्मक संरचना को दुर्खीम ने होर्ड का नाम दिया है। आगे चलकर यही समूह बृहद समाज का अंग बन जाता है। यहां इसकी स्वायत्तता स्थाई रूप से बनी रहती है। यहां पर समाज का नियंत्रण व्यक्ति पर नहीं खंड या समूह पर रहता है। व्यक्ति का संबंध समूह से और समूह का व्यक्ति से होता है। इस तरह से पूरे समाज में समरूपता बनी रहती है जो कि सामूहिक एकता को बनाए रखती है।

3. विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था (Specific Political System) - दुर्खीम कहते हैं कि यांत्रिक एकता वाले समाजों में जनमत में भी समरूपता पाई जाती है। जब कोई व्यक्ति या समूह समाज का प्रतिनिधि बनकर सत्ता अपने में हाथ लेता है तो जनसमूह उस सत्ता की आज्ञा का पालन करते हैं। व्यक्ति का कहीं कोई अधिकार नहीं होता प्रजा व राजा के बीच संबंध सद्भावपूर्ण नहीं होते बल्कि अधिकारवादी एवं यांत्रिकी होते हैं। दुर्खीम ने यांत्रिकी समाज में एकता का विवेचन कई कारकों के द्वारा किया है। दुर्खीम ने समाज को सामूहिक आत्मा माना है जो प्रत्येक व्यक्तिगत आत्मा के अंदर मौजूद होती है। इसी सामूहिक आत्मा के कारण लोगों में यांत्रिकी एकता उत्पन्न होती है। इसका निर्माण समूह की सामान्य भावनाओं एवं आदर्शों के आधार पर होता है। समूह के सदस्यों में पाई जाने वाली समानताओं सामान्य प्रकृति के आधार पर यांत्रिकी एकता की उत्पत्ति होती है।

3.4.20 सावयवी एकता (Organic Solidarity)

दुर्खीम की सावयवी एकता का आधार यांत्रिकी एकता के विपरीत है। दुर्खीम के अनुसार सावयवी एकता संविदा गत सुदृढ़ता पर निर्भर करती है। दुर्खीम ने सावयवी एकता को बढ़ते हुए श्रम विभाजन से जुड़ा है। उनका कहना है कि जितना अधिक श्रम विभाजन होगा। उतना ही अधिक सावयवी एकता होगी। सावयवी एकता आधुनिक जटिल विकसित और औद्योगीकृत समाजों में पाई जाती है। ऐसे समाजों में प्रतिकारी कानूनों की प्रधानता होती हैं और ये व्यक्ति को समूह के साथ प्रत्यक्ष रुप से जोड़ते हैं। क्योंकि विभिन्नता एवं विशिष्टता के कारण समूह का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्यों के कार्यों में लाभ पहुंचाता है। विभिन्नता युक्त आधुनिक समाजों में लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है और विशेषीकरण के कारण हर व्यक्ति केवल एक कार्यकारी विशेषज्ञ नहीं होता है बल्कि दूसरे कार्यों के लिए समाज के अन्य सदस्यों पर भी निर्भर रहना पड़ता है। समाज के सदस्यों के बीच यह पारस्परिक निर्भरता और विशेषीकरण से उत्पन्न असमानता उन्हें एक दूसरे के निकट लाने के आने के लिए बाध्य करती है। जिससे समाज में एक विशेष प्रकार की एकता स्थापित हो जाती है और इसी एकता को दुर्खीम सावयवी एकता कहते हैं।

इस प्रकार की एकता को दुर्खीम ने सावयवी एकता की संज्ञा इसलिए भी दी है क्योंकि यह एकता प्राणियों के शरीर में पाई जाने वाली एकता से मिलती जुलती है। सावयवी एकता शारीरिक एकता के समान है। जिस तरह से एक मनुष्य के शरीर का निर्माण आंख कान नाक हाथ पैर मुंह पेट आदि विभिन्न अंगों के मिलने से होता है और शरीर के इन सभी अंगों के कार्य विभिन्न होते है।ं यह सभी अंग अपना कार्य भी कर सकते हैं जबकि यह परस्पर जुड़े हो आंख और कान शरीर से अलग होकर अपना कार्य नहीं कर सकते। इस तरह हम यह देखते हैं कि शरीर के विभिन्न अंगों के बीच जो एकता पाई जाती है। वह पारस्परिक निर्भरता के कारण ही उत्पन्न होती है। ठीक यही स्थिति समाज में व्यक्तियों के साथ होती है। आधुनिक समाज में श्रम

विभाजन एवं विशेषीकरण होते हुए भी व्यक्ति एवं व्यक्ति में समूह व्यक्ति एवं समूह में तथा समूह एवं समूह में पारस्परिक संबंध पारस्परिक निर्भरता एवं एकता है और यही सावयवी एकता की स्थिति हैं।

दुर्खीम का कहना है कि परिवार, व्यवसाय, सरकार आदि में जो एकता और संगठन हमें दिखाई देता है वह इन सबसे संबंधित व्यक्तियों में पाई जाने वाली समानताओं के कारण नहीं है। यह एकता ठीक उसी प्रकार की है जो किसी सावयव के विभिन्न अंगों में पाई जाती है। यह विभिन्न अंगों के सहयोग के आधार पर ही उत्पन्न होती हैं। जिससे संपूर्ण सावयव में संतुलन बना रहता है और वह सावयव क्रियाशील रहता है। इसी एकता को दुर्खीम ने सावयवी एकता का नाम दिया है। इसका कारण यह है कि इस एकता की उत्पत्ति किसी सावयव के विभिन्न अंगों के बीच पाए जाने वाले श्रम विभाजन एवं सहयोग से होती है। आधुनिक समाजों में श्रम विभाजन के कारण ही सावयवी एकता पाई जाती है और प्रतिकारी कानून इसी एकता को स्पष्ट करते हैं। दुर्खीम का यह मानना है कि श्रम विभाजन से उत्पन्न सावयवी सामाजिक एकता ही वास्तव में श्रम विभाजन का प्रकार है।

दुर्खीम के अनुसार सावयवी समाज की अवधारणा उद्विकास का परिणाम है। समाज के विकास के प्रारंभिक वर्षों में बहुत सीमित होती थी और इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य श्रम विभाजन के द्वारा हुई हो जाती थी। जैसे-जैसे समाज की आवश्यकता बढ़ी समाज का विभेदीकरण भी बढ़ा और विभेदीकरण के कारण श्रम विभाजन भी विकसित हुआ, इसके साथ जटिलताएं भी बढ़ते हुए विभेदीकरण ने श्रम विभाजन को बढ़ाया। जिसके परिणामस्वरुप सावयवी समाज का उद्भव हुआ।

3.4.20 सावयवी समाज की विशेषताएं (Characteristics of Organic Solidarity)

दुर्खीम कहते हैं कि जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि तथा जनसंख्या के नैतिक घनत्व में वृद्धि यह दो प्रमुख कारण श्रम विभाजन को त्वरित गति देते हैं। जिससे यांत्रिकी समाज सावयवी का स्वरुप ग्रहण करता है। इस प्रकार समाज की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. विभेदीकरण की जटिल प्रक्रिया - सावयवी समाज की आवश्यकताए बराबर बढ़ती रहती है। जितना अधिक समाज में विशिष्टीकरण होगा उतनी अधिक समाज की विशिष्ट आवश्यकताए होंगी। वास्तविकता यह है कि विशिष्टीकरण की अधिकता ही समाज में विभेदीकरण और विभेदीकरण मुख्यतः श्रम विभाजन के द्वारा आता है और यही सावयवी समाज की प्रमुख विशेषता है।

2. समाज के विभिन्न अंगों एवं व्यक्तियों में अन्योन्याश्रयन की वृद्धि - औद्योगिक समाज की बहुत बड़ी विशेषता इसकी प्रकार्यात्मक निर्भरता है। समाज में कोई भी कार्य अपने आपमें पूर्ण नहीं है। हर काम एक दूसरे पर निर्भर होता है। उदाहरण के लिए यदि सूरत में स्थित कारखाने में कच्चे माल के लिए पूरे दुनिया पर

निर्भर है और एक कारीगर के काम को दूसरा कारीगर आगे बढ़ाता है। यह सिलसिला वस्तु को बाजार में उपभोक्ता तक पहुंचाता है। इस तरह से गांव के एक साधारण से श्रमिक आदमी की मेहनत संपूर्ण राष्ट्र तक पहुंचती है। दुर्खीम इस कार्य को प्रकार्यात्मक निर्भरता कहते हैं। सावयवी समाज में विविधता होते हुए भी प्रकार्यात्मक निर्भरता के कारण संपूर्ण समाज में संबद्धता पाई जाती है।

3. श्रम विभाजन में वृद्धि तथा विभिन्न व्यवसायों और पेशों का विकास - दुर्खीम के अनुसार, सावयवी समाज में एक प्रकार का गतिशील घनत्व होता है। इससे उनका तात्पर्य यह था कि यदि समाज में विभेदीकरण होता है तो इसके परिणामस्वरुप समाज के व्यक्तियों में प्रभावपूर्ण संपर्क होते हैं। सावयवी समाज में व्यक्ति खुले रुप में मिलते हैं। वास्तव में सावयवी समाज कई खंडों में बढ़ जाता है और एक खंड दूसरे खंड से प्रकार्यात्मक रुप से जुड़ा होता है। दुर्खीम का यह भी कहना है कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि घनत्व की गतिशीलता भौतिक घनत्व पर निर्भर करती है और भौतिक घनत्व तभी अधिक होता है जब बड़ी संख्या में लोग एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। अतः यह कहा जाना चाहिए की सामाजिक विभेदीकरण समाज के सदस्यों में वृद्धि यानी जनसंख्या वृद्धि के कारण होता है।

4. सामूहिक प्रतिनिधान

दुर्खीम ने सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा का प्रयोग केवल श्रम विभाजन के लिए ही किया हो ऐसा नहीं है । उन्होंने सामाजिक तथ्यों और धर्म के समाजशास्त्र में भी इसका उपयोग किया है। इस अवधारणा का संबंध अपने मूल में सावयवी समाज के साथ है। समाज में लोगों की जो विचार संवेग अनुबंध रीति-रिवाज आदि होते हैं। इन सब की अभिव्यक्ति सामूहिक प्रतिनिधियों में होती है। सामूहिक प्रतिनिधि एक प्रकार से सावयवी समाज की साझा संस्कृति होती है।

3.4.22 प्रतिकारी कानून

आधुनिक समाज या सावयवी एकता में प्रतिकारी कानून पाया जाता है। आधुनिक समय में समाज में धन का उतना अधिक महत्व नहीं होता है जितना की व्यक्तिगत हानि का अपराधों का स्वरूप समाज के विरुद्ध होकर व्यक्ति के विरुद्ध हो जाता है। इसीलिए कानून दमनकारी न रहकर प्रतिकारी हो जाता है। इस प्रकार आधुनिक समाज में पाई जाने वाली एकता का प्रतिकारी कानून द्वारा ही प्रतिनिधित्व होता है। इस प्रकार कानून समस्त सामाजिक तथ्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य सामाजिक एकता का निर्देशक बन जाता है।

यहां यह वर्णन करना आवश्यक लग रहा है कि परिवर्तन का क्रम यांत्रिकी एकता से सावयवी एकता की ओर होता है। परिवर्तन धीरे-धीरे होता है, परिवर्तन का यह क्रम यांत्रिक सामाजिक एकता से सावयवी

सामाजिक एकता की ओर होता है। समाज में दमनकारी कानून की जगह प्रतिकारी कानून आ जाता है। **सारोकिन** ने दुर्खीम के इस विचार को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आदिम समाज में जनमत के बारे में दृढ़ एकमत पाया जाता था तथा यह एकता नैतिक एवं मानसिक समरूपता पर आधारित होते हुए यांत्रिक एकता का निर्माण करता है। आधुनिक समाजों में व्यक्तियों में समानता नहीं पाई जाती है बल्कि श्रम विभाजन और विशेषीकरण के आधार पर व्यक्तियों को अधिक महत्व मिलने लगता है। इस तरह समाज में पायी जाने वाली एकता का स्वरूप सावयवी हो जाता है।

3.4.23 यांत्रिकी एवं सावयवी एकता में विभिन्नता (Differences between Mechanical and organic Solidarity)

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता सामाजिक जीवन का आधार है। आदिम समाजों में जहां पूर्ण समानता पाई जाती है और सामूहिक चेतना बलवती होती है। सामूहिक भावना के प्रति लोगों में गहरी आस्था होती है। वहां यांत्रिक एकता पाई जाती है। दूसरी और आधुनिक समाज में श्रम विभाजन और विशेषीकरण के कारण व्यक्तियों में एक दूसरे पर निर्भरता पाई जाती है। इसे दुर्खीम सावयवी एकता कहते हैं। यांत्रिकी एवं सावयवी एकता में निम्न विभिन्नता पायी जाती है -

1. यांत्रिकी एकता व्यक्ति को बिना किसी मध्यस्थ के समाज से सीधे जोड़ देती है। जबकि सावयवी एकता सदस्यों की पारस्परिक निर्भरता के कारण समाज से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ती है।
2. यांत्रिकी एकता समाज के सामूहिक रूप को प्रकट करती है। सावयवी एकता में कार्यों की विभिन्नता और विशेषीकरण पाया जाता है जो पारस्परिक संबंधों की एक निश्चित व्यवस्था को जन्म देता हैं।
3. यांत्रिकी एकता का आधार समाज में व्याप्त समानता है तो सावयवी एकता का आधार विभिन्नता और विशिष्टता है।
4. यांत्रिकी एकता की अभिव्यक्ति दमनकारी कानूनों में होती है जबकि सावयवी एकता की प्रतिकारी कानून में। जैसे-जैसे समाजों का विकास होता है दमनकारी कानूनों का स्थान प्रतिकारी कानून लेने लगते हैं और ऐसे समाजों में सावयवी एकता पाई जाने लगती है।
5. यांत्रिक एकता सामूहिकता पर बल देती है जबकि सावयवी एकता व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विभिन्नता पर।
6. यांत्रिक एकता की शक्ति सामूहिक चेतना में पाई जाती है जबकि सावयवी एकता की उत्पत्ति कार्यात्मक विभिन्नता पर निर्भर करती है।
7. यांत्रिकी एकता व्यक्ति और समाज के बीच में प्रत्यक्ष एवं सीधा संबंध स्थापित करती है। सावयवी एकता में व्यक्ति और समाज के बीच सीधा संबंध नहीं होता बल्कि अप्रत्यक्ष होता है और व्यक्ति विशिष्ट कार्यों के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

8. यांत्रिकी एकता व्यक्तित्व के विकास में बाधक और प्रतिकूल होती है क्योंकि व्यक्ति पर समूह छाया रहता है तथा वैयक्तिता शून्य हो जाती है। जबकि सावयवी एकता व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास को पूर्ण अवसर प्रदान करती है। दुर्खीम का कहना है कि सावयवी एकता वाले समाजों में प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक कार्यक्षेत्र होता है।

9. दुर्खीम यांत्रिकी एकता की तुलना निर्जीव एवं अचेतन वस्तुओं से करते हैं और सावयवी एकता की तुलना शरीर से की गई हैं। जिसमे प्रत्येक अंग की अपनी एक विशिष्ट रचना और स्वतंत्र एवं विशिष्ट कार्य भी होते हैं।

10. यांत्रिकी एकता जीवन से संबंधित है जो समूह जीवन का आधार होती है। सावयवी एकता में भावना के स्थान पर नियमों को अधिक महत्व दिया जाता है।

3.4.24 आलोचना

दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत सामाजिक एकता की अवधारणा एवं उसके स्वरूपों की अनेक आलोचना हुई हैं। विभिन्न विद्वानों के द्वारा की गई आलोचनाएं इस प्रकार हैं

1. दुर्खीम का कहना है कि आदिम समाजों में केवल दमनकारी कानूनों की भूमिका होती है। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता वहां पर अनेकों प्रायश्चित करने की या क्षति पूर्ति के नियम भी प्रचलित होते हैं। इस आधार पर दुर्खीम की यांत्रिक एकता एवं सावयवी एकता अनुभविक तथ्यों के आधार पर खरी नहीं उतरती।
2. प्राचीन आदिवासी समाजों में या अल्पविकसित समाजों में व्यक्ति और समाज के बीच के संबंधों को मशीन के समान मानना यथार्थता से परे है।
3. आधुनिक विकसित समाजों में जहां पारस्परिक आत्मनिर्भरता बढ़ती है वहां पर परस्पर मतभेद और विवाद के अवसर भी बढ़ते हैं। आधुनिक समाजों में समूह के बीच में प्रतिस्पर्धा और संघर्ष बढ़ जाते हैं।
4. दुर्खीम का कहना है कि उन्नत समाजों में दमनकारी कानून की भूमिका नगण्य है यह गलत है क्योंकि आज के औद्योगिक समाजों में दमनकारी कानून की सामाजिक नियंत्रण में भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है।
5. दुर्खीम ने उन दशाओं और शक्तियों का वर्णन भी नहीं किया जो सावयवी एकता को एक बार स्थापित हो जाने के बाद बनाए रखेंगी।

दुर्खीम ने अपने सिद्धांत के प्रतिपादन के बाद स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि आधुनिक समाज में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं और इस परिवर्तन के कारण समाज में एकता के स्थान पर विघटन

की शक्तियां अधिक क्रियाशील दिखाई देती हैं। यही कारण है कि दुर्खीम के द्वारा अपनी बात की रचनाओं में इन अवधारणाओं का प्रयोग कहीं नहीं किया गया है।

3.4.25 सारांश

धर्म की व्याख्या के माध्यम से समाज का समूहवादी दृष्टिकोण निखर कर सामने आया है। दुर्खीम ने धर्म की व्याख्या के आधार पर ज्ञान, विचार, नैतिकता, सामाजिक मूल्य आदि विभिन्न भौतिक और आध्यात्मिक पक्षों को सामाजिक धरातल पर समझाने का प्रयत्न किया है। वास्तव में दुर्खीम की यह पुस्तक समाजशास्त्र के साथ-साथ मानवीय ज्ञान का समाजशास्त्र भी है। **वीरस्टीड** के शब्दों में "यह केवल इस पर ही प्रकाश नहीं डालता कि मनुष्य क्या विश्वास करते हैं, वरन अधिक मौलिक रुप से इस पर भी प्रकाश डालता है कि वह क्या और किस प्रकार सोचते हैं।"

समाज में व्यवस्था और सामाजिक एकता को बढ़ाने में श्रम विभाजन का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने श्रम विभाजन को एक सामाजिक अथवा नैतिक तथ्य भी कहा है। वर्तमान समाज के लिए दुर्खीम का यह संदेश बड़ा सारगर्भित है कि व्यक्ति स्वातंत्रतय एवं विकास के साथ-साथ सामाजिक एकता को बल देना व्यक्ति का नैतिक दायित्व है। उन्हीं के अमर शब्दों में "हमारा प्रथम कर्तव्य है कि हम अपने लिए एक नैतिक संहिता बनाएं।"

3.4.26 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप' नामक पुस्तक के लेखक कौन है?
   (अ) मैक्स वेबर (ब) अगस्त कॉम्ट
   (स) दुर्खीम (द) कार्ल मार्क्स
2. 'धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप' नामक पुस्तक का प्रकाशन किस सन में हुआ था?
   (अ) 1938 (ब) 1912
   (स) 1947 (द) 1943
3. दुर्खीम के अनुसार धर्म का प्रारंभिक स्वरूप था?
   (अ) आत्मावाद (ब) प्रकृतिवाद
   (स) मानववाद (द) टोटमवाद
4. दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति के संबंध में किस जनजाति का अध्ययन किया?
   (अ) अरुन्टा (ब) अंडमानी
   (स) टुंडा (द) नागा जनजाति

5. दुर्खीम ने किस देश की आदिम जनजाति का अध्ययन किया ?
   (अ) भारत (ब) अमेरिका
   (स) अफ्रीका (द) ऑस्ट्रेलिया
6. दमनकारी कानून किस एकता वाले समाज में पाए जाते हैं?
   (अ) सामूहिक एकता (ब) सावयवी एकता
   (स) यांत्रिकी एकता (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
7. यांत्रिकी एवं सावयवी एकता का संबंध किससे है?
   (अ) दुर्खीम (ब) मैक्स वेबर
   (स) सोरोकिन (द) मैकाइवर पेज
8. किस प्रकार की एकता वाले समाजों में समानता अधिक व्याप्त होती है?
   (अ) यांत्रिकी एकता (ब) सावयवी एकता
   (स) भावात्मक एकता (द) राजनीतिक एकता
9. सावयवी एकता वाले समाजों में किस प्रकार के संबंधों की प्रधानता होती है?
   (अ) संविदात्मक (ब) आर्थिक
   (स) धार्मिक (द) भावात्मक

10. "हमारा प्रथम कर्तव्य है कि हम अपने लिए एक नैतिक संहिता बनाएं।" कथन किसका है?
    (अ) रेमंड एरन (ब) मैक्स वेबर
    (स) सोरोकिन (द) दुर्खीम

उत्तर 1 स 2 ब 3 द 4 अ 5 द

6 स 7 अ 8 अ 9 ब 10 द

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म की अवधारणा को समझाइए।
2. दुर्खीम के अनुसार धर्म के प्रमुख कार्यों को बताइए।
3. टोटमवाद क्या है? इसकी विशेषताएं बताइए।
4. पवित्र और अपवित्र की अवधारणा को समझाइए।
5. क्या टोटमवाद बौद्ध धर्म का प्रारंभिक स्वरूप है? स्पष्ट कीजिए।

6. सामाजिक एकता का अर्थ समझाइए।
7. सामाजिक एकता की विशेषताओं को लिखिए।
8. दमनकारी कानून एवं प्रतिकारी कानून से आप क्या समझते हैं?
9. सावयवी एकता एवं यांत्रिकी एकता में पाई जाने वाली कोई पांच विभिन्नताओं को लिखिए।
10. यांत्रिकी एकता से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म की उत्पत्ति के बारे में दुर्खीम के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. धर्म के समाजशास्त्र में दुर्खीम के योगदान की विवेचना कीजिए।
3. टोटम क्या है? टोटमवाद का धर्म के प्रारंभिक स्वरूप के रूप में दुर्खीम के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
4. दुर्खीम के धर्म के सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
5. धर्म की उत्पत्ति का सिद्धांत अन्य सिद्धांतों से कहां तक भिन्न है? स्पष्ट कीजिए।
6. सामाजिक एकता की अवधारणा एवं उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
7. यांत्रिकी एकता से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं को समझाइए।
8. यांत्रिकी एवं सावयवी एकता के बीच पाई जाने वाली विभिन्नताओं को समझाइए।
9. दुर्खीम की सावयवी एकता एवं यांत्रिकी एकता की अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना कीजिए।
10. समाज के विभिन्न प्रकार की एकता के बारे में दुर्खीम के विचारों का मूल्यांकनात्मक विवेचना कीजिए।

3.4.27 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.

10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.

11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.

12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

खंड 4 मैक्स वेबर

इकाई 1 मैक्स वेबर जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.1.0 उद्देश्य

4.1.1 प्रस्तावना

4.1.2 जीवन परिचय

4.1.3 शैक्षणिक जीवन

4.1.4 पारिवारिक जीवन

4.1.5 आर्थिक जीवन

4.1.6 बौद्धिक पृष्ठभूमि

4.1.7 राजनीतिक पृष्ठभूमि

4.1.8 सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि

4.1.9 मैक्स वेबर का योगदान

4.1.10 मैक्स वेवर का समाजशास्त्र को योगदान

4.1.11 मैक्स वेबर की प्रमुख रचनाएं

4.1.12 सारांश

4.1.13 बोध प्रश्न

4.1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी--

- मैक्स वेबर के जीवन के बारे में जान पाएंगे।
- मैक्स वेबर का शैक्षणिक जीवन के बारे में जानेंगे।
- उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि को समझेंगे।
- मैक्स वेबर की समय की बौद्धिक पृष्ठभूमि को समझेंगे।
- सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि को समझेंगे।
- राजनीतिक जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।
- मैक्स वेबर का समाजशास्त्र को क्या योगदान है यह समझेंगे।
- मैक्स वेबर की रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.4.1 प्रस्तावना

आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारक में मैक्स वेबर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे एक राजनीतिक अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री थे। ना केवल जर्मन में बल्कि संपूर्ण विश्व में सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में उनकी अनुपम देन रही है। अत्यंत कम आयु में ही उन्होंने असाधारण रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी रचनाओं से उनकी विद्वता एवं बौद्धिक शक्ति का परिचय मिलता है। एलेक्स इंकेल्स(Alex Inkels) ने अपनी पुस्तक व्हाट इज सोशियोलॉजी(What is Sociology) में लिखा है कि उनकी शैली चिंतन शक्ति एवं बौद्धिक क्षमता आदि ने उन्हें समाजशास्त्र का संस्थापक जनक बना दिया है। किंग्सले डेविस ने इन्हें आधुनिक समाजशास्त्र का जनक कहा है।

4.1.2 जीवन परिचय

मैक्स वेबर का जन्म 21 अप्रैल 1864 को जर्मनी के बर्लिन में स्थित इरर्फूट थूरीगिया नामक स्थान पर एक धनाढ्य परिवार में हुआ था। यह अपने पिता की सबसे बड़ी संतान थे। उनके बाबा बीलिफैल्ड कैंट में कपड़ों के एक प्रमुख व्यापारी थे। जिन्हें कैथोलिक सेल्जवर्ग से प्रोटेस्टैंट विचार रखने के कारण निकाल दिया गया था। उनके एक लड़के ने व्यापार की देख रेख की जबकि दूसरे लड़के याने वेबर के पिता, कुछ समय के लिए बर्लिन की नगर सरकार में कार्यरत थे। बाद में उन्होंने इस इरर्फूट में एक न्यायाधीश के रूप में कार्य किया और इसी स्थान पर वेबर का जन्म हुआ।

उन्होंने असाधारण रूप से बहुत ही कम आयु में जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी उस तरह का उदाहरण संसार में विरले ही मिलता है। टालकॉट पारसंस ने लिखा है कि "मैक्स वेबर ना सिर्फ एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे बल्कि एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के अधिकारी भी थे लेकिन इनकी सबसे बड़ी विशिष्टता उनकी पांडित्य पूर्ण उपलब्धियों में अंतर्निहित है।" **बोगार्डस** का कथन है कि "मैक्स वेवर ने अपनी विचारधारा में सैद्धांतिक व्यावहारिक दृष्टिकोण को इस तरह समन्वित कर लिया था कि उनके लिए मानव व्यवहार का ठोस तथा अर्थपूर्ण व्याख्या करने पर जोर देना आसान हो गया।" यह एक सच्चाई है कि मैक्स वेबर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

4.1.3 शैक्षणिक जीवन

वेबर अपने बाल्यकाल से ही बुद्धिमान और अत्यधिक परिश्रमी थे । उनके पिता जर्मनी के नेशनल लिबरल पार्टी के प्रतिष्ठित सदस्य थे। इस नाते आपके परिवार में प्रतिष्ठित व्यक्तियों का आना जाना लगा रहता था इसलिए वेबर को बचपन से ही कानून एवं राजनीति के संबंध में ज्ञान प्राप्त होने लगा था और उस समय के प्रसिद्ध इतिहासकार प्रेक्षक रेट ट्रेट्षक, साइबल, डिलथे और मॉमसेन के संपर्क में आए । बाल्य अवस्था से ही पड़ने वाले इस सकारात्मक प्रभाव को मैक्स वेबर अपने वयस्क जीवन में भी ना टाल सके। इस तरह कुछ

प्रतिष्ठित नेताओं के संपर्क में रहकर इधर-उधर घूमने और देखने से वेबर को महत्वपूर्ण एवं नई बातें सीखने को मिली। नवीन बातों को जानने की इच्छा सदा ही उनके मन में आया करती थी। इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर मैक्स वेबर अपना समय पुस्तकों के अध्ययन में ही व्यतीत करते थे। 13 वर्ष की आयु में उन्होंने एक ऐतिहासिक निबंध को इतने सुंदर ढंग से लिखा कि उसे पढ़कर लोग आश्चर्य चकित रह गए और बालक की भावी जीवन की झलक उसी के माध्यम से देख ली। 14 वर्ष की आयु में ही आप अपने पत्रों में होमर, वीर गिल, सिसरो एवं लीवी जैसे विद्वानों का उल्लेख करने लगे वे अपने मित्रों को स्कॉट के उपन्यास पढ़ने की प्रेरणा देते थे। मात्र 13 वर्ष की आयु में ही अपने ऐतिहासिक लेखों को लिखना शुरू कर दिया था तथा 15 वर्ष की आयु में वेबर एक होनहार विद्यार्थी के रूप में उभरे।परीक्षा के समय वेबर अपने सहपाठियों की काफी सहायता किया करते थे। विश्वविद्यालय में प्रवेश के पूर्व भी आपको स्पाइनोजा तथा कांट जैसे विद्वानों की विचारों का काफी ज्ञान हो गया था ।17 वर्ष की आयु में स्कूली शिक्षा पूरी करने के पश्चात 18 वर्ष की आयु में आपने हैडलबर्ग विश्वविद्यालय में अपने पिता की रूचि के अनुसार कानून विषय को चुना। यहां पर आपने इतिहास, दर्शन शास्त्र, तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। तीन सत्र के अध्ययन के बाद 19 वर्ष की आयु में हैडलबर्ग से स्ट्रासबर्ग चले गए जहां पर एक सैनिक जीवन का प्रशिक्षण लिया।1884 में एक वर्ष का सैनिक जीवन समाप्त करने के पश्चात वर्ष21 की आयु में बर्लिन तथा गोटिंग में पुनः विश्वविद्यालयीन अध्ययन प्रारंभ किया। 1886 याने 22 वर्ष की उम्र में आप ने कानून की उपाधि प्राप्त की। 1889 इन्होंने 'मध्ययुगीन व्यापारिक संगठनों के इतिहास के लिए एक देन' नामक शोध कार्य कानूनी परिपेक्ष में प्रस्तुत किया इसी विषय पर उन्हें पीएचडी की उपाधि प्राप्त हुई।

4.1.4 पारिवारिक जीवन

मैक्स वेबर की माता हेलेन फालेनस्टीन(Helene Fallenstein) भी वेबर के पिता जैसी सामाजिक पृष्ठभूमि वाले परिवार से थी। उनकी मां की मानवीय और धार्मिक दृष्टिकोण संबंधी विचार उनके पति से मेल नहीं खाते थे क्योंकि वे प्रोटेस्टेण्ट धर्म के समर्थक थे।

मैक्स वेबर के पिता एक प्रतिष्ठित उदारवादी राजनैतिज्ञ थे। उनके यहां प्रमुख राजनीतिज्ञों का आना जाना लगा रहता था। इससे मैक्स वेबर को उनकी संपर्क में रहने तथा उनकी भावनाओं और विचारों से अवगत होने का मौका मिलता था। इसके अतिरिक्त वह अपने पिता के साथ भी यहां वहां जाते रहते थे इसका परिणाम यह हुआ कि बचपन से ही उन्हें बौद्धिकता का विकास हुआ । मैक्स वेबर की माता की उच्च घर आने की महिला थी वेबर का लालन-पालन एक ऐसे परिवार में हुआ जिसमें शिक्षा संपन्नता और राजनीतिक वातावरण मौजूद था वेबर की माता में आर्थिक प्रतिबद्धता तथा कर्तव्य परायणता की भावना बहुत अधिक थी जबकि इनके पिता की वैयक्तिक नैतिकता प्रोटेस्टेंट के बजाय सुखवादी थी। आपके माता-पिता का वैवाहिक जीवन प्रकट रूप से सुखी मालूम होता था परंतु तनावपूर्ण था, यह बात बच्चों से छिपी नहीं थी इसलिए वेबर का जीवन आंतरिक तनाव से युक्त उलझन पूर्ण जाल था। वेबर के पिता अपने घर को एक मजबूत सत्ताधारी के रूप में

चलाते थे उनका परिवार में कठोर अनुशासन था वेबर की माता ने उन्हें अपनी और रखने और उनमें धर्म परायणता के गुण भरने का पूरा प्रयत्न किया लेकिन वेबर ने अपने युवा काल में पिता के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया। वेबर के विकास पर उनके चाचा चाची हरमन बॉमगार्टन का प्रभाव पड़ा वेबर के लिए ये द्वितीय वेदवती माता पिता के समान थे। बॉम गाटन एक उदारवादी व्यक्ति थे और उनकी पत्नी इडा जो कि मैक्स वेवर की माता की बहन थी काफी धर्म परायण और धार्मिक सिद्धांतों के प्रति लगाव रखने वाली थी। वह ओजस्वी और प्रभावी महिला थी। इडा के प्रभाव से वेबर की रूचि धार्मिक अध्ययनों में विशेष रूप से हुई वेबर उनके व्यक्तित्व से काफी प्रभावित थे। इडा अपनी गृहस्थी के संचालन में धार्मिक मान्यताओं को महत्व देती थी ।उनमें सामाजिक दायित्व की भावना बहुत दृढ़ थी इसलिए वह अपना अधिकतर समय परोपकारी कार्यों में लगाती थी। वेबर मौसी और माता के मूल्यों और विचारों के प्रशंसक थे प्रोटेस्टेंट सदाचार के प्रति वेबर की मन में गहन श्रद्धा के भाव थे वे ऐसे व्यक्तियों के प्रति आदर का भाव रखते थे जो अपने नैतिक दर्शन के अनुसार वास्तविक जीवन बिताते हैं इसलिए वेबर अपने मौसा मौसी बॉमगार्टन दंपत्ति की नैतिक कट्टरता से प्रभावित थे। अपनी मौसी अर्थात मैक्स वेबर की मां की बहन के परिवार में रहने के कारण वेबर अपनी माता के व्यक्तित्व और विशेषता, धार्मिक मूल्यों को अधिक अच्छे से समझ पाए थे इस कारण वे अपनी माता के प्रति पिता के असंगति पूर्ण व्यवहार का विरोध करने लगे थे।

वेबर का प्रथम प्रेम बॉमगार्डन की लड़की एमपी से था 6 वर्ष तक रहा और इस अवधि में यह संबंध काफी तनावपूर्ण रहा क्योंकि एमपी का स्वास्थ्य भौतिक एवं और मानसिक दृष्टि से गिरा हुआ था आखिर मैक्स वेबर ने एमपी के साथ अपना सगाई संबंध तोड़ दिया था। बाद में सन 1893 में वेबर के पिता की बड़ी भांजी 21 वर्षीय मेरियन जब वायलिन में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आई थी तो उसे वेबर से प्यार हो गया था और उन 1893 में दोनों का विवाह हो गया हालांकि इस विवाह का उसके दोस्तों ने विरोध किया था और इसके विरुद्ध अदालत में मुकदमा भी दायर किया था।

जहां तक मैक्स वेबर के जीवन का सवाल है यह कहा जाता है कि जीवनपर्यंत अनेक कारणों से तनावग्रस्त रहे। वेबर एक बहुत बड़े विद्वान थे इसमें कोई संदेह नहीं। जब वह हाइडेलवर्ग विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे। तब कुछ गलत लोगों के संगति में पड़कर उन्होंने खाने पीने और मौज मस्ती का जीवन अपना लिया था। इस तरह एक बौद्धिक युवक दिखावा पसंद युवक के रूप में बदल गया था। इस संबंध उन्होंने स्वंय लिखा है कि "वास्तव में मैं एक विद्वान नहीं हूँ। मैं वैज्ञानिक कार्य मुख्य रूप से अपने मनोविनोद के समय मे करता हूँ। व्यवहारिक रूप में सक्रिय रहने की भावना से मैं किसी प्रकार पीछा नहीं छुडा़ सकता। मैं आशा करता हूं कि अध्यापक के पेशे में केवल शिक्षण का पक्ष ही मेरी इस उत्कृष्ठ अभिलाषा को पूरा कर सकेगा।"

इस तरह से पता चलता है कि उनके चरित्र का एक दुर्बल पक्ष भी था फिर भी वे एक महान विद्वान थे। उन्होंने स्वयं अपनी जीवनी प्रकाशित नहीं की बल्कि उनकी पत्नी ने उनकी जीवनी लिखी और प्रकाशित करवाई और यह अंश उसी का एक भाग हैं।

14 जून 1920 में म्युनिख में निमोनिया से पीड़ित होने के कारण मैक्स वेबर का 56 वर्ष की आयु में देहांत हो गया था। जीवन की यह कैसी विडंबना है कि जब तक मैक्स वेबर जीवित थे जर्मनी में उनकी प्रतिष्ठा एक सामान्य व्यक्ति के ही जैसी थी । मृत्यु के पश्चात जर्मनी ही नहीं बल्कि संपूर्ण यूरोप और अमेरिका में उनकी इज्जत बहुत अधिक बढ़ गई। जीवन में जो ऊंचाई उन्हें कभी नहीं मिली मृत्यु के बाद यह कई गुना बढ़ गई। डोनाल्ड का कथन था कि इसका कारण वेबर द्वारा रचित साहित्य का भंडार है।

4.1.5 आर्थिक जीवन

मैक्स वेबर की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उनके स्वास्थ्य ने उन्हें आर्थिक रुप से झकझोर दिया था और स्वस्थ होने वे पुनः हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में आ गए थे। यहां पर भी उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा नही था कि वे संतोषजनक रूप से व्याख्यान दे सकें। 1907 में उन्हे अपने परिवार से विरासत में भारी धन राशि मिली। इस धनराशि में उन्हें आत्मनिर्भर बना दिया था। इसलिए उन्होंने विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य बंद किया और अपना सारा समय लेखन कार्य को दिया जो जीवन पर्यंत जारी रहा। वेबर के जीवन काल में यूरोप में पहला विश्व युद्ध हुआ। युद्ध की अवधि में वेबर में एक राजनीतिक लेखक के रूप में अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया और इसी समय मे वे सैनिक चिकित्सालय प्रशासन से जुड़ गए और यहां के अनुभव ने उन्हें नौकरशाही पर काम करने के लिए प्रेरित किया। 17 वर्ष की आयु में उन्होंने स्कूली शिक्षा प्राप्त कर कानून की शिक्षा के लिए हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। 1883 में सैनिक प्रशिक्षण के लिए सेना में भर्ती हुए। बाद में वेबर ने बर्लिन विश्वविद्यालय से कानून की शिक्षा प्राप्त की।

1.4.6 बौद्धिक पृष्ठभूमि

बौद्धिक क्षेत्र में उनके सैद्धांतिक योगदान की यात्रा 1889 में प्रारंभ हुई। जब उन्होंने पहली बार मध्य विभिन्न संगठनों के इतिहास के लिए एक दैन नामक एक शोध कार्य कानूनी परिपेक्ष्य से प्रस्तुत किया। अल्पायु से ही वेबर प्रतिभाशाली शिक्षार्थी के रूप में जाने जाने लगे। थयोडर थोमसन एवं एडोल्फ गोल्ड स्मिथ उनके प्रमुख अध्यापकों में से थे। बाद में वेबर बर्लिन विश्वविद्यालय में ही कानून के प्राध्यापक नियुक्त हो गए। उन्होंने सन 1891 में उन्होने रोम का कृषि सम्बंधी इतिहास तथा सार्वजनिक और व्यक्ति कानून के लिए महत्ता नामक ग्रंथ तैयार किया। 1892 में 900 पृष्ठों की एक विशाल पुस्तक तैयार की, जो एलबी नदी के पूर्वी प्रांतों के खेतिहर मजदूरों के अध्ययन से संबंधित थी। इस पुस्तक में उन्होंने रोमन समाज के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन का विश्लेषण किया। 1894 में मैक्स वेबर को फ्रेलबर्ग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पद पर नियुक्ति प्रदान की गई। 1896 में वह हाईडेलवर्ग विश्वविद्यालय आ गए। और इस विश्वविद्यालय में जहां अपने शिक्षा ग्रहण की थी प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। 1897 में जब आपकी उम्र केवल 33 वर्ष की थी तब आप गंभीर बीमारी से ग्रसित हो गए । इसलिए कुछ समय तक शैक्षिक कार्य बंद

करना पड़ा ।चार वर्ष तक आप इस बीमारी से जूझते रहे यह समय आपके लिए तनाव का समय था मैक्स वेबर घंटों खिड़की पर बैठे रहते और आकाश निहारा करते थे । यात्रा या भ्रमण ही केवल एक ऐसी गतिविधि रह गई थी जिसमें उनको रुचि थी । वे अधिकांश समय इटली और रोम में रहे करीब चार वर्ष के बाद धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे तब पढ़ने लिखने का कार्य पुनः आरंभ किया। बीमारी की अवस्था में उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी थी। स्वस्थ होने के बाद 1901 में अपने बौद्धिक दृष्टि से रचनात्मक कार्य प्रारंभ किया स्वस्थ होने के पश्चात उन्हें प्रोफेसर के पद पर पुनः आमंत्रित किया गया लेकिन उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया इसका कारण संभवत यह था कि उन्हें लगा कि वे इतने बड़े दायित्व को इस अवस्था में नहीं संभाल पाएंगे।

1904 मे बेवर को अमेरिका यात्रा का पहला अवसर मिला यहां आपको आपके एक साथी ने हार्वर्ड में सैंट लुइ में आयोजित वैज्ञानिक विश्व कांग्रेस में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। यहां आप ने जर्मनी की सामाजिक व्यवस्था पर एक लेख पढ़ा। तीन माह की अमेरिका यात्रा से वेबर अमेरिका की संस्कृति से काफी प्रभावित हुए बीसवीं शताब्दी के अर्थ अभिज्ञान का अनुभव उन्होंने अमेरिका में ही किया और यही से उनका संपर्क अमेरिका जैसे बृहद समाज के उत्कर्ष और उनके शासन के लिए कर्मचारी तंत्र की संरचना के साथ हुआ। यहां वेबर ने प्रोटेस्टेंट इथिक्स तथा पूंजीवाद का अध्ययन, नौकरशाही, अमरीकी राजनीतिक संरचना में राष्ट्रपति की भूमिका पर अध्ययन किया। 1918 में उन्होंने अपने अध्यापन कार्य प्रारंभ किया और विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में कार्य करने लगे। इसी वर्ष वेबर को वारसाई में जर्मन युद्ध विश्रांति आयोग और बेमर संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए सलाहकार बनाया गया। 1919 में दो लूजो ब्रेन्टानो के उत्तराधिकारी के रुप में वेबर को म्यूनिख विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त किया गया। वेबर ने एक सामाजिक पत्रिका सोशल रिफॉर्म एंड सोशल पॉलिटिक्स का संपादन कार्य भी किया था।

1.4.7 राजनैतिक पृष्ठभूमि

मैक्स वेबर के पिता एक प्रतिष्ठित उदारवादी राजनैतिज्ञ थे। उनके यहां प्रमुख राजनीतिज्ञों का आना जाना लगा रहता था। इससे मैक्स वेबर को उनकी संपर्क में रहने तथा उनकी भावनाओं और विचारों से अवगत होने का मौका मिलता था। इसके अतिरिक्त वह अपने पिता के साथ भी यहां वहां जाते रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि बचपन से ही उन्हें बौद्धिकता का विकास हुआ ।

जब प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ था उस समय उसकी उम्र 50 वर्ष की थी वह राष्ट्रवादी थे पर जर्मन नेताओं की नीतियों से संतुष्ट नहीं थे इसलिए उसने युद्ध के संचालन तथा जर्मनी के नेतृत्व की कटु आलोचना की थी इसलिए उन्होने सत्ता में आए हुए नेताओं के विचारों तथा सलाह को कभी नहीं माना था। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में वेबर ने राजनीतिक गतिविधियों में बहुत सक्रिय हो गए इन्होने प्रमुख समाचार पत्रों मे अनेक लेख लिखे, कई ज्ञापन पत्र तैयार किए तथा उस समय की जर्मनी की राजनीतिक गतिविधियों पर काफी कुछ लिखा। 1918 में मैक्स वेबर उस कमीशन के सदस्य रहे जिसने वरसैलिज शांति सम्मेलन के संबंध में अपना

प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसी तरह उन्होंने वीमर संविधान बनाने हेतु आरंभिक रूपरेखा तैयार की। उन्होंने तार्किक प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए अनेक छात्र सभाओं तथा शैक्षिक समूह को समय-समय पर संबोधित किया। वेबर प्रजातंत्र विरोधी, दक्षिणपंथी एवं वामपंथी राजनीतिज्ञों के विरोधी थे इसलिए सरकार में उनको सम्मिलित करने के प्रस्ताव को राजनेताओं का समर्थन नहीं मिला।

मैक्स वेबर ने अपनी राजनैतिक रचनाओं में जो कुछ भी लिखा वह बहुत ही निर्भीकतापूर्वक लिखा। उनके लेख एक राजनैतिक की भूमिका का वास्तविक मूल्यांकन है ।वेबर में एक कर्मठ कार्यकर्ता के समान उत्साह था। वेबर क्रिया में विश्वास करने वाले ऐसे व्यक्ति थे जिसमें नैतिक दृष्टि से काफी कठोरता थी । साथ ही व्यक्तिक तटस्थता थी जो एक सामाजिक वैज्ञानिक में ही देखने को मिलती है वेबर की दृढ़ मान्यता थी कि महान लक्ष्यों की प्राप्ति केवल शक्ति राजनीति के द्वारा ही हो सकती है। आप राजनीतिक जीवन को सही रूप में देखने समझने की अभ्यस्त हो गए थे । वे इसे परस्पर विरोधी विश्वासों तथा हितो वाले व्यक्तियों और समूहों के बीच संघर्ष में देखते थे। इस संघर्ष में अंत में विजय उसे उसी पक्ष की होती है जिसके पास शक्ति का भंडार है और जो उस शक्ति को प्रभावशाली ढंग से काम मे लेने की योग्यता रखता है।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय से ही राष्ट्रीय विचारों के अनुरूप वेबर ने अपने आप को सेवा के लिए प्रस्तुत कर दिया था। जर्मन में जिस रूप में युद्ध लड़ा गया था जर्मनी के नेतृत्व की युद्ध की दृष्टि से जो भूमिका थी उसकी वेबर ने कटु आलोचना की थी लेकिन जर्मन नेतृत्व एवं सत्ता ने कभी भी उनकी आलोचना एवं राय की परवाह नहीं की। वेबर ने अपने लेखों के माध्यम से जर्मनी की राजनीतिक संरचना में परिवर्तन, उत्तरदायी संसदीय सरकार के विकास, केसर तथा चांसलर की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाए जाने की बात कही जिसके परिणाम स्वरूप सरकार ने उनके विरुद्ध अदालती कार्यवाही करने का विचार किया। वेबर के सबसे प्रसिद्ध व्याख्यान विज्ञान एक पेशे के रूप में तथा राजनीति एक पेशे के रूप में है जो उन्होंने 1919 में विद्यार्थियों के बीच दिए गए थे। मैक्स वेवर के राजनीतिक विचारों और गतिविधियों का एक ओर सत्ता में आए नेताओं द्वारा और दूसरा वामपंथियों द्वारा जबरदस्त विरोध किया गया। पर वेबर के द्वारा राजनीतिक गतिविधियों के क्षेत्रों में बहुत अधिक योगदान दिया।

1.4.8 सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि

मैक्स वेवर के विचार जर्मन की सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित थे उन्होंने यह अनुभव किया कि इंग्लैंड और फ्रांस की तुलना में जर्मनी की भूमिका अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बहुत ही कम है इसलिए वेबर सदैव राष्ट्र भावना से प्रेरित रहे इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने करिश्माई प्रभुसत्ता की धारणा दी। वेबर का राष्ट्रवाद जर्मन भू स्वामियों के अंध राष्ट्रवाद से भिन्न था एवं यह जर्मन उद्योगपतियों के साम्राज्यवादी इरादों से भी मेल नहीं खाता था। जर्मन की तात्कालिक सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के कारण वेबर के विचारों में विरोधाभास था। विज्ञान के संबंध में बहस और सामाजिक दर्शन की अवस्था के कारण वेबर के विचारों में अस्पष्टता आ गई थी। तात्कालिक जर्मनी में दो शक्तियां एक दूसरे से संघर्ष कर रही

थी एक और बड़े भूस्वामी थे हो रहे थे जो कमजोर हो रहे थे परंतु आक्रामक थे इसलिए वह अपने हितों की रक्षा करना चाहते थे और दूसरी ओर जर्मन पूंजीपति वर्ग जो निरंतर मजबूत और मजबूत हो रहा था वह राजनीतिक स्वतंत्रता चाह रहा था दोनों वर्गों में निरंतर संघर्ष जारी था और इसका प्रभाव जर्मन के समाज विज्ञान पर पड़ा।

इंग्लैंड और फ्रांस के बाद जर्मन में पूंजीवाद का आरंभ हुआ। इस समय पूंजीपति वर्ग अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयास कर रहा था उसी समय मजदूर वर्ग का भी उदय हो गया। जो इसलिए जर्मन उद्योगपतियों को दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ रहा था। उस समय राजनैतिक अनिर्णय की स्थिति थी और मैक्स वेबर भी इस के परिणामों से अछूते नहीं थे। एल. ए . कोजर ने वेबर के समय की जर्मन अर्थव्यवस्था को उच्च विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्था कहा है।

जर्मनी की परिस्थिति के अनुरूप जर्मनी को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक अग्रणी राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे उद्विकासवादी विचारक टानीज के विचारों का समर्थन तो करते थे परंतु यह कभी स्वीकार नहीं करना चाहते थे कि पुराना समाज या गामिनसॉफ्ट अच्छा है और नया औद्योगिक समाज बुरा। वेबर को अमेरिका की समृद्धि अमेरिका की चुस्ती ने बहुत प्रभावित किया था। वह चाहते थे कि जर्मनी भी अमेरिका के सामान हो जाए और एक समृद्ध मजबूत और आधुनिक राष्ट्र बन जाए। वेबर ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका राष्ट्रपति पद और उसके अधिकारों की संस्थापक व्यवस्था को खूब पसंद किया। उन्होंने जर्मन लोकतांत्रिक दल के गठन में सक्रिय सहयोग किया इसका मुख्य कारण यह था कि वह विश्व में जर्मन को एक विकसित राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे।

1.4.9 मैक्स वेबर का योगदान

सामाजिक विचारकों में मैक्स वेबर का स्थान अत्यंत सम्मानजनक है इन्हें समाजशास्त्र के संस्थापक जनकों में से एक माना जाता है। मैक्स वेवर के कार्यों को समाजशास्त्रीय जगत में अत्यंत सम्मान के साथ देखा जाता है क्योंकि समाजशास्त्र के क्षेत्र में उनका योगदान बौद्धिक होने के साथ-साथ सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक भी है। गुल्डनर के अनुसार "मैक्स वेबर समाजशास्त्र के मौलिक काल में आते हैं।"

पारसंस का कहना है "मैक्स वेबर एक बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे और अपने समस्त परिचितों की दृष्टि में उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व था। उनका महत्व उनकी विद्वता पूर्ण उपलब्धियों में से है। पारसंस ने लिखा है कि "मैक्स वेबर का मस्तिष्क विश्व कोषीय था।"

रेमंड एरन का कहना है कि "मैक्स वेवर का कार्य आकार एवं विविधता दोनों ही रूप में महत्वपूर्ण माना जाता है।"

रेमण्ड ऐरन(Raymond Aron) ने अपनी पुस्तक मेन करंट इन सोशोलॉजिकल थॉट)Main Currents in Sociological Thought) में मैक्स वेबर के योगदान को प्रमुख रूप से चार भागों में बांटा हैः-

.1 पद्धति शास्त्रीय आलोचनात्मक एवं दर्शनशास्त्रीय अध्ययन)Studies in Methodology Criticism and Philosophy)

.2 पूर्णतयाः ऐतिहासिक कार्य)Strictly Historical Work)

.3 धर्म के समाजशास्त्र का अध्ययन(Studies in the Sociology of Religion)

.4 सामान्य समाजशास्त्र)General Sociology)

1. **पद्धति शास्त्रीय, आलोचनात्मक एवं दर्शनशास्त्रीय अध्ययन**

रेमंड एरन के अनुसार इन अध्ययनों का संबंध समाज विज्ञानों, इतिहास एवं समाजशास्त्र से अनिवार्य रूप से है यह अध्ययन ज्ञान शास्त्रीय एवं दार्शनिक दोनों ही हैं। इतिहास में मानव का दार्शनिक स्वरूप मानवीय क्रिया और विज्ञान में संबंध की अवधारणा है इस श्रेणी में वेबर का मुख्य ग्रंथ स्टडी ऑफ द थ्योरी ऑफ साइंस रखा जाता है।

2. **पूर्णतयाः ऐतिहासिक कार्य**

इस श्रेणी के अंतर्गत प्राचीन जगत में कृषि में होने वाले उत्पादन संबंध एवं सामान्य आर्थिक इतिहास विशेष कर जर्मनी तथा निवर्तमान यूरोप की आर्थिक समस्याएं आदि को रखा जा सकता है।

3. **धर्म के समाजशास्त्र पर अध्ययन**

इस श्रेणी का शुभारंभ एरन प्रोटेस्टेंट एथिक एंड स्पिरिट ऑफ कैपिटल लिस्ट से मानते हैं इस कार्य के बाद मैक्स वेबर ने विश्व के महान धर्मों और उससे संबंधित समाज की आर्थिक व सामाजिक दशाओं का अध्ययन किया है।

4. **सामान्य समाजशास्त्र**

रेमंड एरन के अनुसार वेबर का यह कार्य सबसे महत्वपूर्ण है यह अंतिम कार्य वेबर की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ। एरन के अनुसार जब वेबर इस पर काम कर रहे थे तभी प्रथम विश्व युद्ध के समय ऐसे निधन हो गया इस श्रेणी में वे गेमइनसॉफ्ट एवं जैसलसॉफ्ट नामक कृति को रखते हैं।

1.4.10 मैक्स वेबर का समाजशास्त्र को योगदान

मैक्स वेबर ने इन चार भागों के आधार पर समाजशास्त्र से संबंधित विभिन्न आयामों एवं सिद्धांतों को प्रस्तुत किया हैः-

इस आधार पर पता चलता है कि समाजशास्त्र के क्षेत्र में मैक्स वेबर के कार्यों में काफी विविधताएं हैं। इन विविधताओं पर प्रकाश डालते हुए रेमण्ड ऐरन ने(Raymond Aron) ने अपनी पुस्तक मेन करंट इन सोशियोलॉजिकल थॉट(Main Currents in Sociological Thought) में लिखा है। मैक्स वेबर के विस्तृत कार्यों को कुछ निश्चित अध्यायों में प्रस्तुत कर पाना असंभव है। मैक्स वेबर के समाजशास्त्र में योगदान को हम निम्न श्रेणियों में देख सकते हैं-

1 समाजशास्त्र की अवधारणा)Concept of sociology)

2 पद्धति शास्त्र(Methodology)

3 सामाजिक समझ का सिद्धांत(Theory of Social Understanding)

4 राजनीतिक समाजशास्त्र(Political Sociology)

5 धर्म का समाजशास्त्र(Sociology of Religion)

6 विधि का समाजशास्त्र(Sociology of Law)

1. समाजशास्त्र की अवधारणा

मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र की अवधारणा की व्याख्या वैज्ञानिक संदर्भ में की है आपके अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान होना चाहिए।

2. पद्धतिशास्त्र

मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र में पद्धतिशास्त्र के रूप में काफी बड़ा योगदान दिया है ।इस संबंध में पारसंस ने लिखा है कि "अनेक जर्मन विद्वानों से भिन्न वेबर ने पद्धतिशास्त्रीय अन्वेषण स्वांताः सुखाय नहीं किया बल्कि अपनी अनुभवजन्य गवेषणा में प्रस्तुत समस्याओं के स्पष्टीकरण के एक साधन के रूप में किया गवेषणा का यह कार्यक्रम आधुनिक पश्चात जगत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं को समझने के अत्यंत विस्तृत प्रयास पर केंद्रित है।

3. सामाजिक समझ का सिद्धांत

मैक्स वेवर का समाजशास्त्रीय जगत में तीसरा महत्वपूर्ण योगदान सामाजिक समाज का सिद्धांत है मैक्स वेवर कहते हैं कि सामाजिक समझ के पीछे मूलतः मानवीय व्यवहारओं की स्थिति होती है इनका कुछ निश्चित उद्देश्य होता है अतः सामाजिक समझ का मुख्य कार्य व्यवहारों तथा उद्देश्यों की वैज्ञानिक व्याख्या करना है।

4. राजनीतिक समाजशास्त्र

मैक्स वेबर ने राजनीतिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है। वेबर ने राजनीतिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में कुछ मौलिक अवधारणाएं प्रस्तुत की हैं। इनमें सत्ता शक्ति प्रभुता अधिकारी तंत्र एवं संगठन आदि प्रमुख है। इसके अलावा वेबर राजनीतिक पूंजीवाद की भी विवेचना की है।

5. धर्म का समाजशास्त्र

मैक्स वेबर की धर्म संबंधी समाजशास्त्रीय व्याख्या बहुत ही महत्वपूर्ण है मैक्स वेबर ने अन्य समाज शास्त्रियों की तरह धर्म के आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक जोर नहीं दिया है। वेबर का मानना है कि धर्म आर्थिक घटनाओं से और आर्थिक घटनाएं धर्म से नियंत्रित होती हैं इसलिए मैक्स वेबर ने विश्व के 6 महान धर्मों की विस्तार से विवेचना की है अपनी धर्म के विचारों को वेबर ने अपनी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड स्प्रिट ऑफ कैपिटल इज में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है।

6. विधि का समाजशास्त्र

वेबर अपने आरंभिक जीवन में कानून की विद्यार्थी थे अतः उनकी रचनाओं में विशेषकर आरंभिक लेखों में कानून की समाजशास्त्र की व्याख्या पर बहुत साहित्य उपलब्ध है। नायक वेबर का मानना है कि समाज के लिए कानून की आवश्यकता अनिवार्य है इसलिए उन्होंने सत्ता तथा नौकरशाही को साधन मानते हुए यह बतलाया कि दोनों के आधार कानून तथा मूल्य है। वेबर कानून की विवेचना एक व्यवस्था क्रम के माध्यम से करते हैं

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र को अनेक मौलिक अवधारणाएं प्रदान की है समाजशास्त्र की वैज्ञानिक व्याख्या, पद्धतिशास्त्र, सामाजिक क्रिया, आदर्श प्रारूप, सत्ता, प्रभुता, अधिकारी तंत्र, वर्ग, सामाजिक संगठन, पूंजीवादी समाज, धर्म का समाजशास्त्र, विधि का समाजशास्त्र आदि अनेक अवधारणा की विवेचना मैक्स वेवर के द्वारा की गई है समाजशास्त्र सदैव वेबर और उनके कार्यों का ऋणी रहेगा।

1.4.11 प्रमुख कृतियां

जर्मन में समाजशास्त्र विषय को विकसित करने में मैक्स वेबर ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।यह एक सच्चाई है कि वेबर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी रचनाओं में उनकी विद्वता एवं बौद्धिक शक्ति का परिचय मिलता है। उनकी चिंतन शक्ति, उनकी विद्वता, पूर्ण उपलब्धियों, उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अनुसंधान में कुछ ऐसी विशेषताएं थी जो उनको ऐसे स्तर पर ले गई जहां से उनके लिए उस समय के अन्य किसी भी विद्वान की तुलना में समकालीन सामाजिक विचारधारा को ज्यादा प्रभावित करना संभव हुआ मैक्स वेबर की प्रमुख पुस्तकें एवं लेख निम्नानुसार है

मैक्स वेबर की प्रमुख कृतियां(Main Writings of Max Weber)

जर्मन में समाजशास्त्र विषय को विकसित करने में मैक्स वेबर ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनकी अनेक पुस्तकें एवं लेख हैं। इनमें से प्रमुख हैं-

1. द प्रोटेस्टेण्ट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म(The protestant ethic And The Spirit Of capitalism) 1906
2. द रिलीजन ऑफ चाइना(The Religion of China)1916
3. द रिलीजन ऑफ इंडिया(The Religion of India)1916
4. एनशिएंट जुडाइज्म(Ancient Judaism)
5. इकोनॉमी एंड सोसाइटी(Economy and Society) 1927
6. फ्रॉम मैक्स वेबर एस्से इन सोशियोलॉजी 1946(From Max Weber Essay in Sociology)
7. मैक्स वेबर इन द मेथडलॉजी इन द सोशल साइंस 1946(Max Weber in the Methodology in the Social Science)

8. हिंदू सोशल सिस्टम

9. सोशलॉजी ऑफ रिलीजन

10. जनरल इकोनॉमिक हिस्ट्री

11. दी रेशनल एंड सोशल फाउंडेशन ऑफ म्यूजिक

1964 में अमेरिका व जर्मनी की समाजशास्त्रीय परिषदों ने मैक्स वेबर की जन्म शताब्दी पर उनकी रचनाओं का मूल्यांकन किया और यह स्वीकार किया की जटिलता के बावजूद मैक्स वेबर की रचनाएं बौद्धिक उद्दीपन की अब तक स्रोत बनी हुई है।

1.4.12 सारांश

मैक्स वेबर का बौद्धिक संदर्भ बहुआयामी था यद्यपि वे स्वयं दार्शनिक नहीं थे किंतु उन्होंने विश्वविद्यालय में विद्यार्थी जीवन से ही दर्शनशास्त्र के महत्वपूर्ण संप्रदायों के बारे में जान लिया था। वह धर्म तत्वज्ञ भी नहीं थे। फिर भी उनकी बहुत सारी रचनाएं प्रमाणित करती हैं कि उनका तत्व शास्त्र में अध्ययन बहुत वृहद था। उस समय की बौद्धिक शक्तियों के साथ वेबर का गहरा जुड़ाव था और उनकी समाज विज्ञान की पद्धतियां भी तत्कालीन सामाजिक विज्ञानों से प्रभावित थी।

वेबर काम्ट के दर्शनशास्त्र को अच्छी तरह समझते थे और उसका उपयोग अपनी रचनाओं में करना चाहते थे। दिल्थे और रिकर्ट जैसे दर्शनशास्त्रीयों का प्रभाव भी वेबर पर था। वेल्हेम रोचर तथा कार्ल नाइज जैसे इतिहासकारों से भी वे प्रभावित थे। इसलिये जब उन्होने प्रोटेस्टंट आचार में आर्थिक पहलूओं को लिया था तब वे इनके विचारो से अछूते नहीं रहे।

मैक्स वेबर ने एक अर्थशास्त्री राजनीतज्ञ और समाजशास्त्री के रूप में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। एक राष्ट्रवादी भी थे और उन्हें एक उच्च कोटि का प्राध्यापक भी कहा जा सकता है। यही कारण है कि उनके सिद्धांत, समाजशास्त्र एवं पद्धति शास्त्र दोनों ही दृष्टिकोणों को पूरे विश्व में अत्यंत सम्मानजनक स्थान मिला है।

1.4.13 बोध प्रश्न

1 मैक्स वेबर का जन्म कब हुआ था ?

अ 21 अप्रैल 1864 ब 28 अप्रैल 1889

स 21 मई 1878 द 18 जून 1865

2 किस समाजशास्त्री ने सैनिक जीवन का प्रशिक्षण लिया ?

अ पारसंस ब मैक्स वेबर

स सोरोकिन द दुर्खीम

3 वेबर ने प्रारंभिक नौकरी किस रूप में की?

अ कानून शिक्षक ब इंजीनियर

स समाजशास्त्री द वकील

4 वेबर का जन्म किस देश में हुआ था?

अ फ्रांस ब जर्मनी

स इंग्लैंड द रूस

5 मैक्स वेबर ने किस विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी?

अ हैडलबर्ग ब मास्को

स लंदन द वर्लीन

6 वेबर ने कितने धर्मों का अध्ययन किया था?

अ चार ब पांच

स तीन द छैः

7 मेन करंट इन सोशलॉजी कल थॉट पुस्तक के लेखक कौन है ?

अ रेमंड एरन ब मैक्स वेबर

स कार्ल मार्क्स द दुर्खीम

8 द रिलीजन ऑफ इंडिया पुस्तक का प्रकाशन किस सन में हुआ?

अ 1916 ब 1918

स 1925 द 1924

9 द सोशलॉजी ऑफ रिलीजन पुस्तक के लेखक कौन है?

अ मैक्स वेबर ब पारसंस

स दुर्खीम द मार्क्स पारसंस

10 वेबर की मृत्यु किस सन में हुई?

अ 1920 ब 1938

स 1942 द 1945

उत्तर- 1 अ 2 ब 3 अ ब4 5 अ द6 अ7 अ8 अ9 अ10

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वेबर का जीवन परिचय दीजिए।
2. वेबर की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।
3. मैक्स वेबर की किन्हीं चार सिद्धांतों को बताइए।

4. समाजशास्त्र के क्षेत्र में मैक्स वेबर का क्या योगदान है?

5. मैक्स वेबर की राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वेबर का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

2. मैक्स वेवर के व्यक्तित्व की व्याख्या कीजिए।

3. समाजशास्त्र के क्षेत्र में मैक्स वेबर का क्या योगदान है वर्णन कीजिए।

4. स्वेटर की बौद्धिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि की चर्चा कीजिए तथा यह स्पष्ट कीजिए कि ने उनकी विचारधारा को किस तरह प्रभावित किया?

5 "मैक्स वेबर का मस्तिष्क विश्वकोषीय था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

1.4.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). *समाजशास्त्र*. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). *सोशल थॉट*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). *समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) *उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). *सामाजिक विचारों का इतिहास*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). *समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार*. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 02 आदर्श प्रारूप एवं सामाजिक क्रिया का सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

आदर्श प्रारूप का सिद्धांत

4.2.0 उद्देश्य

4.2.1 प्रस्तावना

4.2.2 मैक्स वेवर का पद्धतिशास्त्र

4.2.3 आदर्श प्रारूप की अवधारणा

4.2.4 आदर्श प्रारूप की विशेषताएं

4.2.5 आदर्श प्रारूप की संरचना

4.2.6 आदर्श प्रारूप की आलोचना

सामाजिक क्रिया का सिद्धांत

4.2.7 प्रस्तावना

4.2.8 सामाजिक क्रिया का अर्थ

4.2.9 सामाजिक क्रिया की परिभाषा

4.2.10 सामाजिक क्रिया की विशेषताएं

4.2.11 सामाजिक क्रिया को समझने की विधि

4.2.12 सामाजिक क्रिया के प्रकार

4.2.13 सामाजिक क्रियाओं के निर्देशन

4.2.14 सामाजिक क्रिया की आलोचना

4.2.15 सारांश

4.2.16 बोध प्रश्न

4.2.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी

● मैक्स वेबर के पद्धतिशास्त्र को समझ सकेंगे।

●आदर्श प्रारूप की अवधारणा को समझेंगे।

●आदर्श प्रारूप के संबंध में मैक्स वेबर के अलावा विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई अवधारणा को भी समझ सकेंगे।

●आदर्श प्रारूप की विशेषताएं समझ सकेंगे।

- आदर्श प्रारूप की आलोचनाओं को समझ सकेंगे।
- क्रिया अर्थ को समझ सकेंगे।
- सामाजिक क्रिया के अर्थ को समझ पाएंगे।
- सामाजिक क्रिया की विशेषताओं को समझने में सक्षम होंगे।
- सामाजिक क्रिया के प्रकारों को सकेंगे।
- सामाजिक क्रिया किन तत्वों से निर्देशित होती है यह समझ पाएंगे।
- सामाजिक क्रिया व्यक्ति के कार्य में किस तरह मददगार होती है यह समझ पाएंगे।
- सामाजिक जगत की वास्तविकता का अध्ययन कर पाएंगे।
- सामाजिक क्रिया को समझने की विधियों को समझ पाएंगे।
- मैक्स वेबर का सामाजिक क्रिया के अध्ययन में क्या योगदान है इसे समझ पाएंगे।

आदर्श प्रारूप का सिद्धांत (Theory of Ideal Type)

4.2.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर से पहले सामान्य रूप से समाजशास्त्र को विज्ञान नहीं माना जाता था। भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र और समाजशास्त्र में काफी अंतर था। इसका मुख्य कारण समाजशास्त्र में सामाजिक नियमों का अभाव था। उस समय यह माना जाता था कि समाजशास्त्र का अध्ययन मनुष्यों के संबंध में है। मानव संबंध परिवर्तनशील है मनुष्य की इच्छाएं स्वतंत्र होती है। इससे कोई सामान्य नियम बन पाना कठिन है इस सब के बाद भी मैक्स वेबर समाजशास्त्र को विज्ञानों की श्रेणी में रखना चाहता था इसलिए उसने आदर्श प्रारूप की अवधारणा विकसित की। मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित आदर्श प्रारूप का सिद्धांत केवल समाजशास्त्र के लिए नवीन था क्योंकि इससे पहले यह सिद्धांत प्लेटो ने प्रत्यक्षवाद के रूप में दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में प्रतिपादित किया था। दोनों के सिद्धांतों का भाव एक था। केवल क्षेत्र का अंतर था वेबर का विचार था कि समाजशास्त्र में आदर्श प्रारूप के स्वरूपों के माध्यम से विचार होना चाहिए। इस प्रक्रिया को उन्होंने विचार पद्धति कहा था। यदि हम वेबर के आदर्श प्रारूप की अवधारणा को समझने से पहले उसके पद्धति शास्त्र को समझ लें तो आदर्श प्रारूप के बारे में वेबर के विचारों को समझने में ज्यादा आसानी होगी।

4.2.2 मैक्स वेबर का पद्धतिशास्त्र (Weber's Methodology)

समाजशास्त्रीय अध्ययन एवं सिद्धांतों के निर्माण में वेबर की पद्धति शास्त्र एक महत्वपूर्ण देन है। इसमें वेबर ने प्राकृतिक घटनाओं एवं सामाजिक क्रियाओं के अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वेबर के अनुसार प्राकृतिक घटनाएं न तो अर्थपूर्ण होती है और ना ही उद्देश्यपूर्ण। जबकि सामाजिक क्रियायें

उद्देश्यपूर्ण होती हैं। प्राकृतिक विज्ञान के नियम सार्वभौमिक होते हैं। यह सभी स्थान एवं समय में एक समान होते हैं जबकि समाजशास्त्री नियमों में यह विशेषताएं नहीं पाई जाती। मैक्स वेबर की पद्धतिशास्त्र की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

1. मैक्स वेबर के समाजशास्त्र को निर्वचनात्मक ज्ञानवर्धन समाजशास्त्र कहा जाता है क्योंकि वैबर समाजशास्त्र में सामाजिक क्रियाओं के अर्थ पूर्ण अवरोधन पर बल देते हैं।
2. वेबर ने प्राकृतिक विज्ञानों की भांति ही सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए कार्यकारण संबंधों पर जोर दिया।
3. सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए तुलनात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया जाना चाहिए। इसके द्वारा हम दो समाजों या दो घटनाओं की समानता और असमानता को ज्ञात कर सकते हैं।
4. सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए आदर्श प्रारूप का निर्माण आवश्यक है। हमें आदर्श प्रारूप का निर्माण वास्तविक जीवन में से कुछ महत्वपूर्ण और विशिष्ट तथ्यों और विशेषताओं को चुनकर करना चाहिए।
5. कुछ घटनाओं का चयन करके ही उसका अध्ययन किया जाना चाहिए क्योंकि वेबर के अनुसार समाजशास्त्र में सब कुछ का अध्ययन उचित नहीं है। सब कुछ का अध्ययन कुछ नहीं का अध्ययन है।
6. सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठ अध्ययन पर जोर देना चाहिए और मूल्याकनात्मक निर्णय से दूर रहना चाहिए क्योंकि मूल्याकनात्मक अध्ययन हमेशा वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो सकते।
7. समाजशास्त्र में क्या है का अध्ययन होना चाहिए ना कि क्या होना चाहिए का।

4.2.3 आदर्श प्रारूप की अवधारणा (Concept of Ideal Type)

समाजशास्त्री जगत में आदर्श प्रारूप की अवधारणा एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। वेबर ने सामाजिक घटनाओं को समझने की दृष्टि से सन 1904 में सर्वप्रथम आदर्श प्रारूप की अवधारणा का प्रयोग किया। इस संबंध में जूलियन फ्रायड ने लिखा है "मैक्स वेबर की समाजशास्त्री जगत में एक और महत्वपूर्ण अवधारणा आदर्श प्रारूप है।" मैक्स वेबर के पूर्व भी आदर्श प्रारूप पर किसी न किसी रूप में विचार होता रहा है जैसा कि डिल्थे, एडमंड हार्सूल, सिम्मल, हैनरी रिकर्ट आदि के विचारों से स्पष्ट है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आदर्श प्रारूप के रूप में वेबर ने कोई नवीन अवधारणा प्रस्तुत नहीं की है और ना ही ऐसा कोई दावा प्रस्तुत किया हैं।

टालकट पारसंस में लिखा है "मैक्स वेबर के लिए मानवीय क्रिया के क्षेत्र में सिद्धांत आदर्श प्रारूपों की प्रणाली में स्थित है। इसे विकसित करने में मैक्स वेबर ने कोई नई चीज प्रस्तुत करने का दावा नहीं किया

है, बल्कि अन्य की अपेक्षा इसे सूत्रबद्ध किया है। जिसे कि वस्तुतः विशिष्ट तार्किक सिद्धांतों के अंतर्गत समाज वैज्ञानिक कार्य-कारण संबंधों को सिद्ध करते हुए करते थे"

जिस समय मैक्स वेबर ने आदर्श प्रारूप की विधिवत परिभाषा दी थी उस समय अध्ययन विधि के क्षेत्र में दो मुद्दे महत्वपूर्ण थे-

1. वैचारिक विधि से जुड़ा मुद्दा
2. तुलनात्मक विधि का मुद्दा

इस संबंध में दार्शनिकों में बहुत बड़ा विवाद था। **डिल्थे** एवं **रेकर्ट** समाज विज्ञान की विधियों में दो पृथक ध्रुवों पर खड़े थे। वेबर ने इन दोनों के मध्य में आदर्श प्रारूप को रखा। वेबर ने डिल्थे के इस विचार को स्वीकार किया कि समाज एवं मूल्य समाजशास्त्र की बुनियादी अवधारणा है। रेकर्ट के विचारों से उन्होंने इस बात को स्वीकारा कि विज्ञान आखिर विज्ञान ही होता है चाहे वह भौतिक घटनाओं का अध्ययन करें या मानसिक क्रियाओं एवं सामाजिक गतिविधियों का। इस तरह उन्होंने डिल्थे से मूल्यों एवं समझ को लिया एवं रेकर्ट के अनुसार समाजशास्त्र को विज्ञान का स्थान दिया। हालांकि उन्होंने डिल्थे एवं रेकर्ट का विरोध भी किया। उन्होंने डिल्थे के इस विचार का विरोध किया कि समझ एवं मूल्यों को लेने से समाजशास्त्र विज्ञान नहीं रहता तथा उन्होंने रेकर्ट का इस बात पर विरोध किया कि विज्ञान और इतिहास परस्पर विरोधी नहीं है। वेबर के अनुसार "समाजशास्त्र एक विज्ञान है जिसकी अध्ययन सामग्री इतिहास से ली जाती है। इस तरह वेबर ने आदर्श प्रारूप की व्याख्या एक विधि के रूप में की है।"

दूसरा मुद्दा तुलनात्मक विधि से जुड़ा है यदि हम सामाजिक स्थितियों जैसे धर्म, वर्ग, क्रांति, समाजवाद आदि का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो इसकी विधि आदर्श प्रारूप की होगी इस तरह उपरोक्त दो मुद्दों के आधार पर मैक्स वेबर ने आदर्श प्रारूप को परिभाषित किया है।

मैक्स वेबर के अनुसार "तर्कसंगत नीति से सामाजिक प्रघटनाओ के कार्य-कारण संबंधों को तब तक स्पष्ट नहीं किया जा सकता जब तक की उन घटनाओं को पहले समानताओं के आधार पर कुछ सैद्धांतिक श्रेणियों में बांट ना दिया जाए क्योंकि ऐसा करने पर हमें कुछ आदर्श टाइप की घटनाएं मिल जाती है।

मैक्स वेबर कहते हैं कि "समाजशास्त्रियों को अपनी उपकल्पना का निर्माण करने के लिए आदर्श अवधारणाओं का चयन करना चाहिएं। यह आदर्श प्रारूप ना तो औसत प्रारूप है और ना ही आदर्शात्मक बल्कि वास्तविकता के कुछ विशिष्ट तत्वों के विचारपूर्वक चुनाव एवं सम्मिलन के द्वारा निर्मित आदर्शात्मक मान है।" अन्य शब्दों में आदर्श प्रारूप का आशय है कुछ वास्तविक तथ्यों के तर्कसंगत आधार पर यथार्थ अवधारणाओं का निर्माण करना।

डॉनमार्टिनडेल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "आदर्श प्रारूप व्यक्तियों की काल्पनिक वास्तविकता से अनुसंधानकर्ता द्वारा उचित अवयवों से मिलकर बनाया गया है। जिसका उद्देश्य स्पष्ट तुलना करना हो सकता है।"

रेमण्ड ऐरन ने वेबर के आदर्श प्रारूप की व्याख्या विधिशास्त्र के विशाल संदर्भ में की है। इसके निर्माण का उद्देश्य अनुसंधानकर्ता की समझ को विकसित करना है। जहां एक तरफ इसका संदर्भ हमारे समाज से है वहीं दूसरी तरफ विज्ञान से है। विज्ञान की प्रक्रिया विवेकपूर्ण होती है इसलिए आदर्श प्रारूप का निर्माण समाजशास्त्र को विज्ञान का दर्जा देने के लिए और अध्ययन सामग्री को समझने के लिए किया गया है।

रेमण्ड ऐरन के अनुसार "आदर्श प्रारूप का निर्माण इसलिए भी किया गया है कि हम कार्य कारण की व्याख्या सही तरह से कर सके आदर्श प्रारूप हमें ऐतिहासिक तथ्यों को समझने में सहायक होता है लेकिन यह ऐतिहासिक या सामाजिक तत्व संपूर्ण ना होकर आंशिक ही होते हैं।"

जुलिएन फ्रेण्ड ने आदर्श प्रारूप की व्याख्या वैज्ञानिक पद्धति से की है क्योंकि प्राकृतिक विज्ञानों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह होती है कि वह अपने अनुसंधान में काम आने वाली अवधारणा की व्याख्या स्पष्ट रूप से करते हैं लेकिन जब समाज विज्ञान में अवधारणाओं को परिभाषित करने का प्रश्न उठता है। तब यह परिभाषाएं अस्पष्ट रह जाती हैं इसलिए मैक्स वेबर ने आदर्श प्रारूप की जो व्याख्या की है उसका विश्लेषण करते हुए जूलिएन फ्रेण्ड कहते हैं कि 'आदर्श प्रारूप सब मिलाकर उन सभी अवधारणाओं का जोड है जिनका निर्माण विशेष रूप से अनुसंधान के उद्देश्य किया जाता है"।

लेविस कोजर ने आदर्श प्रारूप का विश्लेषण करते हुए कहा है कि "यह वह विधि है जिसका प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया जाता है इसके निर्माण में एक या इससे अधिक बिंदुओं को सम्मिलित किया जाता है तथा इसके अंतर्गत समष्टि में पाई जाने वाली घटनाओं का विश्लेषण भी किया जाता है। आदर्श प्रारूप नैतिक दृष्टि से आदर्श ही हो ऐसा नहीं है एक तरफ आदर्श प्रारूप किसी व्यक्तित्व पर आधारित हो सकता है वहीं दूसरी तरफ इसका केंद्र सामूहिकता भी हो सकती है।"

सुशान हेकमन ने 1983 ने एक किताब वेबरः द आइडियल टाइप एंड कंटेंपररी सोशल थ्योरी लिखी। इसमें उन्होंने लिखा कि आदर्श प्रारूप किसी समाज वैज्ञानिक की कल्पना और इच्छा पर आधारित नहीं है बल्कि तर्क पूर्ण रूप से निर्मित धारणा है। वेबर के अनुसार उन्हें वास्तविक सामाजिक इतिहास के संसार से निगमन के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है। यह अमूर्त चिंतन का परिणाम नहीं है बल्कि इतिहास से प्राप्त एक सैद्धांतिक चित्र है। यह एक सैद्धांतिक वशीकरण है। आदर्श प्रारूप में कुछ भी आदर्श नहीं है। यह अतिशयोक्तिपूर्ण होते हैं और यह पूर्ण रूप से वास्तविकता का बोध भी नहीं कराते और ना ही आदर्श स्थिति का बोध कराते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम भारतीय संयुक्त परिवारों का आदर्श प्रारूप तैयार करें तो हम यह देखते हैं कि संपत्ति पर उनका पूरा अधिकार है, परिवार की सत्ता पुरूषों के पास होती हैं, संयुक्त परिवार

व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं, इनमें धर्म की सामूहिक अभिव्यक्ति होती है, संयुक्त परिवार संयुक्त चूल्हे एवं संयुक्त सम्पत्ति की धारणा पर आधारित है।

इस उदाहरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सभी परिवार ऐसे नहीं होते जिस तरह वेबर ने स्वयं आदर्श प्रारूप की धारणा को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया है।

थॉमस बर्जर ने लिखा है कि वेबर ने 'इकोनॉमी एंड सोसाइटी' नामक पुस्तक में जो आदर्श प्रारूप प्रस्तुत किए हैं। वे परिभाषाएं हैं, वर्गीकरण है और विशिष्ट कल्पनाएं भी है। सुसान हेकमन ने वेबर की इस बात को स्वीकार नहीं किया परंतु उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि वेबर ने आदर्श प्रारूप की धारणा का अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया है।

मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप की अवधारणा को समझने के लिए हमें निम्न तीन बातों को जानना आवश्यक है-

1. आदर्श प्रारूप आत्मगत होते हैं

मैक्स वेबर के अनुसार आदर्श प्रारूप वास्तव में आत्मगत होते हैं। भौतिक विज्ञान के नियम शुद्ध रूप से वस्तुनिष्ठ होते हैं जबकि सामाजिक विज्ञान के नियम शुद्ध रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकते । इसी कारण सामाजिक अध्ययन में वस्तुनिष्ठता को प्राप्त नहीं किया जा सकता। वास्तव में सामाजिक विज्ञानों का संबंध मानव व्यवहार से होता है और मानव व्यवहार हमेशा स्वतंत्र इच्छा से जुड़ा रहता है। वह चाहते थे कि समाजशास्त्र को भौतिक विज्ञान की तरह वस्तुनिष्ट बनाया जाएं। दोनों विज्ञानों की प्रकृति में अंतर होने के कारण इसमें वस्तुनिष्ठता प्राप्त नहीं की जा सकती फिर भी हमें आदर्श प्रारूप के माध्यम से समाजशास्त्रीय अध्ययनों को अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए।

2. आदर्श प्रारूप भावात्मक है

आदर्श प्रारूप भावात्मक होते हैं क्योंकि यह हमारी कल्पना में रहते हैं। आदर्श प्रारूप कोई स्थूल वस्तु नहीं होती यह सूक्ष्म होते हैं और हम आदर्श प्रारूपों की भौतिक नियमों से तुलना भी कर सकते हैं।

3. आदर्श प्रारूप परिवर्तनशील है।

वेबर के अनुसार आदर्श प्रारूप का निर्माण व्यक्ति के द्वारा समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए किया जाता है। इसलिए यह स्थाई नहीं होते आदर्श प्रारूप में परिवर्तन के दो कारण हैं-

1. इसका निर्माण किसी एक समय में होता है अर्थात यह समय की उपज है और समय बदलने से इनमें परिवर्तन हो जाता है।
2. आदर्श प्रारूप का निर्माण चूंकि मनुष्य ही करता है। इसलिए मनुष्य की भावात्मक स्थिति में परिवर्तन होने से आदर्श प्रारूप परिवर्तित हो जाता है इसलिए आदर्श प्रारूपों को स्थाई नहीं कहा जाता मैक्स वेबर के अनुसार आदर्श प्रारूप समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए साधन मात्र है और समय के बदलने के साथ-साथ उन्हें भी बदलना आवश्यक है। इसलिए एक समाजशास्त्री का कार्य केवल आदर्श

प्रारूपों का निर्माण करना ही नहीं है बल्कि समय-समय पर इसके परिवर्तित अर्थ की व्याख्या करना भी है जिससे सामाजिक क्रियाओं के अर्थ को समझा जा सके।

वेबर के पद्धति शास्त्र में आदर्श प्रारूप की अवधारणा का विशेष महत्व है। वेबर ने सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए और उसके बारे में सामान्य नियमों को जानने के लिए इस अवधारणा का प्रयोग किया। वेबर आदर्श प्रारूप को अनुसंधानकर्ता के अध्ययन का एक यंत्र मानते थे। इसका प्रयोग वह घटनाओं की समानता और असमानताओं को ज्ञात करने के लिए कर सकते थे। तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह एक मौलिक विधि है।

4.2.4 आदर्श प्रारूप की विशेषताएँ (Characteristics of Idal Types)

आदर्श प्रारूप का निर्माण समाजशास्त्री कुछ वास्तविक तथ्यों के आधार पर तर्कसंगत रूप से करता है इसका निर्माण अध्ययन के लिए उपकल्पना की रचना हेतु किया जाता है इसका अर्थ यह है कि वास्तविक जीवन में जो तत्व पाए जाते हैं उनमें से विचारपूर्वक कुछ तथ्यों का चयन किया जाए और उन्हें अध्ययन के लिए एक पैमाना या मापक मान लिया जाए। यद्यपि आदर्श प्रारूप का निर्माण वास्तविकता के आधार पर किया जाता है। फिर भी वास्तविकता के बराबर नहीं होता। वास्तविकता की किन किन विशेषताओं को अनुसंधानकर्ता अपने आदर्श प्रारूप के लिए चुनेगा यह उसी पर निर्भर करता है। इसलिए प्रत्येक अध्ययन कर्ता अपने समस्या के अध्ययन के हिसाब से भिन्न-भिन्न आदर्श प्रारूप बना सकता है।

मैक्स वेबर ने आदर्श प्रारूप का प्रयोग सामान्यता तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया है। धर्म के क्षेत्र में मैक्स वेबर के द्वारा दुनिया के जिन छह धर्मों का अध्ययन किया है गया है उसकी विधि आदर्श प्रारूप ही है। मैक्स वेबर के अनुसार हमें केवल उन्हीं आदर्श प्रारूपों का अपने अध्ययन में उपयोग करना चाहिए जो नियंत्रित, शंकारहित एवं प्रयोग सिद्ध हो। इस आधार पर वेबर में आदर्श प्रारूपों की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है-

1. वैज्ञानिक दृष्टि से जो अनुसंधानकर्ता के द्वारा जो अर्थ क्रिया का लगाया जाता है। उसी अर्थ के अनुसार आदर्श प्रारूप का निर्माण किया जाना चाहिए।
2. आदर्श प्रारूप में केवल तर्कसंगत एवं महत्वपूर्ण तथ्यों को ही शामिल किया जाता है क्योंकि आदर्श प्रारूप सब कुछ का वर्णन नहीं है।
3. आदर्श प्रारूप स्वयं लक्ष्य या साधन नहीं है बल्कि ठोस ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण में सहायक यंत्र या उपकरण मात्र है अतः आदर्श प्रारूपों का निर्माण कर लेना ही समस्या का लक्ष्य नहीं है समाजशास्त्र का लक्ष्य उससे कहीं अधिक है।

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त आदर्श प्रारूप के निम्नलिखित लक्षण बताए जाते हैं-

1. **आदर्श प्रारूप में जो कुछ है उसका वास्तविक जीवन में होना आवश्यक नहीं है।**

मैक्स वेबर का कहना है कि आदर्श प्रारूप के अंतर्गत जिन विशेषताओं को रखा गया है जरूरी नहीं है कि वह सारे लक्षण सामाजिक घटनाओं में वैसे ही मिले। हो सकता है कि आदर्श प्रारूप के कुछ लक्षण वास्तविक घटना में मिले और कुछ नहीं भी मिले। वेबर ने उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि पूंजीवाद के आदर्श प्रारूप में हम कुछ विशेषताओं को सम्मिलित करते हैं लेकिन जब हम पूंजीवाद को अमेरिका या भारत के संदर्भ में देखते हैं तो हमें इसमें आदर्श प्रारूप की ये विशेषताएँ नहीं दिखाई देती। मैक्स वेबर ने आदर्श प्रारूप को यथार्थ से भिन्न इसलिए किया है क्योंकि संपूर्ण यथार्थ को समझना समाजशास्त्री के लिए संभव नहीं है समाजशास्त्री समय और स्थान के हिसाब से समाज के विशिष्ट भागों को देखता है और उसी के अनुसार आदर्श प्रारूपों का निर्माण करता है।

2. **आदर्श प्रारूप का संबंध नैतिक रुप से किसी आदर्श से नहीं होता**

सामान्य बोलचाल की भाषा में आदर्श का अर्थ अनुकरण करने योग्य होता है उदाहरण के तौर पर यदि हम यह कहें कि राम एक आदर्श पुरुष थे तो हमारा तात्पर्य यह है कि वह हमारे लिए अनुकरणीय थे परंतु समाजशास्त्र में आदर्श प्रारूप के अंतर्गत इस तरह की कोई अनुकरणीय बात नहीं होती यहां पर आदर्श से मतलब किसी भी तर्क के अंतिम छोर से होता है।

3. **आदर्श प्रारूप में मूल्य नहीं होते**

मैक्स वेबर आदर्श प्रारूप को इसीलिए आदर्श कहते हैं क्योंकि इसमें अनुसंधानकर्ता के मूल्य उपस्थित नहीं होते। उदाहरण के लिए जब हम हिंदू धर्म के अध्ययन के लिए आदर्श प्रारूप का निर्माण करते हैं तो यह केवल एक सांस्कृतिक संस्था का अध्ययन मात्र है। अनुसंधानकर्ता जब किसी धर्म का अध्ययन करता है या वह उसकी अच्छाई या बुराइयों की बात करता है और धर्म में क्या होना चाहिए और क्या नहीं ऐसे मूल्यों का समावेश आदर्श प्रारूप में नहीं होता।

4. **प्रारूप उपकल्पनात्मक होता है**

लेविस कोजर ने आदर्श प्रारूप की एक प्रमुख विशेषता इस ग्रुप कल्पनात्मक प्रवृत्ति को बताया है उनके अनुसार आदर्श प्रारूप वास्तविकता या यथार्थ नहीं होते हैं। अनुसंधानकर्ता अपनी परिस्थिति के आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण करते हैं, कोजर ने कहा है कि आदर्श प्रारूप का संबंध उन स्थितियों से होता है जो अध्ययन की जाने वाली घटनाओं को प्रकट करती हैं। हो सकता है कि आदर्श प्रारूप द्वारा दी गई उपकल्पनाओं का संबंध उन परिणामों से हो जो की घटनाओं के कारण पैदा होते हैं। जूलियन फ्रेंड ने आदर्श प्रारूप की मीमांसा में कहा है "यद्यपि आदर्श प्रारूप यथार्थ नहीं होते हैं फिर भी यह हमें एक ऐसी अवधारणात्मक युक्ति को देता है जिसकी सहायता से हम अनुभाविक यथार्थ के विकास को समझ सकते हैं और इसका विश्लेषण कर सकते हैं।"

5. **आदर्श प्रारूप एक विवेक की ब्लूप्रिंट है**

आदर्श प्रारूप का मुख्य आधार विवेक होता है जिस समस्या से जुड़े हुए क्षेत्र पर आदर्श प्रारूप बनाया जाता है। दुनिया में निरंतर उतार-चढ़ाव आने के कारण उसका यथार्थ बदलता रहता है। आदर्श प्रारूप में उतार-चढ़ाव का कोई समावेश नहीं होता है आदर्श प्रारूप तो विवेक कार्यकारण पर बनता है जबकि यथार्थ बराबर बदलता रहता है।

6. **आदर्श प्रारूप का संबंध विज्ञान की अवधारणा से जुड़ा हुआ है**

आदर्श प्रारूप कितना उपयोगी होगा इसका संबंध विज्ञान की अवधारणा से जुड़ा रहता है यदि विज्ञान का उद्देश्य कभी समाप्त नहीं होने वाले अनुसंधान से है तो इसका अर्थ यह है कि अनुसंधानकर्ता जिन अवधारणाओं का उपयोग करता है वह अवधारणाएं भी निरंतर रूप से पीछे छूट जाती हैं लेकिन विज्ञान के चरण में तभी आगे बढ़ते हैं जब उसकी अवधारणाएं पीछे रह जाती हैं विज्ञान के द्वारा नई अवधारणा का सूत्रपात विज्ञान की गति को तेज करता है इस तरह हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि हमें विज्ञान को आगे बढ़ाना है तो हमारे लिए आवश्यक है कि हम उपयुक्त आदर्श प्रारूप में भी अनिवार्य रूप से बदलाव लाएं।

7. **आदर्श प्रारूप का आधार मूल्य विस्थापन होता है**

आदर्श प्रारूप अपनी केंद्रीय रूप में मूल्य विस्थापन से जुड़ा रहता है जिसे हम समष्टि कहते हैं इस समष्टि में विविधता होती है ऐसी स्थिति में कोई भी अनुसंधानकर्ता कभी भी संपूर्ण समष्टि के यथार्थ को नहीं जान पाता है इसलिए हमारा यथार्थ शब्द से संबंधित ज्ञान आंशिक होता है जब कभी भी कोई अनुसंधानकर्ता आदर्श प्रारूप का निर्माण करता है तो उसका समाज की वस्तु और विचारों के बारे में जो भी मूल्य विस्थापन है वह आदर्श प्रारूप में अवश्य सम्मिलित होता है।

8. **आदर्श प्रारूप न तो सत्य होता है और न झूठ**

आदर्श प्रारूप का निर्माण किसी अस्पष्टता के शोध प्रणाली के माध्यम से विषय वस्तु का अध्ययन करने के लिए किया जाता है जिससे हम उसके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें। मैक्स वेबर ने कहीं पर भी यह स्पष्ट नहीं किया है कि आदर्श प्रारूप के लक्ष्य ज्ञान बोध से जुड़े होते हैं और ना ही उन्होंने कही यह स्पष्ट किया है कि आदर्श प्रारूप किसी एक विवेक पूर्ण व्यवस्था को बनाते हैं। जुलियेन फ्रेंड का कहना है कि "आदर्श प्रारूप एक प्रकार की विशुद्ध प्रयोगात्मक विधि है जिसका निर्माण समाज वैज्ञानिक अपने ढंग से करता है इसका निर्माण केवल खोज करना होता है यदि कोई आदर्श प्रारूप समाज के वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये कारगर सिद्ध नहीं होता तो वह बिना हिचक के उसे फेंक देता है।"

9. **आदर्श प्रारूप की सही भूमिका बोधगम्यता को बढ़ाना है**

सामान्यतः सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के बारे में हमारी जानकारी बहुत अधिक स्पष्ट और विस्तृत नहीं होती है ऐसी स्थिति में घटनाओं के अध्ययन करने के लिए हम तार्किक आधार पर प्रघटनाओं के

बारे में आदर्श प्रारूपों का निर्माण करते हैं जिससे कि घटना और प्रघटनाओं से संबंधित हमारी बोधगम्यता में वृद्धि होती है।

10. एक ही घटना के अध्ययन के लिए विभिन्न आदर्श प्रारूपों का निर्माण किया जा सकता है

सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक अनुसंधान कर्ता का अंतिम लक्ष्य होता है कि वह घटना के संबंध में संपूर्ण पहलुओं का अध्ययन करें जिससे कि वह हर सामाजिक घटना को समझ सके। जब अनुसंधानकर्ता किसी भी सामाजिक घटना को समझने का प्रयास करता है तो वह उसके लिए आदर्श प्रारूप का निर्माण करता है। इसमें अनुसंधानकर्ता को यह स्वतंत्रता होती है कि वह अपने अध्ययन के अनुरूप अनेक आदर्श प्रारूपों का निर्माण कर सकता है अर्थात वास्तविकता यह है कि अनुसंधानकर्ता किसी भी घटना के बारे में जितने विचार रखता है उतने ही आदर्श प्रारूपों का निर्माण कर सकता है।

11. आदर्श प्रारूप घटना की स्पष्ट अभिव्यक्ति का साधन है

आदर्श प्रारूप घटना की स्पष्ट अभिव्यक्ति का साधन होते हैं अनेक समाजशास्त्री और इतिहासकार ऐसे भी है जो आदर्श प्रारूप का केवल इसलिए विरोध करते रहे हैं कि आदर्श प्रारूप में यथार्थता नहीं होती है और यह केवल कल्पनाओं का गठबंधन होता है। इस सबके बाद भी यदि हम आदर्श पर मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूपों का अध्ययन करते हैं तो यदि हम समाजशास्त्र को एक विज्ञान मानते हैं तो यह आवश्यक है कि हम इसकी अध्ययन विधियों को भी वैज्ञानिक तरीके से करें इसलिए आदर्श प्रारूप को घटना की स्पष्ट अभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। हम पाते हैं कि मैक्स वेबर ने नौकरशाही के बारे में जो कुछ भी लिखा था वह केवल आदर्श प्रारूप थे और मैक्स वेबर की मृत्यु के बाद भी आज भी उन्हें पढ़ा जा रहा है यदि हम समाजशास्त्र को एक विज्ञान मानते हैं तो यह आवश्यक है कि इसकी अध्ययन विधियों भी वैज्ञानिक हो।

4.2.5 आदर्श प्रारूप की संरचना (Structur of Ideal Type)

आदर्श स्वरुप किसी भी समाज को बनी बनाई नहीं मिलती, बल्कि अनुसंधानकर्ता को इसका निर्माण करना पड़ता है। सामान्यतः अनुसंधान के समाप्त हो जाने के बाद किसी भी आदर्श प्रारूप का भी समय या जीवन काल समाप्त हो जाता है। मार्टिन डेल ने किसी भी आदर्श प्रारूप के निर्माण के दो प्रमुख आधार बताए हैं-

1. वस्तुनिष्ठता की संभावना(Objective possibility)

2. पर्याप्त कार्य कारण संबंध(Adeauate Causation)

1. वस्तुनिष्ठता की संभावना

किसी भी विषय को आदर्श प्रारूप की श्रेणी में रखने से पहले यह देखना आवश्यक होता है कि उसके बारे में अनुसंधानकर्ता को पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान है या नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि आदर्श प्रारूप का अध्ययन वस्तुनिष्ठ पद्धति से किए जाने की संभावना होती है।

2. पर्याप्त कार्य कारण संबंध

जब अनुसंधानकर्ता किसी भी घटना का अध्ययन करने के लिए विषय का चुनाव करता है तो उसे यह देखना आवश्यक है की घटना में जो तथ्य सम्मिलित है वे तार्किक रूप से बिखरे हुए ना हो। घटना के बीच कार्य कारण संबंध अनिवार्य रूप से स्पष्ट होना चाहिए क्योंकि कार्य-कारण संबंधों का प्रत्यक्ष प्रभाव अनुसंधान के परिणामों पर पड़ता है।

समाज वैज्ञानिक अपनी आवश्यकता के अनुसार सामान्य प्रघटना के भिन्न-भिन्न आदर्श प्रारूपों का निर्माण कर सकते हैं। आदर्श प्रारूप की अवधारणा की भूमिका को बौद्धिकता की दृष्टि से दो स्तरों पर देखा जा सकता है-

1. अनुसंधान के स्तर पर- आदर्श प्रारूप की रचना बौद्धिकता के आधार पर अनुसंधान के स्तर पर की जा सकती है।

2. वर्णनात्मक स्तर पर- आदर्श प्रारूप वास्तविकता को यथावत हमारे सामने प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि वह स्पष्टता और सूक्ष्मता के आधार पर वर्णात्मक रूप में इसे प्रस्तुत करता है।

4.2.6 आदर्श प्रारूप की आलोचना (Criticism)

आदर्श प्रारूप की अवधारणा का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसकी रूपरेखा स्पष्ट नहीं है। यही कारण है कि मैक्स वेबर के बाद अन्य समाजशास्त्रियों ने इसका उपयोग नहीं के बराबर किया है।

1. यदि हम मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप की अवधारणा को स्वीकार करें तो समाजशास्त्र में सार्वभौमिक नियमों का निर्माण करना कठिन हो जाएगा क्योंकि प्रत्येक वैज्ञानिक किसी घटना के उन तथ्यों की ओर अपना ध्यान केंद्रित करेगा जिसे कि वह महत्वपूर्ण मानता है।
2. मैक्स वेबर का आदर्श प्रारूप केवल तुलनात्मक अध्ययन में ही सहायक हो सकता है क्योंकि आदर्श प्रारूप के आधार पर हम किसी वास्तविक घटना को और आदर्श प्रारूप के बीच पाई जाने वाली समानता एवं विभिन्नता को ही ज्ञात कर सकते हैं।
3. यदि हम सभी घटनाओं का अध्ययन आदर्श प्रारूप के आधार पर करें तो अनुभव आधारित अध्ययनों का महत्व समाप्त हो जाएगा।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप की अवधारणा समाजशास्त्र में एक विशेष स्थान रखती है।

सामाजिक क्रिया का सिद्धांत (Theory of Social Action)

4.2.7 प्रस्तावना

सामाजिक क्रिया के सिद्धांत के प्रतिपादकों में मैक्स वेबर का नाम अत्यंत प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता है। इन्होंने सामाजिक क्रिया के सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। मैक्स वेबर ने सामाजिक

क्रिया के सिद्धांत के द्वारा ही समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति को स्पष्ट किया है। मैक्स वेबर की पीढ़ी के विचारकों के सामने बहुत बड़ी चुनौती समाजशास्त्र को परिभाषित करने की थी। **रैमण्ड एरन (Raymond Aron)** का कहना है कि "मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र को सामाजिक क्रिया का एक विस्तृत विज्ञान कहकर उन सभी समाजशास्त्रियों से एक अलग दृष्टिकोण अपनाया है, जो कहते थे कि समाजशास्त्र को मुख्यतः सामाजिक संरचना के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।"

मैक्स वेबर की समस्या अपने सामाजिक क्रिया के सिद्धांत में तार्किकता को पर्याप्त स्थान देने की थी, तो दूसरी ओर वे व्यक्तिनिष्ठता को भी सामाजिक क्रिया के विश्लेषण में स्थान देना चाहते थे। इसी संदर्भ में उन्होंने समाजशास्त्र की परिभाषा देते हुए लिखा था कि "सामाजिक क्रिया का अध्ययन ही समाजशास्त्र है।" मैक्स वेबर की इसी प्रयास का विश्लेषण करते हुए रैमण्ड एरन (Raymond Aron) ने कहा है कि "समाजशास्त्र सामाजिक क्रिया का वृहद विज्ञान है।" स्वयं वेबर भी "सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में यह कहते हैं कि सामाजिक क्रिया का अध्ययन ही समाजशास्त्र है।"

मैक्स वेबर के अनुसार "समाजशास्त्र वह विज्ञान है, जिसका उद्देश्य सामाजिक व्यवहार के बारे में निर्वचनात्मक समझ प्राप्त करना है। यह इसलिए कि इस समझ के द्वारा सामाजिक व्यवहार के कारण और इसके प्रभावों का विश्लेषण किया जा सके।" "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया का अर्थ पूर्ण कराने का प्रयत्न करता है, ताकि इसके घटनाक्रम या गतिविधियों एवं परिणामों की कार्य कारण व्याख्या तक पहुंचा जा सके।"

इस परिभाषा के आधार पर कह सकते हैं कि वेबर समाजशास्त्र की विषय वस्तु सामाजिक क्रिया को ही मानते थे। समाजशास्त्र वह विज्ञान है, जो सामाजिक क्रिया का अर्थ पूर्ण बोध कराने का प्रयास करता है। इसलिए हमें समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए सामाजिक क्रिया की धारणा को समझना आवश्यक होगा।

4.2.8 सामाजिक क्रिया का अर्थ (Meaning of Social Action)

सामाजिक क्रिया के सिद्धांत को प्रस्तुत करने का श्रेय सबसे पहले अल्फ्रेड मार्शल को है। मार्शल ने उपयोगितावादी अवधारणा की विवेचना कर गतिविधि की अवधारणा को विकसित किया। गतिविधि को मार्शल ने मूल्यों की एक विशिष्ट श्रेणी माना है। मार्शल के बाद इटली के विलफ्रेडो परेटो ने विशिष्ट चालकों एवं भ्रांत तर्कों की अवधारणाओं को विकसित किया। इसी श्रंखला में दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की अवधारणा को प्रस्तुत किया।

वर्तमान समय में सामाजिक क्रिया की अवधारणा के प्रमुख प्रवर्तक मैक्स वेबर है। उन्होंने अर्थपूर्ण सामाजिक क्रिया के सिद्धांत को सामने रखा। इसके बाद **वेब्लन (Veblin), कॉमंस (Commons), मैकाइवर (MacIver), कालमैनहिम (Karl Mannheim), जैननकी (Znaniecki), पारसंस (Parsons),**

आर. के. मर्टन (R K Merton) के नाम विशेष महत्वपूर्ण है। इस श्रंखला में विलियम वाइट (William White), डेविड ग्रॉसमैन (David Reisman) तथा **सी राइट मिल्स(C- Write Mills)** भी रखे सकते हैं।

सामाजिक क्रिया के द्वारा हम सामाजिक जगत की वास्तविकता का अध्ययन कर सकते हैं। स्वयं मैक्स वेबर ने वर्ग, प्रस्थिति, धर्म, नौकरशाही, राजनैतिक दल एवं अनेक सामाजिक घटनाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण सामाजिक क्रिया के माध्यम से किया है। इसलिए मार्टिनडेल मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया के सिद्धांत को व्यवहारवाद की एक शाखा मानते हैं।

मैक्स वेबर सामाजिक क्रिया के अध्ययन में तार्किकता एवं व्यक्तिनिष्ठता दोनों को समुचित स्थान देना चाहते थे। जिससे कि मनोविज्ञान और समाजशास्त्र एक सूत्र में आबद्ध हो जाए। मैक्स वेबर ने अपनी इस अवधारणा को अपनी रचना 'सामाजिक और आर्थिक संगठन' का **(The Theory of Social and Economics Organization)** में प्रतिपादित किया।

मैक्स वेबर के द्वारा प्रतिपादित सामाजिक क्रिया की अवधारणा बहुत ही स्पष्ट, गहन एवं सूक्ष्म है उन्होंने स्पष्ट किया कि-

1. समाजशास्त्र मानव क्रियाओं से संबंधित है, प्राकृतिक क्रिया अथवा पशु-पक्षियों की क्रियाओं से नहीं।
2. मैक्स वेबर के अनुसार मानव क्रिया से अर्थ मानव के उस आचरण से है जिसे वह आत्मपरक अर्थ प्रदान करता है।

वेबर के अनुसार मनुष्य कभी-कभी ऐसी क्रियाएं करता है। जिसका कोई उद्देश्य या अर्थ नहीं होता, और ऐसे अर्थविहीन क्रियाओं में समाज विज्ञानों की दिलचस्पी नहीं होती। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति बैठे बैठे अपने हाथ पैर हिला रहा हो या अपने बालों में उंगलियां घुमा रहा हो और वह यह सब अचेतन रूप में कर रहा हो, तो उसकी यह क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं होगी क्योंकि वह यह क्रिया किसी उद्देश्य या प्रयोजन से नहीं कर रहा है। कोई भी वह क्रिया जो कर्ता की दृष्टि में अर्थपूर्ण होती है उसे ही मानवीय क्रिया कहा जाता है।

मानव की सभी आत्मपरक अर्थ-भरी क्रियाएं भी समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में शामिल नहीं की जाती। समाजशास्त्र की रूचि मानव की केवल उन अर्थ पूर्ण क्रियाओं तक ही सीमित है, जो वह किसी अन्य व्यक्ति या समूह की किसी क्रिया को ध्यान में रखकर या उससे प्रभावित होकर करता है और ऐसी क्रियाओं को ही मैक्स वेबर सामाजिक क्रिया कहते हैं।

मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया के सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या करने से पहले हमें क्रिया और व्यवहार के बीच के अंतर को जान लेना आवश्यक है। सामाजिक संबंधों के निर्माण के लिए हमें विभिन्न

लोगों से अंतःक्रिया करनी पड़ती है। इन अंतःक्रियाओं से ही सामाजिक संबंधों का जन्म होता है। सामाजिक संबंधों से समाज की क्रिया के लिए चार आवश्यक तत्व है कर्ता, लक्ष्य, साधन और परिस्थिति।

सामाजिक क्रिया तभी संभव है जब वह किसी व्यक्ति के द्वारा की जाए। प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली क्रिया के पीछे कोई ना कोई लक्ष्य अवश्य होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे क्रिया करनी पड़ती है। समाजशास्त्रीय रूप से समस्त क्रियाएं सामाजिक क्रिया के अंतर्गत नहीं आती, अपितु हम केवल उन्हीं क्रियाओं को सामाजिक क्रिया कह सकते हैं, जिन्हें कर्ता कोई ना कोई अर्थ प्रदान करता हैं। व्यक्तियों की यह क्रिया बाह्य (Exterior), आंतरिक (Interior), मानसिक (Mental) एवं भौतिक (Physical) हो सकती है। साथ ही यह समय की दृष्टि से वर्तमान (Present), भविष्य (Future) एवं भूत (Past) तीनों में हो सकती है अर्थात क्रिया का संबंध किसी भी एक काल से हो सकता है।

उपरोक्त आधार पर हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से सभी प्रकार की क्रियाएं सामाजिक क्रियाएं नहीं होती, वरन केवल वे क्रियाएं ही जो अर्थ पूर्ण होती हैं और जिनका संबंध व्यक्ति के भूतकाल वर्तमान या भविष्य के व्यवहार से होता है सामाजिक क्रिया कहलाती है।

4.2.9 सामाजिक क्रिया की परिभाषाएं

मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि “वह सारा व्यव्हार क्रिया में आ जाता है जो कर्ता चेतना संबंधी अर्थ में करता है।” इस अर्थ में क्रिया बाहरी भी हो सकती है एवं आंतरिक भी।

मैक्स वेबर के अनुसार “किसी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है, जबकि उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा लगाए गए स्वानुभूतिमूलक अथवा आत्मपरक अर्थ के कारण वह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो, और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।”

मैक्स वेबर लिखते हैं कि “किसी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है, जब इस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा लगाए गए व्यक्तिनिष्ठ अर्थ के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधियां निर्धारित हो।” मैक्स वेबर का मानना है कि “सामाजिक क्रिया दूसरी या अन्य व्यक्तियों के भूतकाल वर्तमान एवं भावी व्यवहार द्वारा प्रभावित होती है।”मैक्स वेबर के क्रिया तथा सामाजिक क्रिया के बारे में विचारों से यह स्पष्ट है कि कोई भी क्रिया तभी सामाजिक कहीं जा सकती है, अगर वह अन्य व्यक्तियों अथवा उनकी क्रियाओं से संबंधित हो।

मैक्स वेबर के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्ववानों ने भी सामाजिक क्रिया की परिभाषाएं इस प्रकार दी है-

क्वायल के अनुसार “सामाजिक क्रिया सामाजिक पर्यावरण को इस प्रकार परिवर्तित करने का प्रयास है जो हमारे विचार में जीवन को अधिक संतोषजनक बनाएगा यह केवल व्यक्तियों को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि सामाजिक संस्थाओं कानूनी प्रभाव और समुदायों को भी प्रभावित करने का लक्ष्य रखता है।”

हिल के अनुसार-"सामाजिक क्रिया व्यापक सामाजिक समस्याओं का समाधान करने का संगठित सामूहिक प्रयास कहा जा सकता है यह मौलिक सामाजिक एवं आर्थिक दशा और व्यवहार को प्रभावित कर के सामाजिक दृष्टि से वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संगठित सामूहिक प्रयास भी कहा जा सकता है।"
विटमर के अनुसार "सामाजिक क्रिया का तात्पर्य उन संगठित और कानूनी दृष्टि से वैध क्रियाकलापों से है जिन की संरचना समाज द्वारा मैडम की रोज क्लास लगती है क्या इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जनमत विधान और जन प्रशासन को गतिमान करने के लिए की जाती है।"

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसमें व्यक्तियों की व्यक्तिगत दृष्टिकोण को समझें अर्थात किसी भी क्रिया में व्यक्ति या उसे करने वाला कर्ता उस व्यवहार का क्या अर्थ लगाता है। यह समझना आवश्यक है। मैक्स वेबर के अनुसार "कोई भी व्यवहार या गतिविधि अपने आप में कुछ भी नहीं है किंतु यदि व्यवहार या क्रिया को करने में कर्ता किसी अर्थ को जोड़ता तो वह क्रिया सामाजिक क्रिया बन जाती है। इसे हम इस तरह भी समझा सकते हैं-

व्यवहार + कर्ता द्वारा दिया गया अर्थ = सामाजिक क्रिया

मैक्स वेबर ने अपनी सामाजिक क्रिया की अवधारणा को समझाने के लिए इसे चार भागों में बांटा है। मैक्स वेबर के अनुसार "क्रियाओं का यह वर्गीकरण वस्तु के साथ संबंध पर आधारित है।" पारसंस ने इसे "अभिमुखता का प्रारूप माना है।" गर्थ एवं मिल्स इसे "प्रेरणा की दिशा कहते हैं।"

4.2.10 सामाजिक क्रिया की विशेषताएं (Characteristics of Social Action)

मैक्स वेबर ने कहा कि सामाजिक क्रिया का संबंध केवल वर्तमान परिस्थितियों से ही नहीं होता है बल्कि यह भूतकाल और भविष्य की परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। यदि हम पिछले किसी कार्य के प्रत्युत्तर में कोई क्रिया करते हैं, तो वह भूतकालीन क्रिया होती है पर यदि वर्तमान समय में कोई क्रिया कर रहे हैं तो वह वर्तमान क्रिया और यदि हम भविष्य को ध्यान में रखकर कोई कार्य करते हैं तो वह भविष्य के लिए होगी। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने पूर्व से कुछ कड़वे अनुभवों के आधार पर क्रिया करता है तो उसके संघर्ष करने की क्रिया का संबंध उस व्यक्ति की भूतकाल की क्रिया से होगा। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति वर्तमान समय में खेल के मैदान में अपने कोच के निर्देशों का पालन करते खेल रहा है, तो वह वर्तमान सामाजिक क्रिया है। इसी तरह से कोई व्यक्ति भविष्य में होने वाली किसी भी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी अभी से करने लगेगा तो उसकी यह क्रिया भविष्य क्रिया होगी।

मैक्स वेबर का कहना है कि "प्रत्येक प्रकार की बाहरी क्रिया (Overt Action) सामाजिक क्रिया नहीं कही जा सकती बाह्य क्रिया गैर सामाजिक (Non Social) है यदि पूर्णतया जड व बेजानदार वस्तु द्वारा प्रभावित और उसकी प्रतिक्रिया स्वरुप की जा रही है।"

उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने घर में बैठकर भजन-पूजन करता है, मंत्रों का उच्चारण करता है तो उसकी यह क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं है। लेकिन यदि वह अपने घर में कथा करवाता है या पूजन पाठ का आयोजन करवाता है, जिसमें पंडित या पुरोहितों के द्वारा मंत्र उच्चारण किया जाता है, यज्ञ में आहुति दी जाती है तथा आरती में कई लोग सम्मिलित होते हैं तो यह क्रिया सामाजिक क्रिया होगी क्योंकि इसमें कर्ता का व्यवहार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार से संबंधित है।

मैक्स वेबर के अनुसार "कुछ संपर्क उसी सीमा तक सामाजिक क्रिया में आते हैं। जहां तक वह दूसरों के व्यवहार से अर्थपूर्ण ढंग से संबंधित और प्रभावित होते हैं। प्रत्येक प्रकार के संपर्क सामाजिक नहीं कहीं जा सकते।"

उदाहरण के तौर पर यदि रास्ते में दो वाहन चालक चलते हुए आपस में टकरा जाते हैं और गिर जाते हैं और यदि वे दोनों एक दूसरे से बिना कुछ कहे कुछ कर चले जाते हैं तो उनकी यह क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं होगी लेकिन यदि दोनों चालक आपस में लड़ते झगड़ते हैं या गाली गलौज करते हैं या फिर दोनों अपनी गलती स्वीकार करते हुए एक दूसरे से माफी मांगते हुए आगे चले जाते हैं तो उनकी यह क्रिया सामाजिक क्रिया होगी क्योंकि ऐसा करने में दोनों व्यक्तियों के व्यवहार आपस में अंतर संबंधित एवं प्रभावित होते हैं।

मैक्स वेबर के अनुसार "सामाजिक क्रिया ना तो अनेक व्यक्तियों के द्वारा की जाने वाली एक जैसी क्रिया को कहा जाता है और ना ही उस क्रिया को कहा जाता है, जो कि केवल दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रभावित होती है।"

मैक्स वेबर का कहना है कि दूसरे व्यक्तियों द्वारा एवं दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों द्वारा प्रभावित क्रिया दोनों में अंतर है। उदाहरण के लिए यदि कहीं सड़क पर व्यक्ति जा रहे हैं और अचानक बारिश हो जाए तो हर व्यक्ति बारिश से बचाव के लिये अपना छाता खालेगा। व्यक्ति के छाता खोलने की क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं होगी, क्योंकि यह क्रिया एक दूसरे से संबंधित नहीं है। इस तरह हम यह कह सकते हैं कि दूसरे व्यक्ति की क्रियाओं का अनुकरण ही सामाजिक क्रिया नहीं है यदि कोई व्यक्ति कहीं जाने के लिए शॉर्टकट रास्ता अपनाता है और उसे देखकर दूसरे व्यक्ति भी उस रास्ते पर चलने लगते हैं तो वह भी सामाजिक क्रिया नहीं होगी लेकिन इसके विपरीत यदि बच्चों की किसी क्लास में शिक्षक किसी श्लोक या वाक्य को बोलते हैं और उसे विद्यार्थियों से दोहराने के लिए कहा जाता है तो यह क्रिया सामाजिक क्रिया होगी क्योंकि यह क्रिया शिक्षक की क्रिया से अर्थ पूर्ण रूप से संबंधित है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मैक्स वेबर समाजशास्त्र को एक ऐसा विज्ञान मानते हैं जो सामाजिक क्रिया की निर्वाचनात्मक (Verstehen) समझ को विकसित करता है। जिसके द्वारा सामाजिक क्रियाओं के बीच कार्य कारण संबंध को ज्ञात किया जाता है। सामाजिक क्रिया की निर्वाचनात्मक समझ को मैक्स वेबर ने जर्मन शब्दावली में बरस्र्टेहन नाम दिया है। बरस्र्टेहन पद्धति में घटनाओं को तर्कपूर्ण ढंग से तथा अर्थपूर्ण व्याख्या द्वारा समझने पर बल दिया जाता है।

4.2.11 सामाजिक क्रिया को समझने की विधि

मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रियाओं को समझने के लिए कुछ विधियां बताई है इनके दो प्रकार होते हैं:

(1) बौद्धिक विधि (Rational Method)

(2) भावनात्मक विधि (Emotional Method)

1. बौद्धिक विधि (Rational Method)

जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है इसमें हम सामाजिक क्रिया को बुद्धि के आधार पर या विवेकपूर्ण ढंग से समझने की कोशिश करते हैं। इसमें क्रिया के पीछे कर्ता के द्वारा लगाए जाने वाले अर्थ के आधार पर उस क्रिया की परिस्थिति लक्षणों और प्रभाव को समझने का प्रयास किया जाता है। क्रिया को बौद्धिक रूप से समझने के लिए मैक्स वेबर ने इसे दो भागों में बांटा हैः-

1. तार्किक विधि (Logical Method) - मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया को समझने के लिए जो पहली विधि बताई है वह तर्क आधारित है। इस विधि में तर्क के आधार पर सामाजिक क्रिया की प्रकृति उसके कारण और उसके परिणामों को तार्किक आधार पर समझने का प्रयास किया जाता है। मानव की अनेक क्रियाएं तर्क और विवेक पर आधारित होती हैं। उदाहरण के तौर पर यदि जो विद्यार्थी दसवीं कक्षा के बाद जीव शास्त्र का अध्ययन करता है वही बाद में मेडिकल कॉलेज में प्रवेश ले सकता है। यह तर्क आधारित है इस तरह से वाणिज्य या कला के विद्यार्थी को इंजीनियरिंग कॉलेज या मेडिकल कॉलेज में प्रवेश नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह क्रिया तार्किक नहीं होगी।

2. गणित आश्रित विधि (Mathematical Method) - समाज में घटित होने वाली कुछ क्रियाएं ऐसी होती हैं जिन्हें केवल गणित के माध्यम से ही समझा जा सकता है उदाहरण के तौर पर पांच और पांच दस ही होंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है और इसे किसी अन्य क्रिया के माध्यम से स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

2. भावनात्मक विधि (Emotional Method) - सामाजिक क्रिया को समझने की दूसरी विधि भावनात्मक है। मनुष्य के द्वारा की जाने वाली क्रियाएं हमेशा तर्क एवं बुद्धि के द्वारा ही संचालित नहीं होती। कई बार उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य भावना प्रधान भी होते है। इसलिए कुछ इस तरह के कार्यों को बौद्धिक रूप से ना समझ कर भावनाओं के माध्यम से समझ सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी बच्चे ने किसी दुकान से चोरी की है तो हमें उसके चोरी के कारणों को समझने के लिए उसकी भावना को समझना होगा हो सकता है। उस व्यक्ति ने चोरी अपनी भूख को मिटाने के लिए या अपने परिवार की परेशानी को मिटाने के लिए की हो। अतः हमारे लिए जानना अत्यंत आवश्यक है कि बालक ने चोरी क्यों की?

भावनाओं के द्वारा सामाजिक क्रिया को समझने के लिए मैक्स वेबर ने दो विधियां बताई है-

1. प्रत्यक्ष अवलोकन विधि (Direct Observation Method) - सामाजिक क्रियाओं को भावनाओं के माध्यम से समझने की पहली विधि प्रत्यक्ष अवलोकन है। इसमें हम अवलोकन के माध्यम से सामाजिक क्रियाओं को बहुत आसानी से समझ सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति लगातार पढ़ाई में बहुत अधिक मेहनत कर

रहा है तो उसको देख कर के हम अंदाज लगा सकते हैं कि उसकी पढ़ाई का प्रयोजन या उद्देश्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है।

2. व्याख्या विधि (Method Explanatory Method) - समाज में बहुत सारी क्रियाएं ऐसी होती हैं। जिन्हें देखकर नहीं समझा जा सकता। इन क्रियाओं को समझने के लिए प्रत्यक्ष अवलोकन ही पर्याप्त नहीं होता, जब तक कि हमें उसके उद्देश्यों के बारे में पता ना हो। उदाहरण के तौर पर यदि हम किसी व्यक्ति को लकड़ी काटते हुए देखते हैं तो हमारे लिए यह समझना बहुत मुश्किल है कि वह लकड़ी किस लिए काट रहा है। अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए या अपनी जीविका के लिए। इस तरह अवलोकन के आधार पर अवलोकन के उद्देश्यों के आधार पर ही हम यह स्पष्ट कर पाते हैं कि किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति का विशिष्ट व्यवहार क्यों हो रहा है।

मैक्स वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया को समझने के लिए उसके अर्थ मूलक व्याख्या की आवश्यकता होती है इस अर्थ मूलक व्याख्या को दो भागों में बांट कर समझा जा सकता हैः-

1. औसत प्रकार की अर्थ मूलक व्याख्या
2. विशुद्ध प्रकार की अर्थ मूलक व्याख्या

मैक्स वेबर का कहना था कि "सामाजिक क्रिया का अध्ययन हमें विशुद्ध अर्थ मूलक व्याख्या के द्वारा ही करना चाहिए और इसे समझने के लिए उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण विधियों का उल्लेख भी किया जिससे कि समाज की अवधारणा को भली प्रकार समझा जा सके।" मैक्स वेबर ने तर्कपूर्ण व्याख्या और अर्थपूर्ण व्याख्या पर भी अधिक बल दिया। इस संबंध में मैक्स वेबर ने यह भी बताया कि सामाजिक क्रियाओं के कुछ निश्चित अर्थ होते हैं तथा एक प्रेरक शक्ति भी होती है। यह दोनों ही दूसरे व्यक्तियों की प्रेरक शक्तियों एवं क्रियाओं से बदलते रहते हैं। इसलिए यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि समाजशास्त्र किसी सामाजिक क्रिया की व्याख्या उसके अर्थ के आधार पर करता है, जो कि दूसरे की क्रियाओं द्वारा निर्देशित होता है। इसलिए समाजशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों से पूर्ण रुप से पृथक हो जाता है।

4.2.12 सामाजिक क्रिया के प्रकार (Types of Social Action)

मैक्स वेबर के द्वारा सामाजिक क्रिया का उपयोग करने से पहले विलफ्रेडो परेटो ने सामाजिक क्रिया की अवधारणा को अपने सैद्धांतिकरण में प्रयोग में लिया था। सामाजिक क्रिया की व्याख्या करते समय उन्होंने इस समस्या को उठाया था कि समाजशास्त्र की परिभाषाएं किस प्रकार दी जाए। इस संदर्भ में उन्होंने कहा था कि समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन करता है। उनके अनुसार तार्किक क्रियायें वह है जिन्हें विवेकपूर्ण ढंग से समझा जा सकता है। हालांकि उनका कहना था कि तार्किक क्रिया की परिभाषा को तर्कशास्त्र और गणित के नाम पर छोड़ देते हैं पर अतार्किक क्रियाएं ऐसी होती हैं जिसमें कि व्यक्ति के संवेग और भावनाओं के द्वारा काम किया जाता है। इस आधार पर **विलफ्रेडो परेटो** ने क्रिया के दो प्रकार बताए थे-

1. तार्किक क्रिया(Rational Action)
2. अतार्किक क्रिया(Non Rational Action)

मैक्स वेबर ने तार्किक क्रिया की अवधारणा को विलफ्रेडो परेटो की तुलना में और अधिक विस्तृत संदर्भ में देखा है। मैक्स वेबर ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक सामाजिक क्रिया का एक विशेष लक्ष्य होता है और व्यक्ति विभिन्न साधनों के द्वारा हमेशा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। मैक्स वेबर कहते हैं कि "कोई भी क्रिया शून्य में नहीं होती यह हमेशा अन्य कर्ताओं के संदर्भ में होती है।" मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र को केवल सामाजिक क्रिया के आधार पर ही परिभाषित नहीं किया है बल्कि उन्होंने जो सामाजिक क्रिया के प्रकारों को दिया है वह अनिवार्य रूप से उनके आदर्श स्वरुप के अंग मात्र हैं। मैक्स वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया के चार प्रकार होते हैं-

1. तार्किक क्रिया (Rational Action)

तार्किक क्रिया वह क्रियाएं होती हैं जो किसी योजना के अनुसार सोच-समझकर की जाती है। इसमें कर्ता अपनी क्रिया का संबंध तार्किक रूप से लक्ष्य के साथ जोड़ता है अर्थात तार्किक क्रियाओं में लक्ष्य एवं साधनों का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। तार्किक क्रियाओं को क्रियान्वयन में साध्य एवं साधनों को ध्यान में रखते हुए क्रिया की जाती है उदाहरण के लिए यदि एक इंजीनियर को किसी घर का निर्माण करना है तो वह घर के निर्माण के लिए उसे कुल कितनी नींव खोदनी होगी। कितने मंजिल का घर बनाना है उसमें कितने कमरे रखने हैं उसमें कितना सीमेंट, गिट्टी और रेत की आवश्यकता होगी। इस सब की योजना वह तार्किक ढंग से बनाता है। उसके बाद ही लक्ष्य के अनुरूप वह एक घर का निर्माण करता है। इस तरह एक इंजीनियर अपने लक्ष्य को ध्यान में रखकर क्रिया का संपादन करता है। मैक्स वेबर की यह क्रिया ही तार्किक क्रिया है।

रेमंड एरेन (Raymond Aron) ने तार्किक क्रिया के विश्लेषण के लिए एक उदाहरण दिया है। एरेन के अनुसार स्टॉक एक्सचेंज में जब एक सटोरिया घुसता है तो वह अपना रुपए दांव पर लगाने से पहले बड़े विस्तार से पूरी तरह तर्क के द्वारा हिसाब-किताब करता है। वह भावनाओं में बह कर धन का नियोजन नहीं करता। इस समय उसके द्वारा की जाने वाली क्रिया पूर्णतः विवेकपूर्ण और तार्किक होती है। अतः मैक्स वेबर के अनुसार यह क्रिया वह होती है, जिसमें कर्ता का रुझान लक्ष्य को प्राप्त करने का होता है। इसी कारण वह इस क्रिया को लक्ष्य उन्मुख क्रिया कहते है, अर्थात इस क्रिया को करते समय कर्ता लक्ष्य और साधन के चुनाव करने में सोच-विचारकर तर्क की मदद लेता है।

2. भावनात्मक एवं संवेदनात्मक क्रियाएं (Effective or Emotional Action)

व्यक्तियों के आवेगों संवेगों से प्रेरित होने वाली क्रियाएं प्रभावात्मक भावनात्मक या संवेगात्मक क्रिया कहलाती है। इस प्रकार की क्रियाओं का संबंध व्यक्ति की भावनात्मक दशाओं से होता है ना कि किसी साधन साध्य से। तार्किक मूल्यांकन अर्थात यह मस्तिष्क की वह स्थिति है, जिसमें व्यक्ति आवेश में आकर क्रिया को करता है। इस प्रकार की क्रिया का संबंध ना तो किसी विशेष लक्ष्य होता है, और ना ही वह किसी

मूल्यों से जुडी होती है। इस प्रकार की क्रियाओं को मैक्स वेबर ने अवशिष्ट क्रियाओं के नाम से संबोधित किया है। संवेगात्मक क्रियाओं को समझा नहीं जा सकता। यह भावना प्रधान होती है। वास्तव में ऐसी क्रिया के विश्लेषण को केवल मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषक ही स्पष्ट कर सकते हैं। इन क्रियाओं का प्रमुख आधार प्रेम घृणा और द्वेष क्रोध भय एवं वात्सल्य जैसे संवेग होते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि दो व्यक्ति आपस में बात कर रहे हैं और उनकी बातचीत अचानक वाद-विवाद में बदल जाती है और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से गाली गलौज करता है या बाद में उसके गाल पर थप्पड़ मार देता है तो यह क्रिया विशुद्ध रूप से संवेगात्मक है। इस तरह की क्रिया तुरंत भावावेश में हो जाती है और व्यक्ति को मानसिक संतुष्टि देती है। मैक्स वेबर के आलोचकों ने इस तरह की क्रिया को अधिक विस्तृत रूप दिया है और उनका यह भी कहना है कि संवेगात्मक क्रिया का अध्ययन क्षेत्र समाजशास्त्र नहीं मनोविज्ञान है।

3. मूल्यांकनात्मक क्रियाएँ (Evaluative Actions)

सामाजिक मूल्यों से संबंधित क्रियाओं को मूल्यांकनात्मक क्रियायें कहा जाता है। क्रिया का यह दूसरा प्रकार तर्क पूर्ण होने के साथ-साथ मूल्यों के प्रति भी अभिस्थापित होता है। इस तरह की क्रियाएं अधिकतम मूल्य की ओर रुझान वाली तार्किकक्रियाओं के विश्वास पर आधारित होती है और यह क्रियाएं कर्ता की दृढ़ धारणाओं पर निर्भर रहती है। इन क्रियाओं का आधार तर्क नहीं बल्कि धर्म, कला, मनोरंजन जैसे मूल्यांकनात्मक आधार होते हैं। इन क्रियाओं के करने से पहले कर्ता कभी भी यह नहीं सोचता कि इनके करने के परिणाम स्वरुप कर्ता का भविष्य क्या होगा? वह मूल्यों की उपेक्षा के लिए किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करता। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति अपने माता-पिता की सेवा करता है उसकी यह धारणा होती है कि सामाजिक मूल्यों के आधार पर माता पिता के प्रति उसके जो कर्तव्य थे। उनकी पूर्ति हो रही है। हमारे देश में राजस्थान में राजपूत महिलाओं के द्वारा जोहर किया जाना प्रतिष्ठा का मूल्य था क्योंकि यह मूल्य स्पष्ट कर रहे थे कि स्त्रियां अपने सतीत्व को बनाए रखने के लिए जो जौहर करते हुए अपने मूल्यों का निर्वाह करेंगे। इस क्रिया के पीछे कर्ता का लक्ष्य सामाजिक मूल्यों को प्राप्त करना होता है। मूल्यों का विस्तार वृहद होता है पर कुछ मूल्य प्रमुख होते है और कुछ गौण होते है। मूल्य हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक में होते है। व्यक्ति इन मूल्यों का पालन करना अपना कर्तव्य समझता है।

4. परंपरागत क्रियाएं (Traditional Action)

परंपरागत क्रियाएं वे होती हैं जो सामाजिक प्रथाओं परम्पराओं के द्वारा नियंत्रित एवं संचालित होती है इसके अंतर्गत व्यक्तियों के उन व्यवहारों क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। जो प्राचीन काल से चली आ रही हैं। प्रत्येक समाज और समूह में जन्म, विवाह, मृत्यु, त्यौहार आदि होते है। जिनमें इनसे जुड़े रीति-रिवाज और विश्वास ऐसे होते हैं। जिन का संचालन परंपरागत क्रियाओं के माध्यम से होता है। इसमें कर्ता को किसी लक्ष्य को निर्धारित नहीं करना पड़ता बल्कि वह मानकर चलता है कि परम्परा और विश्वास में एक ही

लक्ष्य निर्धारित है इसलिए वह बिना किसी उद्देश्य के बारे में सोचें आंख बंद कर परम्पराओं का पालन करता है और लक्ष्य की तरह मूल्यों के बारे में भी कुछ नहीं सोचता क्योंकि वह मानकर चलता हे कि इन परम्पराओं का पालन पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा है और वह यह मानता है कि इन परम्पराओं के पीछे पूर्व में कोई ना कोई मूल्य अवश्य होगा। इसलिए वह इन्हें सहज क्रिया मानता है और इन क्रियाओं को करता है। प्राचीन काल से ही चाहे समाज रूढ़िवादी हो, परंपरागत या प्रगतिशील हो, व्यक्ति के द्वारा इस तरह की क्रियायें हमेशा की जाती है।

4.2.13 सामाजिक क्रियाओं के निर्देशन

मैक्स वेबर के अनुसार सामाजिक क्रियायें तीन प्रकार से निर्देशित होती हैः-

1. परंपरागत प्रयोग (Traditional Usage) - सामाजिक क्रिया परंपरागत प्रयोग के द्वारा निर्देशित होती हैं। समाज की प्रथाएं मानव की क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि लोगों की क्रियायें परम्परा के मार्ग से हटकर बाहर नहीं जाती तथा समाज की मर्यादा पूर्णता बनी रहती है।

2. हित (Interest) - सामाजिक क्रियाओं को विवेकपूर्ण निर्देशन के रूप में समझने में हित का बहुत अधिक योगदान होता है। यह हित समरूपता के रूप में जाने जाते हैं।

3. न्याय संगत व्यवस्था (Legitimate Order) - न्याय संगत व्यवस्थाएं संबंधित व्यवहार क्रियायें करता कि किसी आदर्श के निश्चित होने की दृष्टि से निर्देशित होती है और यह किसी उद्देश्य को पाने के लिए तार्किक समझे जाते हैं। मैक्स वेबर के द्वारा सामाजिक क्रियाओं का यह वर्णन केवल आदर्श प्रारूप की दृष्टि से किया गया है। इनकी व्याख्या का अध्ययन करना ही समाजशास्त्र का कार्य है।

4.2.14 सामाजिक क्रिया की आलोचना

मैक्स वेबर का सामाजिक क्रिया का सिद्धांत समाजशास्त्र में एक महान योगदान है। इस सिद्धांत ने समाजशास्त्र को अन्वेषण की एक विधि भी प्रदान की है लेकिन अनेक समाजशास्त्रियों ने मैक्स वेबर के इस सिद्धांत में कुछ कमियां बताई है। मैक्स वेबर के सिद्धांत की आलोचना निम्न आधार पर की गई है-

1. जर्मन विद्वान एवं दार्शनिक **मैलेन बोक (Malembach)** एनआर 'जर्मन फिलोसोफी' नामक पुस्तक में लिखा है कि मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया को जो चार भागों में वर्गीकृत किया है वह वर्गीकरण गलत है। मैलेन बोक ने मूल्यांकनात्मक क्रिया संबंधी विचार को भी गलत बताया है।
2. **बोगाडर्स** एवं **रेमण्ड ऐरन** ने भी इस सिद्धांत की आलोचना की है उनके अनुसार सामाजिक क्रिया से सम्बन्धीत विचार उचित एवं तार्किक नहीं है।
3. **एलेन टोरेंन** ने अपनी पुस्तक 'सोशियोलॉजी दी एक्शन' (Sociology the Action) में लिखा है कि क्रिया का सिद्धांत सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करने में असमर्थ है। वे क्रिया के सिद्धांत में मानकों में अनुरूपता मानते हैं और यह अपरिहार्य होता है। जो न तो सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या कर सकता है और न ही यह स्पष्ट कर रहा है कि मानक किस प्रकार से स्थापित होते हैं।

4. **मैक्स वेबर** का सिद्धांत सामाजिक संरचना और संस्कृति की व्याख्या नहीं करता है। सामाजिक क्रिया का यह सिद्धांत सामाजिक संरचना और संस्कृति के तत्वों को दिया हुआ मानकर अध्ययन करता है और यह सिद्धांत की बहुत बड़ी कमी है।
5. मैक्स वेबर का क्रिया का वर्गीकरण अस्पष्ट तथा गत्यात्मक है।
6. कुछ समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक मानव शास्त्रियों का कहना है कि मैक्स वेबर द्वारा वर्णित पारंपरिक क्रिया में कर्ता सोच विचार नहीं करता यह मानना त्रुटि पूर्ण एवं अवैज्ञानिक है।
7. **कोहेन** का कहना है कि क्रिया का सिद्धांत व्याख्यात्मक सिद्धांत नहीं है।
8. क्रिया का यह लघु उत्तरीय सिद्धांत है और यह सामान्यीकरण करने में असमर्थ है।
9. मैक्स वेबर की सामाजिक क्रिया की विवेचना का स्वरूप नकारात्मक है।
10. मैक्स वेबर ने क्रिया की अवधारणा के लिए व्यक्तिनिष्ठ अर्थ को जानने पर विशेष बल दिया है जबकि व्यक्तिनिष्ठ अर्थ को यथार्थ में समझना अत्यंत कठिन है।
11. मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया के सिद्धांत मेंलक्ष्य हेतु तार्किक क्रिया की चर्चा की है जिससे परंपरागत समाज में तार्किक क्रिया का प्रभाव ना होने से संदेह उत्पन्न होता है।
12. **रेमंड ऐरन (Raymond Aron)** सामाजिक क्रिया की अवधारणा को अमूर्त रूप में विवेचित किया है जिससे सामाजिक क्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण करना कठिन है।
13. **पारसंस** के सामाजिक क्रिया से तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि मैक्स वेबर का सिद्धांत एक पक्षीय है।

4.2.15 सारांश

मैक्स वेवर द्वारा निर्मित आदर्श प्रारूप की अवधारणा एक ऐसा यंत्र अथवा कुंजी है जो वास्तविक घटनाओं में समानताओं और असमानताओं को मापने में सहायता देकर इसे समझने में मदद प्रदान करता है। आदर्श प्रारूप अवधारणा को विकसित करने में मैक्स वेवर ने कोई नवीन वस्तु प्रस्तुत करने का दावा नहीं किया है उन्होंने केवल अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा उसे अधिक स्पष्ट तथा यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है जिससे की तार्किक आधार और पर मानवीय क्रियाओं के कारण सहित संबंधों का अधिक यथार्थ तथा व्यवस्थित ढंग से अध्ययन एवं विश्लेषण संभव हो सके। मैक्स वेबर ने केवल आदर्श प्रारूप की अवधारणा ही विकसित नहीं की है अपितु स्वयं पश्चिमी नगर प्रोटेस्टेंट एथिक्स नौकरशाही तथा आधुनिक पूंजीवाद जैसी वास्तविकताओं को इस आधार पर समझाने का प्रयास भी किया है। मैक्स वेबर इस बात पर अधिक बल देते हैं कि सामाजिक वैज्ञानिकों को केवल उन्हीं अवधारणाओं को अध्ययन कार्य में प्रयोग करना चाहिए जोकि तर्कसंगत ढंग से नियंत्रित तथा प्रयोग सिद्ध हो। वैज्ञानिक पद्धति की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके बिना सामाजिक क्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण तथा निरूपण संभव नहीं है।

मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया की उपरोक्त आलोचनाओं के बाद भी यह सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है। क्योंकि मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया के संबंध में जो बातें बताई हैं। वह बहुत ही महत्वपूर्ण है और इन्हीं क्रियाओं के आधार पर किसी समाज की वास्तविक संरचना होती है। सामाजिक संबंधों में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। और ये बनते और बिगड़ते हैं। और इससे सामाजिक क्रिया प्रभावित होती है। मैक्स वेबर ने जब सामाजिक क्रिया का सिद्धांत प्रस्तुत किया था। तब समाजशास्त्र अल्पविकसित था पर वर्तमान समय में इस सिद्धांत के द्वारा समाज को एक नई दिशा प्राप्त हुई है।

4.2.16 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आदर्श प्रारूप की अवधारणा का प्रयोग किस सन में किया गया था?
   (अ) 1899 (ब) 1904
   (स) 1954 (द) 1910
2. वेबर ने 'द आइडियल टाइप एंड कंटेंपरेरी सोशल थ्योरी' नामक पुस्तक किसने लिखी है?
   (अ) सुशान हेकमन (ब) मैक्स वेबर
   (स) सोरोकिन (द) पारसंस
3. मैक्स वेबर से पहले आदर्श प्रारूप के सिद्धांत का प्रयोग किसने किया था?
   (अ) अरस्तु (ब) अगस्त कामटे
   (स) दुर्खीम (द) प्लेटो
4. "मैक्स वेबर की समाजशास्त्रीय जगत में एक और महत्वपूर्ण अवधारणा आदर्श प्रारूप है। "यह कथन किसका है?
   (अ) रेमंड एरन (ब) टालकट परसंस
   (स) जूलियन फ्राइड (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
5. डॉन मार्टिन डेल ने आदर्श प्रारूप के निर्माण के कितने आधार बताए हैं?
   (अ) पांच (ब) सात
   (स) तीन (द) दो
6. मैक्स वेबर ने आदर्श प्रारूप की अवधारणा किस पुस्तक में प्रस्तुत की है?
   अ इकोनामी एंड सोसायटी ब रिलिजन
   स आइडियल टाइप द उपरोक्त में से कोई नहीं
7. डिक केसलर ने आदर्श प्रारूप को कितने बिंदुओं के अंतर्गत समझाया है?
   अ सात ब पांच
   स छैः द आठ

8. निम्न में से किसने वेबर के आदर्श प्रारूप की व्याख्या विधि शास्त्र के विशाल संदर्भ में की है?

अ रेमंड एरन ब सोरोकिन

स अरस्तु द टालकट पारसंस

9. "समाजशास्त्र सामाजिक क्रिया का वृहद विज्ञान है। "यह कथन किसका है?

(अ) रेमंड एरन (ब) मैक्स वेबर

(स) कार्ल मार्क्स (द) सोरोकिन

10. सामाजिक क्रिया की अवधारणा की प्रमुख प्रवर्तक कौन है?

(अ) मैक्स वेबर (ब) मैकाइवर

(स) पारसंस (द) सोरोकिन

11. विल्फ्रेडो परेटो ने सामाजिक क्रिया के कितने प्रकार बताए हैं?

(अ) चार (ब) तीन

(स) दो (द) सात

12. मैक्स वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया कितने प्रकार से निर्देशित होती हैं?

(अ) सात (ब) चार

(स) छैः (द) तीन

13. सामाजिक क्रिया के सिद्धांत को सबसे पहले प्रस्तुत करने का श्रेय किसे है?

(अ) अल्फ्रेड मार्शल (ब) सोरोकिन

(स) मैकाइवर (द) राइट मिल्स

14. "सामाजिक क्रिया का अध्ययन ही समाजशास्त्र है। "यह कथन किसका है?

(अ) मेकाइवर (ब) मैक्स वेबर

(स) पैरेटो (द) रेमंड एरन

उत्तर- 1 ब 2 अ 3 द 4 स 5 द 6 अ 7 स 8 अ

9 अ 10 अ 11 स 12 द 13 अ 14 ब

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आदर्श प्रारूप की अवधारणा को समझाइए।
2. मैक्स वेवर का पद्धति शास्त्र संक्षेप में समझाइए।
3. आदर्श प्रारूप की विशेषताएं लिखिए।
4. आदर्श प्रारूप को समझने के लिए किन तीन बातों को जानना आवश्यक है? विस्तृत व्याख्या करें।

5. डिक केसलर के अनुसार आदर्श प्रारूप को किन बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है? विस्तृत व्याख्या करें।
6. सामाजिक क्रिया की अवधारणा को समझाइए।
7. सामाजिक क्रिया की परिभाषा दीजिए।
8. सामाजिक क्रिया का अर्थ एवं परिभाषा समझाइए।
9. सामाजिक क्रिया के प्रकारों को समझाइए।
10. मैक्स वेवर के अनुसार सामाजिक क्रिया कितने प्रकार से निर्देशित होती है? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप की अवधारणा की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. आदर्श प्रारूप की अवधारणा एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. वेबर की आदर्श प्रारूप की अवधारणा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र को विज्ञानों की श्रेणी में रखने के लिए आदर्श प्रारूप की अवधारणा विकसित की व्याख्या कीजिए।
5. "मैक्स वेबर की समाजशास्त्रीय जगत में एक और महत्वपूर्ण अवधारणा आदर्श प्रारूप है। "जूलियन फ्राइड के इस कथन की विस्तृत विवेचना कीजिए।
6. सामाजिक क्रिया का अर्थ एवं विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
7. मैक्स वेवर के अनुसार सामाजिक क्रिया के कितने प्रकार होते हैं? विस्तृत विवेचना कीजिए।
8. मैक्स वेबर की सामाजिक क्रिया के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए
9. मैक्स वेवर के सामाजिक क्रिया के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
10. सामाजिक क्रिया क्या है? इसके प्रकारों की विवेचना कीजिए।

4.2.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). समाजशास्त्र. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). सोशल थॉट. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). समाजशास्त्रीय विचारक. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.

10. कुमार, आनंद. (1982). सामाजिक विचारों का इतिहास. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.

11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.

12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 3 प्रभुत्व, शक्ति एवं सामाजिक व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

प्रभुत्व की अवधारणा

4.3.0 उद्देश्य

4.3.1 प्रस्तावना

4.3.2 प्रभुत्व की अवधारणा

4.3.3 प्रभुत्व के लक्षण

4.3.4 प्रभुत्व का वर्गीकरण

शक्ति की अवधारणा

4.3.5 प्रस्तावना

4.3.6 शक्ति का अर्थ एवं परिभाषा

4.3.7 शक्ति की विशेषताएं

4.3.8 शक्ति के आधार

4.3.9 शक्ति के स्वरूप

4.3.10 शक्ति के अन्य स्वरूप

4.3.11 शक्ति के प्रकार

सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा

4.3.12 प्रस्तावना

4.3.13 व्यवस्था का अर्थ

4.3.14 व्यवस्था की विशेषताएं

4.3.15 व्यवस्था के प्रकार

4.3.16 सारांश

4.3.17 बोध प्रश्न

4.3.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी मैक्स वेबर के

- प्रभुत्व के अर्थ को समझ सकेंगे
- प्रभुत्व की अवधारणा समझेंगे
- प्रभुत्व के लक्षणों को समझ सकेंगे
- मैक्स वेबर के द्वारा के द्वारा बताए हुए प्रभुत्व के प्रकारो को समझेंगे
- शक्ति की परिभाषाओं को जान सकेंगे
- शक्ति की विशेषताओं को समझ सकेंगे
- शक्ति के आधारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे
- शक्ति के प्रकारों को समझ सकते हैं
- सामाजिक व्यवस्था के बारे में जानेगे।
- व्यवस्था का अर्थ एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- सामाजिक व्यवस्था के अर्थ को समझेंगे।
- सामाजिक व्यवस्था की विशेषताओं के बारे में जान जानेंगे।
- वेबर के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के प्रकारों को समझेगे।

4.3.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर ने प्रभुत्व की अवधारणा प्रस्तुत की है पर उन्होंने प्रभुत्व शब्द का प्रयोग अत्यंत सीमित अर्थ में किया है। मैक्स वेबर के इस अर्थ में उन तमाम परिस्थितियों को हटा दिया है जिसमें **'हितों के पुँजो' (Constellation of Interests)** से शक्ति प्राप्त की जाती है। मैक्स वेबर के लिए प्रभुत्व आदेश की सत्तात्मक शक्ति के अनुरूप थी। प्रभुत्व में शक्ति का समावेश होता है। अतः जब कोई अपनी इच्छाओं को दूसरों के व्यवहार पर लागू कर रहा होता है तो वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहा होता हैं। वास्तव में हम प्रतिदिन सामाजिक व्यवहार में अपनी शक्ति को इसी तरह अभिव्यक्त करते हैं। प्रभुत्व एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक शासक होता है और दूसरा शासित। शासक एक समूह भी हो सकता है और व्यक्ति भी। लेकिन यह निश्चित है कि शासन करने वाले समूह हमेशा आकार में छोटा होता है।

जब हम शासक शब्द का उपयोग करते हैं तो यहां पर हमारा आशय किसी राजा-महाराजा से नहीं है। इसका साधारण अर्थ यह है कि जिसके पास वैध शक्ति है वही स्वामी है, वही शासक है। यह शासक एक विशेष स्तर पर हो सकता है जैसे किसी स्कूल का प्रिंसिपल या किसी दफ्तर का हेड क्लर्क या किसी टीम का कप्तान, किसी कम्पनी का मैनेजर, जिसे हम शासित कहते हैं। वह भी परंपरागत अर्थ में कोई प्रजा या

जनता नहीं है, बल्कि ये वे लोग हैं जो स्वामी के आदेशों का पालन करते हैं अर्थात अधीनस्थ सेवा में लगे हुए वे शासित है। यहां पर एक बात महत्वपूर्ण है कि दुनिया भर में शासित समूह के लोग पूरी निष्ठा के साथ अपने स्वामी के आदेशों का पालन करते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि जहां पर प्रभुत्व होता है वही शक्ति होती है और उसमें ही शक्ति का समावेश अनिवार्य रूप से होता है। इस तरह जहां कहीं प्रभुत्व होता है वहा शक्ति अवश्य होती है लेकिन प्रत्येक शक्ति में प्रभुत्व नहीं होता।

प्रभुत्व में मालिक को आदेश देने का अधिकार होता है और शक्ति के लिए आवश्यक है कि वह स्वामी के आदेशों का पालन करें और शक्ति में जो प्राधिकार संबंध है। उसमें अनिवार्य रूप से वैद्यता होती है। जिस दिन प्राधिकार संबंधों की इस वैधता को स्वीकार नहीं करते है, उसी दिन से शासक का प्रभुत्व समाप्त हो जाता है।

मैक्स वेबर ने प्रभुत्व के संबंध में लिखा है "शायद यह शासकों की व्यवस्था एक या अधिक अन्य व्यक्तियों के आचरण को प्रभावित करने के लिए है और किसी वस्तुतः पर इस प्रकार प्रभावित करती है कि उसका आचरण सामाजिक प्रसंग की मात्रा में इस प्रकार होता हैं।" जैसे कि शासकों ने आदेश के अर्थ को अपने आचरण की एक नीति ही बना लिया है।

4.3.2 प्रभुत्व की अवधारणा (Concepts of Domination)

बिना शासित के शासक का कोई अस्तित्व नहीं है यदि शासित है और प्रशासन के आदेश को मानते हैं तो निश्चित रूप से उनके संबंध प्राधिकारी संबंध हैं रेनहार्डबैंडिक्स ने वेबर के प्रभुत्व की अवधारणा का विस्तृत विवेचन किया है। उनके अनुसार किसी भी प्रभुत्व के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है-

1. एक व्यक्ति जो शासन करता है या आदेश देता है।
2. एक व्यक्ति जिस पर शासन किया जाता है यानी शासित है वह एक व्यक्ति हो सकता है या एक समूह भी हो सकता है।
3. शासक की यह इच्छा है कि वह शासित के व्यवहार को प्रभावित करेगा।
4. इस बात के प्रमाण होनी चाहिए कि शासक के आदेशों का पालन वस्तुनिष्ठा से हो रहा है।
5. प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यह भी पता लगना चाहिए कि शासित व्यक्ति या समूह व्यक्तिपरक होकर आदेशों का पालन करना चाहते हैं।

इस प्रकार प्रभुत्व में शासकों और शासितों के मध्य एक प्रकार का पारस्परिक संबंध रहता है और शासकों के पास अपनी इच्छा या आदेशों का पालन करवाने के लिए शक्ति होती है। वेबर के अनुसार शासक आदेशों को निकालते हैं और यह दावा करते हैं कि उनके पास आदेश देने की वैद्य सत्ता हैं। इसलिए वह अपेक्षा भी रखते हैं कि उनके आदेशों का पालन किया जाए। मैक्स वेबर कहते हैं कि "प्रभुता में अपने आदेशों को लागू करने के लिए एक प्रशासकीय कर्मचारी वर्ग की आवश्यकता होती है और इस अर्थ में सभी प्रकार के प्रशासन में प्रभुता की आवश्यकता होती है।"प्रभुत्व तथा प्रशासन की ये

आवश्यकतायें हैं। वहां पर न्यूनतम होती है जहां संगठन स्थानीय होता है और संगठन का आकार सीमित रहता है तथा प्रशासकीय कार्य अपेक्षाकृत सरल होते हैं। वेबर के अनुसार जहां कहीं भी समूह किसी एक आकार से भिन्न हो जाते हैं अथवा प्रशासकीय कार्य इतने अधिक जटिल हो जाते हैं कि रोटेशन और चुनाव से मनोनीत सभी व्यक्तियों को इन्हें संपादित करना कठिन हो जाता है तो प्रभुत्व और प्रशासन अधिक स्थाई संरचना के रूप में विकसित होने लगती हैं। इसका परिणाम अधिकारियों प्रशासकीय अधिकारियों की तकनीकी श्रेष्ठता होती है। इन अधिकारियों को प्रशिक्षण और अनुभव दोनों प्रदान किए जाते हैं और उन से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी श्रेष्ठता के कारण अपने पद पर बने रहेंगे। मैक्स वेबर के अनुसार इस प्रकार शासकों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक प्रकार की प्रशासनिक संरचना का निर्माण किया जाता है और इस समस्त प्रशासनिक संरचना का अर्थ प्रभुत्व ही होता है।

4.3.3 प्रभुत्व के लक्षण

रेनहार्ड बेण्डिक्स ने प्रभुत्व की व्याख्या के कुछ और विशेषण देते हैं। इनके अनुसार जो प्रभुत्व संपन्न है और जिसके पास शक्ति का केंद्रीकरण है, वही शासित समूह का नेतृत्व करता है। उन्होंने प्रभुत्व के नेतृत्व के कुछ सामान्य लक्षणों को स्पष्ट किया है-

1. शासित समूह के सदस्यों की आदत सी बन जाती है कि यह बिना किसी हिचकिचाहट के अपने आदेशों का पालन करते हैं यस सर, जी साहब आदि उनकी इस आदत की अभिव्यक्ति होती है।
2. शासित यह चाहते हैं कि प्रभुत्व की प्रक्रिया चलती रहे यह इसलिए कि प्रभुत्व के साथ उनके निजी स्वार्थ जुड़े होते हैं और प्रभुत्व से शासित को हमेशा लाभ होता है।
3. शासित प्रभुत्व की प्रक्रिया में भागीदार होते हैं क्योंकि जिन कार्यों में प्रभुत्व होता है उनका बंटवारा इन अधीनस्थों में ही होता है।
4. प्रभुत्व की निरंतरता ही प्रभुत्व के भागीदारों को लाभ देती है इसलिए ये भागीदार प्रभुत्व की निरंतरता के लिए हमेशा जी जान से लगे रहते हैं।

इस प्रकार **मैक्स वेबर** के अनुसार जन संरचनाओं में प्रभुत्व की एक प्रकार की प्रणाली करीब-करीब स्थाई रूप से बनी रहती है। सभी प्रशासकीय छोटे समूहों को छोटे होने का लाभ मिलता है। मैक्स वेबर के अनुसार सभी प्रशासनिक संगठनों में ऐसे व्यक्ति होते हैं।

1. जो आदेश के पालन करने के आदी हैं।
2. वर्तमान प्रभुत्व को बनाए रखने में स्वयं अभिरुचि लेते हैं क्योंकि वे भी इससे लाभ उठाते हैं।
3. उस प्रभुत्व में इस अर्थ में भाग लेते हैं कि कार्यों का संपादन उन लोगों में बांटा रहता है।
4. इन कार्यों के संपादन के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं।

मैक्स वेबर के अनुसार कम संख्या का लाभ सभी शासकों का एक गुण है। इसलिए प्रभुता की संरचना उसी रूप में बदलती रहती है। जिसमें आदेश देने की शक्तियां अल्पसंख्यक शासकों तथा उपकरणों या दूसरे शब्दों में कहें तो अधिकारियों के बीच में बँटी होती है। यह वैधता के सामान्य सिद्धांतों के अनुसार भी परिवर्तित होती रहती है जिसके आधार पर अधिकारीगण अल्पसंख्यक शासकों की आज्ञा का पालन और जनता दोनों की आज्ञा का पालन करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मैक्स वेबर ने एक प्रणाली को कार्यान्वित करने वाले संगठन तथा प्रणाली को पोषित करने वाले विश्वासों पर जोर दिया है। वेबर के 'प्रभुत्व' का अध्ययन समूह की संरचना और विश्वासों की महत्ता पर जोर देता है। वेबर के विचार में प्रभुत्व का एक प्रणाली की वैधता में विश्वास केवल दार्शनिक विषय नहीं है यह विश्वास एक सत्तात्मक संबंध को स्थिर बना सकता हैं।

4.3.4 प्रभुत्व का वर्गीकरण (Classification of Domination)

मैक्स वेबर ने प्रभुत्व का आदर्श प्रारूप प्रस्तुत किया है और यह आदर्श प्रारूप वेबर का राजनीतिक समाजशास्त्र भी है **मैक्स वेबर** के अनुसार प्रभुत्व के तीन प्रकार होते है-

1. कानूनी प्रभुत्व (Legal Domination)
2. परंपरागत प्रभुत्व (Traditional Domination)
3. करिश्माई प्रभुत्व (Charismatic Domination)

मैक्स वेबर ने प्रभुत्व की आदर्श प्रारूप के जिन प्रकारों को रखा है। वे विशुद्ध रूप से इतिहास में कहीं नहीं मिलते। इसका एक प्रकार दूसरे प्रकार के साथ प्रायः मिल जाता है जैसे कि जो कानूनी प्रभुत्व है। वह कई बार परंपरागत प्रभुत्व के साथ मिलता है। ऐसा भी होता है कि करिश्माई प्रभुत्व के साथ कानूनी और परंपरागत प्रभुत्व भी मिल जाते हैं यद्यपि मैक्स वेबर ने प्रभुत्व के प्रकारों को जिस क्रम में रखा है। वह एक ऐतिहासिक क्रम है लेकिन बेण्डिक्ट कहते हैं कि यदि सबसे अंतिम करिश्माई प्रभुत्व के प्रकार का विश्लेषण पहले किया जाए तो वेबर को समझना सरल हो जाएगा क्योंकि प्रभुत्व के विकास की दृष्टि से शायद सबसे पहली बार करिश्माई नेतृत्व जिसे वेबर कई बार जादुई नेतृत्व भी कहते हैं आदिम समाजों में देखने को मिलता है-

1. कानूनी प्रभुत्व या सत्ता (Legal Domination)

कानूनी प्रभुत्व या सत्ता के संबंध में मैक्स वेबर का विचार है कि जहां कहीं नियमों की ऐसी प्रणाली पाई जाती है जो निश्चित सिद्धांतों के अनुसार न्यायिक एवं प्रशासकीय रूप से प्रयुक्त होती है तथा जो एक नियमित समूह के सभी सदस्यों के लिए वैध है वह वैधानिक सत्ता या प्रभुत्व कहलाती है।

इस प्रकार की सत्ता का स्रोत व्यक्ति की निजी प्रतिष्ठा में समाहित नहीं होता वरन यह जिन नियमों के द्वारा व्यक्ति एक विशेष पद को धारण करता है उन नियमों की सत्ता में निहित होता है। वैधानिक सत्ता सत्ताधारी के अधिकार क्षेत्र को भी तय करती है। जिसके बाहर वह अपनी सत्ता का प्रयोग नहीं कर

सकता। वैध सत्ता में यह अपेक्षा की जाती है कि सारी कार्यवाही लिखित में हो एक जटिल समाज में वैधानिक सत्ता प्रत्येक व्यक्ति के हाथों में समान रुप से नहीं होती बल्कि इसमें एक ऊंच-नीच का संस्तरण भी पाया जाता है।

2. परम्परात्मक प्रभुत्व (Traditional Domination)

परम्परात्मक प्रभुत्व उस सत्ता की वैधता के विश्वास पर आधारित है जो हमेशा रहती है। यह सत्ता उन व्यक्तियों के पास रहती है जो सामान्य रूप से उच्च परिस्थिति वाले व्यक्ति होते हैं और यह अपनी अनुवांशिक परिस्थिति के कारण इस सत्ता का उपयोग करते हैं। परम्परात्मक प्रभुत्व या सत्ता एक व्यक्ति को वैधानिक नियमों के अंतर्गत उस पद पर आसीन होने के कारण नहीं बल्कि परंपरा द्वारा स्वीकृत पद पर आसीन होने के कारण प्राप्त होती है चूकि यह पद परंपरागत होता है इसलिए इस पद पर आसीन होने वाले व्यक्ति को कुछ विशिष्ट सत्ता मिल जाती है और यह परंपरागत विश्वास पर ही टिकी होती है। इसलिये इसे परम्परात्मक सत्ता कहा जाता है। इसके पास स्वतंत्र व्यक्तिगत निर्णय के विशेषाधिकार भी होते हैं। यह सत्ता जिन व्यक्तियों के पास होती है। उनमें दो प्रकार की विशेषताएं देखने को मिलती है-

1. प्रथा का अनुकरण (Imitsation of Custom)
2. व्यक्तिगत निरंकुशता (Individual Dictatorship)

जो व्यक्ति उच्च प्रस्थिति वाले व्यक्तियों के अधीन होते हैं। वे शाब्दिक अर्थ में उनके समर्थक या उनकी प्रजा होते है और व्यक्तिगत रूप से उनके प्रति निष्ठा होने के कारण उनकी आज्ञा का पालन करते हैं तथा भूतकाल से ही उस प्रतिष्ठित पद के लिए उनके मन में श्रद्धा होती है। मैक्स वेबर का कहना है कि इस प्रकार की प्रणाली में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं-

व्यक्तिगत अनुगामी- जैसे गृह अधिकारी, संबंधी या व्यक्तिगत, कृपापात्र आदि

व्यक्तिगत भक्त मित्र- जैसे सामंतवादी, समाज में अधीन आदमी, जागीदार आदि

मैक्स वेबर का कहना है कि सामंतवादी और पितृनामी शासन का भेद एवं दोनों प्रणालियों में परम्परात्मक एवं निरंकुश आदेशों की निकटता सभी प्रकार की परम्परात्मक प्रभुता में छाई रहती है।

3. करिश्माई या चमत्कारिक प्रभुत्व (Charismatic Domination)

करिश्मा का अर्थ है ईश्वर का उपहार करिश्मा शब्द मूलतः यूनानी शब्द है जिसका अर्थ है कृपा। करिश्मा की अवधारणा ने मैक्स वेबर को समाजशास्त्र में बड़ी प्रसिद्धि दी है। करिश्मा का अर्थ है व्यक्ति में सामान्य से भिन्न कुछ विशिष्ट गुणों का होना। ये गुण वास्तविक भी हो सकते हैं और काल्पनिक भी। करिश्माई प्रभुत्व में जिन व्यक्तियों के पास असाधारण गुण होते हैं। सामान्य व्यक्ति उनके सम्मुख अपना समर्पण करते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। यह देखा गया है कि करिश्माई प्रभुत्व में व्यक्तियों के गुणों में विश्वास और उनके प्रति भक्ति निहित होती है। इस तरह के लोगों के प्रभुत्व की कद्र इसलिए की जाती है क्योंकि सामान्य व्यक्ति उन्हें अलौकिक क्षमता से संपन्न मानते हैं। करिश्माई सत्ता की वैधता

जादुई शक्ति देवी शक्ति और नेतृत्व पूजा के विश्वासों में निहित होती है। इस प्रकार के विश्वासों का आधार व्यक्ति के द्वारा प्रदर्शित चमत्कार उसे प्राप्त सफलता आदि होते हैं जिसमें उसने अपने समर्थकों के कल्याण के लिए कुछ कार्य किए हों। कई बार प्रमाणों के अभाव में करिश्माई सत्ता समाप्त भी हो जाती हैं। करिश्माई सत्ता में शासन के नियम और परंपरा नहीं होते हैं। करिश्मा या चमत्कारिक सत्ता हमेशा और तार्किक होती है और यह विद्यमान व्यवस्था को नहीं मानती। इसलिए कभी-कभी इसका स्वरूप क्रांतिकारी भी हो सकता हैं। इस प्रकार की सत्ता ना तो परंपरा पर आधारित होती है और ना ही वैधानिक नियमों पर बनती है। कुछ विशिष्ट चमत्कारों पर आधारित होती है और यह सत्ता केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित होती है। जिनके पास कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं। इस इन विशिष्ट लक्षणों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को साधना भी करनी पड़ती है और जब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार से प्रकट करने लगता है कि समाज के अन्य लोग समझने लगे कि उसमें कुछ विशेषताएं हैं जिनका उपयोग व जनहित में करेगा तो दूसरे लोग उसके सम्मुख झुक जाते हैं। इस तरह व्यक्ति से प्रभावित होकर लोग उसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं। **पीर पैगंबर, अवतार, धार्मिक नेता, जादूगर,** किसी दल के नेता आदि में इस तरह की सत्ता देखी जाती है। इसमें लोगों के दिल में उनके प्रति स्वाभाविक श्रद्धा उत्पन्न होती है और कई बार उनके गुणों को अक्सर देवि-देवताओं के समकक्ष माना जाता है। इस सत्ता की कोई भी सीमा नहीं होती है और यह सत्ता कई बार सत्ता परिवर्तन की भी क्षमता रखती है।

वेबर के अनुसार करिश्माई प्रभुता व्यक्तिगत प्रभुता है जो किसी व्यक्ति की असाधारण क्षमताओं से अधिक जो लोग उसके समर्थक हैं उनकी समझ पर आधारित होता है। मैक्स वेवर के अनुसार करिश्मा महानतम क्रांतिकारी शक्ति है जिससे जड़ समाजों में गुणात्मक परिवर्तन हो सकते हैं। वेबर ने प्रभुता की अवधारणा को अपनी राष्ट्रवादी भावनाओं के कारण 1918 में एक व्याख्यान में वियना में प्रस्तुत किया था।

शक्ति की अवधारणा(Concepts of Power)

4.3.5 प्रस्तावना

शक्ति मानव जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता है। समाजशास्त्र में शक्ति का अध्ययन एक प्रमुख विषय बन गया है। नियंत्रण के रूप में शक्ति समाज में सुरक्षा शांति व्यवस्था न्याय स्वतंत्रता और सभ्यता के विकास एवं प्रगति के लिए आवश्यक है। शक्ति के अभाव में सामाजिक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। शक्ति के द्वारा एक व्यक्ति अपना प्रभाव दूसरे पर डालने में समर्थ होता है एवं वह दूसरों को प्रभावित करता है। सामान्य रूप से शक्ति का तात्पर्य किसी भी व्यक्ति या समूह के उस दबाव से समझा जाता है जो अन्य व्यक्तियों या समूह पर स्पष्ट होता है एक अवधारणा के रूप में शक्ति का संबंध एक विशेष परिस्थिति तथा उससे संबंधित भूमिका के निर्वाह से है शक्ति के आधार परंपरा कानून अथवा

करिश्मा हो सकते हैं लेकिन व्यावहारिक रूप में शक्ति स्थिति तथा भूमिका से ही संबंधित होती है जिससे अन्य व्यक्तियों के द्वारा स्वीकार किया जाता है। शक्ति नेतृत्व अथवा लोगों के समूह में होती है जो शक्ति को धारण करते हैं और भी अपने शक्तिशाली प्रभाव का उपयोग लोगों को दिशा प्रदान करने में करते हैं और यह शक्ति छोटे समूह के द्वारा अन्य रूपों में समाज में कार्य करती है शक्ति कभी-कभी औपचारिक रूप से व्यक्ति अथवा समूह के द्वारा समाज पर नियंत्रण रखती है यह निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाती है।

मैकाइवर "समस्त गति सभी संबंध सभी प्रक्रियाएं समस्त व्यवस्था और प्रकृति में घटने वाली प्रत्येक घटना शक्ति की अभिव्यक्ति है।"

4.3.6 शक्ति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Power)

सामान्यतः शक्ति के कई अर्थ लगाए जाते हैं, शक्ति की चर्चा भौतिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति, नैतिक शक्ति, शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, पाशविक शक्ति आदि विभिन्न रूपों में की जाती है। वर्तमान समय में यदि हम शक्ति के अर्थ को देखें तो यह हिंसा ,आतंक एवं दमन के पर्यायवाची रूप में भी प्रयुक्त की जाती है। प्रभाव, बल प्रयोग, सत्ता एवं नियंत्रण के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने शक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है-

मैक्स वेबर के अनुसार, "सामान्यतःहम शक्ति को व्यक्ति अथवा कई लोगों द्वारा अपनी इच्छा को दूसरों पर थोपने अथवा दूसरों द्वारा प्रतिरोध करने पर भी पूर्ण करने को कहते हैं। "

हार्टन एवं हंट के अनुसार, "दूसरों की क्रियाओं को नियंत्रित करने की क्षमता को ही शक्ति कहते हैं। "

पारसंस के अनुसार 'शक्ति को समाज व्यवस्था की एक ऐसी सामान्यीकृत क्षमता मानते हैं जिसका उद्देश्य सामूहिक हितों के लक्ष्यों को पूर्ण करना होता है।"

मैकाइवर के अनुसार, "शक्ति व्यक्तियों या व्यवहार को नियंत्रित करने, विनियमित करने या निर्देशित करने की क्षमता है।"

गोल्ड हैमर एवं **शिल्स** के अनुसार, "एक व्यक्ति को उतना ही शक्तिशाली कहां जाता है जितना कि वह अपने लक्ष्यों के अनुरूप दूसरों के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है।"

रॉबर्ट बीरस्टीड के अनुसार, "शक्ति बल के प्रयोग की योग्यता है ना कि उसका वास्तविक प्रयोग।"

हॉबस "शक्ति भविष्य में कुछ निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने का एक वर्तमान साधन है।"

रॉबर्ट डाहल के अनुसार, "शक्ति की परिभाषा प्रभाव के एक विशेष रूप में की जाती है इस रूप में शक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति की आज्ञा का पालन ना करने के कारण वश बहुत हानि उठानी पड़ती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति की शक्ति वास्तव में दूसरे व्यक्तियों के संबंध में वह प्रभाव है जो कि दूसरों पर डालने में समर्थ होता है अतः अपने इरादों के अनुसार एक व्यक्ति जिस सीमा तक दूसरों को प्रभावित करता है वह उसकी शक्ति है। **मैक्स वेबर** ने शक्ति को व्यक्ति अथवा व्यक्तियों में निहित मानकर एक ऐसी क्षमता के रूप में परिभाषित किया है जिसके द्वारा शक्ति धारण करने वाला व्यक्ति अपनी इच्छा को दूसरों लोगों की इच्छा पर लादता है, जबकि पारसंस शक्ति को एक समाज व्यवस्था के रूप में मानते हैं जिसका प्रयोग सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता हैं। मनुष्य के अपने जीवन के अनेक लक्ष्य होते हैं, जिन्हें वह प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शक्ति को साधन के रुप में प्रयुक्त करता है और दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करता है। वह व्यक्तियों को अपनी इच्छा अनुसार परिवर्तित करने का प्रयत्न करता है। इस तरह शक्ति दूसरे लोगों को प्रभावित करने एवं नियंत्रित करने की क्षमता है।

4.3.7 शक्ति की विशेषताएं (Characteristics of Power)

शक्ति में निम्न विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. शक्ति संबंध सूचक अवधारणा है इसमें शासक और शासित ओं के बीच संबंध पाया जाता है शासक के लिए आवश्यक है कि कुछ ऐसे व्यक्तियों जिस पर वह शासन करें।
2. शक्ति द्विपक्षीय अवधारणा है इसमें शासक और शासित दोनों होना आवश्यक है किसी एक के अभाव में शक्ति का प्रयोग संभव नहीं है।
3. शक्ति व्यक्तिगत स्थिति व प्रतिष्ठा को प्रभावित करती है अर्थात शक्ति परिस्थिति जन्य होती है।
4. शक्ति में पुरस्कार और दंड देने की शक्ति पाई जाती है अर्थात जो व्यक्ति शक्तिधारी होते हैं वह दंड और पुरस्कार दोनों देने की स्थिति में रहते हैं।
5. वस्तुएं एवं विचार स्वयं में शक्ति नहीं होती हैं इसलिए शक्ति के लिए व्यक्तियों का होना आवश्यक है।
6. शक्ति का एक निश्चित उद्देश्य होता है।
7. शक्ति के अनेक रूप हो सकते हैं जैसे सत्ता प्रभाव एवं बल प्रयोग।
8. शक्ति सभी मानवीय समाजों में पाई जाती है।
9. शक्ति दूसरों के द्वारा प्रतिरोध करने पर ही सफल रहती है।
10. शक्ति अर्जित नहीं की जाती वरन् उसे संगठित और सुदृढ़ किया जाता है।
11. शक्ति मानवीय क्षमता का नाम है।

12. शक्ति तभी स्थाई रह सकती है जब वह औचित्य पूर्ण हो उस पर जन सहमति हो और वह जनहित पर आधारित हो।

रॉबर्ट डाहल के अनुसार शक्ति की विशेषताएं

1. शक्ति मानवीय अंतःसंबंधों को स्थापित करती है किंतु जब शक्तिधारी और प्रभावित दोनों मानव हो।
2. शक्तिधारी को योग्य एवं सक्षम होना चाहिए क्षमता रहित व्यक्ति शक्तिधारी नहीं हो सकता शक्ति का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के पास शक्ति का प्रयोग करने की क्षमता होनी चाहिए।
3. शक्ति का उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन से है अर्थात प्रभावित लोगों में शक्ति के द्वारा व्यवहार परिवर्तन लाना आवश्यक है प्रभावित पक्ष के अंतर्गत व्यक्ति, समूह, संस्था और राज्य आदि आते हैं।

4.3.8 शक्ति के आधार (Bases of Power)

प्रत्येक शक्तिशाली समूह या व्यक्ति को शक्ति किसी न किसी रुप से प्राप्त होती है विश्व प्रसिद्ध शक्तिशाली व्यक्ति चाहे वह नेपोलियन, हिटलर, अब्राहम लिंकन हो या गांधीजी। इन के शक्तिशाली होने के अलग-अलग स्रोत एवं आधार थे। शक्ति के कई आधार या स्रोत हो सकते हैं।

1. संगठन- संगठन में ही शक्ति होती है और संगठन शक्ति का एक प्रमुख स्रोत है। वह सभी संस्थाएं शक्तिशाली होती है। जिनका संगठन सुदृढ़ होता है। समाज में ऐसे अनेक उदाहरण है जैसे मजदूर संघ, व्यापारिक संघ आदि संगठन के कारण ही शक्तिशाली होते हैं।

2. ज्ञान- ज्ञान शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत है। इससे व्यक्ति की प्रतिभा का विकास होता है। ज्ञानवान व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न लक्ष्यों को नियोजित ढंग से प्राप्त करने का प्रयास करता है और जिस व्यक्ति के पास ज्ञान होता है उसकी नेतृत्व की शक्ति, संकल्प शक्ति, सहन शक्ति तथा विचारों को अभिव्यक्त करने की शक्ति अपने आप बढ़ जाती है इसलिए ज्ञान शक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन या आधार है।

3. आकार- किसी भी संगठन का आकार शक्ति का परिचायक होता हैं। ऐसा माना जाता है कि जो संगठन जितना बड़े आकार का होगा उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा यदि किसी संगठन के आकार में कमी होती है तो उसकी शक्ति में भी कमी देखी जा सकती है।

4. आत्मविश्वास- आत्मविश्वास भी शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास नहीं होता वह शक्तिशाली नहीं हो सकता। यहां तक कि कहा जाता है कि तलवार की शक्ति भी आत्म विश्वास पर ही निर्भर करती है।

5. विचार व कार्य- व्यक्तियों संस्थाओं के विचार वह काफी थी। शक्ति के स्रोत होते हैं जैसे महात्मा गांधी, अब्राहम लिंकन, अब्दुल कलाम आदि के विचार और कार्यो ने उन्हें विश्व भर में शक्तिशाली बना दिया। व्यक्ति व संस्थाओं के विचार व उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य भी शक्ति के स्रोत होते हैं

उदाहरण के तौर पर स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है लोकमान्य तिलक के इस विचार ने उन्हें अपने समय में सबसे अधिक शक्तिशाली बना दिया था वर्तमान समय में अनेक संस्थाएं जैसे रेड क्रॉस लायंस क्लब आदि अपने कार्यक्रमों के आधार पर ही शक्तिशाली संस्थाएं कही जाती हैं.

6. सत्ता- शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है सत्ता और यदि सत्ता वैधानिक को तो उसका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। हम ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत चुने गए पंचों और सरपंचों को प्राप्त सत्ता को इसके एक प्रमुख उदाहरण के रूप में देख सकते हैं।

7. उपलब्धियां- व्यक्तियों को प्राप्त उपलब्धियां शक्ति के बाहरी स्रोत होते हैं। ये उपलब्धियां कई प्रकार की हो सकती हैं। जैसे की आर्थिक उपलब्धि स्वामित्व की प्राप्ति, सामाजिक लोकप्रियता, सामाजिक स्तर में वृद्धि और प्रसिद्धि यह सब इसके अंतर्गत आती हैं। व्यक्ति को इन सब के कारण ही शक्ति की प्राप्ति होती है।

8. परिस्थितियां- परिस्थितियां भी शक्ति का स्रोत कही जा सकती हैं स्वतंत्रा आंदोलन की परिस्थिति ने महात्मा गांधी को अधिक शक्तिशाली व्यक्ति बनाया था अर्थात परिस्थितियां शक्ति का आधार हो सकती हैं।

9. नेतृत्व- नेता और नेतृत्व भी शक्ति के स्रोत माने जाते हैं साधारण व्यक्तियों की तुलना में नेताओं और नेतृत्व गुण प्रधान व्यक्ति के पास शक्ति अधिक मात्रा में होती है। नेतृत्व की क्षमता ही व्यक्ति को लोकप्रिय नेता बनाती है किसी भी क्षेत्र में अच्छा नेतृत्व अच्छी शक्ति को जन्म देती है एक लोकप्रिय नेता शक्तिशाली बनने की क्षमता और साहस रखता है।

10. प्रेम एवं प्रभाव

शक्ति की अभिव्यक्ति केवल ताकत या प्रत्यक्ष दबाव के माध्यम से ही नहीं होती बल्कि प्रेम व प्रभाव के प्रदर्शन से भी इस की अभिव्यक्ति हो सकती है।

उपरोक्त आधारों के अलावा भी कई ऐसे आधार होते हैं जिन के आधार पर हम शक्ति को मान्यता प्रदान कर सकते हैं-

1. कानून व संविधान द्वारा मान्यता होने पर
2. सामाजिक आदर्श परंपरा और मूल्य के अनुसार होने पर
3. समाज के लिए कल्याणकारी होने पर
4. अलौकिकता से प्रभावित होने पर
5. पुलिस एवं कानून के डर से
6. अपने स्वार्थ सिद्धि के आधार पर

इस तरह हम देखते हैं कि समाज में पिता की शक्ति को परंपरा व सामाजिक आदर्श के आधार पर मान्यता मिली हुई है जबकि हम नेता को समाज कल्याण या स्वार्थ सिद्धि के आधार पर मान्यता प्रदान

करते हैं जबकि बहुत सारे संत और महात्मा को उनमें निहित अलौकिकता के आधार पर उनके व्यवहार से प्रभावित होकर मान्यता प्रदान करते हैं जबकि समाज में कई बार हम भी देखते हैं कि गुंडे और बदमाश आदि उनकी शक्ति के कारण उन्हें मान्यता मिल जाती है।

4.3.9 शक्ति के स्वरूप (Forms of Power)

सामान्यतः समाज में शक्ति दो रूपों में देखी जाती है

1. सत्ता (Authority)
2. प्रभाव (Influence)

1. सत्ता

सत्ता वैध शक्ति होती है और यह एक पद को धारण करने से प्राप्त होती है। जिससे व्यक्ति अथवा समूह दूसरे लोगों अथवा दूसरे समूह को आदेश देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है और इसके द्वारा वह व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करता है इस तरह सत्ता में औपचारिक शक्ति होती है

2. प्रभाव

प्रभाव को व्यक्तियों एवं समूह के द्वारा समाज में लोगों के व्यवहार और क्रिया को प्रभावित करने वाली शक्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है इसमें शक्ति संरचना और नेतृत्व दोनों सम्मिलित होते हैं। आईटी एवं हंट के अनुसार प्रभाव का अर्थ दूसरों के व्यवहार और निर्णय को बिना सत्ता के प्रभावित करने की क्षमता है। इस तरह यह प्रभाव को सीमित अर्थों में दर्शाते हैं। सत्ता और प्रभाव दोनों को हम एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं - यदि किसी जिले में जिला अधिकारी को पद धारण करने के कारण जो शक्ति प्राप्त है वह सत्ता कहलाती है लेकिन यदि किसी ग्राम में किसी बुजुर्ग व्यक्ति को उसके व्यवहार कुशलता, उसकी दयालुता उसकी मिलनसारिता के कारण उसे जो शक्ति प्राप्त है वह उसका प्रभाव कहलायेगा।

अतः कहा जा सकता है कि व्यक्ति को जो शक्ति पद के कारण प्राप्त होती है वह वैधानिक शक्ति होती है और जो प्रभाव के कारण होती प्राप्त होती है वह अवैधानिक शक्ति कहलाती है।

समाज में शक्ति अनेक रूपों में प्रगट होती है उसके चार प्रमुख स्वरूप इस प्रकार है:

1. अभिजात शक्ति (The Elite Power) - हर समाज में कुछ लोगों का ऐसा समूह पाया जाता है जो अपनी संपत्ति, कार्य करने की क्षमता तथा प्रभाव से अथवा उच्च पदों या शक्ति धारण करते हैं उन्हें हम अभिजात शक्ति कहते हैं।

2. संगठित शक्ति (Organized Power) - कुछ ऐसे भी संगठन होते हैं जिन्हें जनता का समर्थन और स्वीकृति प्राप्त होती है और वह संगठन के कारण अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं उदाहरण के तौर पर विद्यार्थी, वकील, डॉक्टर, उद्योगपति, अध्यापक आदि कुछ ऐसे वर्ग हैं जिनका समाज में महत्वपूर्ण

स्थान होता है और यह लोग अपने शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए अक्सर संचार के साधनों जैसे पत्र पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन आदि का प्रयोग करते हैं।

3. असंगठित लोगों की शक्ति (Power of Unorganized Masses) - असंगठित लोगों में भी शक्ति निहित होती है हालांकि शक्ति का प्रयोग कभी कभी ही हो पाता है जैसे कीबोर्ड के द्वारा किसी कार्य में सहयोग और असहयोग के द्वारा इस शक्ति का प्रदर्शन होता है

4. कानून की शक्ति (Power of Law) - यह शक्ति का वैधानिक रूप कहलाता है और इसे समाज के लोगों की स्वीकृति प्राप्त होती है यह संगठित और अनौपचारिक संरचना का प्रतिनिधि होती है एस शक्ति के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार पर नियंत्रण रखा जाता है। इस शक्ति में लोगों के अधिकार और कर्तव्यों की निश्चित परिभाषा होती है नियमों का उल्लंघन करने पर दंड की व्यवस्था भी होती है प्रत्येक समाज में कुछ प्रभावशाली और शक्तिशाली व्यक्ति होते हैं जो सामूहिक निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं शक्ति धारण करने वाले ऐसे लोग एवं समूह आपस में संबंधित होते हैं और समाज में शक्ति संरचना का निर्माण करते है ये शक्ति का प्रयोग प्रायः अनौपचारिक रूप से करते हैं।

4.3.11 शक्ति के प्रकार (Types of Power)

गोल्ड हैमर और **शील्स** ने शक्ति के तीन प्रकार बताए हैं-

1. **बल-** जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को शारीरिक एवं भौतिक शक्ति के द्वारा प्रभावित करता है या उस पर दबाव डालने का प्रयास करता है तो इस शक्ति को बल कहते हैं।
2. **प्रभुत्व-** प्रभुत्व का आधार आदेश या आग्रह भी हो सकता है। जब एक शक्तिशाली व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को आदेश या अनुरोध के माध्यम से अपनी इच्छा अनुसार काम करने को बाध्य करता है तो उसे प्रभुत्व कहते हैं। प्रभुत्व में साधारणता अनिवार्यता तथा शक्ति और सत्ता का तत्व निहित होता है। इसमें शक्तिमान व्यक्ति अपनी इच्छा को प्रकट कर दूसरे के व्यवहार को प्रभावित करता है।
3. **चातुर्य-** जब कोई व्यक्ति बिना अपनी इच्छा व्यक्त किए हुए दूसरे के व्यवहार को प्रभावित करता है तो हम उसे चातुर्य कहते हैं। इसके माध्यम से शक्तिशाली व्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप से सामने वाले पक्ष को अपनी इच्छा अनुसार चलने के लिए तैयार करवाता है। इसे तोड़ने-मरोड़ने की शक्ति भी कहते हैं। इस प्रकार तोड़ने-मरोड़ने का कार्य प्रतीकों की सहायता से किया जाता है और प्रचार इसका प्रमुख उदाहरण है।

गोल्ड हैमर तथा **शिल्स** का कथन है कि कानूनी तौर पर शक्ति के दो प्रमुख प्रकार हो सकते हैं-

1. **विधिवत शक्ति -** विधिवत शक्ति वह है जिसे कि समाज या कानून से मान्यता प्राप्त होती है। सामाजिक एवं कानूनी दृष्टि से वह शक्ति निषिद्ध नहीं है।

विधिवत शक्ति के तीन प्रकार हैं-

अ. कानूनी शक्ति- इसका प्रमुख स्रोत समाज की विधि व्यवस्था और संविधान होता है।

ब. परंपरागत शक्ति- इसका प्रमुख समाज के रीति रिवाज प्रथा और परंपराएं होती हैं।

स. करिश्माई शक्ति- इसका प्रमुख स्रोत व्यक्ति विशेष की क्षमता और अलौकिक सामर्थ्य होता है।

2. **गैरकानूनी शक्ति-** यह वह शक्ति है, जिससे समाज और कानून मान्यता नहीं देता। उदाहरण के तौर पर डाकू की अपनी शक्ति होती है पर उस व्यक्ति को समाज एवं कानून स्वीकार नहीं करता पर समाज उससे डरता है।

मैक्स वेबर ने शक्ति के चार प्रकारों का उल्लेख किया है -

a. **दमन (Coercion) -** जब कोई शक्तिशाली व्यक्ति अनौचित्यपूर्ण ढंग से शक्ति का प्रयोग करता है। उसका प्रभाव सामने वाले व्यक्ति पर नकारात्मक रूप से पड़ता है तो यह शक्ति का दमन रूप होता है।
b. **वैधानिक शक्ति (Legal power) -** जब कोई शक्तिशाली व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रयोग कानूनी तरीके से करता है तो उसे वैधानिक शक्ति कहते हैं।
c. **परंपरागत शक्ति (Traditional power) -** जब किसी शक्तिशाली व्यक्ति को शक्ति की प्राप्ति परंपरागत आधार पर होती है और उसके आदेशों का पालन लोग परंपरा के अनुसार करते हैं तो उस शक्ति को परंपरागत शक्ति कहते हैं।
d. **करिश्मावादी शक्ति (Charismatic power) -** जब समाज के लोग किसी शक्तिशाली व्यक्ति के आदेशों व इच्छाओं का पालन उसकी विशेषताओं, उसमें अटूट विश्वास या उसके प्रति होने वाली श्रद्धा के कारण करते हैं तो उस व्यक्ति की शक्ति को करिश्मावादी शक्ति कहते हैं।

सामाजिक संगठन में शक्ति का संबंध दूसरे व्यक्तियों से होता है यह शक्ति संबंध दो तरह का होता है-

एक पक्षीय शक्ति- संबंध जब किसी शक्ति संबंध में केवल एक ही पक्ष दूसरे को प्रभावित करता है तो उसे एक पक्षीय शक्ति संबंध कहते हैं जैसे नौकर और मालिक के बीच का संबंध।

द्विपक्षीय शक्ति- संबंध जब किसी शक्ति संबंध में दोनों पक्ष एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तो उसे द्विपक्षीय शक्ति संबंध कहा जाता है जैसे उत्पादक और खरीदार के बीच में संबंध।

शक्ति के प्रयोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हो सकता है पर इतना अवश्य है कि शक्ति संबंध में जिस पक्ष का प्रभाव जितना अधिक होता है उसकी स्थिति उसी अनुपात में ऊंची होती है।

सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा(Concepts of Social Organization)

4.3.12 प्रस्तावना

समाजशास्त्रीय अध्ययन में सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन के प्रारंभ से ही समाज मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ है और शायद कभी ऐसा समय नहीं आएगा जब मानव और समाज एक दूसरे से अलग होंगे मानव और समाज के इस स्थायित्व एवं निरंतरता का मुख्य कारण है। सामाजिक संगठन और व्यवस्था समाज की विभिन्न अंग एवं इकाइयां होती हैं लेकिन इनमें से कोई भी पृथक या अलग रह कर कार्य नहीं करती। इन इकाइयों एवं अंगों के बीच हमेशा समन्वय और व्यवस्था देखने को मिलती है। इसलिए समाज अपना अस्तित्व बनाए रखे हुए हैं। सामाजिक व्यवस्था के अर्थ को समझने से पहले आवश्यक है कि हम व्यवस्था के अर्थ को समझें।

4.3.13 व्यवस्था का अर्थ (Meaning of Organization)

व्यवस्था का तात्पर्य एक संरचना के अंतर्गत एकाधिक निर्माणक इकाइयों या तत्वों की उस निश्चित प्रतिमानात्मक संबद्धता से है जो कि एक प्रकार्यात्मक संबंध के आधार पर इन इकाइयों को एक सूत्र में बांधती है तथा उन्हें क्रियाशील और गतिशील करती हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि व्यवस्था एक गतिशील एवं परिवर्तनशील अवधारणा है।

4.3.14 व्यवस्था की विशेषताएं (Characteristics of Organization)

1. व्यवस्था की अवधारणा एक अखंड सत्य नहीं है। व्यवस्था के अंतर्गत एकाधिक तत्व या इकाइयां होती हैं, जो कि सम्मिलित रूप में उस व्यवस्था का निर्माण करती है।
2. एकाधिक तत्वों या इकाइयों के योग मात्र से ही व्यवस्था का निर्माण नहीं होता, जब तक कि इन इकाइयों में नियमितता क्रमबद्धता और संबद्धता न हो।
3. व्यवस्था के अंतर्गत आने वाली विभिन्न निर्माणक इकाइयों के बीच में इस तरह से संबद्धता होना चाहिए जिससे की एक निश्चित प्रतिमान का निर्माण हो।
4. व्यवस्था की निर्माणक इकाइयों के बीच में प्रकार्यात्मक संबंध भी होना चाहिए।
5. परिवर्तनशीलता एवं गतिशीलता व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

1. सामाजिक व्यवस्था का अर्थ (Meaning of Social Organization)

समाजशास्त्र में सामाजिक व्यवस्था एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संरचना से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संरचना के कार्यात्मक स्वरूप को निर्दिष्ट करती है। वस्तुतः सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संरचना आपस में इतनी घनिष्ठ रूप से अंतर संबंधित है कि इन्हें एक दूसरे से प्रथक करना कठिन काम है। समाज सामाजिक संबंधों का जटिल जाल है और इसे हम एक अखंड व्यवस्था नहीं मानते। प्रत्येक समाज की अपनी एक संरचना होती है और इस संरचना का निर्माण विभिन्न इकाइयों के द्वारा होता है और इनमें से प्रत्येक इकाई का समाज में अपना

एक विशेष स्थान होता है। प्रत्येक इकाई का अपना एक कार्य होता है। इन इकाइयों में एक प्रकार्यात्मक संबंध होता है, जिससे कि यह एक संतुलित अवस्था का निर्माण करती हैं और इस गतिशील संतुलित अवस्था को सामाजिक व्यवस्था कहा जाता है।

सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संरचना की विभिन्न निर्माणक इकाइयों की संस्कृति द्वारा निर्धारित प्रकार्यात्मक संबंध के फलस्वरुप उत्पन्न होने वाली वह गतिशील स्थिति अवस्था है। जिसके कारण मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति संभव होती है। समाजशास्त्र में सामाजिक व्यवस्था उस व्यवस्था को कहा जाता है जिसमें समाज की विभिन्न नियामक इकाइयां एक सांस्कृतिक व्यवस्था के अंतर्गत एक दूसरे से प्रकार्यात्मक संबंध के आधार पर संबद्ध समग्रता की एक ऐसी संतुलित स्थिति को बनाए रखती हैं, जिसके फलस्वरूप अपने स्वीकृत अथवा उपलक्षित उद्देश्यों के अनुसार विभिन्न संस्थाओं और सामाजिक अंतर क्रियाओं की क्रियाशीलता निर्धारित एवं नियमित होती है।

2. सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा (Defination of Social Organization)

सामाजिक व्यवस्था के अर्थ को स्पष्ट करने के बाद अनेक समाज शास्त्रियों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है कुछ प्रमुख परिभाषा इस प्रकार हैं --

पारसंस के अनुसार - "सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति है जो कि अपनी इच्छाओं या आवश्यकताओं को आदर्श पूर्ति की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर क्रिया करने वाले एकाधिक व्यक्तियों या कर्ताओं की एक दूसरे के साथ अंतः क्रिया के फलस्वरुप उत्पन्न होती है।"

एस.सी.दुबे के अनुसार - "सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संरचना की, विभिन्न नियामक संस्कृतियों द्वारा निर्धारित प्रकार्यात्मक संबंध के फलस्वरुप उत्पन्न होने वाली वह गतिशील स्थिति या अवस्था है, जिसके कारण मानवीय आवश्यकता की पूर्ति तथा सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति संभव होती है।"

मार्शल जोंस के अनुसार - "सामाजिक व्यवस्था व स्थिति है, जिसमें समाज की विभिन्न क्रियाशील इकाइयां आपस में तथा पूरे समाज के साथ एक अर्थपूर्ण ढंग से संबंधित होती है। "

3. सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Social Organization)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर सामाजिक व्यवस्थाओं की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. सामाजिक व्यवस्था का जन्म समाज के एक अधिक व्यक्तियों या कर्ताओं की पारस्परिक अंतर क्रियाओं के फलस्वरुप होता हैं।
2. केवल अंतःसंबंधों तथा अंतःक्रियाओं के संकलन मात्र से ही सामाजिक व्यवस्था का उद्भव नहीं होता जब तक कि इनमें एक क्रमबद्धता न हो।
3. सामाजिक संरचना के समान सामाजिक व्यवस्था की भी विभिन्न इकाइयां होती है और इन इकाइयों में प्रकार्यात्मक संबंध भी होते हैं।

4. प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था का संबंध एक निश्चित पर्यावरण से होता है।
5. सामाजिक व्यवस्था के कारण ही समाज के सदस्यों के लिए यह संभव होता है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें तथा सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके।
6. सामाजिक व्यवस्था कोई स्थिर अवधारणा नहीं है इसमें गतिशीलता होती है। समय-समय पर सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप तथा प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है।

मैक्स वेबर ने सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए शक्ति के अर्थ को स्पष्ट किया है। मैक्स वेबर की सामाजिक व्यवस्था शक्ति की अवधारणा से ही प्रारंभ होती है अर्थात सामाजिक व्यवस्था शक्ति पर आधारित होती है।

शक्ति का अर्थ स्पष्ट करते हुए **मैक्स वेबर** ने लिखा है "शक्ति का तात्पर्य उस अवसर से है, जिसको कि एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति किसी सामूहिक क्रिया में अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए उस क्रिया में भाग लेने वाले दूसरे व्यक्तियों द्वारा विरोध करने पर भी प्राप्त कर लेते हैं।" अर्थात ऐसे व्यक्ति जिनके पास शक्ति का अवसर है अपने उद्देश्यों की पूर्ति या लक्ष्यों की प्राप्ति उन व्यक्तियों की तुलना में पहले प्राप्त कर लेते हैं, जिनके पास शक्ति नहीं है। इसका आशय यह है कि शक्ति के द्वारा व्यक्ति इच्छित लक्ष्यों को सरलता से प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के पास शक्ति का अभाव होता है। वह अपने इच्छित लक्ष्य को सरलता से प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार शक्ति एक प्रकार का साधन है। शक्तियों या अवसरों के आधार पर ही व्यक्ति समाज में एक निश्चित पद को प्राप्त करता है और वह पद उस व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करता है। वेबर के अनुसार सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण सामाजिक प्रतिष्ठा के द्वारा होता है। प्रत्येक सामाजिक समूह में सामाजिक प्रतिष्ठा का एक विशेष प्रकार होता है और सामाजिक प्रतिष्ठा के वितरण द्वारा ही सामाजिक व्यवस्था बनती है। जिस प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का वितरण होगा। उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था होगी। सामाजिक प्रतिष्ठा चाहे वह किसी भी कारण से क्यों ना हो सामाजिक व्यवस्था को निश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। मैक्स वेबर के अनुसार" जिस ढंग से सामाजिक प्रतिष्ठा किसी समुदाय की विशिष्ट समूहो में बँटी होती है। उसी को हम सामाजिक व्यवस्था कह सकते हैं।"

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि मैक्स वेबर के विचारों से स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवस्था को बनाने में दो बातें महत्वपूर्ण होती है-

1. समूह में पद का सोपान अथवा श्रेणियां अर्थात किसी समूह में पदों की श्रेणियां किस प्रकार की है।
2. समूह द्वारा संस्तरण की स्वीकृति अर्थात समूह में पद या श्रेणियों को किस दृष्टि से देखा जाता है।

4.3.15 सामाजिक व्यवस्था के प्रकार

वेबर के अनुसार सामाजिक व्यवस्था तीन प्रकार की होती है-

1. आर्थिक व्यवस्था
2. सामाजिक व्यवस्था
3. वैधानिक व्यवस्था

मैक्स वेबर सामाजिक आर्थिक तथा वैधानिक व्यवस्थाओं में अंतर मानते हैं। सामाजिक व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था दोनों ही प्रायः समान रूप से वैधानिक व्यवस्था से संबंधित होती है। सामाजिक व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था एक नहीं है। आर्थिक व्यवस्था वह तरीका है, जिसके द्वारा आर्थिक वस्तुओं और सेवाओं का वितरण एवं उपयोग किया जाता है पर सामाजिक व्यवस्था बहुत हद तक आर्थिक व्यवस्था द्वारा प्रभावित होती है और स्वयं भी आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करती है। व्यवस्था के लिए शक्ति नितांत आवश्यक है। शक्ति के अभाव में सामाजिक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। शक्ति के द्वारा एक व्यक्ति अपना प्रभाव दूसरे पर डालने में समर्थ होता है। शक्ति दूसरों को प्रभावित करती है। सभी व्यक्ति, सभी संबंध, सभी प्रक्रियाएं, समस्त व्यवस्था और प्रकृति में घटने वाली प्रत्येक घटना शक्ति की अभिव्यक्ति है।

4.3.16 सारांश

इस प्रकार मैक्स वेबर का मानना है कि प्रभुता के ये विशुद्ध प्रारूप हमेशा समाज में देखने को मिलते हैं उनका कहना है कि इनका विश्लेषण करने के लिए वैधानिक परंपरागत अथवा चमत्कारी तत्वों के अनुसार स्पष्ट अवधारणाओं की आवश्यकता होती है। वेबर ने इतिहास के कुछ उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि भी की थी।   वेबर के राजनीतिक समाजशास्त्र की प्रथम महत्वपूर्ण देन प्रभुता का सिद्धांत है जिसके आधार पर उन्होंने दो अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांतों सत्ता के संस्था कारण एवं अधिकारी तंत्र की विवेचना की है।

मानव एक विचारशील प्राणी है लेकिन सभी मानव एक ही प्रकार के विचार नहीं रखते हैं मानव समाज की एक विशेषता है कि प्रत्येक मानव दूसरे मानव को अपने विचार पक्ष में लाने का प्रयास करता है और इसी प्रयास को सफल बनाने के लिए वह शक्ति का प्रयोग करता है। इस संबंध में वीर स्टीड ने लिखा है कि "शक्ति समाज के आधारभूत सुव्यवस्था का सहारा है। जहां कहीं सुव्यवस्था है वहां शक्ति का अस्तित्व अवश्य पाया जाता है। शक्ति प्रत्येक संगठन के पीछे और प्रत्येक संरचना को बनाए रखती है। बिना शक्ति के कोई संगठन नहीं हो सकता तथा बिना शक्ति के कोई व्यवस्था नहीं हो सकती।"

यही कारण है कि अनेक समाजशास्त्रियों ने शक्ति को अपने अध्ययन का केंद्र बिंदु माना है कौटिल्य ने तो लिखा है कि "समस्त सांसारिक जीवन का आधार दंड शक्ति ही है आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि शक्ति के अभाव में ना तो जीवन संभव है और ना ही राजनीति।"

मेकाइवर ने लिखा है कि समस्त गति, सभी संबंधित, सभी प्रतिक्रियाएं, समस्त व्यवस्था और प्रकृति में होने वाली प्रत्येक घटना शक्ति कीअभिव्यक्ति है।"शक्ति यदि अपनी मर्यादाओं और सीमाओं के भीतर रहकर कार्य करती है तो व्यवस्था के विकास में निर्माण में से बड़ी कोई वस्तु नहीं है।

इस प्रकार प्रत्येक समाज में कुछ रीति रिवाज होते हैं जिनका संबंध व्यक्ति के सामाजिक या व्यक्तिगत जीवन के विभिन्न पक्षों से होता है। समाज के सदस्यों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ सर्वमान्य कार्य प्रणालियां होती है ताकि व्यवस्थित ढंग से विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे। इन कार्य प्रणालियों को मेकाइवर और पेज ने सामाजिक संस्थाओं का नाम दिया है। समाज की विभिन्न इकाइयों जिसमें व्यक्ति, परिवार, समिति आदि सम्मिलित होते हैं के व्यवहार उनकी क्रियाओं को नियमित और नियंत्रित करने के लिए अधिकार की भी एक निश्चित व्यवस्था होती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक जीवन में पारस्परिक सहयोग का भी एक ताना-बाना पाया जाता है रीति रिवाज अधिकार पारस्परिक सहयोग आदि एक दूसरे से जुड़कर क्रियाशील रहते हैं। इन्हें हम एक संबद्ध समग्र का संयुक्त भाग सकते हैं। इसे ही सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।

4.3.17 बोध प्रश्नः

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रभुत्व की अवधारणा किसने प्रस्तुत की?
   (अ) मैक्स वेबर (ब) कार्ल मार्क्स
   (स) मैकाइवर (स) रेमंड एरन
2. मैक्स वेबर ने प्रभुत्व के कितने प्रकार बताए हैं?
   (अ) दो (ब) तीन
   (स) पांच (द) सात
3. "दूसरों की क्रियाओं को नियंत्रित करने की क्षमता को ही शक्ति कहते हैं।" यह कथन किसका है?
   (अ) मैकाइवर (ब) पारसंस
   (स) मैक्स वेबर (द) हॉटन एवं हंट
4. गोल्ड हैमर और शील्स के अनुसार शक्ति के कितने प्रकार हैं?
   (अ) तीन (ब) चार
   (स) पांच (द) सात
5. मैक्स वेबर ने शक्ति के कितने प्रकारों का उल्लेख किया है
   (अ) पांच (ब) सात
   (स) तीन (द) चार

6. “जो प्रभुत्व संपन्न है और जिसके पास शक्ति का केंद्रीकरण है वहीं शासित समूह का नेतृत्व करता है।” किसका है

   (अ) मैक्स वेबर (ब) रेनहार्ड

   (स) मैकाइवर (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

7. आदिम समाजों में किस प्रकार का प्रभुत्व देखने को मिलता था

   (अ) कानूनी प्रभुत्व (ब) परंपरागत प्रभुत्व

   (स) करिश्माई प्रभुत्व (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

8. “शक्ति मित्र बनाने और लोगों को प्रभावित करने की योग्यता है।” उपरोक्त कथन किसका है?

   (अ) फ्रैडरिक और शूमैन (ब) राबर्ट डाहल

   (स) मैकाइवर (द) विलियम रॉबिंसन

9. “समस्त सांसारिक जीवन का आधार दंड शक्ति ही है।” यह कथन किसका है?

   (अ) मैकाइवर (ब) मैक्स वेवर

   (स) कौटिल्य (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

10. मैक्स वेबर के अनुसार सामाजिक व्यवस्था कितने प्रकार की होती है?

   (अ) पांच (ब) तीन

   (स) सात (द) पांच

उत्तर :- 1 अ 2 ब 3 द 4 अ 5 द

6 ब 7 स 8 अ 9 स 10 ब

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रभुत्व की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. रेन हार्ड बेंडिक्स के अनुसार प्रभुत्व के लक्षणों को समझाइए।
3. शक्ति के स्रोतों का वर्णन कीजिए।
4. शक्ति के प्रकारों को समझाइए।
5. सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैक्स वेबर की प्रभुत्व की अवधारणा को समझाइए।
2. शक्ति से आप क्या समझते हैं शक्ति के प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. प्रभुत्व की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों की विवेचना कीजिए।
4. शक्ति का अर्थ परिभाषा एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. मैक्स वेबर की सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा की विवेचना कीजिए।

4.3.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). समाजशास्त्र. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). सोशल थॉट. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). समाजशास्त्रीय विचारक. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). सामाजिक विचारों का इतिहास. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

इकाई 4 धर्म एवं पूंजीवाद (Religion and Capitalism)

इकाई की रूपरेखा

4.4.0 उद्देश्य

4.4.1 प्रस्तावना

4.4.2 धर्म के समाजशास्त्र का उद्देश्य

4.4.3 धर्म का अर्थ

4.4.4 धर्म की परिभाषाएं

4.4.5 धर्म की विशेषताएं

4.4.6 धर्म की समाजशास्त्रीय विषय-वस्तु

4.4.7 धर्म के प्रकार

4.4.8 मैक्स वेबर की विचारों का आधार

4.4.9 धर्म के समाजशास्त्र के प्रमुख आधार

4.4.10 पूंजीवाद का सार

4.4.11 प्रोटेस्टेंट नीति

4.4.12 पूंजीवाद के लक्षण

4.4.13 आधुनिक पूंजीवाद के निर्माण में धर्म की भूमिका

4.4.14 आलोचना

4.4.15 सारांश

4.4.16 बोध प्रश्न

4.4.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी -

- मैक्स के धर्म के बारे में समझ पाएंगे।
- धर्म के अर्थ परिभाषा और विशेषता को समझेंगे।
- मैक्स वेबर की धर्म के प्रमुख आधारों को समझेंगे
- पूंजीवाद के अर्थ को समझेंगे।
- पूंजीवाद के सार को समझ पाएंगे।
- प्रोटेस्टेंट नीति क्या है यह समझ पाएंगे।

- आधुनिक पूंजीवाद के लक्षण क्या है।
- आधुनिक पूंजीवाद के निर्माण में धर्म की क्या भूमिका है ।
- मैक्स वेबर ने विश्व के किन किन धर्मों का अध्ययन किया है।
- मैक्स वेबर के सिद्धांत की क्या आलोचना की गई है यह समझ सकेंगे।

4.4.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर के धर्म का अध्ययन को समाजशास्त्र साहित्य में अगुआ कहा जा सकता है। धर्म के समाजशास्त्र को विकसित करने के पीछे मैक्स वेबर का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना था। वेबर के विषय का प्रमुख क्षेत्र धार्मिक जीवन और आर्थिक घटनाओं के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना था इसी प्रयास में उन्होंने धर्म के समाजशास्त्र को विकसित किया। मैक्स वेबर की योजना दुनिया के छः बड़े धर्म के अध्ययन करने की थी। उनका यह महान प्रकल्प पूरा नहीं हो पाया क्योंकि उससे पहले उनकी मृत्यु हो गई लेकिन मैक्स वेबर का इस क्षेत्र में किया गया कार्य अनन्य है।

मैक्स वेबर ने धर्म के संबंध में जिन विचारों का प्रतिपादन किया वह तीन जिल्दों में प्रकाशित हुए। इसमें मैक्स वेबर द्वारा लिखे गए धर्म के बारे में विभिन्न लेखों का संग्रह है और इन लेखों को मैक्स वेबर ने 1904 से लेकर अपनी मृत्यु तक लिखा। मैक्स वेबर ने जो धर्म का अध्ययन प्रस्तुत किया। उसे धर्म का ही समाजशास्त्र ना कह कर संस्कृति का भी समाजशास्त्र कहा जाता है।

4.4.2 धर्म के समाजशास्त्र का उद्देश्य

मैक्स वेबर की धर्म के समाजशास्त्र के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए "सोरोकिन ने लिखा है कि मैक्स वेबर के धर्म के विवेचन का प्रमुख उद्देश्य धार्मिक और आर्थिक घटनाओं के बीच पाए जाने वाले संबंधों का विश्लेषण करना था। इसकी विवेचना मैक्स वेबर ने इतने विस्तृत रूप में कि है कि इस कार्य को मात्र धर्म का समाजशास्त्र न कहकर संपूर्ण संस्कृतियों का समाजशास्त्र कहा जा सकता है। इस संबंध में विभिन्न विद्वानों में मतभेद के बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि वेबर का यह सिद्धांत वास्तविक भौतिक घटनाओं पर आधारित है। यही कारण है कि उसे विशिष्ट मूल प्रदान किया जाता हैं।"

धर्म और आर्थिक घटनाओं में क्या संबंध है इसके बारे में पारसंस ने लिखा है "निस्संदेह मैक्स वेबर समस्त सामाजिक क्षेत्रों में एक असाधारण रूप से योग्य सामाजिक और आर्थिक इतिहासकार थे और इस कारण आप सरलता से अपने बाकी शैक्षणिक जीवन को एक महान ऐतिहासिक अध्ययन की पूर्ति में लगा सकते थे परंतु ऐसा करने के बजाए आप सर्वथा भिन्न अध्ययन क्षेत्र की ओर मुड़े और समस्त महान विश्व धर्मों के धार्मिक आचारों तथा उनसे संबंधित सामाजिक तथा आर्थिक संगठन के बीच पाए जाने वाले

विद्यमान संबंधों के विरुद्ध तुलनात्मक अध्ययन कार्य में जुड़ गए।"

मैक्स वेबर के तुलनात्मक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह प्रमाणित करना था कि सामाजिक संरचना में समग्र रूप में कौन-कौन से तत्व समाज के लिए विशेष रूप से विशिष्ट और केंद्रीय महत्व के हैं। धर्म के समाजशास्त्र के अध्ययन का मैक्स वेबर का उद्देश्य धर्म और आर्थिक पहलुओं के बीच पाए जाने वाले पारस्परिक संबंधों को भी ज्ञात करना था। ऐतिहासिक उद्विकास की व्याख्या करते हुए कुछ विचारकों ने आर्थिक पक्ष को महत्वपूर्ण माना है जबकि इसके विपरीत कुछ धार्मिक पहलुओं पर अधिक जोर दिया है। मैक्स वेबर की मुख्य समस्या यह थी कि इन दोनों में से कोई भी पक्ष अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। दोनों एक दूसरे पर आश्रित है और इसे उन्होंने अपने सिद्धांत में प्रमाणित करने का प्रयास किया है।

ऐतिहासिक उद्गमों की समस्या को प्रस्तुत करने में मैक्स वेबर मार्क्सवादी दृष्टिकोणसे प्रभावित थे पर उन्होंने यह भी अनुभव किया कि मार्क्स कि इस व्याख्या की प्रणाली को विकास की प्रक्रिया पर लागू नहीं किया जा सकता।

मैक्स वेबर ने कार्ल मार्क्स के सामान आर्थिक कारक को सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण माना है परंतु उन्होंने यह स्वीकार करने से मना किया है कि आर्थिक कारक ही एकमात्र कारण है और साहित्य सामाजिक व राजनीतिक संरचना विज्ञान कला दर्शन और धर्म सब कुछ आर्थिक कारकों के द्वारा ही निश्चित होते हैं।

मैक्स वेबर के अनुसार धार्मिक आचार और आर्थिक व्यवस्था एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और कभी-कभी आचारशास्त्र और नैतिक सिद्धांत या धारणाएं भी आर्थिक परिवर्तन का मार्ग दिखाती हैं। **जुलियल फ्राइड** के अनुसार "मैक्स वेबर ही वह सर्व प्रमुख विचारक थे जिन्होंने धर्म का अत्यधिक सूक्ष्म और वैज्ञानिक अध्ययन करके समाजशास्त्र में धर्म के समाजशास्त्र जैसी एक स्वतंत्र शाखा की स्थापना की है।"

मैक्स वेबर के धर्म के इस सिद्धांत के पीछे जैसा कि पारसंस ने लिखा है गहरी पद्धति शास्त्रीय अंत.र्ष्टि है। मैक्स वेबर का उद्देश्य ऐतिहासिक क्रम से सभी विशिष्ट तथ्यों का विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण करना नहीं है बल्कि सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तनीय तत्वों को निश्चित रूप से पृथक करना तथा परिवर्तनीय अवस्थाओं के अंतर्गत उन की क्रिया कार्य या प्रभाव का अध्ययन करके उसके उनके कार्य- कारण महत्व को दर्शाना है। मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन में धार्मिक कारक को एक परिवर्तनीय तत्व माना है और उसका आर्थिक तथा अन्य सामाजिक घटनाओं पर जो कार्य कारण प्रभाव पड़ता है। उसका विश्लेषण और निरूपण करने का प्रयास किया है। मैक्स वेबर के धर्म के समाजशास्त्र के अंतर्गत प्रतिपादित पद्धति शास्त्रीय उपागम तथा कार्य परिणाम की व्याख्या उनकी की एक नई सूझबूझ थी इसके कारण मैक्स वेबर को धर्म के समाजशास्त्र का जनक भी कहा जाता है।

4.4.3 धर्म का अर्थ

धर्म शिक्षा एवं राजनीति मनुष्य के जीवन के अनिवार्य तत्व हैं। धर्म एक ऐसा अमूर्त तत्व है जो मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं से भी बढ़कर महत्वपूर्ण है। **डेविस** के अनुसार "मानव समाज में धर्म

इतना सार्वभौमिक स्थाई एवं व्यापक है कि धर्म को स्पष्ट रूप से समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते।” यही कारण है कि धर्म बहुत लंबे समय से समाज में अध्ययन एवं चिंतन का विषय रहा है। पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि धर्म केवल सभ्य समाज के साथ जुड़ा होता है पर वास्तविकता यह नहीं है धर्म सभी ज्ञात समाजों में विद्यमान रहता है। इसलिए गिलिन एवं गिलिन ने कहा है कि “सामाजिक विज्ञान में धर्म की वास्तविकता के संदर्भ में उसकी सत्यता या असत्यता का अध्ययन नहीं किया जाता बल्कि सामाजिक जीवन के एक पहलू के रूप में धर्म का अध्ययन किया जाता है। इसलिए समाजशास्त्र की मुख्य रुचि यह ज्ञात करने में है कि धर्म समाज में कैसे कार्य करता है तथा इसका अन्य संस्थाओं से क्या संबंध है। इसलिए तुलनात्मक अध्ययनओं के द्वारा धर्म की भूमिका की समीक्षा करने का प्रयास किया जाता है। धर्म, धार्मिक विश्वास, व्यवहार और संस्थाएं संस्कृति के पक्षों को जिस रूप में प्रभावित करती है उसे ज्ञात करने में भी समाज शास्त्रियों की विशेष रुचि होती है। यही कारण है कि दुर्खीम और मैक्स वेबर द्वारा धर्म पर किए गए अध्ययन धार्मिक या ईश्वर मीमांसीय अध्ययनों से पूर्णतः भिन्न है।

धर्म अलौकिक शक्तियों में विश्वास एवं इसकी उपासना पर आधारित है। धर्म का संबंध हमारी मानसिक प्रवृत्ति से होता है और इसकी उत्पत्ति हमारे विचारों और संस्कारों के द्वारा होती है धर्म को हम किसी अति मानवीय शक्ति के प्रति विश्वास किसी पवित्र वस्तु के प्रति विश्वास या किसी आध्यात्मिक शक्ति के प्रति विश्वास के रूप में देखते हैं। यह विश्वासओं प्रतीकों मूल्यों और क्रियाओं की संस्थागत प्रणाली है। धर्म किसी ना किसी प्रकार की अति मानवीय या आलौकिक या समाजोपरि शक्ति पर विश्वास जिसका आधार भय, श्रद्धा, भक्ति और पवित्रता की धारणा है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना पूजा या आराधना है।

4.4.4 धर्म की परिभाषाएं

विभिन्न विचारकों ने धर्म की विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुति है उसमें से कुछ इस प्रकार हैं

टायलर के अनुसार “धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।”

जेम्स फ्रेजर के अनुसार “धर्म से मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या आराधना समझता हूं जिनके संबंध में यह विश्वास किया जाता है कि वह प्रकृति और मानव जीवन को मार्ग दिखाती है और नियंत्रित करती है।”

मैलिनोवस्की के अनुसार “धर्म क्रिया की एक विधि है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी धर्म एक समाजशास्त्री तथ्य होने के साथ ही व्यक्तिगत अनुभव भी है।”

4.4.5 धर्म की विशेषताएं

धर्म में निम्नलिखित मौलिक विशेषताएं पाई जाती हैं-

1. धर्म के दो पक्ष होते हैं आंतरिक पक्ष और बाह्य पक्ष। आंतरिक पक्ष में विचार भावनाएं धार्मिक प्रथाएं और मनुष्य के ईश्वर से संबंधित कार्यों के संबंध में विश्वास आदि सम्मिलित होते हैं। जबकि बाहरी पक्ष में प्रार्थना प्रथाएं धार्मिक उत्सव स्मृतियां आदि सम्मिलित होते हैं। धर्म में विश्वास की

अभिव्यक्ति की जाती है।

2. धर्म का आधार विश्वास मानव से ऊपर किसी भी शक्ति में विश्वास रखना धर्म की प्रमुख विशेषता है और यह शक्ति मानव शक्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है। इस शक्ति को व्यक्ति अपने बाहरी आचरणों के द्वारा व्यक्त करता है। वासी इसमें केवल विश्वास ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि इसके माध्यम से व्यक्ति अपने विश्वासों का प्रदर्शन भी करता है।
3. धर्म व्यक्तिगत व सामाजिक धर्म व्यक्ति के व्यक्तिगत अनुभव से संबंधित होने के साथ-साथ सामाजिक अनुभवों से भी संबंधित होता है। इस तरह हमें कह सकते हैं कि धर्म सामाजिक वस्तु होते हुए भी व्यक्तिगत है। अनुभूति के द्वारा समझा जाने वाला विश्वास उसका धर्म है और यदि व्यक्ति किसी दूसरे धर्म से तुलना करके उसे अधिक श्रेष्ठ मानता है और उसे भी अपना सकता है इस तरह धर्म सामाजिक वस्तु है।
4. भय की धारणा धर्म सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। यह सामाजिक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि धर्म में पवित्रता के साथ भय की भावना भी निहित होती है और इसी भय के कारण मनुष्य अनैतिक कार्य करने से डरता है।
5. पवित्रता की धारणा धार्मिक विश्वासों व स्थानों में पवित्रता का भाव निहित होता है। धर्म के साथ साथ पवित्रता धारणा हमेशा संबंधित रहती है।
6. सार्वभौमिकता हम एक सार्वभौमिक संस्था है। यह आदिकाल से लेकर वर्तमान सभ्य समाज तक ना किसी रूप में विद्यमान रहा है। अति प्राचीन काल में भी जनजाति समाज में आत्मा, माना, भूत प्रेत आदि शक्तियों के प्रति जो विश्वास व्यक्त किया गया है वह इस बात का प्रमाण हैं कि धर्म हर समय हर समाज में विद्यमान रहा है।
7. धर्म मानव समाज का सर्वश्रेष्ठ मूल्य है पवित्रता, आदर, भय की अवधारणा, विश्वासों की अनुभूति के कारण धर्म को मानव समाज का सर्वश्रेष्ठ मूल्य माना गया है।
8. मानव जीवन का नियंत्रण व निर्देशन धर्म की शक्ति प्राकृतिक व मानवीय जीवन को नियंत्रित करती है। इस शक्ति को मानवोपरि माने जाने के कारण व्यक्ति इससे डरता भी है यह शक्ति एक सामाजिक शक्ति भी है।

पवित्र शक्ति धर्म से संबंधित चीजें पवित्र मानी जाती हैं जैसे कि रामायण, गीता, कुरान, पवित्र ग्रंथ है। मंदिर मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारे आदि पवित्र स्थान है।

4.4.6 धर्म के समाजशास्त्र की विषय-वस्तु

धर्म का समाजशास्त्र में किसी भी धर्म के दर्शन और उसके सत्व का अध्ययन नहीं किया जाता है। यदि कोई समाजशास्त्री इस तरह का प्रयास करता है तो उससे इस क्षेत्र में दक्ष होना चाहिए जो कि सामान्यता

उनमें नहीं होता।क्योंकि हर धर्म में कुछ घटनाएं होती हैं, कुछ विशेषताएं होती हैं इनका अध्ययन समाजशास्त्र में समाजशास्त्री के द्वारा नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए हिंदू धर्म में एक पुनर्जन्म का सिद्धांत है और यह पूरा दर्शन है और समाज शास्त्री इसके अध्ययन पर ध्यान नहीं देता। धर्म से उत्पन्न या धर्म जनित अंतर क्रियाओं एवं व्यवहार ओं का अध्ययन धर्म का समाजशास्त्र करता है। **जुलियेन फ्रेड** ने वेबर की धर्म के समाजशास्त्र की व्याख्या अधि.त रूप से की है जब कोई धर्मावलंबी किसी धर्म के संदर्भ में अर्थ पूर्ण व्यवहार करता है तो उसका अध्ययन समाजशास्त्र के अंतर्गत आता है। यह समाजशास्त्री का काम नहीं है कि वह किसी धार्मिक संप्रदाय के धर्म संबंधी दर्शन का उसकी वैधता और उपयोगिता का अध्ययन करें। धर्म का समाजशास्त्र निश्चित रूप से धार्मिक व्यवहार को मनुष्य की लौकिक गतिविधि के रूप में अध्ययन करता है इस तरह की गतिविधि का रुझान या झुकाव धर्म के प्रति होता है।

वेबर के अनुसार “धार्मिक व्यवहार या अंतः क्रिया का प्रभाव नैतिकता, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था पर भी पड़ता है। यही नहीं धार्मिक व्यवहार का प्रभाव हमें सामाजिक संघर्षों में भी देखने को मिलता है। धर्म का समाजशास्त्रीय अध्ययन इस प्रकार आर्थिक और राजनीतिक अध्ययन भी बन जाता है और विशेषकर के नैतिक अध्ययन। मैक्स वेबर के धर्म के अध्ययनों का प्रारंभ आर्थिक अंतर क्रियाओं के अध्ययन से होता है उन्होंने धर्म के समाजशास्त्र को अपने जीवन में अंतिम वर्षों में अत्याधिक प्राथमिकता दी वेबर ने प्राथमिक रूप से यह देखने का प्रयास किया कि धार्मिक व्यवहार का प्रभाव आचार और अर्थव्यवस्था पर कितना और किस तरह से पड़ता है। मैक्स बेवर यह भी मानते हैं कि धर्म और जादुई व्यवहार में तार्किकता होती है और ऐसा व्यवहार धार्मिक व्यवहार के अंतर्गत आता है।

4.4.7 धर्म के प्रकार (Types of Religion)

यह निश्चित करने के बाद की धर्म का दर्शन या उसका सत्व धार्मिक व्यवहार से भिन्न है वेबर ने धार्मिक व्यवहारों का संबंध धार्मिक प्रकारों से किया है धार्मिक व्यावहारों को लौकिक और पारलौकिक व्यवहार के रूप में देखा जाता। वेबर ने ने धर्म से जुड़े हुए दो प्रकारों का उल्लेख किया है-

1. विश्वास मूलक धर्म या मुक्ति धर्म (Religion of Conviction or Salvation) - धर्म व्यक्ति के व्यवहार से जुड़े होते हैं और व्यक्ति का व्यवहार धर्म के समाजशास्त्र की विषय वस्तु है। जब मोक्ष प्राप्ति के लिए व्यक्ति गतिविधियां करता है तब उसकी भावनाएं पवित्र और .ढ़ होती है जिसके कारण व तपस्या करते हैं ऐसी स्थिति में वह केवल पवित्र कानून का ही पालन नहीं करता है बल्कि अपनी .ढ़ धारणा के कारण वह यह सब कार्य करता है। वह कई कर्मकांड करता है जैसे व्रत, उपवास, एक पैर पर खड़े होकर पूजा करना आदि और उसे विश्वास रहता है कि उसके द्वारा किए गए कार्य उसे मोक्ष दिलाएंगे। इस तरह विभिन्न धर्म के समर्थकों की क्रिया के मोक्ष से जुड़ी होती है और उनका व्यवहार नीतिशास्त्रीय हो जाता है।

मैक्स वेवर का कहना है कि मोक्ष मार्गीय धर्म के समर्थक तीन प्रकार की क्रियाओं को करते हैं-

1. मुक्ति मार्ग के समर्थक विशुद्ध रूप से कर्मकांडीय क्रिया या अनुष्ठान को करते हैं जिससे उनका व्यक्तिगत करिश्मा और रहस्य बढ़ जाता है।
2. यह समर्थक ऐसे सामाजिक कार्य करते हैं जिससे उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है जैसे समाज के प्रत्येक व्यक्ति के साथ भाईचारे का व्यवहार रखना और नीतिपरक व्यवहार करना और सभी व्यक्ति को सामान्य दृष्टि से देखना।
3. अपने आप को पूर्ण बनाने का प्रयास करना पूर्णता की प्राप्ति का यह प्रयास उनको मोक्ष के निकट ले जाता है।

इस तरह बेवर का कहना है कि मोक्ष प्राप्त करने वाले व्यक्ति अपने आप को मध्यम स्थिति में मानते हैं यह सामान्य जीवन से उठे होते हैं असाधारण धार्मिक जीवन से नीचे होते है।हालांकि यह सही है कि मुक्ति धर्म किसी को मोक्ष प्राप्ति नहीं दे पाता ऐसे व्यक्ति अपने आप को करिश्माई या रहस्य पूर्ण जरूर बना लेते हैं।

धर्म का समाजशास्त्र मोक्ष प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों के द्वारा जो क्रिया की जाती है उनका नैतिकता राजनीति और अर्थ पर क्या प्रभाव पड़ता है, का अध्ययन करता है।

2. कर्मकांड से जुड़ा धर्म- यह धर्म का दूसरा प्रकार है इस धर्म में धर्म का समर्थक कर्म कांडी होता है। इस का सबसे अच्छा उदाहरण चीन के कन्फ्यूशियस धर्म और यहूदी वाद में देखने को मिलता है। यह धर्म ऐसे हैं जो एक संप्रदाय की तरह स्थापित है और इनकी विश्वास और धारणाएं रुढीगत है इनके लिए धर्म के जो भी नियम है वह पवित्र है इन धर्मों में परंपराओं का दबाव इतना अधिक होता है कि इनके समर्थक की नैतिकता केवल धार्मिक व्यवहार तक ही सीमित हो जाती है। धार्मिक क्षेत्र के बाहर नैतिक व्यवहार को ताक पर रख देते हैं। इन लोगों लिए दुनिया का अर्थ द्वितीयक हो जाता है और कर्मकांड प्राथमिक होता है यह धर्म के रहस्यवाद को भूल जाते हैं ये धार्मिक संस्कारों को केवल संस्कार ही मानते हैं।

4.4.8 मैक्स वेबर के विचारों का आधार (Basis of Weber's Ideas)

मैक्स वेबर ने अपने इस सिद्धांत को प्रस्तुत करने से पहले विश्व के अनेक महान धर्मों का अध्ययन किया और इसी आधार पर उन्होंने धर्म संबंधी विचारों को विभिन्न समाज की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया और इसी आधार पर उन्होंने धर्म की विवेचना की। मैक्स वेबर ने धर्म संबंधी अपने अन्वेषण के आधार पर यह बताया कि किस प्रकार कुछ धार्मिक सिद्धांतों के प्रभाव से आर्थिक जीवन की तर्क परखता बढ़ी और कुछ के प्रभाव से घटी। वेबर ने धर्म की समाजशास्त्रीय विवेचना में निम्न तीन प्रमुख समस्याओं को लेकर अध्ययन प्रारंभ किया-

A. एक औसत अनुयाई की धर्मनिरपेक्ष नीति और आर्थिक व्यवहार पर प्रमुख धार्मिक विचारों का प्रभाव।
B. समूह की रचना पर धार्मिक विचारों का प्रभाव।

C. विभिन्न सभ्यताओं में धार्मिक सभ्यता के कारणों और प्रभाव की तुलना के बाद पश्चिमी सभ्यता के तत्वों का निर्णय करना।

इन समस्याओं के अर्थ को समझने के लिए मैक्स वेबर में पश्चिमी पूंजीवाद का अध्ययन किया। मैक्स वेबर के विचारों को समझने से पहले यह आवश्यक है कि हम यह समझे कि मैक्स वेबर का ही धर्म के विचारों का आधार क्या था। मैक्स वेबर ने जब अपनी धार्मिक विचारों को प्रस्तुत किया था उस समय जर्मनी में पूंजीवाद अपनी अनियंत्रित दशा में था तथा सट्टा बाजारों का व्यापार पूर्णता स्वतंत्र था और सट्टा बाजारों को उस समय पूंजीपतियों और व्यापारियों का समर्थन भी प्राप्त था।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जर्मनी में तीव्र औद्योगिक विकास औद्योगीकरण का विकास हो जाने के कारण जागीरों तथा मालिकों के बीच प्रतियोगिता प्रारंभ हो गई थी। इसमें एक नए औद्योगिक पूंजीवाद की नींव रखी इस समय पूंजीपति व्यापारियों के पक्ष में थे। 1892 में वेबर सट्टा बाजार का अध्ययन करके यह ज्ञात किया कि एक विशेष अर्थव्यवस्था समाज की आर्थिक दशाओं और व्यक्तिगत स्वार्थों से निश्चित नहीं होती इसमें एक अचेतन उद्देश्य भी रहता है। मैक्स वेबर का मानना है कि उन्होंने यह अनुभव किया कि समाज में होने वाले परिवर्तनों का एक नैतिक पक्ष भी है और उसकी झलक तत्कालीन सत्ताधारियों की नीतियों में देखने को मिल रही थी।

मैक्स वेबर ने उस समय अपने अध्ययनों में अनुभव किया कि जर्मनी की बदलती हुई परिस्थितियों में जमीदारों और पूंजीपतियों के सामने अपने आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अनेक दूसरे साधन है लेकिन उस समय उन्होंने औद्योगिक पूंजीपति बनने के बदले अपनी परंपरागत स्थिति को बनाए रखना ही श्रेष्ठकर समझा अर्थात उनके विचार केवल आर्थिक उद्देश्यों एवं आर्थिक हितों से ही उत्पन्न नहीं हुए। उस समय के पूंजीपतियों की भावना को स्पष्ट करते हुए मैक्स वेबर ने अपने एक भाषण में कहा था कि हमें जो कुछ मूल्यवान मालूम होता है। हम उसका विकास और समर्थन करना चाहते हैं तथा नैतिक मान्यताओं को ग्रहण करने की प्रवृत्ति हमारा एक भावनात्मक गुण है जिसे हम सदैव बनाए रखना चाहते हैं। मैक्स वेबर ने मार्क्स की विचारधारा का भी खंडन किया था कि "मनुष्य के विचार और क्रियाएं केवल उसके आर्थिक हितों से ही उत्पन्न होते है।" **मैक्स वेबर** ने अपनी पु'स्तक प्रोटेस्टेण्ट इथिक एंड द स्पिरिट ऑफ द कैपिटिलिज्म' (Protestant ethics And The Spirit of capitalism)- इसमें एक लेख लिखा कि "मेरा उद्देश्य संस्कृति और इतिहास की घटनाओं के कारणों की खोज में एक पक्षीय भौतिकवादी विचारों के स्थान पर एक पक्षीय आध्यात्मिक विचारों का साथ देना ही नहीं है। दोनों में से कोई भी संभव नहीं है लेकिन इनमें से किसी को भी यदि अन्वेषण के आधार की बजाए उसके निष्कर्ष के रूप में स्वीकार किया जाए तो ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी के लिए यह दोनों ही समान मात्रा में अनुपयुक्त है।" मैक्स वेबर के उपरोक्त विचारों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अन्वेषण के भौतिकवादी और आध्यात्मिक दोनों ही तरीकों पर बल दिया है। मैक्स वेबर हमेशा अपने अध्ययन में एक उचित वैज्ञानिक मान बनाए रखने के लिए सदैव सचेत रहे। इसलिए उन्होंने

समस्त एक कारक वाले सिद्धांतों को बड़ी ही सावधानी से अपने अध्ययन से दूर रखा। मैक्स वेबर ने अपनी गहरी पद्धतिशास्त्रीय अंतर्दृष्टि के द्वारा प्रोटेस्टेण्ट धर्म के उन आचारों को ढूंढा। जिन्होंने आधुनिक पूंजीवाद की आत्मा को विकसित किया। उन्होंने पूंजीवाद को एक परिवर्तनीय तत्व माना और यह दर्शाया कि धर्म किस प्रकार मानव के सामाजिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करता है।

4.4.9 धर्म के समाजशास्त्र का प्रमुख आधार

A. धार्मिक तथा आर्थिक घटना एक दूसरे से संबंधित और एक दूसरे पर निर्भर हैं। इनमें से किसी को भी दूसरे का निर्णायक मान लेना उचित नहीं होगा वास्तव में यह दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं।

B. मैक्स वेबर के अनुसार हमें हमेशा किसी भी प्रकार की एकतरफा विवेचना से बचना चाहिए कोई भी एक तरफा दृष्टिकोण पद्धति या व्याख्या अवैज्ञानिक और गलत हैं। ना तो केवल इतिहास की आर्थिक व्याख्या और ना ही समस्त सामाजिक घटनाओं की धार्मिक आधार पर की गई व्याख्या व विवेचना सत्य और यथार्थ है क्योंकि यह दोनों कारक एक दूसरे से संबंधित और एक दूसरे पर आधारित होते हैं। इन दो कारकों के अतिरिक्त अन्य अन्य अनेक दूसरे कारण भी हैं जो मानव समाज के अस्तित्व तथा निरंतरता के लिए उत्तरदायी है ।

C. मैक्स वेबर के अनुसार अध्ययन पद्धति के आधार के रूप में इस में से किसी एक कारक को एक परिवर्तनीय तत्व माना जा सकता है। मैक्स वेबर धार्मिक कार्य को इस प्रकार का एक परिवर्तनीय तत्व मानकर उसका आर्थिक तथा अन्य सामाजिक घटनाओं पर प्रभाव मालूम करने का प्रयत्न करते हैं ।

D. मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन में सभी धर्म से संबंधित समस्त तथ्यों का स्पष्टीकरण करके केवल आदर्श प्रारूपों को निश्चित रूप से पृथक करते हुए उनके कार्य कारण प्रभाव तथा महत्व की व्याख्या की हैं। इस प्रकार आर्थिक कारक में भी आपने आदर्शात्मक प्रारूपों को तुलनात्मक अध्ययन के लिए चुना है।

धर्म के अधिकारों के अंतर्गत मैक्स वेबर ने वर्ण से संबंधित विभिन्न आध्यात्मिक सिद्धांतों और विचारों को भी नहीं बल्कि पश्चिम के समस्त व्यावहारिक तरीकों को भी सम्मिलित किया है जो कि एक धर्म अपने सदस्यों के लिए निश्चित करता है। इस सब को प्रमाणित करने के लिए मैक्स वेबर ने विश्व के महान धर्मों को चुना हैं। मैक्स वेबर ने में धार्मिक और आर्थिक कारकों के संबंधों को जानने के लिए विश्व के 6 प्रमुख धर्मों का अध्ययन किया। यह धर्म है हिंदू, बौद्ध, इसाई, कन्फ्यूशियस, इस्लाम और यहूदी उन्होंने प्रत्येक धर्म में पाए जाने वाले आर्थिक विचारों का अध्ययन किया जो उस धर्म से संबंधित लोगों के आर्थिक व सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं। इन अध्ययनों के आधार पर वेबर ने स्पष्ट किया कि केवल प्रोटेस्टेण्ट धर्म में ही कुछ ऐसी आर्थिक आचार पाए जाते हैं जिन्होंने आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दिया। हालांकि इसके

लिए कई अन्य कारण भी उत्तरदायी रहे हैं। वेबर कहते हैं कि यूरोप में जब रोमन कैथोलिक धर्म प्रचलित था। तब पूंजीवाद नहीं पनपा। किंतु धार्मिक सुधार आंदोलन के कारण प्रोटेस्टेण्ट धर्म का उदय हुआ तभी आधुनिक पूंजीवाद का उदय हुआ।

4.4.10 पूंजीवाद का सार (Essence of Capitilism)

मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक द प्रोटेस्टेण्ट एथिक्स एंड द स्पिरिट ऑफ कैपीटलिज्म इसमें धर्म संबंधी विचारों की विवेचना में पूंजीवाद और प्रोटेस्टेण्ट नीति को अधिक महत्व दिया है। मैक्स वेबर ने मानव के आर्थिक आचरणों पर धार्मिक प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए 1904 और 1905 में जो लेख लिखे थे। उन्हीं लेखों के आधार पर यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी और इसी पुस्तक में मैक्स वेबर ने इस बात पर प्रकाश डाला कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीतियां पूंजीवाद के विकास को प्रभावित करती है। इसका प्रमुख उदाहरण मैक्स वेबर को अपने परिवार में ही देखने को मिला मैक्स वेबर ने पाया कि उनके पारिवारिक जीवन में ही व्यक्तिवाद तथा आर्थिक आचरण से संबंध नैतिकता का एक अनूठा मिश्रण देखने को मिल रहा है। मैक्स वेबर के चाचा कॉल डेविड वेबर एक ऐसे उद्यम के संस्थापक थे। जो गांव के घरेलू उद्योगों पर आधारित था। मैक्स वेबर ने देखा कि उनमें कठिन परिश्रम, दिखावे का आभाव रहन सहन के सहज तरीके,, दयालुता और तर्क निपुणता आदि ऐसे गुण समाहित थे जो आधुनिक पूंजीवाद के बड़े उद्यम कर्ताओं में झलकते थे। मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन में पाया की पूंजीवाद एक विशेष प्रकार की नैतिकता है। जिसमें अनेक विचारों का समावेश देखा जा सकता है। मैक्स वेबर के अनुसार आधुनिक औद्योगिक जगत के मनुष्य की एक विशेषता है कि उसे कठोर परिश्रम करना चाहिए। उन्हीं के अनुसार कठोर कार्य एक कर्तव्य है और इसका फल इसी में निहित है। किसी भी मनुष्य को अपने व्यवसाय में कार्य इस भावना से नहीं करना चाहिए कि उसे यह काम करना पड़ रहा है बल्कि उसकी सोच यह होनी चाहिए कि वह ऐसा चाहता है और यही मनुष्य के शील और व्यक्तिगत संतुष्टि का आधार है। अमेरिका में एक प्रसिद्ध कहावत है "यदि कोई काम करने योग्य है तो उसे सबसे अच्छे ढंग से पूरा करना चाहिए।"

मैक्स वेबर के अनुसार यह कहावत पूंजीवाद का निचोड़ है क्योंकि इस घटना का संबंध व्यक्ति को आर्थिक जीवन में मिलने वाली सफलता से है । इसलिए मैक्स वेबर ने पूंजीवाद के इस सार को स्पष्ट करने के लिए इसकी तुलना अन्य आर्थिक क्रिया से की है। जिसका नाम उन्होंने परम्परावाद दिया आर्थिक क्रियाओं में परम्परावाद वह स्थिति है। जिसमें व्यक्ति कम काम और प्रतिफल अधिक चाहता हैं। काम के दौरान आराम अधिक पसंद करता है और किसी भी नई प्रविधियों का उपयोग नहीं करता और ना ही उपयोग करने की इच्छा रखता है। वह कम आय से संतुष्ट हो जाता है। सैद्धांतिक रूप से धन संचय का प्रयास करता है और अकस्मात धन प्राप्त करने का प्रयत्न करता है यह सारी विशेषताएं पूंजीवाद के सार के विपरीत है।

मैक्स वेबर के अनुसार पूंजीवाद के सार का गुण केवल पश्चिमी समाजों का ही एक मात्र गुण नहीं है। अन्य समाजों में भी ऐसे लोग हुए हैं। जिन्होंने अपने व्यापार को सुचारु रुप से चलाने के लिए कठिन परिश्रम

किया और जो अपनी बचत को व्यापार को बढ़ाने में लगाते हैं और उनका जीवन आडंबर रहित था। इस तरह की विशेषताएं पश्चिमी समाजों में ही अधिक देखने को मिलती है। उन समाजों में यह एक व्यक्तिगत गुण ना होकर जीवन यापन का एक सामान्य तरीका हो गया है। इस प्रकार जनसामान्य में व्याप्त कठोर परिश्रम व्यापारिक आचार सार्वजनिक ऋण व्यवस्था पूंजी का निरंतर विनियोजन तथा परिश्रम के प्रति स्वैच्छिक प्रवृत्ति पूंजीवाद का सार है।

इसके विपरीत अचानक आर्थिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करना परिश्रम को बोझ और अभिशाप समझकर उससे दूर भागना सिद्धांतहीन रूप से पूंजी का संचय करना तथा जीवन यापन के लिए साधारण आय से संतुष्ट हो जाना सामान्य आर्थिक परिस्थितियां अथवा परम्परावाद है।

4.4.11 प्रोटेस्टेण्ट नीति (Protestant Ethics)

पूंजीवाद सार को स्पष्ट करने के बाद मैक्स वेबर ने ऐसे कारणों को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जिसके आधार पर पूंजीवाद की उत्पत्ति को धार्मिक सुधार आंदोलनों के विचारों में खोजा जा सके। मैक्स वेबर से पहले पेटी (Petty), मॉन्टेस्क्यू (Montesquieu), बकल (Buckle), किट्स(Keats) आदि ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म तथा व्यापारिक प्रवृत्ति के विकास के सहसंबंधों पर अपने विचार प्रकट किए थे। अपने विचारों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए मैक्स वेबर ने अपने एक विद्यार्थी वडेन (Baden) के द्वारा एक राज्य में धार्मिक संबंधों और शिक्षा के चुनाव पर अध्ययन करने के लिए कहा। बडेन ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म के विद्यार्थी कैथोलिक धर्म के विद्यार्थियों की तुलना में उन संस्थाओं में अधिक प्रवेश लेते थे जो कि औद्योगिक जीवन से संबंधित थे। उसने अपने निष्कर्ष में यह भी बताया कि उस समय यूरोप से कुछ अल्पसंख्यक समूहों ने कठोर परिश्रम करके अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कमियों को पूरा कर लिया था। जबकि कैथोलिक धर्म के अनुयायियों ने ऐसा कुछ नहीं किया। बडेन के इस निष्कर्ष के आधार पर वेबर ने यह निष्कर्ष दिया कि धार्मिक नीति और आर्थिक क्रियाओं व आर्थिक विकास के बीच एक सहसंबंध पाया जाता है। वेबर ने अध्ययन में यह भी पाया कि जिन राज्यों और नगरों ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म को स्वीकार कर लिया है वे आर्थिक विकास में अपना योगदान दे रहे हैं। इस तरह से मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीतियां किस प्रकार लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई और आर्थिक दृष्टि से आर्थिक लाभ प्राप्त करने में सहायक हो गई। नैतिकतावादी दृष्टिकोणसंग्रह की प्रवृत्ति ईमानदारी श्रम के प्रति निष्ठा यह सभी प्रोटेस्टेण्ट धर्म के प्रमुख तत्व हैं। जिनके कारण यूरोप के विभिन्न देशों में आर्थिक विकास यानी पूंजीवाद का विकास हुआ।

मैक्स वेबर का 'द प्रोटेस्टेण्ट द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' लिखने का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक जीवन पर धार्मिक नीतियों के प्रभाव को स्पष्ट करना था। मैक्स वेबर अपने विचार के द्वारा यह स्पष्ट करना चाहते थे कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीतियां किस प्रकार उन लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई जो आर्थिक लाभों को तर्कनापरक दृष्टि से प्राप्त करने के पक्ष में थे। मैक्स वेबर ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म के शुचारवादी पादरियों के लेखों की

परीक्षा की तथा उनके द्वारा बनाए गए काल्विन वादी सिद्धांतों का समुदाय के दैनिक आचरणों पर प्रभाव स्पष्ट किया। आगे चलकर प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीति के रूप में सेंट पॉल के इस आदेश को व्यापक रूप से ग्रहण किया जाने लगा कि "जो व्यक्ति काम नहीं करेगा वह रोटी नहीं खाएगा तथा निर्धन की तरह धनवान भी ईश्वर के गौरव को बढ़ाने के लिए किसी ना किसी व्यवसाय में अवश्य जुड़ेंगे।" इस तरह परिश्रमी एवं सक्रिय जीवन ही प्रोटेस्टेण्ट धर्म की निष्ठा के अनुरूप है। रिचार्ड बैक्सटर ने कहा है कि केवल कर्म के लिए ही ईश्वर हमारी और हमारी क्रियाओं की रक्षा करता है। परिश्रम ही शक्ति का नैतिक तथा प्राकृतिक उद्देश्य है केवल परिश्रम से ही ईश्वर की सबसे अधिक सेवा तथा सम्मान हो सकता है। इसी तरह उस समय के एक अन्य संत जॉन बनियन ने कहा था कि यह नहीं कहा जाएगा कि तुम क्या विश्वास करते थे। केवल यह कहा जाएगा कि क्या तुम कुछ परिश्रम भी करते थे या केवल बातूनी थे।

इस तरह प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीति में मानव के सक्रिय जीवन को भी ईश्वर की भक्ति के रूप में मान लिया गया था और प्रोटेस्टेंट धर्म में परिश्रम को एक विस्तृत नियमावली के रूप में स्वीकार किया गया और इसी नियमावली ने आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4.4.12 आधुनिक पूंजीवाद के लक्षण

वेबर ने धार्मिक कारक को एक परिवर्तनीय तत्व के रूप में स्वीकार किया, और आर्थिक व्यवस्था पर उसका प्रभाव ज्ञात करने के लिए धर्म की आर्थिक आधार संबंधी व्याख्या को अपने विषय का आधार माना। वेबर इसी आधार पर भी धर्म के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को खोजने का प्रयत्न करते हैं। धर्म के आर्थिक आधार व्यवस्था से वेबर का आशय व्यवहार के उन व्यावहारिक तौर तरीकों से है जो एक धर्म अपने सदस्यों के ऊपर समान रूप से निश्चित करता है। अपने इस अध्ययन के बाद वेबर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रोटेस्टेंट धर्म की आचार संहिता ही आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद को जन्म देती है। मैक्स वेबर के अनुसार "प्रोटेस्टेंट धर्म में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो ऐसी आर्थिक मान्यताओं को उत्पन्न करने में मददगार साबित हुई जिन्हें हम पूंजीवाद के नाम से जानते हैं और वह प्रोटेस्टेंट सुधार ही था जिसने पूजावादी अर्थव्यवस्था के विकास में प्रत्यक्ष तौर पर प्रेरणा प्रदान की।"

मैक्स वेबर ने प्रोटेस्टेंट धर्म और पूंजीवाद के संबंध को प्रमाणित करने हेतु इन दोनों के आदर्श प्रारूपों को चुना है वेबर के अनुसार आधुनिक पूंजीवाद के लक्षण निम्नानुसार है-

1. अधिकतम लाभ कमाना सर्व प्रमुख आधार अथवा उद्देश्य
2. व्यक्तिगत संपत्ति को मान्यता
3. मिल तथा कारखानों में उत्पादन
4. उद्योग व्यापार व व्यवसाय का बड़े पैमाने पर विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक संगठन
5. उत्पादित वस्तुओं की संगठित विक्रय व्यवस्था
6. कार्यों में अधिक कुशलता तथा निपुणता

7. अत्याधिक श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण
8. कार्य अथवा व्यवसाय में कुछ व्यक्ति ही धन तथा सम्मान के पात्र होते हैं
9. नवीनता का आदर एवं अकुशल तथा पुराने का विरोध

मैक्स वेबर ने तो प्रोटेस्टेंट धर्म में पाए जाने वाले आर्थिक विचारों का भी उल्लेख किया है जिसने की आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दिया मैक्स वेवर का कहना था कि पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था का प्रमुख कारण प्रोटेस्टेंट धर्म ही है अपने इस विचार की पुष्टि के लिए वेबर ने प्रोटेस्टेंट धर्म की आचार व्यवस्था के आदर्श प्रारूपों का चयन किया है। मैक्स वेबर ने तो प्रोटेस्टेण्ट धर्म में पाए जाने वाले आर्थिक विचारों का भी उल्लेख किया है। जिसने की आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दिया।

बेंजामिन फ्रैंकलिन ने आधुनिक पूंजीवाद की उन शिक्षाओं एवं उद्देश्यों का वर्णन किया हैं जो सफल व्यवसाय एवं पूंजीपति बनने के लिए आवश्यक है। यह इस प्रकार हैः-

1. समय धन है।
2. धन से धन कमाया जाता है।
3. एक पैसा बचाना ही पैसा कमाना है।
4. ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है।
5. जल्दी सोना और जल्दी उठना व्यक्ति को स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान बनाता है।
6. कार्य ही पूजा है।

मैक्स वेबर ने **प्रोटेस्टेण्ट धर्म** के आचार की तुलना दुनिया के दूसरे धर्मों से की और अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि केवल प्रोटेस्टेण्ट धर्म ही एक ऐसा धर्म है। जिस के आर्थिक परिणाम अधिक स्पष्ट और दूरगामी है। यह धर्म लोगों को ईमानदार और उत्साही होने परिश्रम करने, मितव्ययता और पैसा बचाने पर जोर देता है जो कि पूंजीवाद को लाने और विकसित करने के लिए आवश्यक है। यहां पर हम प्रोटेस्टेण्ट धर्म के विचारों पर ही चर्चा करेंगे, जिन्होंने कि पूरे यूरोप के आर्थिक जीवन को प्रभावित किया है।

कार्य ही पूजा है। प्रोटेस्टेण्ट धर्म कर्म को ही पूजा मानता है और विश्वास करता है कि परिश्रम से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि प्रोटेस्टेण्ट धर्म परिश्रम पर बल देता हैं। इसलिए उसने पूंजीवाद के विकास में अपना योगदान दिया है। इसके विपरित कैथोलिक धर्म में परिश्रम कर जीवन यापन करना अच्छी बात नहीं है।

ब्याज वसूलने की छूट प्रोटेस्टेण्ट धर्म में धन से धन कमाने को अच्छा माना गया है अर्थात एक व्यक्ति ब्याज पर पैसा देकर उससे और पैसा कमा सकता है। इसके विपरीत कैथोलिक धर्म एवं इस्लाम में ब्याज लेना बुरा माना गया है। पैसा देकर धन कमाने की स्वीकृति ने पूंजीवाद को बढ़ावा दिया है।।

प्रोटेस्टेण्ट धर्म बचत पर जोर देता है और उसके अनुसार बचत से ही संपत्ति बढ़ती है और पूंजीवाद पनपता है। प्रोटेस्टेण्ट धर्म का एक आर्थिक आचार है। एक पैसा बचाना एक पैसा कमाने के बराबर है।

व्यावसायिक आचार प्रोटेस्टेण्ट धर्म का मानना है कि व्यक्ति के जीवन में व्यवसायिक सफलता और असफलता के आधार पर ही कहा जा सकता है कि उसकी आत्मा मरने के बाद स्वर्ग में जाएगी या नर्क में अर्थात इस धर्म में प्रत्येक व्यक्ति को यह नैतिक शिक्षा दी जाती है कि वह कठोर परिश्रम करके व्यवसाय में सफलता प्राप्त करें। जिससे कि ईश्वर प्रसन्न होगा। इस तरह इसके द्वारा पूंजीवाद का विकास होता है क्योंकि पूंजीवाद के लिए परिश्रम उत्साह और व्यावसायिक सफलता आवश्यक है।

शराबखोरी पर रोक और ईमानदारी को बढ़ावा प्रोटेस्टेण्ट में शराब पीकर काम करने को अनुचित बताया गया है एवं ईमानदारी से काम करने को उचित बताया गया है। उसका मुख्य कारण यह भी है कि शराब पीकर औद्योगिक क्षेत्र में काम करने पर जान का खतरा बढ़ जाता है और शराबखोरी रोकने से पूंजीवादी व्यवस्था को बढ़ावा मिलता है क्योंकि इसमें व्यक्ति परिश्रम अधिक कर सकता है।

अवकाश पर रोक। प्रोटेस्टेण्ट धर्म में काम करते समय अकारण ही अधिक समय तक अवकाश लेने को उचित नहीं माना गया है। पूंजीवाद की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति छुट्टी कम ले और कार्य अधिक करें।

मैक्स वेबर ने अपनी इन सब बातों की पुष्टि के लिए यूरोप के विभिन्न देशों का अध्ययन किया और ऐतिहासिक प्रमाण जुटाए। उन्होंने कहा कि इंग्लैंड अमेरिका और पोलैंड में पूंजीवाद का विकास हुआ इसकी तुलना में इटली, स्पेन जहां पर कि कैथोलिक धर्म के समर्थक अधिक है, विकास कम हुआ। प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीतियों के अध्ययन से वेबर को इनके आधारों में कई समानताएं ज्ञात हुई और इसी आधार पर उन्होंने कारण और परिणाम की व्याख्या की। आपने प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीति को कारण और पूंजीवाद को परिणाम माना है। वेबर ने यह स्पष्ट करने का भी प्रयास किया कि यूरोप के कई देशों में पूंजीवाद के आरंभ और विकास के लिए प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीतियां ही सहायक रहे और इस धर्म की नैतिक शिक्षा धीरे-धीरे इस के समर्थकों के जीवन में ढल गई और वह परिश्रम से आजीविका कमाने को उचित मानने लगे। इस तरह इस धारणा ने पूंजीवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4.4.13 आधुनिक पूंजीवाद के निर्माण में धर्म की भूमिका (The Role of Religion in the Formation of Modern capitalism)

मैक्स वेबर ने धर्म की व्याख्या करने के लिए 'प्रोटेस्टेंट एथिक्स एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' नामक ग्रंथ का प्रतिपादन किया और इस ग्रंथ के द्वारा उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि आधुनिक पूंजीवाद के निर्माण में प्रोटेस्टेंट धर्म महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रोटेस्टेंट धर्म की आचार पद्धति ने ही आर्थिक क्षेत्र की व्यवस्था को जन्म दिया है और मैक्स वेबर के विचारों की विवेचना करते हुए वीर स्टीड ने लिखा है कि "प्रोटेस्टेंट धर्म में ही कुछ ऐसी चीज है जिसकी सहायता से ऐसी मान्यताओं का जन्म हुआ है जिन्हें हम पूंजीवाद के नाम से जानते हैं और वह प्रोटेस्टेंट धर्म सुधार ही था जिसने प्रत्यक्ष रुप से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को और प्रोत्साहन किया।" वेबर ने कुछ उदाहरणों के द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है

कि ऐसे देश जहां पर प्रोटेस्टेंट धर्म है अधिक समृद्ध है। इन देशों में अमेरिका, इंग्लैंड और हालैंड प्रमुख हैं इसके विपरीत जहां कैथोलिक धर्म है वे आर्थिक विकास में पीछे हैं। इस प्रकार मैक्स वेबर ने जर्मनी के नागरिकों का अध्ययन करने के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला कि जर्मनी में अधिक धनी व्यक्ति प्रोटेस्टेंट धर्म को मानने वाले हैं। संक्षेप में पूंजीवाद की उत्पत्ति धार्मिक परिस्थितियों के कारण होती है।

धर्म और आर्थिक विकास के बीच के पारस्परिक संबंधों को ज्ञात करने के लिए मैक्स वेबर ने विश्व के छः महान धर्मों कनफ्यूसियस, हिंदू, यहूदी, ईसाई, बौद्ध और इस्लाम का अध्ययन किया और इन धर्मों के अध्ययन में उन्होंने इन धर्म के प्रमुख सिद्धांत तथा उनसे प्रभावित आर्थिक नीतियों की व्याख्या की। मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक चीन का धर्म कनफ्यूसियस और ताओवाद का विस्तार से उल्लेख किया। इस पुस्तक की एक भाग में मैक्स वेबर ने यह स्पष्ट किया कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म तथा कन्फ्यूशियस धर्म की नीतियों में भिन्नता होने के कारण ही पश्चिमी समाजों और चीन में प्रचलित आर्थिक मनोवृति में भिन्नता पाई जाती है। कन्फ्यूशियस धर्म में ईश्वर की नैतिक आवश्यकता तथा मानवीय निर्बलता पाप की चेतना एवं मुक्ति की आवश्यकता, लौकिक जीवन के आचरण, पारलौकिक की जीवन में मिलने वाले पुरस्कार, धार्मिक कर्तव्य तथा सामाजिक-राजनैतिक वास्तविकता आदि के बीच किसी प्रकार का तनाव नहीं मिलता। इस धर्म ने अपने प्रत्येक समर्थक को संसार की वर्तमान रूप में से अनुकूलन करने पर ही बल दिया ना कि किसी विशेष आदेशों के अनुसार स्वयं को परिवर्तित करने पर।यह धर्म लोगों को परंपरा और परिपाटी से बंधे रहने पर बल देता है उन से मुक्त होने पर नहीं। इस धर्म में चीन की परंपरागत व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था जिस में सम्राट को देवता के समान माना गया था। इस बात पर विशेष बल दिया। इसके विपरीत पश्चिमी समाजों में पारिवारिक संबंधों की तुलना में नैतिक सिद्धांतों के पालन पर अधिक बल दिया गया। आर्थिक दृष्टि से इसका अर्थ यही हुआ कि व्यक्ति की व्यापारिक साख उसकी नैतिक विशेषताओं पर निर्भर रहती है। कन्फ्यूशियस धर्म की आर्थिक और राजनीतिक शिक्षाओं में जन कल्याण की बात को तो बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया था किंतु उसमें ऐसी कोई उचित आर्थिक मनोवृति नहीं थी जो धार्मिक नीतियों के उद्देश्यों को पूरा कर सके इसके विपरित प्रोटेस्टेण्ट धर्म, श्रम और कर्म की नीति जिनसे की पूंजी संचय और आर्थिक विचारों को बढ़ावा दिया जाता है पर विशेष बल दिया गया था और पूंजीवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रोटेस्टेण्ट धर्म की क्षमता तथा कर्म की नीतियां कन्फ्यूशियस धर्म के सौंदर्य संबंधी मूल्यों से पूर्णता अलग थी। इसी कारण पश्चिम की मनोवृत्तियों से स्वायत्तता पूर्ण पूंजीवाद के विकास को प्रोत्साहन मिला जबकि इसकी विपरित मनोवृत्तियों ने चीन में इस प्रकार की पूंजीवाद को विकसित नहीं होने दिया।

वेबर ने दूसरा उदाहरण हिंदू धर्म का लिया है। **भारत का धर्म** 'The Religion of Inida' नामक पुस्तक जो वेबर की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई थी। उसमें वेबर ने हिंदू धर्म की उन बातों का उल्लेख किया है। जिसके कारण भारत में पूंजीवाद का विकास नहीं हो सका था। हिंदू धर्म के अध्ययन में मैक्स वेबर का ध्यान उन आरंभिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं की ओर रहा जो हिंदुओं के परस्पर विरोधी विचारों में झलकती

थी जिसके कारण भारत अपनी परंपराओं से हटकर एक विकसित अर्थव्यवस्था का निर्माण नहीं कर पाया। मैक्स वेबर ने अपने सिद्धांत में बताया कि हिंदू धर्म वास्तव में एक ब्राम्हण धर्म है। इसकी स्थापना और विकास उन ब्राह्मण राजपुरोहितों, धर्म शास्त्रों तथा विधि व्यक्तियों द्वारा किया गया जो कूटनीति और चमत्कारी कर्मकांडी ज्ञान में प्रवीण थे।

मैक्स वेबर के अनुसार हिंदू धर्म दो प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित था। पहला आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धांत और दूसरा कर्म का सिद्धांत। इन सिद्धांतों में यह कहा गया है कि मनुष्य के कर्मों का प्रभाव अगले जन्म में उसके भाग्य पर पड़ता है। प्रत्येक हिंदू सामाजिक पद और जाति व्यवस्था में बना हुआ है और ब्राह्मणों ने व्यक्ति की मुक्ति का लक्ष्य अपनी जाति के संबंध कर्मों को पूरा करने से ही संभव होना बताया था। धार्मिक नीतियों में स्पष्ट किया गया था कि ब्राह्मण ही मोक्ष का अधिकारी है क्योंकि कोई व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से उतने पुण्य अर्जित नहीं कर सकता। जो कि मुक्ति पाने के लिए श्रेष्ठ है। भारत में ब्राह्मणों ने सफलता के साथ-साथ सामाजिक और न्याय संबंधी उच्चता के अधिकारों का दावा किया था। जिससे भारत में नैतिक बहुवाद ने जोर पकड़ा । हिंदू धर्म की न्याय व्यवस्था ब्राह्मणों के पक्ष में थी जो ब्राह्मणों पर अत्याचार को निषेध करती थी तथा ब्राह्मणों के विरुद्ध न्याय को भी अस्वीकार करती थी। "कुल पुरोहित कर्मकांडी प्रश्नों के निर्णय को तथा जीवन की सभी परिस्थितियों में पाप मोचक और सलाहकार के रूप में ब्राह्मणों ने जाति व्यवस्था को विकसित किया तथा इसे प्रभावपूर्ण बना दिया।"

मैक्स वेबर का कहना था कि भारत जैसा धार्मिक पुरोहितों को उचित सम्मान विश्व भर में कहीं नहीं मिला। भारतीय समाज में धर्म पुरोहितों को मिलने वाले उच्च सम्मान की पुष्टि के लिए भ्रांत तर्क और प्रमाण विकसित किए गए। हिंदू धर्म की नीतियों का प्रमुख उद्देश्य इंद्रियों और आवेगो के संसार से दूर रहना जीवन की दौड़ धूप से व्यक्ति को मुक्ति दिलाना और ईश्वर से एकाकार करना है। हिंदू धर्म के अनुसार ब्राह्मणों ने संसार के दुख पाप और अपूर्णता से ना केवल दूर रहने की बात नहीं कही है बल्कि इस क्षणभंगुर संसार को त्यागने की भी बात कही थी और उनके अनुसार सांसारिक वस्तुओं की आशक्ति और जन्म मरण के चक्र से छुटकारा पा लेना ही वास्तविक मुक्ति है।

इसलिए हिंदू धर्म अलौकिक समस्याओं के प्रति उदासीन रहने तथा कर्मकांड और तपस्या करने पर अधिक बल देता है। इन सभी विशेषताओं के कारण हिंदू एक ऐसी जीवनशैली में फंस गए जिसे लांघकर वह तार्किक संसार में प्रवेश नहीं कर पाया। हिंदू धर्म के इन नीतियों का भारत के आर्थिक जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ां।

मैक्स वेबर कहते हैं कि "धार्मिक नीतियों से आबद्ध जाति व्यवस्था में भारत के आर्थिक विकास को रोका और जातीय बाधाओं के कम होने पर ही आर्थिक क्रियाओं में तार्किकता की वृद्धि हुई। इस प्रकार वेबर यह मानते हैं कि हिंदू धर्म की यह नीतियां भारत के आर्थिक और भौतिक विकास में बाधक रही हैं।"

प्राचीन यहूदी धर्म नामक पुस्तक वेबर की मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में वेबर ने उन

परिस्थितियों का भी उल्लेख किया है जो पश्चिमी समाजों के धर्म में तार्किकता के विकास के लिए उत्तरदाई रही। इस किताब में उल्लेख किया गया है कि यहूदी धर्म ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म में एक ऐसी नैतिकता विकसित की जो संसार के स्वरूप में परिवर्तन लाना चाहती थी। जबकि ईसाई धर्म का मठवाद सभी सांसारिक वस्तुओं को त्यागने के पक्ष में था यहूदी धर्म में उस सक्रिय वैराग्य के दर्शन होते हैं। जिसमें ईश्वरी निर्देशों के अनुसार नीति संबंधी कार्यों पर विचार किया गया है। मैक्स वेबर का कथन है कि "प्रोटेस्टेण्ट धर्म का शुद्धचार भी वैराग्य में विश्वास करता है लेकिन जुड़ावाद के समान यह संसार को इस अर्थ में त्यागता है कि मौज उड़ाना और आराम करना ऐसे प्रलोभन है जो नीति के दृष्टिकोण से अर्थहीन हैं तथा मुक्ति के प्रयत्न में बाधक हैं।"

पश्चिम में धर्म की यह नैतिकता प्राचीन यहूदी पैगंबरों से ही प्रारंभ हुई थी। यहूदी पैगंबरों ने संसार की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को भविष्य में स्थापित होने वाली व्यवस्था से बिल्कुल अलग माना था। उनके अनुसार संसार शाश्वत नहीं है वरन् उत्पन्न किया हुआ है। इस तरह जुड़ावाद के अनुसार संसार एक ऐतिहासिक उत्पाद है जिसे ईश्वर के द्वारा एक निर्दिष्ट व्यवस्था की स्थापना के लिए बनाया गया है। मैक्स वेबर का कथन है कि यह नीति आज भी बहुत बड़ी सीमा तक मध्य पूर्व तथा यूरोपीय आचार का एक महत्वपूर्ण आधार है । यहूदियों ने नम्रता तथा आज्ञापालन को मनुष्य का सबसे बड़ा गुण बताया था और स्पष्ट किया था कि अच्छे और बुरे भाग्य की आशाएं एवं पुण्य करने की आवश्यकता निकट भविष्य से ही संबद्ध है। इस तरह जुड़ावाद परंपरागत तंत्र तथा रहस्यमई कल्पनाओं से स्वतंत्र है और एक ऐसे निष्ठावान धर्म को महत्व देता है जो मनुष्य के दैनिक जीवन को ईश्वर के द्वारा बनाए गए नैतिक नियमों से अनिवार्य रूप से बांध देता है। वेबर का विश्वास है कि जुड़ावाद ने नैतिक तर्कवाद के निर्माण में सहायता देकर उन अभिवृत्तियों का विकास किया जो आज पश्चिम में पूंजीवाद के सार के पूर्णता अनुरूप है ।

विभिन्न धर्मों के बारे में मैक्स वेबर के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि उनकी रुचि धार्मिक नीतियों का आर्थिक क्रियाओं पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात करने में थी। उन्होंने ना केवल धार्मिक नीतियों और आर्थिक क्रियाओं के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट किया बल्कि, उन्होंने धार्मिक विचारों के सामाजिक संस्तरण पर पड़ने वाले प्रभाव को भी ज्ञात किया। उन्होंने विश्व के प्रमुख धर्मों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला की विभिन्न धर्मों के पैगंबरों प्रचारकों और विद्वानों आदि की एक विशेष जीवनशैली थी और उन्होंने अपनी धार्मिक नीतियों का प्रचार करके सामाजिक संस्तरण तथा आर्थिक क्रियाओं को एक विशेष रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। संस्कार इतना है कि पारसंस का कहना है कि "धर्म के समाजशास्त्र की व्याख्या में वेबर का महत्वपूर्ण योगदान एक व्यवस्थित पद्धतिशास्त्रीय अंतर्दृष्टि है। जिसके द्वारा उन्होंने विभिन्न कारकों को एक दूसरे से पृथक करके उनके कारण और प्रभाव को एक दूसरे की तुलना में स्पष्ट किया हैं।

4.4.14 आलोचना

मैक्स वेबर ने कुछ वस्तुनिष्ठ तथ्यों के आधार पर अर्थव्यवस्था एवं धर्म के संबंध को सिद्ध करने का प्रयास किया है लेकिन उनके विचार कुछ रूपों में आलोचनाओं से रहित नहीं है। सुविचार सत्यता के निकट

होते हुए भी पूर्णतया सत्य नहीं है। वेबर ने धर्म के समाजशास्त्र की व्याख्या में अनेक स्थानों पर पूर्वाग्रह से युक्त विचार प्रस्तुत किए हैं कई स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न धर्मों की नीतियों का अध्ययन करते समय वेबर केवल उन्हीं नीतियों को प्रकाश में लाना चाहते थे जो उनकी परिकल्पना को प्रमाणित कर सके इस आधार पर उनके सिद्धांत की अनेक आलोचनाएं की गई है-

1. मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन में बताया कि सभी घटनायें एक दूसरे से संबंधित हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करती हैं पर उन्होंने स्वयं सामाजिक या आर्थिक संरचना में परिवर्तन की व्याख्या के लिए केवल एक कारक अर्थात धार्मिक कारक को महत्वपूर्ण मानकर अध्ययन किया है।
2. मैक्स वेबर ने धार्मिक नीतियों की विवेचना में तो ऐतिहासिक काल से लेकर वर्तमान सुधारात्मक आंदोलन तक की चर्चा की है लेकिन उन्होंने भारत, चीन तथा इजराइल में अतीत की उन आर्थिक उपलब्धियों अथवा अवसरों पर विचार नहीं किया जो कि वेबर की धारणा के अनुरूप विकसित तर्कवाद पर आधारित थी।
3. मैक्स वेबर ने प्रोटेस्टेंट वाद और पूंजीवाद में एकतरफा संबंध बताया। यदि हम उनका विचार माने कि आर्थिक विकास ने पूंजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया है तब उनका यह विचार उचित प्रतीत नहीं होता कि धर्म एवं अर्थव्यवस्था अंतर संबंधित है एवं दूसरों को प्रभावित करती हैं यदि उनका यह विचार माना जाए की धार्मिक तथा आर्थिक घटनाएं एक दूसरे को प्रभावित करती हैं तब पूंजीवाद के विकास का कारण प्रोटेस्टेंटवाद को बताना उचित प्रतीत नहीं होता।
4. बेनेडिक्ट का कथन है कि धार्मिक नीतियों पर केवल इसी दृष्टिकोण से विचार करना पर्याप्त नहीं है कि उन्होंने आर्थिक विकास में कितना कम या अधिक योगदान दिया बल्कि उन पर कुछ विभिन्न रूप से भी विचार करना आवश्यक है।
5. इस तथ्य की भी अवहेलना नहीं की जा सकती कि पश्चिम में पूंजीवाद का विकास केवल प्रोटेस्टेंट नीतियों का ही परिणाम नहीं है बल्कि वह पश्चिम की सांस्कृतिक विरासत से भी संबद्ध है।
6. सोरोकिन के अनुसार वेबर का यह सिद्धांत दोषपूर्ण है उन्होंने बताया कि जापान में बीसवीं शताब्दी में धर्म के क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ किंतु वहां की आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था में आश्चर्यजनक प्रगति हुई।
7. सोरोकिन के अनुसार मैक्स वेबर ने अत्यंत संकीर्ण आंकड़ों तथा सीमित अध्ययनों के आधार पर एक पक्षीय कार्य-कारण संबंध की व्याख्या की है।
8. सोरोकिन ने वेबर की इस आधार पर भी आलोचना की है कि उन्होंने आर्थिक और धार्मिक कारकों को ही सर्वाधिक महत्व दिया है और अन्य कारकों की उपेक्षा की है।
9. मैक्स वेबर ने ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर प्रोटेस्टेंटवाद एवं पूंजीवाद के संबंधों की चर्चा की है ऐतिहासिक पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति नहीं है इस पद्धति के आधार पर प्रतिपादित निष्कर्षों की

विश्वसनीयता भी संदिग्ध रहती है ।

10. रेमंड एरन का विचार है कि मैक्स वेबर ने केवल मूल्यों को ही आधार मानकर आर्थिक विकास को समझाने का प्रयास किया है।

11. ए. डब्ल्यू गोल्डनर ने लिखा है कि मैक्स वेबर ने धार्मिक विचारों को अधिक महत्व दिया है और पूंजीवाद **प्रोटेस्टेंटवादी** विचारधारा को अपनाने का परिणाम है ऐसा मैक्स वेबर मानते थे यह एक विचारणीय प्रश्न है

उपरोक्त आलोचनाओं के बाद भी यह स्पष्ट है कि मैक्स वेबर का धर्म और पूंजीवाद संबंधी विचार समाज का एक महत्वपूर्ण योगदान है।

4.4.15 सारांश

धर्म के समाजशास्त्र की व्याख्या में वेबर की प्रमुख रुचि यह स्पष्ट करने में रही कि संसार के विभिन्न धर्मों की नीतियों का आर्थिक क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ा। इसके लिए मैक्स वेबर ने केवल धार्मिक नीतियां तथा आर्थिक क्रियाओं के सहसंबंध को ही स्पष्ट नहीं किया बल्कि सामाजिक संस्था इन पर भी धार्मिक विचारों के प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने अध्ययन के परिणाम स्वरुप धर्म के समाजशास्त्र को विकसित किया। धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा वेबर ने स्पष्ट किया कि अतार्किक होते हुए भी धर्म में कहीं ना कहीं विवेकीकरण अवश्य होता है। धर्मों का किसी भी तरह का वैज्ञानिक अध्ययन करना बेवर का लक्ष्य नहीं था। ना ही वे धार्मिक प्रघटना के   सत्व को समझना चाहते थे उनके धर्म के समाजशास्त्र के अध्ययन की सामग्री बहुत ही स्पष्ट और सरल थी। वेबर एक महत्वपूर्ण तथ्य स्थापित करते हैं कि समाज के विभिन्न स्तरों का धर्म के प्रति दृष्टिकोण एक समान नहीं होता। धर्म के समाजशास्त्र में बेवर का जो महत्वपूर्ण योगदान है वह यह है कि समाजशास्त्र अपने आप में धर्म का अध्ययन नहीं करता वास्तव में जिसे धर्म का सत्व कहते हैं उसमें समाजशास्त्र की कोई रुचि नहीं होती तब तो केवल उनके व्यवहार और गतिविधियों का अध्ययन करता है, जिसका संबंध धार्मिक क्रियाओं से होता है। मैक्स वेबर ने पश्चिमी यूरोप में विकसित पूंजीवाद को प्रोटेस्टेंट धर्म का परिणाम बताया। आपने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रोटेस्टेंट एथिक एवं पूंजीवाद में कार्य कारण संबंध पाया जाता है अर्थात प्रोटेस्टेंट पूर्वगामी है जबकि पूंजीवाद इसका परिणाम है वेबर इस बात को स्वीकार करते हैं कि धर्म पूंजीवाद की उत्पत्ति एवं विकास का एकमात्र कारण नहीं है इसे सबसे अधिक प्रभावशाली कारक माना जा सकता है।

पारसंस का कथन है कि समाजशास्त्र की व्याख्या में वेबर का महत्वपूर्ण योगदान एक व्यवस्थित पद्धति शास्त्रीय अंतर्दृष्टि है जिसके द्वारा उन्होंने विभिन्न कारकों को एक दूसरे से पृथक करके उनके कारण एवं प्रभाव को एक दूसरे की तुलना में स्पष्ट किया है।

4.4.16 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वेबर ने विश्व की कितने धर्मों का अध्ययन किया है?

   अ सात ब पांच

   स तीन द छैः

2. मैक्स वेवर के अनुसार धर्म के कितने प्रकार होते हैं?

   अ दो ब तीन

   स पांच द सात

3. 'द प्रोटेस्टेंट एथिक्स एंड द स्पिरिट द ऑफ कैपिटलिजम' का प्रकाशन किस सन में हुआ?

   अ 1906 ब 1908

   स 1921 द 1960

4. वेबर ने पूंजीवादी समाज को कितने भागों में बांटा है?

   अ पांच ब तीन

   स सात द चार

5. "धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।" यह कथन किसका है?

   अ मैक्स वेबर ब टायलर

   स इमाइल दुर्खीम द फ्रेजर

उत्तर 1 द 2 अ 3 अ 4 द 5 ब

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म का अर्थ और उसकी विशेषताएं लिखिए।
2. मैक्स वेवर के अनुसार धर्म के समाजशास्त्र के प्रमुख आधार क्या है?
3. पूंजीवाद की सार को संक्षेप में समझाइए।
4. धर्म के समाजशास्त्र में मैक्स वेबर द्वारा उठाए गए आधारभूत लक्षणों का उल्लेख कीजिए।
5. मैक्स वेबर के धर्म और पूंजीवाद के विचारों की आलोचना कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैक्स वेबर के धर्म के समाजशास्त्र के योगदान की विस्तार से विवेचना कीजिए।
2. धर्म के सिद्धांत की आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
3. मैक्स वेबर का अध्ययन प्रोटेस्टेंट एथिक्स एंड स्पिरिटऑफ कैपिटल इसमें का समाजशास्त्रीय महत्व क्या है?

4. मैक्स वेबर के पूंजीवाद एवं प्रोटेस्टेंट धर्म के बारे में किए गए अध्ययन की समीक्षा कीजिए।
5. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि पूंजीवाद का कारण प्रोटेस्टेंट धर्म ही है? विवेचना कीजिए।

4.4.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, कृष्ण. गोपाल. (2015). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000). समाजशास्त्र. आगरा: भवन पब्लिकेशन.
3. घोषाल, अरुणांशु. एवं मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2014). सोशल थॉट. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. हुसैन, मुजतबा. (2010). समाजशास्त्रीय विचारक. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड.
5. महाजन, धर्मवीर. (2008). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.
6. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2016). सामाजिक विचारधारा. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. मुखर्जी. नाथ. रविंद्र. (2008) उत्कृष्ठ समाजशास्त्रीय परंपराएं. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
8. रावत, हरिकृष्ण. (2007). समाजशास्त्री चिंतन एवं सिद्धांतकार. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
9. शर्मा, वीरेंद्र. प्रकाश. (2004). समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
10. कुमार, आनंद. (1982). सामाजिक विचारों का इतिहास. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.
11. मिश्रा, महेंद्र. कुमार. (2010). समाजशास्त्री चिंतक एवं सिद्धांतकार. जयपुर: सागर पब्लिशर्स.
12. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेंद्र. कुमार. (2007). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

नोट – इस कृति का कोई भी अंश विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लिए बिना पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। संयोगवश यदि इसमें कोई भी कमी या त्रुटि रह गई हो तो इसके लिए संपादक, संयोजक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। अवगत कराए जाने पर सुधार करने का प्रयास किया जाएगा।